कौन कहता है अकबर महान था?

पुरुषोत्तम नागेश ओक

पुरुषोत्तम नागेश ओक की रचनाएं

भारत का द्वितीय संग्राम"आज़ाद हिन्द फौज की कहानी "सचित्र"
भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें
विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय
ताज महल मन्दिर भवन है
ताजमहल तेजोमहालय शिव मन्दिर है
भारत में मुस्लिम सुल्तान भाग (दो भागों में सम्पूर्ण)
आगरा का लाल किला हिन्दू भवन ह
दिल्ली का लाल किला लाल कोट है
वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास (चार भागों में सम्पूर्ण)
फतहपुर सीकरी हिन्दु नगर है
लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन हैं
क्या भारत का इतिहास भारत के शत्रुओं द्वारा लिखा गया है ?
हास्यास्पद अंग्रेज़ी भाषा
क्रिश्चियनिटी कृष्ण नीति है
कौन कहता है अकबर महान था?
आरोग्य सौन्दर्य तथा दीर्घआयु (व्यायाम व सूर्य नमस्कार)
ज्योतिष स्वयं शिक्षक - फल ज्योतिष

The Taj Mahal is a Temple Palace
Some Blunders Of Indian Historical Research
Some Missing Chapters Of World History
World Vedic Heritage { 2 Vols }
Who Says Akbar Was Great ?
Christianity is Chrisn-nity
Agra Red Fort is a Hindu Building
Lucknow's Imambaras are Hindu Palaces

कौन कहता है अकबर महान् था ?

लेखक
पुरुषोत्तम नागेश ओक
अध्यक्ष
भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान
एन-१२८, ग्रेटर कैलास-१, नयी दिल्ली-११००४८

अनुवादक
जगमोहनराव भट्ट

हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली-५

मूल्य 85/-

प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स , 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005

email: indiabooks@rediffmail.com

टैलिफैक्स 23553624 , 23551344

संस्करण 2010

मुद्रक संजीव आफ्सैट प्रिंटर्स

Original Title :
Who Says Akbar Was Great ?
By : P.N.Oak

प्राक्कथन

मध्ययुगीन मुस्लिम दरबारी इतिवृत्तों के अध्ययन से सम्बन्धित, (आठ खण्डों में) अरबी पुस्तक की प्रस्तावना में सुविख्यात इतिहासकार स्व० सर एच० एम० इलियट ने यह अभिमत व्यक्त किया है कि भारतवर्ष में मुस्लिम शासनकाल का इतिहास एक 'धृष्ट एवं मनोरंजक धोखा' है।

किन्तु मुस्लिम काल के इतिहास के सम्बन्ध में अनिश्चित रूप से केवल यह अनुभव कर लेना कि वह 'धोखा' है अथवा प्रवंचनाओं से पूर्ण है, पर्याप्त नहीं है। उसकी गम्भीरता के समुचित मूल्यांकन के लिए भली-भाँति छानबीन करने एवं तथ्यों की 'अग्नि-परीक्षा' की आवश्यकता है।

मुस्लिम 'धोखों' का भण्डाफोड़ करने वाले सर एच० एम० इलियट जैसे विचक्षण पाश्चात्य विद्वान् मध्ययुगीन मुस्लिम बादशाहों के झूठे दावों से कई रूपों में प्रवंचित होते रहे हैं। उदाहरण के लिए वे यह अनुभव करने में असमर्थ रहे हैं कि मध्ययुगीन मुस्लिम बादशाहों द्वारा जो बड़े-बड़े दावे किये गये हैं कि उन्होंने अनेक नगरों को बसाया, मकबरों तथा मस्जिदों का निर्माण कराया, तो ये भी अन्य मुस्लिम व्यामोहों के समान ही 'धोखे' हैं। इनकी भी परिगणना ऐतिहासिक प्रवंचनाओं में की जानी चाहिए। इतिहासकारों, शिल्पियों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओं ने, यह विश्वास करने में कि फतेहपुर सीकरी, आगरे का लालक़िला तथा पुरानी दिल्ली को मुस्लिम बादशाहों ने बसाया तथा वहाँ निर्णय-कार्य किये, भयंकर भूलें की हैं। अपनी 'ताजमहल एक राजपूत राजभवन था' शीर्षक पुस्तक तथा इसके परवर्ती संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण 'ताजमहल एक हिन्दू राजभवन है' में हमने मध्ययुगीन भव्यतम राजभवन 'ताजमहल' के निर्माण को लेकर शाहजहाँ की अधिकृति से सम्बन्धित 'धोखे' का भण्डाफोड़ किया है। इसी प्रकार अपने एक दूसरे शोध-ग्रन्थ 'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें' में

भी कतिपय अन्य धोखों, जालसाज़ियों तथा भ्रान्त धारणाओं का सम्यक् रहस्योद्घाटन हमने किया है।

'अकबर' पर लिखी गई प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य एक और 'धोखे' का भण्डाफोड़ करना है। हमारा आशय इस प्रकार की धारणाओं के दुष्प्रचार पर आघात करना है कि 'अकबर' एक 'उदार' और 'महान्' शासक था। इस पुस्तक में प्रस्तुत ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि अकबर को एक आदर्श शासक तथा सच्चरित्र मनुष्य के रूप में मान्यता देने की बात तो दूर, उसे सामान्य न्याय-परायण तथा धर्मनिष्ठ नागरिकों की श्रेणी में भी परिगणित नहीं किया जा सकता। अकबर स्वयं अपने आपमें एक कानून था। समुचित मूल्यांकन करें तो विश्व के इतिहास में वह एक सर्वाधिक निरंकुश, क्रूर, धूर्त, धर्मान्ध एवं पाखण्डी शासक प्रमाणित होता है। जड़-बुद्धि कूप-मण्डूक परम्परागत धूर्तता पर पूर्ण विश्वास करते हुए इस ग्रन्थ में प्रस्तुत अकबर के सम्बन्ध में हमारे मूल्यांकन की ओर ध्यान नहीं देंगे। 'सत्य' के शोध के प्रति इस प्रकार का दृष्टिकोण अपमानजनक है।

चार-सौ वर्षों के प्रदीर्घ ऐतिहासिक अन्तराल के पश्चात् अकबर के शासनकाल की घटनाओं का विवेचन करते हुए ऐसा कोई कारण हमें दिखलाई नहीं देता जिससे अकबर से प्रति हमारा कोई व्यक्तिगत वैमनस्य परिलक्षित हो या किसी प्रकार की दुर्भावना हमारे मन में हो। "दैव" के प्रति हम कृतज्ञ होते तथा अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते यदि अकबर सचमुच, जैसाकि माना जाता है, अपनी महानता के अनुरूप सद्गुणों से युक्त होता। उसके शासनकाल की सामान्य जनता ने दुःख झेले होंगे, यातनाएँ सही होंगी तथा अपमान सहन किया होगा! अन्य बादशाहों की भाँति अकबर भी पूर्णतः एक विदेशी बादशाह था, अतः भारतवर्ष की ऐसी जनता को, जो धर्म, संस्कृति तथा राष्ट्रीयता के सन्दर्भों में, अकबर के समक्ष कुछ भी नहीं थी तथा जिनका कोई मेल उसके धर्म और संस्कृति से नहीं था, यदि सचमुच वह अपने बच्चों के समान, जैसाकि विवेकहीनता का परिचय देते हुए लोग प्रतिपादन करते हैं, प्यार करता तो यह उसके लिए सार्वभौम प्रशंसा का विषय होता तथा इसके लिए इतिहास में उसका विलक्षण स्थान होता।

किन्तु अकबर से सम्बन्धित इतिहास-पुस्तकों एवं प्रमाणों का समुचित रूप में अध्ययन एवं विश्लेषण करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उसे दैवी गुण-सम्पन्न मानते हुए, इतिहास में उसे सर्वोच्च स्थान प्रदान करना तथा पूज्य कहना एवं उसपर मानवता की यश-कौमुदी बिकीर्ण करना तर्क-ज्ञान, इतिहास, शोध तथा सत्य का अपमान करना है।

अकबर के स्वेच्छाचारी जीवन तथा उसकी धूर्ततापूर्ण राजनीति से सम्बन्धित घटनाओं की भ्रान्त व्याख्या प्रस्तुत करना, उन्हें उनके संगत सन्दर्भों में ग्रहण न कर सकने की असमर्थता तथा उसके समकालीन द्वारा उल्लिखित तथ्यों एवं वक्तव्यों पर ध्यान न देना न केवल गलत इतिहास को प्रस्तुत करना है, प्रत्युत सम्पूर्ण मानव-ज्ञान के प्रति धृष्टतापूर्ण उपेक्षा प्रदर्शित करना है। अकबर के शासनकाल के सम्बन्ध में यही किया गया है। प्राय: सभी इतिहासकार अबुल फ़ज़ल द्वारा लिखित 'अकबरनामा' में उल्लिखित मिथ्या प्रशस्तियुक्त तथा चाटुकारितापूर्ण तथ्यों पर ही आश्रित रहे तथा उन्हीं की भ्रान्त व्याख्या करते रहे। हमारे इतिहासकारों ने सत्य की खोज करने का प्रयत्न ही नहीं किया। 'अकबरनामा' के चाटुकारिता-पूर्ण विवरणों को सरासर धोखा मानने वाले पाश्चात्य बिद्वानों की भाँति हमारे इतिहासकारों ने किसी 'अन्त:दृष्टि' एवं दूरदर्शिता का परिचय नहीं दिया। अबुल फ़ज़ल के ही समकालीन तथा उसी के समान इतिवृत्त लेखक 'बदायूँनी' एवं 'शाहजादे सलीम' ने उसे 'निर्लज्ज चाटुकार' कहा है। ब्लोच-मैन ने अबुल फ़ज़ल द्वारा लिखित अकबरनामे के अनुवाद की प्रस्तावना में लिखा है—'यूरोपीय लेखकों द्वारा अबुल फ़ज़ल पर अत्यधिक चाटुकारिता का दोषारोपण किया जाता रहा है तथा यह कहा जाता है कि उसने अपने आश्रयदाता के सम्बन्ध में तथ्यों को स्वेच्छा से घुमा-फिराकर प्रस्तुत किया है। ये तथ्य ऐसे हैं, जो उसके आश्रयदाता की कीर्ति की अन्त्येष्टि करने वाले हैं।'

हम यहाँ यह निर्देश दे देना आवश्यक समझते हैं कि इतिहास में अकबर के स्थान-निर्धारण सम्बन्धी हमारे निष्कर्ष पूर्णरूपेण पूर्ववर्ती इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों एवं उल्लिखित तथ्यों पर ही आधारित हैं। हमने इस योगदान में केवल हास्यास्पद झूठे तथ्यों में से सत्य को उद्-घाटित करने वाले प्रमाणों को प्रस्तुत किया है। यत्र-तत्र बिखरे हुए प्रमाणों

को एकत्रित किया है तथा उनमें एकरूपता स्थापित करने का प्रयास किया है तथा ऐसा करते हुए ऐतिहासिक उल्लेखों के सन्दर्भों एवं क्रिया-कलापों, जिनकी गलत व्याख्या की गई है, को सुस्पष्ट करने की दृष्टि से उनका सम्यक् विश्लेषण किया है ।

हमारे शोध का दूरवर्ती महत्त्व है, क्योंकि हमने 'सत्यास्त्र' से इतिहास के उस अंग पर, जोकि कपोलकल्पित है तथा केवल व्यामोह उत्पन्न करता है, आघात किया है । भारतीय इतिहास में भ्रान्तियों का ऐसा आच्छादन तैयार कर दिया गया है कि सत्य का स्वरूप ही धुँधला हो गया है । अकबर के युग के खोखलेपन को चतुरता से छिपाया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि मध्ययुग के 'ऐतिहासिक कंकाल' को हमारे इतिहासकारों ने आकर्षक परिधान से सुसज्जित किया है जिससे पूर्ण यथार्थ का ज्ञान नहीं होता ।

प्रस्तुत ग्रन्थ का उद्देश्य यह है कि अकबर तथा उसके शासनकाल के सम्बन्ध में स्वतन्त्र चिन्तन किया जाए । इसकी यह भी उपलब्धि है कि अकबर के शासनकाल सम्बन्धी जो असंगत तथ्य वर्तमान पाठ्य-पुस्तकों में दिखलाई देते हैं, उनमें एकसूत्रता स्थापित करते हुए विवेकशील सम्बद्धता प्रस्तुत की जाए ।

'सत्य' का परीक्षण इस बात पर आधारित होता है कि वह परस्पर-विरोधी प्रतीत होने वाले समसामयिक साक्ष्यों में सामंजस्य स्थापित करते हुए उसे परिपुष्ट एकरूपता प्रदान कर सके । तदनुसार हम प्रस्तुत ग्रन्थ में विशेषत: अकबर के कार्यों एवं आचरण और सामान्यत: भारत में मुस्लिम शासन को समुचित रूप में समझने के लिए परिपुष्ट व्याख्या प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं ।

—पुरुषोत्तम नागेश ओक

अनुक्रम

: १ :

पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता

भारतवर्ष के तृतीय मुगल बादशाह अकबर, जिसका जीवनकाल सन् १५४२ ई० से लेकर सन् १६०५ ई० तक था, को प्रायः हमारे इतिहासकारों द्वारा एक महान् व्यक्ति, उदार एवं सहृदय शासक के रूप में वर्णित किया जाता है; अकबर के व्यक्तित्व का यह मूल्यांकन पूर्णतः अनुचित है।

यदि यह केवल विचार व्यक्त करने अथवा स्थिति निर्धारित करने का विषय होता तो विशेष महत्त्व की बात नहीं थी कि जो लोग अकबर को 'महान्' समझते हैं, वे उसे उस रूप में पसन्द करते हुए उसकी प्रशस्ति का गान करें, किन्तु अकबर अपनी महानता एवं उदार चरित्र होने सम्बन्धी तथ्य से सर्वथा विपरीत था!

इसके स्पष्टीकरण के लिए एक सामान्य-सा उदाहरण लिया जा सकता है। मान लें, किसी धर्मार्थ कार्य में कोई व्यक्ति दो रुपये का अनुदान देता है तो निश्चिततः यह 'विचार' का विषय होगा, चाहे अनुदाता सहृदय के रूप में गौरवान्वित हो या न हो! यदि अनुदाता केवल इतना ही धनार्जन करता है, जिससे उसकी सामान्य जीविका मात्र चलती है तो दो रुपये का उसका तुच्छ अनुदान भी एक उदार और सहृदय उपहार के रूप में सत्कृत होगा। दूसरी ओर, यदि अनुदाता एक लक्षाधिपति व्यक्ति है तो उसके दो रुपये का अनुदान हास्यास्पद ढंग से एक अत्यन्त छोटी राशि के रूप में स्वीकार किया जायेगा। किन्तु सभी यह कहेंगे कि वह अनुदाता है, उदार है, सहृदय है या इसी प्रकार के दूसरे मत व्यक्त किये जायेंगे। किन्तु यदि वह व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन में सूदखोरी, शोषण और अन्याय में तल्लीन रहता है तथा अपने धन की एक कौड़ी भी किसी सत्कार्य में व्यय नहीं करना चाहता —यदि दो रुपये का अनुदान दे भी दे तो किसी भी सीमा तक वह एक उदार और सहृदय दानदाता के रूप में सत्कृत नहीं हो सकता।

भारतीय अथवा विश्व-इतिहास के क्षेत्र में अकबर का मूल्यांकन कुछ इसी प्रकार का प्रसंग है। उसका कोई भी कृत्य ऐसा नहीं था, जिसमें क्रूरता, धर्मान्धता, धूर्तता, धन-लिप्सा अथवा दूसरे राज्यों को विजित कर हड़प लेने की पिपासा अन्तर्निहित न रही हो ! फिर भी इतिहास में उसे एक आदर्श बादशाह एवं पूज्य व्यक्ति के रूप में वर्णित किया जाता है। यही वह ऐतिहासिक विकृति है, जिसने मध्ययुगीन इतिहास को कलुषित कर रखा है। इसी विकृति को दूर करने का हमारा लक्ष्य है।

जब कभी इस प्रकार के अनुमानित तथ्यों की ओर पुनर्विचार हेतु लोगों का ध्यान आकृष्ट किया जाता है, प्रायः ऐसा सोचा जाता है कि वह व्यक्ति जो ऐतिहासिक पुनरावलोकन में अपनी शक्ति लगा रहा है—द्वेष के वशीभूत है या पक्षपात कर रहा है ! यह विस्मृत कर दिया जाता है कि ऐतिहासिक पुनरावलोकन के सम्बन्ध में किसी सीमा तक यथार्थ मूल्यांकन की प्रवृत्ति, न्यायपरायणता, झूठे तथ्यों के उल्लेख के प्रति रोष तथा सत्य के प्रति आग्रह और सुचिन्तना भी हो सकती है।

ऐतिहासिक पुनरावलोकन की आवश्यकता समझ सकने में असमर्थ दूसरे लोग यह तर्क देते हैं कि चूँकि अकबर की मृत्यु हो चुकी है तथा वर्तमान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, अतः उसपर दोषारोपण करने से क्या लाभ ? इस प्रकार के दोषारोपण का आग्रह ही क्यों किया जाय ? ऐसे लोग यह तो स्वीकार करते हैं कि अकबर दुरात्मा था, किन्तु उसका सम्बन्ध अतीत से स्थापित कर उसके दुर्गुणों एवं दोषों की विवेचना से कोई प्रत्यक्ष लाभ अनुभव नहीं करते। सामान्य दृष्टिकोण से इस प्रकार के सुझाव का गम्भीर महत्त्व है, क्योंकि अतीत, जो हमसे बियुक्त हो चुका है तथा दुबारा लौटकर नहीं आयेगा, के विश्लेषण से भावी सम्भावनाओं पर विचार किया जा सकता है। अधिक सूक्ष्मता से विचार करने एवं छानबीन करने पर इस प्रकार के सुझाव इतने सीधे और सहज नहीं हैं, जितने वे प्रतीत होते हैं। अकबर की 'स्मृत्यात्मा' का चाहे किसी भी कारणवश जो भी महत्त्व हो, यदि सम्पूर्ण विश्व की एक मत से यह सम्मति होती है कि उसे चिर-विश्रान्ति के महाशून्य गर्भ में निद्राभिभूत रहने दिया जाये तो हमारी यह कतई मनशा नहीं है कि उसे पुनरुज्जीवित किया जाये। किन्तु हम मौन रहें तो भी यह देखा जा रहा है कि अकबर की प्रेतात्मा को उसकी महानता के

सन्दर्भों के साथ पाठशालाओं, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अभी भी छात्रों के बीच पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुनरुज्जीवित किया जाता है तथा अपरिपक्व छात्रों के मस्तिष्क में यह बात ठूँसी जाती है कि अकबर एक महान् और उदार शासक था। पाठशालाओं एवं महाविद्यालय की विभिन्न स्तरीय कक्षाओं के पाठों, परीक्षा के प्रश्न-पत्रों तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के माध्यम से अकबर की महानता के कल्पित वृत्त जनता के मस्तिष्क में निरन्तर विद्युत् की कौंध उत्पन्न कर रहे हैं। हमारे समाज में समय-समय पर आयोजित समारोहों के दौरान विभिन्न संस्थानों तथा शासकीय अधिकारियों द्वारा सगर्व अकबर को इतिहास में उच्चस्थ स्थान प्रदान किया जाता है तथा उसे एक आदर्श बादशाह निरूपित करते हुए उसकी अतिशय प्रशस्ति की जाती है। न केवल बादशाह के रूप में—व्यक्ति के रूप में भी अकबर एक चरित्रवान् और कर्तव्यनिष्ठ मानव उल्लेखित किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि न केवल समाज की निजी संस्थाओं के ग्रन्थों, अपितु शासकीय रूप से तैयार की गई पुस्तकों में भी 'अकबर के आदर्श' को अनुकरणीय निरूपित किया जाता है। ऐसी स्थिति में जबकि अकबर की 'प्रेतात्मा' को निरन्तर हमारे सामने उभारकर रखा जा रहा है तथा जन-सामान्य के समक्ष उसे सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हुए देवताओं की प्रतिमा के सदृश प्रस्तुत कर हमें बलात् नतमस्तक होने को बाध्य किया जा रहा है, यह आवश्यकता कि अकबर की महानता के प्रति विश्वास ऐतिहासिक तथ्यों से प्रमाणित एवं सम्पुष्ट होता है या नहीं, न केवल प्रसंगोचित है, अपितु ऐतिहासिक दृष्टि से अनिवार्य भी है।

उन लोगों के लिए, जो यह कहते हैं कि 'गढ़े मुर्दे उखाड़ने से क्या फायदा ?—अतीत को अतीत रहने दीजिए। जो बीत गई सो बीत गई।' हमारे पास और भी समुचित उत्तर हैं। ऐसे लोगों को यह अनुभव करना चाहिए कि इतिहास कुछ भी नहीं है, अपितु केवल अतीत को प्रस्तुत करना तथा उसका विश्लेषण करना ही है। अतीत को छोड़ने की दुहाई देने वालों को यह भी समझना चाहिए कि वे, उनके सम्बन्धी तथा बन्धु-बान्धव शैक्षिक-संस्थाओं अथवा लोक-सेवा परीक्षाओं में इतिहास के प्रश्न-पत्रों में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में यह लिखकर मुक्ति नहीं पा सकते कि—'माननीय परीक्षक महोदय, चूंकि अकबर की मृत्यु हो चुकी है तथा उसका युग अतीत के

गर्त में समा चुका है, अतः उसके व्यक्तित्व एवं शासनकाल के विषय में मुझसे प्रश्न पूछकर आप मेरे मस्तिष्क तथा स्वयं के मस्तिष्क को क्यों चिन्ता-ग्रस्त करते हैं ? हमें इस विषय पर कष्ट उठाने की आवश्यकता ही क्या है ?' यह उदाहरण यह प्रदर्शित करता है कि हम चाहें या न चाहें, इतिहास का हमारे साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐतिहासिक अतीत हमारे वर्तमान के साथ चल रहा है। और जब हम यह स्वीकार कर रहे हैं कि अतीत से मुक्ति नहीं मिल सकती तो प्रत्येक ऐसे व्यक्ति का, जो सही ढंग से सोचना पसन्द करता है, यह कर्तव्य है कि देखे इतिहास के नाम पर जो कुछ भी लिखा गया है अथवा जो कुछ कहा जाता है केवल सत्य है—सम्पूर्ण सत्य है तथा सत्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

इतिहास के अध्ययन-अध्यापन का प्रमुख उद्देश्य ही यह है कि अतीत से कुछ शिक्षा ग्रहण की जाए। इससे अतीत में जो भूलें हुई होती हैं, उनका निराकरण होता है। उन भूलों की पुनरावृत्ति नहीं हो पाती। अतीत में जो गौरवपूर्ण होता है, उसके अध्ययन से हमें भविष्य-निर्माण की उत्प्रेरणा भी मिलती है। इतिहास का यह लक्ष्य तब समाप्त हो जाता है, जब धर्म-निरपेक्षता एवं साम्प्रदायिक एकता आदि की भ्रान्त धारणाओं के वशीभूत होकर ऐतिहासिक तथ्यों को दूषित रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उनकी गलत व्याख्या की जाती है। सत्य को छिपाया जाता है अथवा गलत ढंग से प्रस्तुत किया जाता है तथा अयथार्थ ऐतिहासिक विवेचन एवं विश्लेषण किया जाता है। भारतवर्ष में प्रायः ऐसा ही हुआ है कि धर्म-निरपेक्षता तथा साम्प्रदायिक एकता के नाम पर सही इतिहास पर पर्दा डालने की कोशिशें की गईं। भेड़ियों के समान क्रूर एवं निर्मम मुस्लिम बादशाहों को गाय की खाल पहनाकर हमारे सामने रखा जाता है।

सभी प्रकार का ज्ञान 'सत्य' की एक अविराम खोज होता है। इतिहास भी किसी राष्ट्र के अतीत से सम्बन्धित सत्य की ही एक खोज़ मात्र है। अतः अकबर के पुनर्मूल्यांकन को गलत न समझा जाए कि यह उसके 'चरित्र की हत्या' है। इस पुस्तक में अकबर के चरित्र एवं उसके शासनकाल के सन्दर्भों को लेकर पुनर्विचार के जो प्रयास किए हैं, उनका लक्ष्य यह है कि खोज की जाए कि क्या सचमुच अकबर का चरित्र 'स्तुत्य' था ? किसी भी ऐतिहासिक व्यक्तित्व के पुनर्मूल्यांकन के सम्बन्ध में, जैसाकि अकबर के विषय में

प्रचलित है, यह आवश्यक होगा कि इतिहास की पुस्तकों में उल्लिखित वृत्त यथार्थ प्रमाणों से समर्थित किया जाए या उसकी साक्षी दी जाए। अपने इस उत्तरदायित्व को हम पूर्णतः अनुभव करते हैं तथा इस सन्दर्भ में यदि कोई चुनौती दे तो उसे सहर्ष स्वीकार करते हैं।

शताब्दियों से अकबर के दुष्कृत्यों के सम्बन्ध में या तो उल्लेख ही नहीं किया गया, या उन्हें बहुत सावधानी से उसके शासनकाल के मिथ्या आडम्बरों, झूठे आदर्श तथा धूर्त-चरित्र की भ्रान्त तड़क-भड़क की आड़ में छिपाया जाता रहा। अकबर के दुष्कृत्यों के सम्बन्ध में सही तथ्यों को प्रमाणित होने से बचाना कोई सहज कार्य नहीं है। एक दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिन शाही ढकोसलों के बीच वे तथ्य विलुप्तप्रायः हैं—जिन जालसाजियों एवं षड्यन्त्र रचनाओं से उन्हें छिपाया गया है, उनसे उन्हें निकालकर स्पष्ट रूप देते हुए एकत्रित करना एक कठिन कार्य है। इस सन्दर्भ में जो भी प्रयास किए गये, उन्हें आंशिक सफलता ही मिल पाई, क्योंकि घटनाओं की कई आवश्यक कड़ियाँ उपलब्ध ही नहीं होतीं। प्रायः विशृंखलित कड़ियों को एकत्रित कर उसमें एकसूत्रता स्थापित करना भी एक श्रमसाध्य और दुस्तर कार्य है। अन्ततः इस प्रकार एकसूत्रता स्थापित करने का कार्य निष्फल सिद्ध होता रहा है तथा उससे किसी प्रकार की उपलब्धि नहीं होती। संरक्षता प्राप्त होने की बात तो दूर, अधिकांश वर्गों में इस प्रकार के कार्यों के प्रति रोष ही व्यक्त किया जाता है। इन्हीं व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण प्रत्येक इतिहासकार विचारपूर्वक परम्परागत रूप में अकबर को महानता के गुणों से गौरवान्वित करना पसन्द करता रहा। अकबर के युग को इतिहास का एक विशिष्ट काल निरूपित करते हुए ऐसे कार्यों में वे अपनी शिक्षा की इतिश्री और गौरव समझते रहे।

कतिपय ऐसे सदाशय पाश्चात्य विद्वान् हुए हैं जिन्हें अपना उद्देश्य पहचानने में सफलता मिली है। ऐतिहासिक निष्पक्षता प्रदर्शित करते हुए जिन्होंने अपने मत-प्रतिपादन में साहस से काम लिया। इसका कारण यह था कि वे अपरतन्त्र नागरिक थे। निःसन्देह वे निष्पक्ष रहे तथा उन्होंने यथातथ्य मूल्यांकन के प्रयास किए, किन्तु दुर्भाग्यवश उनमें अन्तःदर्शन एवं तथ्यों को यथार्थ रूप में ग्रहण करने की मानसिक शक्ति का अभाव रहा

जिसकी [illegible]

के हृदयों में नैसर्गिक प्रबल घृणा की दुर्भावना को, जिसके कारण उन्होंने भीषण नरसंहार किए, समझने तथा उसकी तह तक पहुँचने में पड़ती है। वे यह समझने में प्रायः असमर्थ रहे कि मुस्लिम आक्रांताओं ने समस्त प्राचीन भारतीय अभिलेखों को पूर्णतः नष्ट करने की दुश्चेष्टायें कीं तथा भारतीय इतिहास में जालसाज़ीपूर्ण अभिलेखों को समाविष्ट किया। सर एच० एम० इलियट जैसी महत् विभूति भी, जिनमें सन्दिग्ध एवं झूठे तथ्यों की उन्हें धृष्ट एवं मनोरंजक धोखों के रूप में खोज करने तथा उल्लेख करने का 'अन्तःदर्शन' था, ऐतिहासिक षड्यन्त्रों की गहराई तक नहीं पहुँच सके तथा उनका शाखा-प्रशाखावत् विश्लेषण करने में असमर्थ रहे।

भारतवर्ष में प्रायः 'इतिहासकार' शब्द का 'व्याजोक्ति' के रूप में प्रयोग होता रहा है। इसकी प्रतिष्ठा कुछ और ही रही है, किन्तु कार्य कुछ और ही। वे सभी लोग जो पाठशालाओं, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों अथवा पुरातत्त्व विभाग एवं ग्रन्थरक्षा विभाग में शासकीय अथवा गैर-शासकीय रूप में अध्यापन अथवा अन्य कार्यों द्वारा जीवकोपार्जन कर रहे हैं या पुस्तकादि लिखकर धनार्जन कर रहे हैं, 'इतिहासकार की उपाधि' से विभूषित होने की किंचित् भी योग्यता नहीं रखते। इतिहासकार की सच्ची कसौटी क्या है ? जन्म से कोई इतिहासकार पैदा नहीं होता। इतिहास किसी को विरासत में प्राप्त नहीं होता, न ही वह किसी की मांस-मज्जा में समाया होता है। विचार तो यह करना है कि ऐसा व्यक्ति जो स्वयं को इतिहासकार के रूप में ज्ञापित कर रहा है, क्या इतिहास की बिखरी अथवा लुप्त कड़ियों को जोड़ने या खोजने का प्रयास कर रहा है अथवा इतिहास की असंगतियों पर चिन्तन प्रस्तुत कर रहा है ? या क्या वह इतिहास के रिक्त स्थानों की पूर्ति हेतु नये प्रमाणों की खोज में प्रयत्नशील है ? या क्या ऐसा करते हुए वह इतिहास प्रतिपादन के क्षेत्र में किसी स्वच्छन्द तथा मौलिक दृष्टिकोण, जो किसी विशिष्ट मत अथवा सिद्धान्त से अन्ध-बद्ध नहीं है, का प्रतिपादन कर रहा है ? यदि वह ऐसा कोई कार्य नहीं कर रहा है तो उसे इतिहासकार के रूप में कतई स्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसे लोग जो स्वार्थ-सिद्धि के लिए, धनार्जन अथवा जीविकोपार्जन के लिए अध्यापन, लेखन अथवा शासकीय विभागों में कार्यरत रहते हैं, जिस देश अथवा वहाँ के लोगों के इतिहास के सम्बन्ध में खोजबीन की जाती है,

उनके प्रति अपना अनावश्यक प्रेम दिखलाते हैं, जिसके कारण सही इतिहास पर प्रकाश नहीं पड़ता ।

पूर्वोल्लिखित तथ्यों के प्रकाश में स्वाभाविक रूप से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुर्कों, अरबों, अफगानों, अबिसीनियों, मंगोलों, उजबेकों, कजकों तथा ईरानियों, जिन्होंने भारतवर्ष में सैकड़ों बार हमले किये तथा हज़ारों वर्षों की कालावधि के दौरान यहाँ अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की, के हृदयों में भारतीय इतिहास को दूषित करते हुए—'झूठे तथ्यों का आरोपण करते हुए किसी प्रकार की नैतिकता' के प्रति कोई आग्रह नहीं था। उन्होंने अपनी गर्हणीय अनैतिकता का परिचय देते हुए यहाँ के शुद्ध इतिहास को नष्ट कर उसके स्थान पर गलत इतिहास को प्रस्तुत करने की दुश्चेष्टा की। भारतवर्ष, यहाँ के निवासी तथा यहाँ की संस्कृति आदि के प्रति उनके मन में कोई प्रेम नहीं था । वे यहाँ के वैभव और समृद्धि को समूल नष्ट करने एवं शोषित करने आये तथा यहाँ बस गये । वे बर्बर दस्युओं की भाँति यहाँ भीषण नर-संहार करते रहे, खून की नदियाँ बहाते रहे । अतः उनके सरकारी इतिवृत्तों में जो भी उल्लेख प्राप्त होते हैं उनका सावधानी से अध्ययन करने तथा विश्लेषण करने की आवश्यकता है। व्यावहारिक क्षेत्र में इसके सर्वथा विपरीत देखा जा रहा है । मुस्लिम सरकारी इतिवृत्तों, जिनमें उल्लेखित यथार्थ तथ्यों के अतिक्रमण रूप को देखते हुए एक विचक्षण पाश्चात्य विद्वान् सर एच० एम० इलियट यह कहने के लिए बाध्य हो गये कि वे धृष्ट एवं मनोरंजक धोखा है, के सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाने लगा है कि भारतीय इतिहास के तथ्यों को एकत्रित करने विषयक वे ही मूल एवं शुद्ध स्रोत हैं ।

भारतीय इतिहास के छात्र निराशा में यह कह सकते हैं कि यदि पूर्ववर्ती हिन्दू रिकार्डों को मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा जलाकर नष्ट कर दिया गया तथा जो इतिवृत्त उन आक्रांताओं द्वारा प्रस्तुत किये गये, उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता तो ऐसे कौन-से सूत्र शेष रहते हैं जिनके द्वारा भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण की संभावनाएँ हो सकती हैं ? किन्तु सौभाग्यवशात् हम निराशा में नहीं डूबे हैं । हममें किसी प्रकार की कुण्ठा नहीं है । हमारा विश्वास है कि उन झूठे एवं षड्यन्त्रपूर्ण मुस्लिम इतिवृत्तों

में वे सभी प्रमाण सन्निविष्ट हैं, जिन्हें सत्य के आधार और आग्रह पर इतिहास की पुनर्रचना के लिए हम आवश्यक समझते हैं।

इस उल्लेख के स्पष्टीकरण से ऐतिहासिक शोध के लिए शहादत के कानून के महत्त्व पर प्रकाश पड़ता है। जिस प्रकार न्यायालयों में प्रमाणों को प्रस्तुत किया जाता है, उन्हें श्रेणीबद्ध किया जाता है तथा उनमें एक-सूत्रता स्थापित की जाती है, उसी प्रकार की तत्परता ऐतिहासिक अध्ययन एवं सिद्धि के लिए अनिवार्य है।

और भी अधिक स्पष्टता के लिए हम एक उदाहरण ले सकते हैं। मान लें, विशाल जन-पथ पर एक लावारिश लाश पड़ी है। शताब्दियों के बुद्धि-चातुर्य के प्रतिफल रूप में सिद्ध गुप्तचर्य प्रतिपादित करने का अवसर आता है। लाश के सम्बन्ध में गुप्तचरों द्वारा छानबीन तथा जाँच-पड़ताल आरम्भ होती है। लाश के साथ एक पत्र मिलता है, जिसमें लिखा है कि मृतक ने स्वेच्छा से आत्मघात किया है, जिसके लिए किसी को दोष न दिया जाये, न ही किसी प्रकार की जाँच-पड़ताल की जाये। किन्तु इसके साथ यह भी देखा जाता है कि लाश की पीठ पर छुरे के जख्म का निशान है। तब छान-बीन कर रहे गुप्तचरों के मस्तिष्क में यह तर्क-ज्ञान उत्पन्न होगा कि चूँकि कोई भी व्यक्ति अपनी पीठ पर सांघातिक प्रहार नहीं कर सकता, अतः उक्त पत्र बाद में जोड़ी गई जालसाजी है तथा मामला स्पष्टतः हत्या का है। वैधानिक जाँच-पड़ताल के कानून के अन्तर्गत इस तथ्य का अत्यधिक महत्त्व है तथा ऐतिहासिक शोध के लिए भी यह महत्त्वपूर्ण है। उक्त कानून का आधार यह है कि जब कभी सामयिक प्रमाण किसी तथाकथित लेख-प्रपत्र के साथ मेल नहीं खाता अथवा उसमें असम्बद्धता होती है तो वह लेख-प्रपत्र स्पष्टतः जालसाजी सिद्ध होता है। यहाँ लेख-प्रपत्र से हमारा तात्पर्य केवल कागजी नहीं है। अपितु उसके अन्तर्गत चर्मपत्र, शिलालेख, ताम्रपत्र आदि भी शामिल हैं। शहादत का वह महत्त्वपूर्ण विधान इतिहास के छात्रों को सजग करता है कि वे सोच-समझकर किसी लेख, टंकित अभि-पत्र अथवा किसी उल्लेख के प्रति अपना विश्वास स्थिर करें। इससे उन्हें इस बात का भी सुझाव प्राप्त होता है कि ऐतिहासिक शोध के क्षेत्र में अन्ध-विश्वास का महत्त्व नहीं है। वे सामयिक प्रमाण को ही स्वीकार करें तथा जिस लेख अथवा उल्लेख के सम्बन्ध में विरोधाभास हो अथवा तथ्यों में

पारस्परिक मेल न हो तो उसे रद्द कर दें। यदि इस महत्त्वपूर्ण विधान को ध्यान में रखा जाये तो भारतवर्ष में कई मुस्लिम लेखाभिलेखों के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल करने से वे सहज ही उद्देश्यपूर्वक इतिहास में समाविष्ट की गई जालसाजियाँ सिद्ध हो जायेंगे।

कुछ स्थानों पर यद्यपि न तो लेखक के द्वारा कोई दावा व्यक्त किया जाता है, न टंकणकार की ओर से किसी निर्माण की अधिकृति ज्ञापित की जाती है, फिर भी भारतीय इतिहासकार भयंकर भूलें कर बैठते हैं तथा किसी भी संस्मारक के निर्माण का सम्बन्ध किसी बादशाह आदि से स्थापित कर देते हैं। उदाहरण के लिए फतेहपुर सीकरी में 'बुलंद दरवाजे' पर जो प्रलेख टंकित है, वह दक्षिण में अकबर की विजय का आभास-द्योतक है, किन्तु इसके सम्बन्ध में अप्रामाणिक रूप से इतिहासकारों द्वारा यह व्याख्या की जाती है कि अकबर ने उक्त भव्य पाषाण-द्वार का निर्माण दक्षिण में अपनी विजय के उपलक्ष्य में करवाया। इस प्रकार की कल्पना किसी प्रकार के निर्णायक निष्कर्ष तक पहुँचने में सहायता नहीं देती, क्योंकि यह कल्पना कि बुलंद दरवाजे में जो टंकित है, वह दक्षिण में अकबर की विजय की याद में उसके द्वारा निर्माण करवाया गया, पूर्णतः गलत है। यहाँ इतिहासकारों से यह अपेक्षा है कि वे तर्क-ज्ञान का आश्रय लें तथा तथ्य का विश्लेषण करें। मनोवैज्ञानिक अध्ययन करें तो पता चलेगा कि यह एक सामान्य मानवी कमजोरी है कि जब वे किसी ऐतिहासिक स्थल को देखने जाते हैं तो पत्थरों पर, वृक्षों पर अथवा अन्य स्थानों पर या तो अपना नाम खोद देते हैं या किसी प्रसंग को टंकित कर देते हैं। बुलन्द दरवाजे पर अकबर द्वारा जो टंकित करवाया गया, वह इसी सामान्य मानवी कमज़ोरी की शाही ढंग से एक अभिव्यक्ति मात्र है। अकबर ने पूर्ववर्ती हिन्दू द्वार पर केवल अपनी विजय के सम्बन्ध में एक 'अभिपट्ट' टंकित करवाकर उसे द्वार से सम्बद्ध करवा दिया। विंसेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'अकबर : एक महान् मुगल'[1] में यह उल्लेख किया है कि अकबर अपने साथ राजगीरों तथा टंकणकारों को भी रखता था। ये राजगीर तथा टंकणकार अकबर के आदेशानुसार, जहाँ उसकी इच्छा होती थी, तथ्यों का टंकण-कार्य सम्पादित करते थे।

---

१. अकबर, दी ग्रेट मुगल।

पूर्व प्रस्तुत उदाहरण में किंचित् संशोधन करते हुए हम अपने पाठकों को यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि कैसे कोई लेख यथार्थ होने पर भी घटना के यथातथ्य प्रतिपादन हेतु समीचीन नहीं होता। इसकी सिद्धि के लिए हम एक दूसरा उदाहरण ले सकते हैं। मान लें, जिस व्यक्ति की लाश सड़क पर लावारिस पाई जाती है, वह अपने घर से एक यथार्थ पत्र लिखकर कि वह आत्मघात करने जा रहा है तथा इस सम्बन्ध में किसी को दोष न दिया जाये, न ही इसकी जाँच-पड़ताल की जाये, एवं उस पत्र पर अपने हस्ताक्षर करके घर से निकलता है तथा बाद में उसकी लाश पाई जाती है। इस प्रकार के मामले में भी यदि मृतक की पीठ में छुरे के जख्म का निशान पाया जाता है तो यह अनुमान किया जायेगा कि यद्यपि वह व्यक्ति घर से इस उद्देश्य को लेकर निकला था कि आत्मघात करेगा, किन्तु वह मार्ग में ही रोक लिया गया तथा उसकी हत्या कर दी गई। इस मामले में एक विलक्षण बात यह है कि आत्मघात का पाया गया पत्र तो सही है, किन्तु फिर भी मृतक की मृत्यु 'आत्मघात' से नहीं हुई, अपितु उसकी 'हत्या' की गयी। यह उदाहरण हमें एक और 'शहादत के कानून' से अवगत कराता है। वह यह है कि कोई भी लेख-प्रपत्र सही हो सकता है, किन्तु 'घटना' से उसका सम्बन्ध जाल्साजी हो सकता है। इस मामले में भी सामयिक प्रमाण विचारणीय एवं आलोच्य रहेगा।

भारतीय दण्ड विधान संहिता में आत्म-स्वीकृति के सम्बन्ध में कुछ अत्यन्त आवश्यक निर्देश प्राप्त होते हैं। आत्म-स्वीकृति प्रमाणों के रूप में स्वीकार की जाती है। उक्त संहिता में विशेष रूप से एक न्यायाधीश के लिए यह निर्देश होता है कि वह अभियोगी को इस बात की चेतावनी पहले ही दे दे कि वह किसी प्रकार की आत्म-स्वीकृति करने के लिए बाध्य नहीं है। फिर भी यदि वह किसी प्रकार का लिखित वक्तव्य देता है तो उसका प्रयोग उसके विरोध में ही किया जायेगा। उससे अभियोगी का पक्ष कभी भी समर्थित नहीं होगा। मुस्लिम इतिवृत्त-ग्रन्थ 'आत्म-स्वीकृति' के उक्त तथ्य को ही चरितार्थ करने वाले हैं। उनका मूल्यांकन हमारी तथ्य-निरूपण क्षमता पर निर्भर करता है। इतिहासकार उनका चाहे जैसा उपयोग करने के लिए स्वतन्त्र हैं। उन मुस्लिम सरकारी इतिवृत्तों का अध्ययन करते हुए ऐसा आभास होगा, जैसे उनमें उल्लेखित तथ्यों पर कोई चाहे तो पूरी तरह

से विश्वास करे और चाहे तो उन्हें पूर्ण-रूपेण रद्द कर दे। किन्तु प्राय: ऐसा होता नहीं है। प्रमाणों का अध्ययन एवं विश्लेषण कोई 'भरशाही' कार्य नहीं है—न ही वह किसी की इच्छा पर निर्भर करता है। उनके प्रत्येक पहलू का सूक्ष्म परीक्षण किया जाना चाहिए।

ऊपर हमने जिन दो उदाहरणों का निर्देश दिया है, उनमें तथाकथित आत्मघात से सम्बन्धित प्रपत्न पूर्णरूपेण व्यर्थ है, क्योंकि उनसे अपराधी का दोष-निरूपण नहीं होता। वह गुप्त ही रहता है। फिर भी उन प्रपत्नों का अत्यधिक महत्त्व है। जाँच-पड़ताल करते हुए उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अपराध में साथ देने वाले मनुष्यों की अभियोग-सिद्धि की दृष्टि से उन प्रपत्नों का महत्त्व है। साथ ही, उनसे हत्या के सम्बन्ध में सामयिक स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है।

अत: यह कहा जा सकता है कि लिखित प्रपत्न आदि का महत्त्व अपराधी का अपराध सिद्ध करने की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण है तथा उनसे उसकी रक्षा कभी नहीं हो सकती। भारतीय इतिहास में इसके सर्वथा विपरीत हुआ है। लिखित प्रपत्नों के तथ्यों को यहाँ 'अन्तिम सत्य' के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। सामयिक प्रमाणों से न तो उन्हें समर्थित किया गया, न ही उनके विश्लेषण का कष्ट उठाया गया। प्रमाणों के समुचित मूल्यांकन के क्षेत्र में यह वह प्रारम्भिक दोष है, जिसके कारण भारतीय इतिहास के मूल्यांकन में हमें अनेक न्यायविरुद्ध, असंगत, विवेकहीन तथा अव्यवस्थित निष्कर्ष दिखलाई पड़ते हैं।

प्रमाणों की जाँच सम्बन्धी कानून में सावधानी की आवश्यकता का सामान्य नियम यह है कि किसी भी आत्मस्वीकृति (स्वेच्छा से प्रस्तुत किया गया कोई वक्तव्य) में कोई भी अभियुक्त अपने बचाव के लिए कुछ भी कहने के लिए स्वतन्त्र है, किन्तु उसकी बातों का विश्वास किया जाये, यह आवश्यक नहीं है। किन्तु अपने वक्तव्य के दौरान यदि वह इस बात के संकेत देता है, जिनसे उसके फँसने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है तो निश्चिततः इससे उसकी दोष-सिद्धि ही होगी तथा उन संकेतों को कानूनी मान्यता दी जायेगी एवं उन्हें ठोस प्रमाणों के रूप में माना जायेगा।

अपने तथ्य-विश्लेषण के सन्दर्भ में और भी अधिक स्पष्टता के लिए हम कुछ नये सूत्रों का उल्लेख करेंगे। हम यहाँ संदिग्ध व्यक्ति अथवा

अभियोगी के पक्ष में कुछ तार्किक विवेचना करना चाहेंगे । कभी-कभी स्पष्ट आत्मस्वीकृति को भी अपराधी की दोष-सिद्धि के सम्बन्ध में प्रमाण के रूप में मान्यता नहीं दी जाती। इसके लिए हम एक कल्पित मामले का उदाहरण ले सकते हैं। मान लें, हिन्दू परिवार के दम्पत्ति, जिनका विवाह हुए काफी समय व्यतीत हो गया है, अपने निवास-स्थान की बैठक में बैठे हैं। सहसा वहाँ कोई व्यक्ति भेंट करने आता है। पति और भेंटकर्ता के बीच वार्ता हिंसात्मक मोड़ ले लेती है। क्रोधाभिभूत हो पति भेंटकर्ता की हत्या कर देता है। एक कर्तव्यपरायण हिन्दू पत्नी, जो सदैव यह चाहेगी कि पति से पूर्व उसकी जीवन-लीला समाप्त हो, की भाँति हत्यारे की पत्नी अपने पति की सहायता करते हुए यह सुझाव देगी कि वह भाग जाये। पुलिस के आने पर वह कहेगी कि उसने स्वयं भेंटकर्ता की हत्या की है। इस प्रकार के मामलों में यद्यपि पत्नी प्रत्यक्षतः हत्यारिन है, किन्तु फिर भी जिस अदालत में उस पर मुकदमा चल रहा होगा, वह उसकी हत्या करने की आत्मस्वीकृति के बावजूद भी दोष-सिद्धि के लिए उसपर विश्वास नहीं करेगी। इस प्रकार के मामलों में न्यायाधीश के मस्तिष्क में यह बात भी उत्पन्न होगी कि एक हिन्दू पत्नी अपने पति की रक्षा करने के उद्देश्य से हत्यारे की भूमिका स्वयं निवाह रही है। वह स्वयं को बलिदान कर देगी, किन्तु पति पर आँच नहीं आने देगी। इस तथ्य पर भी विचार किया जायेगा कि एक हिन्दू स्त्री कभी हत्या जैसा घृणित कृत्य नहीं कर सकती। किसी भी बाहरी व्यक्ति के साथ वह हिंसात्मक झगड़ा नहीं कर सकती। वह किसी भी हालत में सांघातिक अस्त्र का प्रयोग नहीं कर सकती। ऐसी नारी भला कभी हत्या कैसे कर सकती है—आदि। अतः अदालत अपराध की इस प्रकार की स्पष्ट आत्मस्वीकृति के प्रमाण को प्रयोग में लाने में पूरी तरह सावधानी बरतेगी।

उपर्युक्त उदाहरण एक इतिहासकार को आश्वस्त करने के लिए पर्याप्त होंगे कि एक सामाजिक व्यक्ति होने के नाते उसे प्रस्तुत प्रमाण को पूरी तरह या उसके किसी हिस्से को स्वीकार करने अथवा रद्द करने के सम्बन्ध में अपने विवेक एवं निर्णयों के प्रति पूर्ण स्वतन्त्रता है। यह किसी संदिग्ध व्यक्ति, अभियुक्त अथवा गवाह के अधिकार में नहीं है कि न्यायाधीश, इतिहासकार अथवा मूल्यांकन करने वाले व्यक्ति पर किसी प्रमाण

को पूर्णरूपेण स्वीकार करने अथवा रद्द करने पर ज़ोर दे। कानून की अदालत में सभी प्रमाणों को प्रस्तुत किया जाता है तथा सभी का विश्लेषण होता है। प्रमाणों का भर्राशाही अचिन्त्य उपभोग कभी नहीं होता। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्रमाणों के कुछ संकेत-सूत्रों को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझकर स्वीकार कर लिया जाता है तथा शेष को निःसार समझकर छोड़ दिया जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सम्पूर्ण वक्तव्य का प्रयोग अत्यन्त हृदयहीनता का परिचय देते हुए प्रत्येक पद पर अभियुक्त को विच-लित करने तथा उसकी उक्तियों का खंडन करने के लिए किया जाता है—उसके पक्ष में समर्थन हेतु कदापि नहीं।

इस सन्दर्भ के उल्लेख के पीछे हमारा मन्तव्य केवल इतना ही है कि इस पुस्तक में कभी तो हमने प्रमाणों को स्वीकार किया है और कभी उन्हें रद्द कर दिया है। कभी पाठक हमें अकबर के कितने ही कुकृत्यों को प्रमा-णित करने के लिए अबुल फज़ल तथा बदायूँनी जैसे पक्षपाती सरकारी इतिहास-लेखकों के उद्धरण देते हुए पाएँगे तो दूसरे स्थानों पर यह भी देखेंगे कि हमने उन लेखकों द्वारा उल्लेखित तथ्यों का मूल्य स्वीकार नहीं किया तथा उन्हें रद्द कर दिया है। ऐसा हमने ऊपर उल्लेखित व्याख्या के प्रकाश में किया है। वस्तुतः विभिन्न मतों, सिद्धान्तों एवं प्रमाणों का परी-क्षण, चयन तथा प्रस्तुतीकरण एवं अन्ततः उनका मूल्यांकन सम्यक् ढंग से न करना केवल शैक्षणिक अज्ञानता का परिचायक है, अपितु शिक्षा-जगत् के अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्रों में सत्य के शोध के अन्तर्गत गम्भीर अन्याय भी करना है।

ऐतिहासिक शोध के क्षेत्र मे 'शहादत के कानून' के महत्त्व की व्याख्या कर चुकने के बाद अब हम अन्य महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर भी विचार करना चाहेंगे। ऐतिहासिक बोध के लिए दूसरी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता तर्क-ज्ञान का प्रयोग है। ऐसे लोगों से, जो इस बात पर ज़ोर देते हैं कि अकबर एक महान् शासक तथा उदार व्यक्ति था, हम कतिपय आवश्यक प्रश्न करना चाहेंगे। प्रथम प्रश्न तो यह है कि यदि वर्तमान २०वीं शताब्दी के प्रजा-तांत्रिक युग में मध्ययुग से लेकर आजतक बर्बरता के इतिहास का विश्लेषण किया जाये तथा यदि औरंगजेब, जिसकी मृत्यु सन् १७०७ ई० में हुई, को इस रूप में स्वीकार किया जाता है कि वह क्रूर, बर्बर एवं हृदयहीन था,

तब यह कैसे सम्भव हो सकता है कि उसका प्रपितामह अकबर, जिसने औरंगज़ेब से १०० वर्ष पूर्व की बर्बरता के इतिहास काल का प्रतिनिधित्व किया, समस्त गुणों की खान हो तथा आदर्श का प्रतीक हो।[1] इसी सन्दर्भ में दूसरी बात यह है कि यदि अकबर को सर्वगुण-सम्पन्न मान लें तो ऐसे क्या कारण थे, जिससे उसके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र सभी उन गुणों से विमुख हो पाशविक रूप में बर्बर ही गये ?

द्वितीय प्रश्न हम यह उपस्थित करना चाहते हैं कि एक विशेष (अरब-फारस) के रीति-रिवाज के अन्तर्गत पैदा हुए तथा पालित-पोषित बिरले ही शाहजादे किसी दूसरी संस्कृति और सभ्यता की ओर उन्मुख होते देखे गये हैं ? ऐसी स्थिति में अकबर, जिसका धर्म पृथक् था, संस्कृति विपरीत थी तथा जो पूर्णतः एक विदेशी बादशाह था, भारतीय जनता को अपरिमेय रूप में प्रेम करने कैसे उन्मुख हो गया ? भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति उसके अन्तश्चेतन में उदार भाव कैसे आ गये ? और यदि यह मान भी लें कि उसके मन में इस प्रकार के भाव तथा प्रेम का जन्म एवं उन्नयन हुआ तो कैसे उसने स्वयं के द्वारा शासित बहुमत प्राप्त भारतीय धर्म, भाषा तथा संस्कृति के साथ अपने-आपको सम्बद्ध किया या उनसे उसका मेल हुआ ? यह तो सामान्य अनुभव-सिद्ध तथ्य है कि शासक जिस धर्म और संस्कृति का अनुयायी होता है, उसके प्रसार का प्रयत्न करता है, न कि उस देश के वासियों के धर्म और संस्कृति का अनुकरण।

---

१. इस सन्दर्भ में आधुनिक मनोविज्ञान के 'वंशानुक्रम' सिद्धान्त का भी पुनरावलोकन किया जा सकता है। मनोविज्ञान यह मानता है कि माता-पिता के गुण-अवगुण उनके पुत्र-पुत्रियों को वंशानुक्रम से प्राप्त होते हैं। यह क्रम पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता है। यदि किसी पीढ़ी में इसका अपवाद परिलक्षित हो तो इसके लिए उस वंश के पुराने इतिहास का अवलोकन किया जाता है। अकबर की बर्बरता उसे वंशानुक्रम से ही प्राप्त हुई थी। उसमें सद्गुणों का जो आरोप लगाया जाता है, वे मात्र शाब्दिक आडम्बर है ! अकबर के वंशानुक्रम का यदि पुनरावलोकन किया जाये तो पता चलेगा कि उसके पिता-प्रपिता सभी क्रूर एवं बर्बर थे।

हमारा तीसरा प्रश्न यह है कि एक ऐसा व्यक्ति जो कि विषयी, भोगी तथा मद्यप था, अशिक्षित था, जिसने बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के केवल अपनी साम्राज्य-लिप्सा के लिए एक के बाद एक भारतीय नगर-प्रान्तों को हड़प लिया तथा भारतीय राजाओं को शक्ति द्वारा विजित कर अथवा छल-प्रपंचों का आश्रय लेकर अपने अधीन होने को बाध्य किया, क्या वह 'उदार उद्देश्यों' से परिपूरित हो सकता था ? चौथा प्रश्न हम यह करना चाहते हैं कि यदि हमलावर डाकुओं का कोई जत्था यह दावा करे कि वह जिस गाँव पर हमला करता है, वहाँ के बड़े-बूढ़ों को तो कत्ल करता है, किन्तु वहाँ की स्त्रियों एवं बच्चों की वात्सल्यभाव पूरित होकर देखभाल उन स्त्रियों-बच्चों के घरों के बड़े-बूढ़ों, संरक्षकों एवं परिपालकों से भी अधिक अच्छे ढंग से करता है तो क्या कोई भी विवेकशील ऐसे दावों पर ध्यान देगा एवं उन्हें स्वीकृत कर पायेगा ? इसी प्रकार हमारे इतिहासकार यह दावा करते हैं कि अकबर ने एक के बाद एक भारतीय शासकों का या तो वध करवाया या उन्हें विजित कर पददलित किया, तो ऐसा उसने इसलिए किया कि भारतीय जनता के पूर्ववर्ती हिन्दू संरक्षक एवं परिपालक शासकों की अपेक्षा उन्हें अधिक प्यार करे या उनके विकास पर ध्यान दे सके ? ऐसे दावों को कोई भी व्यक्ति क्या अनर्गल प्रलाप समझकर रद्द नहीं कर देगा ?

भारतीय इतिहास में अकबर की भूमिका का मूल्यांकन करने का एक सीधा सूत्र हमें महाराणा प्रताप के साथ उसके सम्बन्धों की विवेचना करने से प्राप्त होता है। अकबर तथा राणा प्रताप एक-दूसरे के कट्टर दुश्मन थे। यदि राणा प्रताप को यह स्वीकार किया जाये कि वे एक महान् देशभक्त, शूरवीर तथा मातृभूमि के प्रति कर्तव्यनिष्ठ थे तथा जिन्होंने विदेशी प्रभुसत्ता से भारत की मुक्ति के लिए जीवनपर्यन्त संघर्ष किया, युद्ध किये तो अकबर के सम्बन्ध में क्या ऐसी मान्यता नहीं होनी चाहिए कि वह विदेशी आक्रान्ता था, दुरात्मा था, जो राणा प्रताप की अन्य भारतीय शासकों की भाँति मात्र अपनी साम्राज्य लिप्सा के लिए तथा भारत को गुलाम बनाने के लिए हत्या करना चाहता था ?

इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास में व्याप्त जाली दावों का भंडा-फोड़ करने तथा घनीभूत झूठे तथ्यों के आच्छादन-छिन्न करने के लिए केवल तर्क का आश्रय ही पर्याप्त है, तर्क-ज्ञान का आश्रय ग्रहण करते हुए तथा

शहादत के कानून को मान्यता देते हुए जब हम अकबर के शासनकाल के विवरणों का अध्ययन करते हैं तो अकबर के समर्थन में कोई परिपुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होता। हमारी शंकायें शंकायें ही रह जाती हैं तथा अकबर धर्मान्ध औरंगजेब से भी बदतर सिद्ध होता है। अतः इतिहास के सम्यक् अध्ययन एवं तथ्यों की धारणा के लिए लेख-प्रपत्र ही पर्याप्त नहीं हैं, अपितु तर्क-शास्त्र एवं साक्षी का विधान हमें समर्थ करते हैं कि भ्रांत एवं झूठे लेख-प्रपत्रों के "तथ्य-सूत्र में सत्य की सूई पिरो" सकें।

झूठे दावों से पूर्ण रिकार्डों से ही किस प्रकार यथार्थ इतिहास का पुनर्निर्माण संभव हो सकता है, इसका अवलोकन करने के बाद हम इस बात के संकेत देना आवश्यक समझते हैं कि भारतीय इतिहास में अकबर के कृत्यों के मूल्यांकन का कितना महत्त्व है !

प्रथमतः, इस प्रकार का मूल्यांकन सत्य के हितार्थ तथा इतिहास के रिकार्डों को यथार्थ रूप में सीधे प्रस्तुत करने की दृष्टि से अनिवार्य है।

द्वितीयतः, तर्कशास्त्र की आवश्यकता हमें विवश करती है कि अकबर के शासन-काल के संदर्भ में प्राप्त प्रमाणों से विवेकहीन तथा अतार्किक निष्कर्षों का रहस्योदघाटन हो।

यदि इस प्रकार के गलत एवं भ्रांत निष्कर्षों को इतिहास में स्थान दिया गया या उनके प्रति किसी प्रकार का आग्रह व्यक्त किया गया तो उससे न केवल मानव-जाति की विवेकशीलता दूषित होगी, अपितु शिक्षा तथा ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में उसी प्रकार के अतार्किक अनुमानों को हमें स्वीकार करने को उन्मुख होना पड़ेगा।

तृतीयतः, यदि अकबर को एक उदार एवं महान् शासक के रूप में स्वीकार किया जाता है तो राणा प्रताप, रानी दुर्गावती तथा देश के लिए त्याग करने वाले अन्य अनेक हिन्दू राजाओं, राजकुमारों तथा राजकुमारियों को खलों के रूप में श्रेणीबद्ध करना होगा तथा यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने "उदार तथा महान्" अकबर का व्यर्थ ही विरोध किया तथा व्यर्थ ही अपनी स्वेच्छाचारिता दिखलाई।

चतुर्थतः, अकबर की महानता को स्वीकार करने का तात्पर्य उस दुर्कथन को पुष्ट करना है कि एक विदेशी सम्राट् भारतीय जनता को उनके स्वदेशी राजाओं की अपेक्षा अधिक प्यार कर सकता था। यह कैसे संभव हो सकता

है ? एक बिदेशी बादशाह पहले तो यहाँ के संस्कारों को ग्रहण नहीं कर पायेगा। दूसरे यहाँ की जनता को यहाँ के शासकों की अपेक्षा अधिक प्यार दे ही नहीं पायेगा।

पंचमत:, अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि एक अशिक्षित बादशाह, जिसमें सभी प्रकार की बुराइयाँ तथा कमजोरियाँ थीं, कैसे प्रियदर्शी एवं अपरिमित गुणों की खान हो सकता था ?

षष्ठत:, यह एक मूर्खतापूर्ण तर्क है कि यद्यपि अकबर के सभी पूर्वज तथा उसके परवर्ती बादशाह क्रूर एवं बर्बर थे, किन्तु अकेले वह 'साधु-चरित' था, फ़रिश्ता था तथा आदर्श मानव था।

यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि अकबर इतना अधिक उदार था तो उसके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र सभी क्यों इतने नीच, लम्पट एवं दुराचारी हुए ? अकबर को महान् मानते हैं तो उसके सभी दरबारी, सेनापति तथा सम्बन्धी कैसे उसके गुणों से वंचित हो क्रूर, निष्ठुर एवं पिशाच हो गये ?

ऐतिहासिक असंगतियों तथा अव्यवस्थित तथ्यों को, जो अकबर की महानता संदर्भित भ्रांत मतों से उत्पन्न होते हैं, यदि पीढ़ी-दर-पीढ़ी छात्रों के गले बलात् उतारा जायेगा—उन्हें कहा जायेगा कि वे मानें, एक धूर्त और लम्पट बादशाह उदार था, सहृदय था, तो छात्रों की विवेकशीलता स्थायी रूप से क्षतिग्रस्त होगी एवं उनमें स्वतन्त्र विचारणा का सदैव अभाव रहेगा। वे पूर्व निर्धारित भ्रांत निष्कर्षों को बिना किसी प्रकार का प्रश्न उठाये, निःसंदिग्ध भाव से स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जायेंगे। भारतीय इतिहास के क्षेत्र में प्राय: ऐसा ही होता आया है। हमारे सामने ऐसे ही निष्कर्ष रखे गये, जो न्याय-विरुद्ध तथा अनियमित थे। हमें कहा गया कि हम उन्हें स्वीकार करें। अपनी स्वच्छन्द मनीषा का प्रयोग न करते हुए हमने उन्हें मान्यता दे डाली। धर्म-निरपेक्षता की झूठी विचारधारा तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता की भ्रांत धारणा ने स्थायी रूप से छात्रों, विद्वानों, शिक्षकों, अध्यापकों, लेखकों एवं प्रवक्ताओं की बुद्धि को कुंठित कर दिया तथा उन्हें यथार्थ इतिहास के संदर्भ में धर्म के तथ्यों की गहराई से छानबीन करने, उनका विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने के अयोग्य बना दिया—उनके मार्ग में गत्यवरोध उत्पन्न कर दिया। इस प्रकार का भय जो स्वतंत्र मनीषा-मंथन, विचारणा तथा प्रश्नात्मक तर्क-शक्ति पर प्रतिबंध लगाये, पारस्परिक

रूप में जड़बद्ध सिद्धान्तों तथा दीर्घकाल से चली आ रही पुरानी रीतियों के संदर्भ में जिरह करने के रास्ते में बाधा उत्पन्न करें, पूर्णत: अशास्त्रीय, न्याय-विरुद्ध तथा शिक्षा-जगत् में कलंक है। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति फ्रेंकलिन् डेलानो रूज़वेल्ट ने एक बार कहा था कि "सत्य के अनुसंधान में समर्थ होने के लिए आवश्यक है कि अनुसंधानकर्ता सत्य को खोजने में स्वयं को स्वतंत्र अनुभव करें। भारतीय इतिहास के छात्र तथा शिक्षकों ने कभी यह अनुभव ही नहीं किया कि वे भारतीय इतिहास के सही तथ्यों का परीक्षण एवं विश्लेषण करने में स्वतंत्र हैं। उनकी अनुसंधान-वृत्ति एवं परीक्षण मनःशक्ति म्रियमाण कर दी गई तथा उनकी आवाज़ों को दबा दिया गया। उन्हें बाध्य किया गया कि वे बिना शंका किए उन्हीं तथ्यों को स्वीकार करें जोकि इतिहास में अंधविश्वास के रूप में व्याप्त हैं। वे तथ्य चाहे अतार्किक हों, चाहे अवैज्ञानिक हों—उनसे बलात् कहा गया कि वे उन्हें मान्यता प्रदान करें। अकबर की महानता के ऐसे संदर्भ में शहादत के कानून भी मात्र अनर्गल प्रलाप सिद्ध होते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय इतिहास में अकबर के कृत्यों का मूल्यांकन न केवल इतिहास के उस अपभ्रष्ट अध्याय के सम्यक् अध्ययन के लिए महत्त्वशाली है, अपितु सामान्य रूप में भी विद्योपार्जन के क्षेत्र में आवश्यक है।

हमारी दो पहली पुस्तकों—'ताजमहल एक हिन्दू राजभवन है' तथा 'भारतीय इतिहास की कुछ भयंकर भूलें' में यही प्रयास किया गया है कि इतिहास में "ऑगियन स्टेबल्स"[1] संदर्भित भ्रांत कथाओं का निवारण हो, गल्प सूत्रों से एकान्विती हो तथा सत्य का प्रकाश मिले।

ऐसी आशा की जाती है कि प्रस्तुत पुस्तक भी भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण के क्षेत्र में एक और प्रकाश-स्तंभ सिद्ध होगी। इस पुस्तक के विभिन्न अध्यायों का यह लक्ष्य है कि इतिहास के क्षेत्र से झूठे अपभ्रष्ट तथ्य हटाकर उनके स्थान पर सही तथ्यों को प्रस्तुत किया जाये। हमें विश्वास है, इस पुस्तक का भी समादर होगा।

---

१. एलिस का राजा, जिसके आदेश पर आक्यलस हरक्यूलस ने अल्फेर्स नदी की धारा बदल दी थी।

: २ :

अकबर के शासन-काल का इतिवृत्त

भारतीय इतिहास में अकबर का स्थान निर्धारित करते हुए उसके द्वारा एक व्यक्ति और बादशाह के रूप में किये गये कार्यों पर चर्चा एवं उनका विश्लेषण करने के पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उसके शासन-काल की घटनाओं का सर्वेक्षणात्मक इतिवृत्त प्रस्तुत किया जाये। आगे जो इतिवृत्त प्रस्तुत किया जा रहा है, उसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उल्लेखित घटनाओं की तिथियाँ अनुमानित अथवा घटनाओं के आस-पास की हैं। यद्यपि कितने ही मुस्लिम सरकारी इतिहास प्राप्त होते हैं, जिनमें मध्ययुगीन मुस्लिम बादशाहों, शाहजादों तथा दरबारियों के जीवन तथा उस युग के शासन-काल की घटनाओं के उल्लेख किये गये हैं, तथापि तिथियों एवं घटनाओं के सम्बन्ध में उनमें वैभिन्य दिखलाई देता है तथा निश्चितता के संदर्भ में उनके अध्ययन से निराशा ही हाथ लगती है। इसका कारण यह है कि समस्त मुस्लिम सरकारी इतिवृत्त ऐसे लोगों द्वारा लिखे गये, जो उस भीषण और विप्लवकारी युग के तथ्यों को बढ़ा-चढ़ाकर अपने संरक्षक बादशाहों का मनोरंजन किया करते थे। वे मुस्लिम लेखक अपनी चाटुकारिता दिखलाते हुए बादशाहों की स्तुति के ढंग में 'सत्य' अथवा 'यथार्थता' की उपेक्षा कर अतिशयोक्ति के रूप में तथ्यों को प्रस्तुत करते थे। यही कारण है कि अधिकांश मुस्लिम सरकारी ग्रंथ षड्यंत्र रचनाओं एवं जालसाज़ियों से पूर्ण प्रतीत होते हैं।

अकबर के शासन-काल की घटनाओं का इतिवृत्त क्रमवार इस प्रकार है—

गुरुवार, २३ नवम्बर, सन् १५४२ ई०

सिंध के 'अमरकोटि'[1] नामक स्थान पर अकबर का जन्म हुआ। शेरशाह से पराजित होने के बाद अकबर का पिता हुमायूँ भारत में अपने 'सिंहासन' और 'राजमुकुट' को छोड़कर भाग खड़ा हुआ था तथा उसे उक्त स्थान के स्थानीय हिन्दू सेनापति राणा वीर साल उर्फ राणा प्रसाद की शरण लेनी पड़ी थी। अकबर का जन्म का नाम[2] बदरुद्दीन[3] (धर्म का पूर्ण चन्द्र) अकबर था। अकबर विशेषण का तात्पर्य 'अत्यन्त महान्' अथवा 'वरिष्ठ' होता है।

मार्च, सन् १५४७ ई०

इस समय के आस-पास अकबर का 'खतना' करवाने की रस्म अदा की गई। 'खतना' शताब्दियों से मुसलमानों द्वारा एक आवश्यक कर्म तथा धार्मिक पवित्र रस्म के रूप में माना जाता रहा है, किन्तु मूल रूप में खतना

---

१. अपनी पुस्तक 'अकबर : एक महान् मुगल' के पृष्ठ १० पर विंसेंट स्मिथ ने यह उल्लेख किया है कि कई फारसी तथा अंग्रेज लेखक 'अमरकोट' नाम को अशुद्ध रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे 'उमरकोट' लिखते हैं। वस्तुतः इस नाम के सम्बन्ध में स्वयं स्मिथ महोदय भ्रांत हैं। वास्तविक नाम मूलतः 'अमरकोट' ही हो सकता है। मुसलमानों द्वारा उक्त स्थान पर अधिकार कर लिये जाने के बाद उसे मुस्लिम प्रदर्शित करने की दृष्टि से परिवर्तित कर 'उमरकोट' कर दिया गया।

२. अकबरनामा में उक्त तिथि ११ अक्तूबर निर्देशित है। अपनी पुस्तक के पृष्ठ १३ पर विंसेंट स्मिथ का कथन है कि एक नया सरकारी जन्म-दिन जो चुना गया, वह गुरुवार के स्थान पर रविवार है तथा अकबर का जन्म-दिन २३ नवम्बर से पीछे हटाकर १५ अक्तूबर निर्देशित किया जाता है।

३. 'अकबर : एक महान् मुगल' शीर्षक पुस्तक के पृष्ठ १३ पर विंसेंट स्मिथ ने यह उल्लेख किया है कि 'जलालुद्दीन' (धर्म का तेज) का प्रयोग करने के लिए बाद में बदरुद्दीन शब्द का परित्याग कर दिया गया। अकबर के मूल नाम बदरुद्दीन को अब प्रायः भुला दिया गया है तथा इतिहास में उसका प्रायः 'जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर' के नाम से ही उल्लेख किया जाता है।

करवाने की आवश्यकता शारीरिक आरोग्य की दृष्टि से रेगिस्तानों से युक्त देश में होती है। चूँकि 'इस्लाम' का जन्म अरब जैसे रेगिस्तानी प्रदेश में हुआ, जहाँ लोग महीनों स्नान नहीं कर पाते, खतने की क्रिया 'फाईमोसिस' की शिकायत से सुरक्षा के लिए करवाई जाती थी। अतः यह कहा जा सकता है कि शारीरिक आरोग्य की दृष्टि से जलविहीन मरुस्थलों से युक्त देश में खतना आवश्यक है। इसका धार्मिक महत्त्व कुछ भी नहीं है। भारतवर्ष जैसे देश में जहाँ कि पुष्कल जल प्राप्त है तथा प्रतिदिन अनिवार्य रूप से स्नान किया जाता है, शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने के संदर्भ में 'खतना' न केवल असंगत प्रतीत होता है, अपितु आत्मिक आनन्द आदि धर्म के संदर्भ में भी महत्त्वहीन है।

सोमवार, २६ जनवरी, सन् १५५६ ई०

अकबर के पिता हुमायूँ की दिल्ली में मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु शुक्रवार दिनांक २४ जनवरी को पुराने किले के भीतर एक भवन की सीढ़ियों से गिर जाने की वजह से हुई। उसे आधे मील दूर स्थित उसके राजभवन में पहुँचाया गया। इसी राजभवन में उसे दफन किया गया। इस राजभवन को भ्रांति के कारण ऐसा विश्वास किया जाता है कि हुमायूँ की मृत्यु के बाद मकबरे के रूप में बनवाया गया। किन्तु ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जिस भवन में हुमायूँ की मजार है, वहाँ हिन्दू शक्ति-चक्र का चिह्न है। यह शक्ति-चक्र त्रिकोणात्मक संग्रथित है। इसके मध्य में चारों ओर से सज्जित एक पाषाण-पुष्प टंकित है।

अतः यह कहा जा सकता है कि अकबर के पिता हुमायूँ ने एक अपहृत किये गये हिन्दू राजभवन में निवास किया तथा वहीं उसकी मृत्यु हुई।

दिल्ली में अपने पिता की मृत्यु के समय अकबर (तब वह १३ वर्ष २ माह का था) पंजाब में गुरुदासपुर जिले के कलानौर नामक स्थान में था। वहाँ वह अपने अभिभावक बहराम खाँ के साथ सिकन्दर सूर के विरुद्ध सैनिक मोर्चे को संचालित करने में व्यस्त था।

हुमायूँ की मृत्यु की खबर एक पखवाड़े तक नहीं मिली। मृत्यु की खबर पहुँचने में समय लगा।

११ फरवरी, सन् १५५६ ई०

दिल्ली में अकबर को बादशाह घोषित किया गया। ३ दिन पश्चात् अर्थात् १४ फरवरी सन् १५५६ ई० को औपचारिक रूप में 'कलानौर' में एक प्राचीन हिन्दू प्रासाद के 'पीठासन' पर अकबर का राज्याभिषेक किया गया। इस संदर्भ में विसेंट स्मिथ महोदय ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ २२ पर भ्रांत तथ्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'अकबर ने बाद की तिथियों में अनेकानेक सुन्दर उद्यानों एवं अन्य भवनों का निर्माण करवाया'—वे उद्यान एवं भवन बिना कोई चिह्न छोड़े निलुप्त हो गये। अकबर द्वारा इस प्रकार व्यय-साध्य उद्यान, भवनों एवं नगरों, जो बाद में रहस्यमय ढंग से गायब हो गये, जिनका नामोनिशान भी अब देखने को नहीं मिलता, के निर्माण मात्र कपोल-कल्पित कथायें हैं। इस प्रकार की जालसाज़ियों एवं धोखों पर लोगों द्वारा सहज ही विश्वास व्यक्त किया जाता रहा है। विसेंट स्मिथ जैसे इतिहासकार बड़ी ही सहजता से इस प्रकार के भ्रांतिजनक गलत सूत्रों का उल्लेख करते हैं। अकबर द्वारा उन भवनों, प्रासादों एवं उद्यानों के निर्माण संबंधी दुष्प्रचारों की सहज व्याख्या यह है कि जिन प्राचीन हिन्दू स्थानों पर अकबर ने पड़ाव डाला, उन्हीं के ध्वंसावशेषों के बीच उसका राज्याभिषेक घोषित किया गया। वे भवन तथा प्रासाद ८वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही मुस्लिम आक्रमणों द्वारा ध्वस्त होते रहे हैं।

५ नवम्बर, सन् १५५६ ई०

अकबर ने हिन्दू योद्धा हेमू के विरुद्ध पानीपत की लड़ाई जीती। इस युद्ध में विजय के पश्चात् अकबर दिल्ली, आगरा तथा फतेहपुर सीकरी का स्वामी हो गया। अपनी पुस्तक के पृष्ठ २९ पर विसेंट स्मिथ ने लिखा है —'सम्भवतः हेमू युद्ध में जीत जाता, किन्तु एक दुर्घटना यह हुई कि एक तीर उसकी आँख में आकर घुस गया, जिसने उसके मस्तिष्क को छेद दिया तथा वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। उसकी सेना तितर-बितर हो गई तथा बाद में आक्रमण करने के लिए संगठित नहीं हो सकी। हेमू का हाथी जंगल में भाग गया।'

अकबर की पहली शादी के विषय में तिथि अज्ञात है। पितृ-पक्ष में परिणय होने सम्बन्धी रस्म के अनुसार उसकी पहली शादी उसके चाचा

'हिन्दल' की लड़की 'रुकैया बेगम' से हुई। शादी की बात (सगाई) नवम्बर, सन् १५५१ ई० में तय हुई।

सन् १५५७ ई० का प्रारम्भिक समय

अकबर की शादी अब्दुल्ला खाँ की बेटी से सम्पन्न हुई। अकबर की यह दूसरी शादी थी। इस शादी से अकबर का अभिभावक बहराम खाँ रुष्ट हो गया। अकबर तथा बहराम खाँ के बीच कलह का सम्भवतः यह आरम्भ था। इस कलह की अन्ततः समाप्ति बहराम खाँ की हत्या के बाद ही हो सकी।

मई, सन् १५५७ ई०

एक लम्बे अरसे तक 'मानकोट' का घेरा डाले जाने के बाद सिकन्दर सूर ने अकबर के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। आक्रमण तथा युद्ध के इन्हीं संघर्षों के दौरान अकबर के अभिभावक बहराम खाँ की सगाई अकबर के पिता की बहन की लड़की सलीमा बेगम से तय हो गई। अकबर की विषयलोलुप दृष्टि स्पष्टतः सलीमा बेगम पर थी। इस सगाई से वह अत्यन्त क्रोधित हो उठा तथा उसने आदेश दिया कि शाही मतवाले हाथियों द्वारा बहराम खाँ के तम्बू में घुसकर उसे कुचल कर मार डाला जाये।

सेना द्वारा कुछ स्थानों तक कूच करने के बाद जुलुंधर में बहराम खाँ की शादी सलीमा बेगम से सम्पन्न हो गई तथा बहराम खाँ को डराने एवं यह संकेत देने कि वह शाही कोप-भाजन है और अकबर के मन में उसके प्रति प्रबल रोष है पुनः हाथी द्वारा उसे कुचलवाने की दुर्घटना घटित हुई। आगरा वापस आने के बाद अकबर ने फिर से एक बार बहराम खाँ की हत्या करवाने की दृष्टि से हाथी रूपी शस्त्र का प्रयोग करते हुए उसे कुचलवाने की दुश्चेष्टा की।

सन् १५६० ई०

अकबर ने अपनी सल्तनत का कार्य-केन्द्र आगरे से हटाकर फतेहपुर सीकरी में बदल दिया। इस तथ्य से यह स्वतः सिद्ध होता है कि फतेहपुर सीकरी का अस्तित्व अकबर के शासन-काल से पूर्व भी विद्यमान था। कार्य-केन्द्र के परिवर्तन के कारणों का उल्लेख मुस्लिम सरकारी इतिहास

लेखक फरिश्ता[1] ने किया है। उसने उल्लेख किया है कि अकबर की एक परिचारिका 'माहम अंगा' ने गोपनीय सूत्र से यह सुना कि बहराम खाँ अकबर को कैद करना चाहता है। इससे भयभीत होकर तथा स्वयं को असुरक्षित समझकर अकबर अपने कार्य-केन्द्र में परिवर्तन के लिए बाध्य हो गया। यही वह कारण था कि जिससे अकबर ने आगरा छोड़ने का निश्चय किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि अकबर के आगरा छोड़ने के जो अन्य कारण बतलाये जाते हैं, वे पूर्णतः निराधार हैं। उसे आगरा इसलिए छोड़ना पड़ा, क्योंकि उसने वहाँ अपने को असुरक्षित समझा। एक अल्प आवधिक सूचना परिपत्र जारी कर सम्पूर्ण साज-सामग्रियों, भृत्यवर्ग, दरबार, पाँच हजार रूपसियों से युक्त हरम तथा एक हजार जंगली पशुओं का बाड़ा साथ लेकर अकबर ने आगरे से प्रस्थान किया। इस प्रस्थान सम्बन्धी तथ्य से यह सिद्ध होता है कि फतेहपुर सीकरी एक विजित किया हुआ नगर था तथा वहाँ जितने भी भवन एवं प्रासाद वर्तमान समय में दिखाई पड़ते हैं, सभी पूर्व-निर्मित हैं। अतः यह विश्वास किया जाना कि फतेहपुर सीकरी का निर्माण अकबर ने करवाया—भारतीय इतिहास की एक भयंकर भूल है, जिसका निराकरण होना अत्यावश्यक है।

जनवरी, सन् १५६१ ई०

गुजरात प्रान्त के सिद्धपुर पट्टन नामक स्थान पर बहराम खाँ का कत्ल कर दिया गया। उसका कत्ल स्पष्टतः अकबर द्वारा भेजे गए कातिल द्वारा ही किया गया, क्योंकि ३ वर्ष पूर्व अकबर ने उसे सत्ताच्युत कर उसके सभी अधिकार छीन लिये थे। खुली लड़ाइयों में बहराम खाँ को कई बार पराजित कर अकबर ने उसे दण्ड भी दिया था। अकबर ने बहराम खाँ की हत्या अन्ततः गोपनीय स्थान पर करवाई। उसकी हत्या के तुरन्त बाद सलीमा बेगम को उसके ३ वर्षीय पुत्र, जो कालान्तर में अब्दुर रहीम

---

१. पृष्ठ १२१, द्वि० भा०, 'भारत वर्ष में मुस्लिम प्रभुत्व के उत्थान का इतिहास' (४ भागों में), सन् १६१२ ई० तक, लेखक—मोहम्मद कासिम फ़रिश्ता, मूल फारसी से जॉनब्रिज द्वारा अनूदित, सन् १९६६ में पुनः प्रकाशित, प्रकाशक : ए० डे०, ५९ए श्यामबाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता-४।

खानखाना के नाम से विख्यात हुआ, के साथ उपस्थित किया गया। बहराम खाँ की पत्नी को शाही हरम में प्रवेश कराया गया तथा आदेश दिया गया कि वह अकबर की पत्नी के रूप में वहाँ निवास करे।

२९ मार्च, सन् १५६१ ई०

अकबर के दो सेनापतियों अधम खाँ एवं पीर मोहम्मद ने माँडवगढ़ के शासक बाज़ बहादुर को मध्य भारत में देवास के निकट संगरूर नामक स्थान पर पराजित किया। अकबर के सेनापति द्वारा इस लड़ाई में बर्बरता एवं क्रूरता का परिचय देते हुए भीषण नर-संहार किया गया तथा पैशा-चिकता दिखलाई गई।

२७ अप्रैल, सन् १५६१ ई०

अकबर को सूचना मिली कि अधम खाँ बाज़ बहादुर के अन्तःपुर की रूपसियों को अपने अधीन रखे हुए है तथा उन्हें भ्रष्ट करना चाहता है। अतः उसने तुरन्त आगरे से कूच किया।

४ जून, सन् १५६१ ई०

लूट-खसोट के माल का निपटारा करते हुए तथा बाज़ बहादुर के अन्तःपुर की रूपसियों को गिरफ्तार करने के बाद उन्हें शाही हरम में भेजकर अकबर पुनः आगरा लौटा।

जून, १५६१ ई०

एटा जिले (सकित परगना) के ८ गाँवों की जनता के विरुद्ध अकबर ने स्वयं एक आक्रमण का संचालन किया। 'परोख' नामक गाँव के एक मकान में करीब १ हजार हिन्दुओं को बन्द करके ज़िन्दा जला दिया गया।

जुलाई-अगस्त, सन् १५६१ ई०

जौनपुर के राज्यपाल खान जमाँ (अली कुली खाँ) तथा पूर्वी प्रान्तों के विरुद्ध अकबर ने स्वयं आक्रमणों का संचालन किया। खान जमाँ तथा उसके भाई बहादुर खाँ ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। उन्हें आत्म-समर्पण के लिए विवश किया गया। अकबर के दरबारियों द्वारा उसके विरुद्ध यह प्रथम प्रमुख विद्रोह था। इस विद्रोह के जाद अकबर की

कामुकता, विश्वासघात, शोषण तथा धूर्तता के खिलाफ प्रायः उसके सभी पुरुष सम्बन्धियों एवं दरबारियों द्वारा विद्रोह करने का एक ताँता-सा लग गया।

१४ जनवरी, सन् १५६२ ई०

अकबर ने प्रकट रूप में अजमेर में सन्त मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के दर्शन के लिए आगरे से कूच किया। स्पष्टतः अजमेर की दरगाह को अकबर की यह भेंट एक सैनिक प्रपंच था। उसका यथार्थ उद्देश्य देशभक्त एवं बहादुर राजपूत राजाओं को लड़ाइयों में जीतकर उनकी संख्या कम करना तथा एक-के बाद एक उन्हें अपने अधीन करना था। वर्षों पश्चात् जब इस लक्ष्य की पूर्ति हो गई, अकबर ने अजमेर जाना बन्द कर दिया।

राजस्थान में अकबर के इस प्रथम आक्रमण का यह भी उद्देश्य था कि जयपुर के राजा भारमल को अपने अधीन रखे, उनका अपमान करे तथा उन्हें इस बात के लिए विवश करे कि वे अपनी पुत्री को अकबर के हरम के लिए समर्पित कर दें। इससे पूर्व राजा भारमल के विरुद्ध अकबर के सेनापति शरफुद्दीन द्वारा भीषण क्रूरता का परिचय देते हुए अनेक विनाशकारी हमले किए। जयपुर के ३ राजकुमारों को कैद कर लिया गया था तथा उन्हें प्राणान्तक यातनायें दी जाने लगी थीं। ऐसा इसीलिए किया जा रहा था कि राजा भारमल अपनी पुत्री को अकबर के हरम के लिए सौंप दें तथा अपने पुत्र भगवानदास एवं नाती मानसिंह को प्रतिभू के रूप में स्थायी तौर पर अकबर के दरबार में रहने को बाध्य किया गया ताकि यह आश्वासन बना रहे कि जयपुर का राजवंश स्थायी रूप से अकबर के अधीन है। अकबर द्वारा एक हिन्दू राजकुमारी को बलात् अपहरण करने के इस अन्यायपूर्ण, गर्हणीय एवं क्रूर कृत्य को भारतीय इतिहास में झूठे रूप में बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है कि वह अन्तर्सम्प्रदायिक एकता की स्थापना की दृष्टि से एक उदार वैवाहिक संयोजन का कार्य था। यथार्थतः वह विवाह न होकर कपटपूर्ण अनुबन्ध था, जिसे मानने के लिए जयपुर के राजवंश को विवश किया गया। परवर्ती एक अध्याय में हम इस विषय का सम्यक् विश्लेषण करते हुए तथ्यों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालेंगे।

मार्च, सन् १५६२ ई०

मांडवगढ़ के शासक बाज़ बहादुर ने अन्ततः पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण कर दिया तथा अकबर के दरबार में एक सामान्य दरबारी होना स्वीकार कर लिया।

१६ मई, सन् १५६२ ई०

अकबर के एक सम्बन्धी तथा वरिष्ठ दरबारी शम्शुद्दीन अतगा खाँ की हत्या अधम खाँ द्वारा, जिसने संगरूर के युद्ध में अकबर की सेना का नेतृत्व किया था, अकबर के शयनकक्ष के बाहर कर दी गई। अन्य कई महत्त्वपूर्ण तिथियों की भाँति इस दुर्घटना की तिथि के सम्बन्ध में भी विभिन्न लेखकों में मतभेद है। निजामुद्दीन द्वारा लिखित 'तबकात-ए अकब्ररी' शीर्षक सरकारी इतिहास में इस भयंकर हत्या का सम्बन्ध परवर्ती वर्ष से स्थापित किया गया है। एक दूसरे स्थल पर उक्त दुर्घटना को सन् १५६५ ई० में घटित होना बताया गया है। अधम खाँ को आगरे के दुर्ग के राजमहल की दूसरी मंजिल से नीचे फेंककर सजा दी गई। पहली बार गिराने से उसकी मृत्यु नहीं हुई। वह अर्द्धमृत ही रहा, अतः उसे पुनः ऊपर ले जाकर दुबारा नीचे फेंका गया।

सन् १५६२ ई०

अकबर ने खजांची ख्वाजा जहान से १८ रु० की अल्प राशि की माँग की। ख्वाजा ज़हान ने ज[illegible] दिया कि खजाना पूर्णतः रिक्त है तथा उक्त अल्प राशि भी प्राप्त नहीं हो सकेगी।

अकबर के मुख्यमन्त्री मुनीम खाँ ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा भाग गया। सहारनपुर जिले के सरवत नामक स्थान पर उसे गिरफ्तार किया गया तथा पुनः कार्यभार सौंपा गया। मुनीम खाँ अकबर के दरबार का द्वितीय कुलीन व्यक्ति था, जिसने उसके खिलाफ बगावत की।

५ नवम्बर, सन् १५६२ ई०

सेनापति शरफुद्दीन, जिसने जयपुर के शासक भारमल के विरुद्ध आक्रमण का संचालन किया था, उन्हें डराया था तथा उनके मानभंग की दुश्चेष्टा की थी एवं उन्हें बाध्य किया था कि वे अपनी पुत्री को अकबर के

हरम के लिए सौंप दें, अकबर के दरबार का तीसरा महत्त्वपूर्ण दरबारी था जिसने सल्तनत के खिलाफ ज़िहाद बुलन्द किया तथा बगावत की ध्वजा फहरा दी। उसके विरुद्ध एक सेना भेजी गई। पहले उसे गुजरात से खदेड़ा गया एवं बाद में 'मक्का' भगा दिया गया।

कुछ दिन पश्चात् एक दूसरे वरिष्ठ दरबारी अबुल माली ने अकबर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अकबर के दरबार में अन्य लोगों की भाँति ही अबुल माली भी उस पाशविक प्रकृति का व्यक्ति था। उसने काबुल में एक राजकुमारी से बलात् शादी की तथा अपनी सास की हत्या कर दी।

सन् १५६३ ई०

अकबर के विषय में कहा जाता है कि मथुरा में यह शेर का शिकार[1] खेलने गया। मुस्लिम सरकारी इतिवृत्तों में जहाँ-तहाँ इस प्रकार के शिकार के संकेत प्राप्त होते हैं, उन्हें शाब्दिक रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए। बहुधा उन शिकारों का तात्पर्य राजपूत राजाओं का शिकार करना (उन्हें विजित कर अधीनस्थ करना) होता है। यह एक सामान्य ज्ञान की बात है कि सेना द्वारा आक्रमण आदि के क्रिया-कलाप अत्यन्त गोपनीय होते हैं। तदनुसार मुस्लिम बादशाहों द्वारा शिकार खेलने की बात मात्र समकालीन छल एवं प्रपंच हैं। वे ऐसा बहाना इसलिए करते थे, ताकि जनता सुरक्षात्मक दृष्टि से असावधान रहे—पहरे आदि न बिठायें। मुस्लिम इतिवृत्तों में उल्लेखित अकबर के इस शिकार का उद्देश्य मथुरा के आस-पास के हिन्दू तीर्थस्थानों को नष्ट करना था। निरन्तर मुस्लिम आक्रमणों के कारण प्राचीन मथुरा का नामोनिशान ही मिट गया। कुछ विध्वंस कार्य तो अकबर द्वारा ही प्रतिपादित किए गए थे। आगे चलकर हम दर्शाएँगे कि अकबर ने प्रत्येक प्रमुख हिन्दू तीर्थ केन्द्र पर हमला किया तथा वहाँ के धार्मिक स्थलों को ध्वस्त किया।

---

१. विंसेंट स्मिथ की पुस्तक 'अकबर : एक महान् मुगल' के पृष्ठ ४७ के नीचे एक टिप्पणी में यथातथ्य यह उल्लेख प्राप्त होता है कि 'मथुरा के निकट कई वर्षों तक शेर दिखलाई नहीं पड़े।' तब उक्त कालावधि में अकबर क्या शिकार करता रहा ?

१२ जनवरी, सन् १५६४ ई०

अकबर जब दिल्ली में निजामुद्दीन चिश्ती की दरगाह से पुराने किले के मार्ग से लाल किला जा रहा था, उसकी हत्या करने की दृष्टि से उसपर एक विषाक्त तीर छोड़ा गया। (दिल्ली का लाल किला एक अत्यन्त प्राचीन हिन्दू दुर्ग है। भ्रान्तिपूर्ण दावे के साथ यह कहा जाता है कि उसका निर्माण शाहजहाँ ने करवाया ? यह कथन पूर्णतः झूठा है। दिल्ली के लाल किले का निर्माण शाहजहाँ ने नहीं करवाया) अकबर की जीवन-लीला समाप्त करने का यह प्रयास इसलिए किया गया क्योंकि वह हिन्दू परिवारों से सुन्दर पत्नियों, माताओं, भगनियों तथा कन्याओं को अपहृत करने की दृष्टि से परिभ्रमण कर रहा था।

मार्च, १५६४ ई०

अकबर के विषय में कहा जाता है कि उसने हिन्दुओं से जज़िया कर की वसूली समाप्त कर दी। यह कर पिछले ८०० वर्षों की कालावधि तक मुस्लिम सुल्तानों द्वारा हिन्दुओं से वसूल किया जाता था। जज़िया कर का यह उन्मूलन एक धोखा मात्र है। इसकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे। अकबर के सम्बन्ध में यह भी विश्वास किया जाता है कि उसने सन् १५६२ ई० के युद्ध में बनाए गए बन्दियों को दास बनाने का निषेध कर दिया। यह भी कहा जाता है कि उसने सन् १५६३ ई० में हिन्दू तीर्थ-यात्राओं पर लगाये जाने वाले करों का भी उन्मूलन कर दिया। अगले अध्यायों में हम यह विश्लेषण करेंगे कि ये सब मात्र कपोल-कल्पित कथाएँ हैं तथा ऐसी बातें हैं जो लेखकों द्वारा इतिहास में समाविष्ट की गईं। इन बातों पर अन्ध-विश्वास किया जाने लगा। उनकी किसी प्रकार की छान-बीन नहीं की गई।

सन् १५६४ ई०

ख्वाजा मुअज्ज़म (हमीदाबानू बेगम का हरम भाई होने के कारण अकबर के मातृ पक्ष का चाचा) पाँचवाँ दरबारी था, जिसने अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया। उसे बन्दी बनाकर ग्वालियर के दुर्ग की काल कोठरी में भेज दिया गया, जहाँ उसका मानसिक व्यतिक्रम हो जाने से अन्ततः मृत्यु हो गई।

सितम्बर, सन् १५६४ ई०

अकबर ने खान देश के शासक मिर्जा 'मुबारक शाह' पर दबाव डाला कि वह अपनी बेटी को शाही हरम के लिए समर्पित कर दे। विचारणीय है कि यह मामला भी विवाह का न होकर अपहरण का था, क्योंकि मुबारकशाह की निःसहाय बेटी को अकबर ने बलात् पकड़वाया तथा उसे एक प्रमुख दरबारी हिजड़े एतमाद खाँ की मदद से दरबार में उपस्थित किया गया।

जुलाई, सन् १५६४ ई०

अब्दुल्ला खाँ उजबेक, जो मालवा प्रान्त का सैनिक राज्यपाल था, छठवाँ ऐसा प्रमुख दरबारी था, जिसने अकबर के खिलाफ बगावत की आवाज बुलन्द की।

अक्तूबर, सन् १५६४ ई०

अकबर के विषय में कहा जाता है कि उसने आगरे के दक्षिण में ७ मील दूर 'ककराली' ग्राम के निकट एक सुन्दर नगर 'नगरचैन' के निर्माण का आदेश दिया। अकबर ने उक्त जिस नगर के निर्माण का आदेश दिया, कहा जाता है, उसके अन्तर्गत किसी भी सुन्दर भवन एवं भव्य उद्यान का कोई भी चिह्न आज देखने को नहीं मिलता। यह एक दूसरा धोखा है। अकबर ने किसी भी भवन का निर्माण नहीं करवाया। जितने भी भवनों, नगरों, दुर्गों, उद्यानों अथवा द्वारों के निर्माण का श्रेय उसे दिया जाता है वे या तो हिन्दू शासकों से अपहृत किये गए थे या विजय करके अधिकार में लिये गए थे।

सन् १५६४ ई०

अकबर के दरबार के एक अग्रणी दरबारी खान जमाँ ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। खान जमाँ ७वाँ प्रमुख दरबारी था जिसने अकबर की खिलाफत की तथा विद्रोह किया।

इसी वर्ष अब्दुल नबी नामक व्यक्ति की नियुक्ति फकीरों एवं अन्य असहाय व्यक्तियों की सहायता के लिए दिए जाने वाले शाही अनुदानों की देख-रेख के लिए की गई थी, किन्तु वह लोभी एवं अयोग्य सिद्ध हुआ।

१५६४ ई० में ही अकबर ने अपने सेनापति आसफ खाँ को रानी

दुर्गावती द्वारा अत्यन्त व्यवस्थित रूप से शासित राज्य को अपनी सल्तनत के अन्तर्गत सम्मिलित करने तथा उक्त अद्वितीय सुन्दर रानी को अपने हरम में रखने की दृष्टि से आक्रमण करने एवं लूट-खसोट करने का आदेश दिया।

सन् १५६५ ई० का अन्तिम चरण

अकबर के दो जुड़वाँ पुत्र हसन तथा हुसैन का जन्म हुआ। यद्यपि अकबर के दरबार में उसकी चापलूसी करने वाले अनेकानेक सरकारी इतिवृत्त लेखक थे, किन्तु किसी ने भी उक्त जुड़वाँ पुत्रों की माता के नाम का उल्लेख नहीं किया है। जन्म के एक महीने बाद ही हसन तथा हुसैन का देहान्त हो गया।

हुमायूँ की एक वरिष्ठ विधवा, निःसन्तान पत्नी हाजी बेगम उर्फ बेगा बेगम के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने तीर्थयात्रा की दृष्टि से मक्के के लिए प्रस्थान किया, किन्तु जाते हुए उसने हुमायूँ के मकबरे के निर्माण का आदेश दिया। हुमायूँ के मकबरे के निर्माण की समाप्ति के विषय में बताया जाता है कि वह दो वर्ष के बाद, जब हाजी बेगम मक्के की तीर्थयात्रा से लौटी, पूर्ण हुई। हाजी बेगम अकबर की सौतेली माँ थी। अकबर की माता का नाम हमीदा बानो बेगम था। निःसन्तान हाजी बेगम द्वारा अपने पति हुमायूँ के मकबरे के निर्माण के आदेश की बात पूर्णतः एक कल्पित कथा है। हुमायूँ एक विजित राजपूत भवन के भूतल-कक्ष में दफनाया गया था।

सन् १५६५ ई० का प्रारम्भिक चरण

अकबर के विषय में बताया जाता है कि उसने आगरे के लाल किले (पूर्ववर्ती दुर्ग को नष्ट करने के बाद) का पुनर्निर्माण आरम्भ करवाया। एक अन्य विवरण में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि अकबर ने सन् १५६१-६३ ई० के दौरान उक्त दुर्ग में कुछ भवनों का निर्माण आरम्भ करवाया, किन्तु इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार उक्त 'दुर्ग' में आगरे के नगर को चारों ओर से घेरने वाली एक प्राचीन दीवार थी। अकबर ने सम्भवतः लगातार मुस्लिम आक्रमणों के दौरान तोपों द्वारा उक्त दीवार के ध्वस्त स्थानों की मरम्मत करवाने का आदेश दिया होगा। आगरे के हिन्दू लाल

किले में मरम्मत सम्बन्धी इस सामान्य कार्य को हमारे इतिहासकार भूल से बढ़ा-चढ़ाकर गलत ढंग से यह बताते हैं कि अकबर ने उसका पुनर्निर्माण करवाया। इस समय के आस-पास अकबर रानी दुर्गावती के साथ युद्ध में संलग्न था। अपने कितने ही दरबारियों द्वारा अनेक विद्रोहों का सामना उसे करना पड़ रहा था। ऐसी हालत में यह कहा जाता है कि उसने भव्य प्रासादों से युक्त सुन्दर नगरचैन के निर्माण का कार्य आरम्भ करवाया। उसकी सौतेली माँ ने उसे अपने दिवंगत पति हुमायूँ के महल सदृश्य सुन्दर मकबरे के निर्माण का आदेश दिया तथा इसी समय अकबर ने आगरे में लाल किले को नष्ट कर उसके पुनर्निर्माण का कार्य शुरू करवाया। यह सब कैसे सम्भव हो सकता है ? इस प्रकार की सभी बातें चरम विवेक-हीनता की परिचायक हैं।

सन् १५६५-६६ ई०

अकबर के आदेशानुसार रानी दुर्गावती के राज्य पर हमला करने तथा लूट-खसोट करने वाला सेनापति आसफ खाँ अकबर के दरबार का एक अन्य गणनायक था, जिसने सल्तनत के खिलाफ बगावत कर दी। रानी दुर्गावती के राज्य में लूट-खसोट द्वारा जिस धन की प्राप्ति आसफ खाँ को हुई, उससे उसे अपने भूतपूर्व घृणित मालिक अकबर के विरुद्ध युद्ध संचालित करने में बड़ी सहायता मिली।

सन् १५६७ ई० का प्रारम्भिक चरण

अकबर के भाई मोहम्मद हकीम, जो काबुल का शासक था, ने पंजाब के विरुद्ध हमला बोल दिया। अपने भाई के आक्रमण को रोकने के लिए फरवरी सन् १५६७ ई० में अकबर लाहौर पहुँचा। इसी समय अकबर ने लाहौर में शिकार का एक आयोजन किया। इस शिकार में दस मील की परिधि के भीतर जितने भी जन्तु थे, सभी मार डाले गये। तलवारों, बर्छियों, तीरों तथा पशुओं को पकड़ने के फन्दों का उपयोग करते हुए अकबर ने लगातार पाँच दिनों तक इस हिंसात्मक शिकार का आनन्द उठाया।

दिल्ली, आगरा तथा फतेहपुर सीकरी के प्रदेशों से अकबर की अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए उसके अनेकानेक मिर्जा खानदान के सम्बन्धियों

ने जो अकबर के दरबार में उच्च पदों पर आसीन थे, उसके विरुद्ध पुनः विद्रोह कर दिया अतः अकबर को शीघ्रतापूर्वक लाहौर का परित्याग कर आगरा लौटना पड़ा।

अप्रैल, सन् १५६७ ई०

आगरा लौटते हुए पंजाब के थानेश्वर नामक स्थान पर जब अकबर ने पड़ाव डाला, 'कुरुस' तथा 'पुरुष' नामक दो धार्मिक सम्प्रदायों ने उससे स्थानीय हिन्दू मन्दिरों में असंख्य तीर्थयात्रियों द्वारा चढ़ाये जाने वाले उपहारों के बँटवारे के विवाद के सम्बन्ध में शिकायत की। अकबर ने दोनों सम्प्रदायों के धार्मिक साधुओं को तलवारों, छुरों तथा चाकुओं से सशस्त्र कर श्रेणीबद्ध रूप में खड़ा करवाया तथा उन्हें बाध्य किया कि वे परस्पर लड़-भिड़कर नष्ट हो जायें। यह विश्वास दिलाने के लिए दोनों पक्ष के धर्मानुयायी परस्पर लड़कर मर मिटे, अकबर ने कमज़ोर पक्ष के धर्म-अनुयायियों को रस्सी से बाँधकर तथा धर्मान्ध मुसलमानों द्वारा सहारा दिलवाया ताकि वे देखें कि दोनों पक्ष के धर्मानुयायी, जिनकी संख्या करीब ८०० थी, परस्पर लड़कर खत्म हो गए। प्रायः समस्त सरकारी इतिवृत्तों के लेखकों ने समान रूप से इस घटना का उल्लेख किया है कि अकबर ने उक्त हिंसात्मक खेल का भरपूर आनन्द उठाया।

मई, सन् १५६७ ई०

खाँ ज़मान तथा उसके भाई बहादुर खाँ, जो दो वर्ष से अकबर से खुला विद्रोह कर रहे थे, पराजित कर दिये गए तथा उनकी हत्या करवा दी गयी। कुछ अन्य सहायक विद्रोही नेताओं को भी पकड़वाकर हाथी के पैरों तले कुचलवाकर मार डाला गया।

मई-जून, सन् १५६७ ई०

अकबर ने भारत के सर्वाधिक धन-धान्य से पूर्ण एवं सुविख्यात तीर्थ-धाम इलाहाबाद तथा बनारस (वाराणसी) पर आक्रमण कर लूट-खसोट आरम्भ कर दी। अकबर की बर्बरता के भय से नगरों की सामान्य जनता पलायन कर गई। अकबर की सेना भीषण क्रूरता का परिचय देते हुए उन्मत्तों की भाँति कत्लेआम तथा लूट-खसोट कर रही थी।

१८ जुलाई, १५६७ ई०

युद्ध, आक्रमण तथा बलवे के हिंस्र क्रिया-कलापों के बाद अकबर अपनी सल्तनत की राजधानी आगरे वापस लौटा।

इसी समय के आसपास एक अन्य दरबारी सिकन्दर खाँ ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया, जिसे सेना द्वारा दबा दिया गया। अनेकानेक मिर्जा खानदान के दरबारियों द्वारा संचालित विद्रोहों के अतिरिक्त, सिकन्दर खाँ एक अन्य महत्त्वपूर्ण दरबारी था, जिसने अकबर की खिलाफत की तथा विद्रोह बुलन्द किया।

सितम्बर, सन् १५६७ ई०

अकबर ने चित्तौड़ के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करने की तैयारियाँ शुरू कीं। २० अक्तूबर को अकबर ने चित्तौड़ की पहाड़ी के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में दस मील की परिधि तक विस्तृत पड़ाव डाला।

२३ फरवरी, १५६७ ई०

अकबर के बर्बर तथा क्रूर सैनिक जत्थों के कष्टों से बचने तथा अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए राजपूत वीरांगनाओं ने वीरगति प्राप्त करते हुए जौहर किया। दूसरे दिन सुबह अकबर ने घोड़े पर दुर्ग का परिभ्रमण किया तथा एक सेनापति को कत्लेआम का आदेश दिया। इस कत्लेआम में करीब तीस हज़ार लोगों की निर्मम हत्या की गई। कई हज़ार लोगों को गुलाम बनाने के लिए बन्दी बनाया गया। जिन लोगों की हत्या की गई, उनके उपवीतों का वजन साढ़े चौहत्तर मन था।

मार्च, सन् १५६८ ई०

अकबर पुनः आगरा लौटा। मिर्ज़ा खानदान के दरबारियों ने पुनः अकबर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

अप्रैल, सन् १५६८ ई०

चौहान वंश की हाडा श्रेणी के अधीनस्थ एक मजबूत दुर्ग 'रणथम्भौर' पर घेरा डालकर आक्रमण किया गया। दुर्ग के प्रधान 'सुरजन' को एक महीने के भीतर दुर्ग को समर्पित कर देने के लिए बाध्य होना पड़ा।

अगस्त, सन् १५६९ ई०

भाथा (रेवा) के राजा रामचन्द्र के अधीनस्थ कालंजर दुर्ग (बाँदा

जिले में) पर आक्रमण किया गया तथा उसे विजित किया गया। राजा रामचन्द्र ने पुष्कल धन-राशि के साथ उपहार स्वरूप ख्यातिलब्ध गायक तानसेन को अकबर को समर्पित कर दिया। राजा रामचन्द्र को इलाहाबाद के निकट एक जागीर दी गई। उन्हें सल्तनत का एक आसामी बना लिया गया।

३० अगस्त, सन् १५६९ ई०

आँबेर के शासक राजा भारमल की कन्या के गर्भ से सलीम (भावी मुगल बादशाह जहाँगीर) का जन्म हुआ। स्मरणीय है कि राजा भारमल की कन्या को अकबर ने साँभर से अपहृत करवाया था।

नवम्बर, सन् १५६९ ई०

एक कन्या 'खानम सुल्तान' का जन्म हुआ। अकबर के तृतीय पुत्र दानियाल का जन्म एक रखैल स्त्री के गर्भ से १० सितम्बर, सन् १५७२ ई० को अजमेर में सन्त माने जाने वाले शेख दनियाल के मकान में हुआ। ज्ञातव्य है कि अकबर की दो अन्य पुत्रियों का भी जन्म हुआ। पहली शुकरुन्निसा बेगम, जिसे विवाह करने की इजाजत दी गई तथा दूसरी आराम बानू बेगम, जिसकी मृत्यु जहाँगीर के शासन काल में अविवाहित ही हुई। अकबर के शासन काल के विवरण-प्रपत्रों में इन कन्याओं का नामोल्लेख कदाचित् नहीं ही हुआ है, क्योंकि उक्त महिलाओं को शाही खानदान से सम्बन्धित होने के बावजूद भी अशिक्षित, उपाधिरहित तथा बन्धनमय जीवन व्यतीत करना पड़ता था। मध्ययुगीन मुस्लिम शासन-काल के दौरान महिलाओं को एकान्त जीवन व्यतीत करने के साथ-साथ बुरके में रहना पड़ता था।

अप्रैल, सन् १५७० ई०

अकबर के विषय में कहा जाता है कि उसने अपने पिता हुमायूँ के नवनिर्मित मकबरे का अन्वीक्षण किया। अपनी पुस्तक के पृष्ठ ७४ में विंसेंट स्मिथ का कथन है कि उक्त मकबरे के निर्माण में ८ या ९ वर्ष का समय लगा। मकबरे का शिल्पकार मिराक मिर्जा गियास था। यह एक कल्पित कथा प्रतीत होती है। हुमायूँ को विजित किये गये उसी राजभवन में दफ़-नाया गया, जहाँ उसने निवास किया था।

८ जून, १५७० ई०

अकबर की एक दूसरी रखैल ने मुराद नामक पुत्र का जन्म दिया। इसका उपनाम 'पहाड़ी' था क्योंकि इसका जन्म फतेहपुर सीकरी की एक छोटी पहाड़ी में हुआ था।

सितम्बर, सन् १५७० ई०

अकबर के सम्बन्ध में बताया जाता है कि उसने दुर्ग की विस्तार-वृद्धि का कार्य आरम्भ किया तथा अजमेर में कई सुन्दर एवं भव्य भवनों के निर्माण का कार्य शुरू करवाया। कहा जाता है कि इन कार्यों में तीन वर्ष का समय लगा। ज्ञातव्य है कि "अजय-मेरु" एक अत्यन्त प्राचीन हिन्दू नगर है तथा जितने भी ऐतिहासिक भवन वहाँ विद्यमान हैं, सभी १२वीं शताब्दी के हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के शासन काल के समय के हैं। यह भी स्मरणीय है कि यही वह निश्चित समय है, जिसके दौरान, कहा जाता है कि अकबर ने फतेहपुर सीकरी में भी भवनों का निर्माण-कार्य आरम्भ करवाया, जबकि वह अनेकानेक युद्धों में व्यस्त था तथा उसे विद्रोहों का सामना करना पड़ रहा था। उसकी सारी शक्ति युद्धों के संचालन एवं विद्रोहों के दमन में केन्द्रित थी।

अगस्त, सन् १५७१ ई०

अपनी पुस्तक के पृष्ठ ७४ पर विंसेंट स्मिथ का कथन है कि अकबर ने फतेहपुर सीकरी में आकर निवास करना आरम्भ कर दिया। इस तथ्योल्लेख से यह स्वमेव सिद्ध है कि वर्तमान युग में फतेहपुर सीकरी में हम जितने भव्य एवं कलात्मक भवन देखते हैं, वे बाबर के शासन काल में भी विद्यमान थे तथा यह उक्ति कि अकबर ने फतेहपुर सीकरी की नींव डाली, पूर्णतः गलत है एवं गल्प मात्र है।

२८ फरवरी, सन् १५७२ ई०

भारतवर्ष के अमर बलिदानी सपूत महाराणा प्रताप का, जिन्होंने प्रदीर्घ काल तक युद्धों के दौरान अकबर को नाकों चने चबवा दिए थे तथा उसके हौसले पस्त कर दिए थे एवं उसके प्रभुत्व को मानने से इन्कार कर दिया था, उदयपुर से १६ मील उत्तर-पश्चिम में 'गोगुंदा' में राज्याभिषेक

सम्पन्न हुआ। राजमुकुट धारण करने का औपचारिक संस्कार बाद में कुँभलमीर दुर्ग में सम्पन्न हुआ।

४ जुलाई, सन् १५७२ ई०

अकबर ने अपने जीवन के एक प्रदीर्घ-संघर्ष युद्ध तथा आक्रमण के संचालन के लिए फतेहपुर सीकरी से कूच किया। ज्ञातव्य है कि फतेहपुर सीकरी ऐसा स्थान है, जहाँ से अकबर युद्धों के संचालन की तैयारी कर सकता था, यद्यपि चाटुकार मुस्लिम लेखकों के ऐसे भी पाठक होंगे, जो यह विश्वास करें कि फतेहपुर सीकरी के नगर का निर्माण अकबर ने करवाया तथा उसका निर्माण सन् १५८३ ई० में ही पूर्ण हुआ।

चौहान वंश की देवरा श्रेणी के मुख्यालय 'सिरोही' पर आक्रमण किया गया तथा मुगल अधिकार स्थापित किया गया। मुगल हमले को रोकने के लिए संघर्ष के दौरान १५० वीर राजपूतों ने अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी। 'सिरोही' की ख्याति वहाँ के कृपाण फलकों की उत्तमता के लिए थी।

नवम्बर, सन् १५७२ ई०

गुजरात के विदेशी मुस्लिम सुल्तान मुज़फ्फर शाह तृतीय को गिरफ्तार कर उसके राज्य को अकबर ने अपने साम्राज्य में मिला लिया। मुज़फ्फर शाह के अनुयायियों को हाथी के पैरों तले कुचलने का आदेश दिया।

'कस्बे' में अकबर ने अपने जीवन में पहली बार समुद्र देखा। गुजरात के राज्यपाल के रूप में अकबर ने अपने सौतेले भाई खान-ए-आजम मिर्जा (अज़ीज कोका) को नियुक्त किया।

इब्राहीम हुसैन के नेतृत्व में मिजाओं ने विद्रोह कर दिया। 'सूरत' इनका एक कार्य-केन्द्र था। इस विद्रोह के आक्रामक-संघर्ष में राजा भगवान दास तथा उनके दत्तक पुत्र राजा मानसिंह अकबर के साथ थे। भगवान दास के पुत्र 'भूपत' की हत्या कर दी गई। भगवानदास की स्वामी-भक्ति, कि उन्होंने एक विदेशी बादशाह के प्रति स्वयं को समर्पित किया, को समादृत करने की दृष्टि से उन्हें एक ध्वजा तथा दुन्दुभि-प्रदान की गई। किसी भी हिन्दू राजा का ऐसा झूठा एवं खोखला आदर कभी नहीं किया गया।

२६ फरवरी, सन् १५७३ ई०

'सूरत' के विद्रोहियों पर आधिपत्य स्थापित किया गया। एक किलेदार

हमज़बान को उसकी जीभ कटवा कर सज़ा दी गई। हमज़बान अकबर के पिता के शासन-काल में एक सेनापति था।

१३ अप्रैल, सन् १५७३ ई०

अकबर ने अजमेर से प्रस्थान किया तथा दिनांक ३ जून को वह फतेहपुर सीकरी पहुँचा।

२३ अगस्त, सन् १५७३ ई०

एक दुर्निवार्य मिर्जा विद्रोही मोहम्मद हुसैन के नेतृत्व में संचालित विद्रोह को कुचलने के लिए अकबर को गुजरात रवाना होना पड़ा।

२ सितम्बर, सन् १५७३ ई०

अहमदाबाद की लड़ाई लड़ी गई। करीब दो हजार लोगों का कत्ल किया गया तथा उनके सिरों का एक 'पिरामिड' खड़ा किया गया।

सोमवार, ५ अक्तूबर, सन् १५७३ ई०

अकबर फतेहपुर सीकरी वापस लौटा।

सन् १५७३-७४ ई०

टोडरमल के साथ विचार-विमर्श करने के बाद अकबर ने एक अध्यादेश जारी किया कि साम्राज्य के समस्त अश्व शाही संरक्षण में रहेंगे। ऐसा करने का स्पष्ट उद्देश्य यह था कि ऐसे वे सभी व्यक्ति, जो अश्व रखते थे, स्वाभाविक रूप में अकबर के दास हो जाते तथा जब भी उन्हें आदेश दिया जाता, तो चाकरी बजाने के लिए विवश रहते।

२ अक्तूबर, सन् १५७३ ई०

फतेहपुर सीकरी में तीन राजकुमारों का खतना करवाया गया।

सन् १५७४ ई०

अकबर के दरबार के चाटुकार इतिहास लेखक अबुल फ़जल ने सबसे पहली बार अपने-आपको अकबर के समक्ष उपस्थित किया, किन्तु अकबर पर उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

१५ जून, सन् १५७४ ई०

बिहार प्रान्त को विजित करने के विचार से अकबर ने नदी के मार्ग से कूच किया। वर्षा ऋतु के दौरान पानी भर जाने के कारण ११ नावें इलाहाबाद में तथा कई अन्य नावें इटावा में डूब गयीं। २६ दिन की यात्रा

के बाद अकबर बनारस पहुँचा जहाँ तीन दिन के लिए पड़ाव डाला। इसी समय उसे सिंध में 'भक्कर' के दुर्ग को विजित किए जाने की खबर मिली।

३ मार्च, सन् १५७५ ई०

बंगाल, उड़ीसा तथा बिहार के कुछ हिस्सों के स्वामी 'दाऊद' के साथ 'लुकरोई' की लड़ाई लड़ी गई। इस लड़ाई में जितने भी बन्दी बनाए गए, उन्हें कत्ल कर दिया गया। कटे हुए सिरों को ८ गगनचुम्बी मीनारों की ऊँचाई तक एकत्रित किया गया।

१२ अप्रैल, सन् १५७५ ई०

सेनापति मुनीम खाँ ने औपचारिक रूप में दाऊद के आत्म-समर्पण को स्वीकार किया तथा उड़ीसा को उसके अधिकार में रहने दिया।

सन् १५७४-७५ ई०

गुजरात में महामारी एवं अकाल का प्रकोप हुआ।

अक्तूबर, सन् १५७५ ई०

अकबर की पत्नी सलीमा सुल्तान बेगम (बहराम खाँ की विधवा बीवी) उसके पिता की बहन गुलबदन बेगम तथा उसकी माँ हमीदा बानू बेगम (कुछ लोगों का कहना है, यह अकबर की सौतेली माँ थी) ने मक्के की तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान किया। सूरत में वे करीब एक वर्ष के लिए पुर्तगालियों द्वारा रोक ली गईं। सन् १५८२ ई० में वे वापस लौटीं। गुलबदन बेगम के सम्बन्ध में यह माना जाता है कि उसने अपनी संस्मरणिका लिखी थी, किन्तु मक्के की तीर्थयात्रा के अनुभवों से सम्बन्धित उसके द्वारा लिखित कोई भी अभिलेख प्राप्त नहीं होता। ऐसा हो सकता है कि उसके नाम से जिस संस्मरणिका का उल्लेख प्राप्त होता है, वह मात्र जालसाजी हो।

पुरुष तीर्थयात्रियों का एक जत्था एक विशेष व्यक्ति के नेतृत्व में भेजा गया। लगभग ५ या ६ वर्ष तक यात्रा की भव्य तैयारियाँ की गईं। बादशाह ने एक सामान्य आदेश जारी किया कि जो कोई भी तीर्थयात्रा करना चाहे, राज्य के व्यय पर जा सकता था। (विंसेंट स्मिथ की पुस्तक 'अकबर : एक महान् मुगल', पृष्ठ ६६)।

अकबर के सौतेले भाई मिर्जा अजीज कोका ने विद्रोह कर दिया। उसे

आगरा में 'घर बन्दा' की सज़ा दी गई। उसके विषय में कहा जाता है कि उसे 'अनिवार्य अश्व-सेवा' का भी आदेश दिया गया। इस विद्रोह के पीछे अन्य कारण भी हो सकते हैं। अकबर की तत्परता तथा व्यभिचारवृत्ति से सभी अवगत थे। मिर्ज़ा अजीज़ कोका ने भी इसीलिए विद्रोह किया होगा। हम यह पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि अकबर के प्रायः सभी सम्बन्धियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। मिर्ज़ा अजीज़ कोका ११वाँ प्रमुख दरबारी था, जिसने अकबर के खिलाफ बगावत की।

१२ जुलाई, सन् १५७६ ई०

बंगाल के अफ़गान शासक दाऊद की हत्या एक लड़ाई में कर दी गई। इस प्रकार उसका शासन समाप्त हो गया। उक्त लड़ाई बंगाल की एक प्राचीन राजधानी 'राजमहल' के निकट लड़ी गई। वहाँ के ध्वंसावशेषों का सम्बन्ध, गलत मत व्यक्त करते हुए, बाद के मुस्लिम शासकों से स्थापित किया जाता है। वस्तुतः प्राचीन हिन्दू भवनों के जो ध्वंसावशेष प्राप्त होते हैं—वे मुसलमानों के लगातार आक्रमण के कारण हैं।

सन् १५७२-१५९७ ई०

हिन्दुत्व के अमर-अजय अधिनायक महाराणा प्रताप तथा आक्रांता अकबर के मध्य लगभग २५ वर्षों की दीर्घ-कालावधि तक प्रबल संघर्ष चलता रहा। अन्ततः अकबर ने हार मानकर संघर्ष से अपने हाथ खींच लिये। यद्यपि महाराणा प्रताप के साम्राज्य को क्षति पहुँची किन्तु उक्त संघर्ष में वे अजेय सिद्ध हुए एवं विजय का सेहरा उन्हीं के सिर बँधा।

जून, सन् १५७६ ई०

हल्दी-घाटी की सुप्रसिद्ध लड़ाई लड़ी गई। यही वह लड़ाई थी, जिसमें महाराणा प्रताप के दुर्दमनीय अश्व चेतक ने जहाँगीर के हाथी की कनपटी पर अपने सामने के दोनों पैर रख दिए। राणा प्रताप ने अपने लम्बे भाले से प्रहार किया। जहाँगीर हौदे के पीछे छिप गया तथा उसके स्थान पर महावत की हत्या हुई।

नवम्बर, सन् १५७६ ई०

आकाश में एक लम्बा पुच्छल तारा दिखलाई पड़ा। पुच्छल तारा काफी समय तक दिखलाई देता रहा।

सन् १५७७ ई०

राजा टोडरमल गुजरात से विद्रोही बन्दियों का एक जत्था लेकर पहुँचा। बन्दियों को कठोर यातनायें दी गईं।

सन् १५७८ ई०

अकबर पर अपस्मार (मिर्गी) रोग का दौरा पड़ा। यद्यपि कुछ चाटुकार इतिहास-लेखक इस बीमारी को एक प्रकार की 'दैवी विमूर्छा' की संज्ञा देते हैं। वस्तुतः अकबर की मानसिक स्थिति अत्यधिक खिन्न हो गई थी।

सन् १५७९ ई०

पारसी धर्म के एक अध्यात्मवादी 'दस्तूर मेहेरजी राणा', जिनका परिचय अकबर के साथ सन् १५७३ ई० में सूरत के आक्रमण तथा गिरफ्तारियों के दौरान हुआ था तथा जिन्होंने सन् १५७५ ई० में फतेहपुर सीकरी के धार्मिक वाद-विवाद में भाग लिया, सन् १५७९ ई० के आरम्भिक चरण में अपने घर रवाना हुए।

जून का अन्तिम दिन, सन् १५७९ ई०

अकबर ने स्वयं को अध्यात्म-शक्ति प्राप्त दैवी व्यक्ति होने सम्बन्धी तथ्य पर जोर डालने तथा अपने को सल्तनत में 'धर्म-प्रधान' सिद्ध करने के लिए फतेहपुर सीकरी की प्रधान मस्जिद के धार्मिक उपदेशकों को हटवा दिया।

नवम्बर, सन् १५७९ ई०

पुर्तगाली धर्म सम्प्रदाय के एक मिशन ने गोवा से प्रस्थान किया तथा २८ फरवरी, सन् १५८० ई० को वह फतेहपुर सीकरी पहुँचा। मिशन ने अकबर को बाइबल की एक प्रति भेंट की, जिसे उसने कुछ दिनों के पश्चात् लौटा दिया।

इसी समय के आस-पास अकबर द्वारा मिथ्या पाखण्ड का प्रदर्शन करने तथा नवीन 'प्रवर्तन' सम्बन्धी नीति अपनाने के कारण उसके खिलाफ प्रबल जनरोष देखा गया। इस सर्वव्यापी रोष से अकबर के मन में भय उत्पन्न हो गया (विंसेंट स्मिथ की पुस्तक, पृष्ठ १३०)। अकबर ने अजमेर से लौटते हुए 'यात्री-मस्जिद' के रूप में एक भव्य तम्बू तैयार

करवाया, जहाँ वह एक धार्मिक मुसलमान के समान पाँचों समय नमाज़ पढ़ने का ढोंग करने लगा।

१ सितम्बर, सन् १५७९ ई०

अकबर ने एक राजाज्ञा प्रसारित की, जिसमें उसने निर्भ्रान्त रूप में स्वयं को सल्तनत का पूर्णत: धर्म-प्रधान एवं अपनी आध्यात्मिकता सिद्ध होने सम्बन्धी तथ्य की घोषणा की। एक सप्ताह के भीतर उसने अजमेर की अन्तिम यात्रा के लिए कूँच किया। ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की इस भेंट के समय अकबर ने अनेक आडम्बर किये। अकबर की उक्त राजाज्ञा की अधिघोषणा से यह विश्वास पैदा करने का प्रयास किया गया कि उसने एक नये धर्म 'दीन-ए-इलाही' की स्थापना की है।

जनवरी, सन् १५८० ई०

बंगाल के प्रभावशाली प्रधान व्यक्तियों ने अकबर के खिलाफ विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह को सन् १५८४ ई० में ही दबाया जा सका।

काबुल के शासक, अकबर के छोटे हरम भाई मिर्जा मोहम्मद हकीम ने आक्रमण की धमकी दी।

८ फरवरी, सन् १५८१ ई०

भारत के उत्तर-पश्चिम के युद्ध के लिए अकबर ने फतेहपुर सीकरी से कूच किया। उसका वित्त-मंत्री शाह मंसूर शत्रु से मिल गया था। इस प्रकार शाह मंसूर १२वाँ प्रमुख दरबारी था, जिसने विद्रोह किया। थानेश्वर तथा अम्बाला के मध्य रास्ते में शाहबाद मे उसे गिरफ्तार कर वृक्ष पर लटकाने का कार्य स्वयं अबुलफजल ने किया।

९ अगस्त, सन् १५८१ ई०

जब अकबर ने काबुल में प्रवेश किया, तो मोहम्मद हकीम वहाँ सब कुछ छोड़कर भाग निकला। केवल ६ दिन वहाँ रुकने के बाद अकबर ने वापसी यात्रा की।

१७ जनवरी, सन् १५८२ ई०

अकबर की सौतेली माँ का देहावसान हो गया। उसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि मक्के की यात्रा के बाद उसका अधिकांश समय पहले तो अपने पति हुमायूँ का मकबरा बनवाने तथा बाद में उसकी व्यवस्था करने

में व्यतीत हुआ (डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव की पुस्तक 'अकबर महान्', भाग-१, पृष्ठ २६२-६३ के इस उल्लेख के साथ अन्य उल्लेखों का विरोधाभास है)। अन्य उल्लेखों में कहा जाता है कि मकबरे का निर्माण-कार्य उसकी मृत्यु के उपरान्त आरम्भ हुआ।

सन् १५८१-८२ ई०

अत्यधिक संख्या में शेखों तथा फकीरों ने अकबर के 'नवीन प्रवर्तन' को रोकने की चेष्टा की तथा विद्रोह किया। उन्हें निर्वासन का दण्ड दिया गया। अधिकांश लोगों को कांधार भेज दिया गया। वहाँ उन्हें दास बनाया गया एवं उनके बदले घोड़ों का विनिमय किया गया।

मार्च, सन् १५८२ ई०

अकबर के एक अन्य प्रमुख दरबारी मासूम खाँ फर्हनखुदी ने उसके खिलाफ विद्रोह कर दिया। अकबर की माँ का संरक्षण एवं देख-रेख प्राप्त होने के बावजूद भी एक रात जब वह फतेहपुर सीकरी में राजमहल से वापिस जा रहा था, उसकी हत्या करवा दी गई।

सन् १५८२ ई०

एक जैन मुनि हीरविजय सूरी ने अकबर के दरबार में कुछ दिनों तक निवास किया।

१५ अप्रैल, सन् १५८२ ई०

अकबर की फौज द्वारा पुर्तगालियों के अधिकृत प्रान्त 'दमन' पर आक्रमण किया गया। 'दीव' पर भी इसी प्रकार आक्रमण किया गया। भीषण एवं क्रूर हमला विफल हो गया।

सन् १५७५ ई० में जो धार्मिक वाद-विवाद आरम्भ करवाया गया था वह सन् १५८२ ई० में समाप्त हुआ।

इसी समय के आसपास पादरी मान्सेरेट के साथ आये सय्यद मुज़फ्फर से अकबर ने उसे यूरोप के राजदूतावास में राजदूत के रूप में जाने की बात पूछी। इसके पीछे अकबर का उद्देश्य मुज़फ्फर से मुक्ति पाना था। सैय्यद मुज़फ्फर ने दक्षिण की ओर कूँच किया तथा स्वयं को छिपा लिया।

४ अगस्त, सन् १५८२ ई०

इस्लाम को अस्वीकार करने के कारण सूरत में दो ईसाई युवकों को

कत्ल करवा दिया गया। ईसाई युवकों की मुक्ति के लिए एक हजार सिक्कों का प्रतिभू प्रस्तुत किया गया था, किन्तु वह अस्वीकार कर दिया गया।

अगस्त, सन् १५८२ ई०

अकबर एक ऐसे मकान में गया, जहाँ करीब २० नवजात शिशुओं को उनकी माताओं से खरीदा गया था। उन नवजात शिशुओं को मूक परिचारिकाओं के संरक्षण में 'भाषा-उत्पत्ति'[1] के प्रयोग के लिए एकान्त-निर्जन प्रदेश में भेज दिया गया। अकबर का यह एक ऐसा निर्मम और बर्बर प्रयोग था, जिसने उन असहाय बच्चों की ज़िन्दगी पूर्णतः बरबाद कर दी।

१५ अक्तूबर, सन् १५८२ को फतेहपुर सीकरी की ६ मील लम्बी तथा २ मील चौड़ी झील फूट गई। अकबर उस समय अपने दरबारियों के साथ एक जन्मोत्सव समारोह में मशगूल था। डूबने से बचने के लिए उसे वहाँ से भागना पड़ा। झील के इस तरह फूट जाने से वह सूख गई। इसी झील से नगर की जल-पूर्ति होती थी। सन् १५८५ ई० में झील सूख जाने से अकबर के लिए वहाँ रहना असम्भव हो गया, अतः उसने वह स्थान छोड़ देना उपयुक्त समझा।

एक दूसरे महत्त्वपूर्ण दरबारी एतिमाद खाँ ने अकबर के खिलाफ बगावत कर दी। गुजरात के अन्य विद्रोहियों के साथ उसने अकबर के विरुद्ध षड्यन्त्र किया। बाद में पश्चात्ताप करने तथा खेद व्यक्त करने पर उसे गुजरात का राज्यपाल नियुक्त किया गया।

सन् १५८३ ई० का आरम्भ

"जेसूट पादरी एक्विवा" ने अनेकानेक कठिनाइयों के बाद अकबर से अनुमति प्राप्त कर फतेहपुर सीकरी से कूच किया। अकबर के दरबार में उसने तीन वर्ष से अधिक समय तक निवास किया था।

---

१. भाषा-विज्ञान, एम० ए० की कक्षाओं, तथा अन्य कक्षाओं, जिनके अन्तर्गत भाषा-विज्ञान के पर्चे निर्धारित होते हैं, में अकबर ने इसके द्वारा भाषा-उत्पत्ति के सिद्धान्तों में एक नये सिद्धान्त का समावेश किया। डा० भोलानाथ तिवारी आदि भाषाविदों ने अकबर के इस प्रयोग को मान्यता दी है।

सितम्बर, सन् १५८३ ई०

गुजरात के भूतपूर्व शासक मुज़फ्फर शाह ने अहमदाबाद को अपने अधिकार में कर लिया तथा स्वयं को वहाँ का शासक घोषित कर दिया। उसे लगातार 'सरखेज़' एवं 'ननदेड़' में पराजित किया गया तथा बाद में विवश किया गया कि वह पीछे हटकर 'कच्छ' के सैकत निर्जन देश में जा कर रहे। सन् १५९१-९२ ई० तक, जबकि वह गिरफ्तार किया गया, वह बराबर विद्रोह में लगा रहा। उसके विषय में यह जानकारी दी जाती है कि उसने बाद में गले में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली।

सन् १५८३ ई०

अकबर ने अपने दरबार से प्रत्यक्षतः एक राजपूत राजकुमार को व्यर्थ के कार्य का बहाना कर विदाई दी, किन्तु राजकुमार ने अभी दरबार छोड़ा ही था कि, कहा जाता है, वह मृत होकर गिर पड़ा। उसकी मृत्यु का समाचार पाकर उसकी विधवा सुन्दर पत्नी ने पति के साथ में अपने-आपको उत्सर्ग करने की दृष्टि से 'आत्मदाह' करने की तैयारी की। अन्तिम समय में अकबर घटनास्थल पर पहुँचा। प्रत्यक्ष रूप से विधवा राजपूत वीरांगना को आत्मदाह से बचाने की दृष्टि से उसने राजकुमारी को तथा उसके समस्त रिश्तेदारों को बन्दी बनवा दिया। यह एक धोखा मात्र है। अकबर ने राजपूत राजकुमार की हत्या उसकी सुन्दर पत्नी को अपने हरम में रखने के लिए करवाई थी।

८ अक्तूबर, सन् १५८३ ई०

अकबर ने 'ईदुल-फितर' का उत्सव मनाया। इसी दिन अश्वारूढ़ होकर 'कन्दुक-क्रीड़ा' का आयोजन किया गया परन्तु इस खेल में राजा बीरबल के अपने घोड़े से गिर जाने के कारण हालत शोचनीय हो गई। अकबर के सम्बन्ध में एक किस्सा प्रचारित करते हुए कहा जाता है कि उसने अपनी असीम कृपा दिखाते हुए राजा बीरबल पर मन्त्र-प्रयोग किया तथा पुनः जीवित कर दिया। अकबर के आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने तथा उसे दैवी सिद्धि होने सम्बन्धी किस्सों का यह एक उदाहरण है। एक लम्पट और विलासी बादशाह को इस प्रकार मिथ्या रूप में सिद्ध होने का दुष्प्रचार किया जाता है।

नवम्बर, सन् १५८३ ई०

अकबर के विषय में जानकारी दी जाती है कि उसने इलाहाबाद के दुर्ग का निर्माण करवाया तथा उसके चारों ओर एक नगर की नींव डाली। कहा जाता है कि उक्त नगर में अकबर के दरबारियों ने भी भवनों एवं प्रासादों का निर्माण करवाया। वस्तुत: ये सब ऐतिहासिक भ्रान्तियां हैं। उक्त दुर्ग तथा प्रयाग नगर अविस्मरणीय प्राचीन भारत की निशानियाँ हैं। उनके निर्माण का श्रेय मिथ्या रूप में अकबर पर आरोपित कर बचकाने विचारों का परिचय देते हुए चाटुकार मुस्लिम लेखक गलत एवं झूठा इतिहास प्रस्तुत करते हैं। भारतीय इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में इस प्रकार के मतों को बिना किसी प्रकार का प्रश्न उठाये तथा सरलता से इस प्रकार के निर्माणों पर विश्वास करने सम्बन्धी तथ्यों के प्रवेश से इतिहास की परम्परा दूषित होती है तथा अनेकानेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

अकबर की मुस्लिम फौज द्वारा तीसरी बार 'भाथा' के राजा रामचन्द्र पर आक्रमण किया गया। उन्हें अपमानजनक आत्म-समर्पण करने के लिए बाध्य किया गया। ज्ञातव्य है कि इससे पूर्व सन् १५६३ ई० में राजा रामचन्द्र ने अकबर को पुष्कल उपहार भेंट दिये थे तथा संगीत-सम्राट् तानसेन को भी उसके प्रति समर्पित कर दिया था। तानसेन को जब बलात् दिल्ली में मुस्लिम दरबार में उपस्थित होने के लिए ले जाया जा रहा था, शिशुओं के समान वे बुरी तरह रो पड़े थे।

सन् १५८३ ई० में अकबर के अधीनस्थ प्रान्तों में भयंकर अकाल का प्रकोप हुआ।

सन् १५८४ ई०

अकबर के राज्याभिषेक के बाद से प्रथम नव मुस्लिम वर्ष के रूप में ११ मार्च, सन् १५५६ ई० से अतीत-प्रभावी दैवी सन् को मान्यता देने की दृष्टि से एक नये सन् का आरम्भ किया गया। अकबर के उन प्रयासों, जिनके द्वारा वह स्वयं को दैवी शक्ति प्राप्त तथा नि:शेष प्रभुत्व सम्पन्न बादशाह सिद्ध करना चाहता था, का एक हिस्सा था। अकबर के इस प्रकार के दुष्प्रयास ही उसके ढोंगी होने के प्रमाण हैं।

एक तरुण हिन्दू चित्रकार 'दसवन्त' ने मुगल दरबार की विषयाशक्ति,

लम्पटता तथा क्रूरता से ऊबकर स्वयं को छुरा भोंककर आत्महत्या कर ली।

१५ जुलाई, सन् १५८४ ई०

अकबर के एक प्रिय दरबारी गाज़ी खाँ बदक्शाही की अयोध्या में मृत्यु हो गयी। उसके द्वारा अयोध्या के कुछ प्राचीन हिन्दू मन्दिरों को मस्जिदों एवं मकबरों में बदलवाया जा चुका था। जिस मन्दिर में उसने निवास किया, जहाँ मृत्यु के बाद उसे दफनाया गया, उसे भी मकबरे में परिवर्तित कर लिया गया।

१३ फरवरी, सन् १५८५ ई०

शाहजादे सलीम (भावी बादशाह जहाँगीर) की शादी राजा मानसिंह की बहन 'मानबाई' के साथ सम्पन्न हुई। मानबाई ने दो शिशुओं को जन्म दिया। पुत्री सुल्तुन्निसा की मृत्यु ६० वर्ष की आयु में अविवाहित अवस्था में ही हुई। पुत्र खुसरू का जन्म ६ अगस्त, १५८७ ई० को हुआ तथा मृत्यु २९ जनवरी, १६२२ ई० को हुई। वह अपनी माता के साथ इलाहाबाद में विद्रोही के रूप में बन्दी बनाया गया था। खुसरू बाग में उसका तथा-कथित मकबरा एक प्राचीन ध्वस्त राजमहल का एक हिस्सा था, जहाँ पहले उसे बन्दी बनाकर रखा गया तथा उसकी मृत्यु के बाद उसे वहीं बाग में दफ़न कर उस स्थान को मकबरे का रूप दे दिया गया। मानबाई की हत्या स्पष्टतः सन् १६०४ ई० में अकबर तथा सलीम के सम्मिलित षड्यन्त्र द्वारा हुई।

२० दिसम्बर, सन् १५८५ ई०

कश्मीर के शासक यूसुफ खाँ तथा उसके बेटे याकूब को अधीन करने अकबर ने एक सेना भेजी। अकबर के दरबार में याकूब कुछ समय तक ज़मानत के रूप में रहने के भय से भाग गया। दो पहाड़ी राज्य 'स्वात' तथा 'बाजौर' को विजित करने के लिए दो सैनिक जत्थे भेजे गए।

अकबर के सैनिक जत्थों के साथ 'बयज़ीद' के नेतृत्व में रोशनिया अफगानों ने जमकर लड़ाई लड़ी।

२२ जनवरी, सन् १५८६ ई०

यूसुफैजी अफगानों के विरुद्ध अभियान में भाग लेने का बीरबल को

आदेश दिया गया। सरकारी मुस्लिम इतिवृत्त अकबर की फौज के एक कमाण्डर जैन खाँ को उत्तर-पश्चिम के पहाड़ी मोर्चे के 'चक्दर्रा दुर्ग' के निर्माण का श्रेय मिथ्या रूप में देते हैं, इस आक्रमण में बीरबल की हत्या हो गई। बीरबल का मूल नाम महेशदास था। बीरबल का जन्म सन् १५२८ ई० के आसपास कालपी नगर में भट्ट वंश के एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

उपर्युक्त घटना के तुरन्त बाद राजा टोडरमल के नेतृत्व में अनुत्तरदायी यूसुफ जाईज का दमन करने सेना भेजी गई। किन्तु इससे प्रान्त की अन्य अफगान जातियाँ उत्तेजित हो उठीं। उन्होंने अकबर की लुटेरी फौज से जमकर लोहा लिया। तब मानसिंह को अपनी फ़ौज के साथ काबुल में लड़ाई को संचालित करने का आदेश दिया गया। मानसिंह एक महीने तक बीमार पड़ा रहा। अफगान जातियों को पराभूत न कर सकने की उसकी अक्षमता के कारण उसकी भर्त्सना की गई। अफगान जातियों के कितने ही लोगों को कत्ल करवा दिया गया। जिन लोगों को बन्दी बनाया गया, दासों की हैसियत से बेच दिया गया। अकबरनामा में इस क्षेत्र में कई दुर्गों के निर्माण का झूठा श्रेय जैन खाँ को दिया जाता है। अफ़गान जातियों के ये विद्रोह सन् १६०० ई० के बाद भी जारी रहे।

२२ फरवरी, सन् १५८६ ई०

कश्मीर के शासक यूसुफ खाँ के साथ संधि-पत्र पर राजा भगवानदास ने अपने हस्ताक्षर किये। अकबर ने राजा भगवानदास की भर्त्सना करते हुए उक्त संधि को मान्यता देने से इंकार कर दिया। अकबर के इस अविश्वास से राजा भगवानदास को मार्मिक आघात पहुँचा और उसने छुरा मारकर आत्म-हत्या कर ली। इससे सिद्ध होता है कि यथार्थ तथ्य सामान्य जन-विश्वास से कितने विपरीत हैं। अकबर के दरबार से सम्बन्धित प्रत्येक हिन्दू दरबारी को अंततः पछताना पड़ा। अकबर की कट्टरता के सामने उनके विश्वास का कोई मूल्य नहीं था।

६ अक्तूबर, सन् १५८३ ई०

कासिम खाँ के नेतृत्व में अकबर की फौज ने श्रीनगर में प्रवेश किया। लूट-खसोट करना, जनता को यातनायें देना तथा अत्याचार करना आरम्भ

कर दिया। याकूब खाँ तथा उसके पिता यूसुफ खाँ अकबर की फौज को गुरिल्ला युद्ध से लगातार परेशान करते रहे।

जुलाई, सन् १५८३ ई०

याकूब खाँ ने आत्म-समर्पण कर दिया। कश्मीर को सल्तनत में शामिल करने के बाद यूसुफ खाँ को मुक्त कर दिया। अकबर द्वारा यूसुफ खाँ को एक सामान्य दरबारी बना लिया गया तथा उसे उड़ीसा में युद्ध करने भेजा गया।

लाहौर में अकबर की फौज एक लम्बे अरसे से रह रही थी तथा वहाँ के पवित्र स्थानों को दूषित कर रही थी। वहाँ की असहाय एवं असुरक्षित जनता को लगातार हमले एवं आक्रमणों का सामना करना पड़ रहा था। क्षतः जनता ने अनेक हिन्दू राजाओं, जो आस-पास के प्रदेशों में शासन करते थे, को विवश किया कि वे अकबर से शांति-स्थापना की प्रार्थना करें। जिन लोगों ने समर्पण किया उनमें नगरकोट के राजा विधिचन्द, जम्मू के परसराम, माऊ के बसु, जैसवाल के अनुराधा, कहलूर के राजा तिला, मानकोट के प्रताप तथा अन्य अनेक प्रमुख शामिल थे।

कहा जाता है, इसी समय कश्मीर के याकूब खाँ को अकबर द्वारा मार डालने का प्रयास किया गया। उत्सव मनाने के लिए अकबर द्वारा याकूब खाँ के लिए एक जहरीला लबादा भेजा गया। जिसके पहनने पर उसकी मृत्यु अनिवार्य थी।

१ जनवरी, सन् १५८४ ई०

'छोटे तथा बड़े तिब्बत' पर दबाव डाला गया कि वे अकबर का आधिपत्य स्वीकार कर लें। 'छोटे-तिब्बत' के प्रधान अलीराय को अपनी बेटी जहाँगीर के हरम के लिए समर्पित करने हेतु विवश किया गया। अली राय की निःसहाय बेटी को लाहौर लाया गया तथा मुसलमानों के नए वर्ष के दिन उसे बलात् जहाँगीर के हरम में प्रविष्ट कराया गया।

सन् १५८५ से १५८८ ई०

जन-सामान्य का जीवन-स्तर गिर गया। अधिकांश प्रान्तों में जनता को दरिद्रता तथा अनेक अभावों का सामना करना पड़ रहा था।

२६ जून, सन् १५८६ ई०

बीकानेर के शासक रायसिंह की कन्या को सलीम (भावी बादशाह जहाँगीर) के हरम में प्रवेश के लिए लाहौर लाया गया। ज्ञातव्य है कि इससे पूर्व सलीम की कई शादियाँ हो चुकी थीं।

१६ नवम्बर, सन् १५८६ ई०

माऊ उर्फ नूरपुर के शासक राजा बसु पर दूसरी बार दबाव डालकर सल्तनत के अधीन किया गया। अकबर की दबाव-पूर्ण एवं कपट-नीति एवं व्यवहार की स्थिति यह थी कि उसके अधिकारियों का कार्य-क्षेत्र पृथक्-पृथक् हो गया था। अब से उसने निश्चय किया कि अपने द्वारा शासित १२ प्रान्तों में से प्रत्येक में राज्यपाल नियुक्त करेगा। इसके पीछे अकबर का यह उद्देश्य था कि केवल विरोध के कारण वे एक दूसरे का छिद्रान्वेषण करें, अपने दोषों को छिपाकर दूसरे के दोषों को सामने रखें तथा अकबर को उनकी जानकारी दें ताकि वह उन्हें एक दूसरे के विरोध एवं दोषों द्वारा नियंत्रण में रख सके तथा समय आने पर उन्हें फँसा सके।

सन् १५८७ ई० का आरम्भ

अकबर ने धन वसूल करने की दृष्टि से एक शोषणपूर्ण अध्यादेश की घोषणा की, जिसके अन्तर्गत जो कोई भी दरबार में जाता था, तथा बादशाह के समक्ष उपस्थित होता था, उसे अपनी स्थिति के अनुसार रजत अथवा स्वर्ण की उतनी मुद्रायें भेंट करनी होती थीं, जितनी भेंटकर्ता की आयु होती थी।

२८ जुलाई, सन् १५८७ ई०

किसी कातिल ने एक रात टोडरमल को छुरा भोंक दिया। उक्त कातिल के मन में टोडरमल के प्रति ईर्ष्या की भावना थी, क्योंकि टोडरमल अकबर का विश्वासी अनुचर था, जिसके कारण वह अकबर के शोषणपूर्ण आदेशों को नियमों एवं व्यवस्थाओं के रूप में क्रियान्वित करता था।

६ अगस्त, सन् १५८७ ई०

अकबर का प्रथम नाती खुसरू का जन्म जयपुर की राजकन्या मानबाई की कोख से हुआ। खुसरू का जीवन विद्रोह तथा दुर्व्यसनों में व्यतीत हुआ

था। बाद में उसे बन्दी बनाकर मृत्युदंड दिया गया। मानबाई को मुसलमान नाम 'शाह बेगम' दिया गया।

३० मई, सन् १५८८ ई०

अकबर के तीसरे बेटे दनियाल की शादी सुल्तान ख्वाजा की बेटी के साथ सम्पन्न हुई।

अगस्त, सन् १५८८ ई०

शाहजादे मुराद को सुल्तान रुस्तम नामक पुत्र की प्राप्ति हुई।

२६ अप्रैल, सन् १५८९ ई०

अकबर के दरबार की २६ वर्षों तक सेवा करने के बाद लाहौर में संगीत सम्राट् तानसेन का देहावसान हो गया। कहा जाता है कि तानसेन का मृत शव पहले लाहौर में दफनाया गया, बाद में उसे ग्वालियर लाया गया।[1]

२८ अप्रैल, १५८९ ई०

अपनी पहली कश्मीर यात्रा के लिए अकबर ने कूच किया। दक्षिण के राज्य अहमदनगर के विरुद्ध बुरहानुद्दीन को भेजा गया। बुरहानुद्दीन असफल होकर लौटा।

५ जून, सन् १५८९ ई०

श्रीनगर पहुंचने के बाद अकबर ने कश्मीर के पूर्ववर्ती शासकों के राजमहल में ३६ दिन निवास किया। कश्मीर की अपनी यात्रा के दौरान अकबर ने अपने बेटे सलीम से मिलने से इन्कार कर दिया। इसका बदला लिए जाने के डर से सलीम ने स्वयं को अपने तम्बू में बंद कर लिया। अकबर की समीपता का विचार कर छोटे तथा बड़े तिब्बत के शासकों के मन में भय उत्पन्न हो गया कि कहीं अकबर उनपर हमला न करे। अतः उन्होंने अकबर के पास प्रचुर उपहार भेजे।

---

१. इस तथ्योल्लेख से ऐसा आभास होता है कि अकबर के दरबार में जितने भी हिन्दू दरबारी एवं कर्मचारी थे, उनपर मुस्लिम रीति-रिवाज बलात् थोपे जाते थे। मृत्यु के बाद तानसेन का दाह-संस्कार न कर उसे दफनाया गया।

३ अक्तूबर, सन् १५८९ ई०

अकबर काबुल पहुँचा तथा वहाँ उसने ४८ दिन निवास किया। वहीं उसे टोडरमल का त्याग-पत्र प्राप्त हुआ। टोडरमल ने हरिद्वार प्रस्थान किया तथा वहीं अवकाश-प्राप्त जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया, किन्तु बाद में टोडरमल पुनः बुलवाया गया।

९ नवम्बर, सन् १५८९ ई०

लाहौर में टोडरमल का शरीरान्त हो गया।

१४ नवम्बर, सन् १५८९ ई०

राजा टोडरमल की अन्त्येष्टि-क्रिया में भाग लेते हुए राजा भगवान दास भीषण सर्दी के शिकार हो गये। उन्होंने उल्टियाँ करना आरम्भ कर दिया। वे 'मूत्रकृच्छ' की बीमारी से ग्रस्त हो गये तथा उनकी मृत्यु हो गई। स्मरणीय है कि राजा भगवानदास की बहन जोधाबाई अकबर की एक पत्नी थी।

सिंध, कांधार तथा सिबि (बलूचिस्तान में क्वेटा का उत्तर-पूर्व क्षेत्र) पर अकबर ने आक्रमण किया तथा उक्त क्षेत्रों के बृहद् भाग को हस्तगत कर लिया।

सन् १५८८ ई० का अन्तिम चरण

अकबर ने उड़ीसा के अफगान शासक के विरुद्ध आक्रमण किया। अकबर को यह विजय सन् १५९२ में प्राप्त हुई। अकबर के आक्रमण के विरोध में उड़ीसा की जनता ने विद्रोह कर दिया, किन्तु शीघ्र ही उनका दमन कर दिया गया।

हिन्दू राजा लक्ष्मीनारायण द्वारा शासित 'कूच बिहार' पर आक्रमण किया गया तथा अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए उसे विवश किया गया।

२२ जुलाई, सन् १५९२ ई०

कश्मीर के स्थानीय विद्रोह को कुचलने के उद्देश्य से अकबर ने अपनी द्वितीय कश्मीर यात्रा आरम्भ की। कश्मीर की राजधानी श्रीनगर पहुँचने के पूर्व ही अकबर के समक्ष विद्रोही 'यादगार' का सिर काटकर प्रस्तुत किया

गया। अकबर अक्तूबर, सन् १५९२ ई० को श्रीनगर पहुँचा। वहाँ उसने २५ दिन निवास किया।

मार्च, सन् १५९३ ई०

अकबर का सौतेला भाई मिर्ज़ा अजीज़ कोका प्रत्यक्ष रूप में मक्के की यात्रा करने दरबार से भाग गया। काबा के मुसलमान शेखों एवं मौलवियों द्वारा उसके धन का अधिकांश भाग लूट लिया गया। वहाँ अपने जीवन को असह्य समझकर मिर्ज़ा अजीज कोका अनिच्छा से वापस लौट आया।

५ अगस्त, सन् १५९३ ई०

विख्यात कवि अबुल फैज़ी तथा इतिहास-लेखक अबुल फज़ल के पिता शेख मुबारक का ८८ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया।

५ अक्तूबर, सन् १५९५ ई०

कवि फैजी को 'जलोदर' की बीमारी हो गई। रक्त-वमन होने लगा। श्वास लेने में दिक्कत होने लगी तथा उसके हाथ-पैर सूज गये। ऐसी दशा में लाहौर में उसकी मृत्यु हो गई।

३० अक्तूबर, सन् १५९५ ई०

अकबर की पाकशाला के अधीक्षक हकीम हुमाम, जिसकी परिगणना दरबार के ९ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों में की जाती थी, का देहान्त हो गया।

१ अप्रैल, सन् १५९७ ई०

अकबर ने अपनी तीसरी कश्मीर यात्रा के लिए कूच किया। इस यात्रा के दौरान भी अकबर तथा शाहजादे सलीम के सम्बन्ध इतने तनावपूर्ण रहे कि न तो अकबर ने सलीम से मिलने की इच्छा व्यक्त की, न ही सलीम ने अकबर से मिलना चाहा। सन् १५९७ ई० के मई माह से नवम्बर माह तक कश्मीर की घाटी में भयंकर दुर्भिक्ष का प्रकोप रहा। भयभीत जनता अपने घर-द्वार छोड़कर भागने के लिए विवश हो गई। हिन्दू राजा लक्ष्मीनारायण द्वारा शासित 'कूच बिहार' पर आक्रमण किया गया एवं उसे अधीन किया गया।

३ मई, सन् १५९७ ई०

समीप के ही एक और शासक राघव देव (लक्ष्मीनारायण के चचेरे

भाई) को उसी प्रकार परेशान किया गया तथा बलात् अधीनता मनवाई गई।

६ नवम्बर, सन् १५९८ ई०

१३ वर्ष तक पंजाब में रहने के बाद अकबर ने आगरे के लिए प्रस्थान किया। उद्देश्य था-—दक्षिण के राज्यों की पराजय की ओर अधिक ध्यान देना।

२२ मई, सन् १५९९ ई०

अत्यधिक मदिरापान करने के कारण विमूर्च्छा की स्थिति में शाहजादे मुराद की दौलताबाद से २० कोस की दूरी पर पूर्णा नदी के किनारे दिह-बदी में मृत्यु हो गई। मुराद की मृत्यु के कारण अकबर ने सलीम (जहाँगीर) को दक्षिण की स्थिति सम्भालने, निरीक्षण करने तथा आक्रमण आदि संचालित करने के लिए भेजा, किन्तु सलीम ने दक्षिण में जाने से इन्कार कर दिया।

१५ जुलाई, सन् १५९९ ई०

ईसाई पादरी फ्रांसिस जोरोम् जेवियर ने आग्रे में बादशाह से प्रार्थना की कि चूँकि उसने फारसी का पर्याप्त अध्ययन किया है, अतः उसे धार्मिक उपदेश देने की अनुमति प्रदान की जाये। अकबर ने उसका अनादर करते हुए कहा कि उसे अपने धर्म के सम्बन्ध में बोलने की जो स्वतन्त्रता दी गई है, वही पर्याप्त है।

१६ सितम्बर, सन् १५९९ ई०

अकबर ने प्रत्यक्षतः शिकार खेलने के लिए आगरे से कूच किया, किन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य यह था कि शाहजादे दनियाल पर ज़ोर डाले कि वह अपने ऐशो-आराम की ज़िन्दगी से दक्षिण के युद्ध-अभियान को अत्यधिक प्रबलता से सम्भालने के लिए समय निकाले।

जयपुर के राजकीय परिवार के एक सदस्य जगतसिंह का इसी समय के आसपास देहावसान हो गया। वह बंगाल के विरुद्ध एक युद्ध का नेतृत्व करने वाला था। उसकी मृत्यु का कारण अत्यधिक मदिरापान एवं मुगल दरबार की अत्यधिक विषयासक्ति तथा नीचतापूर्ण दासता की जिन्दगी से उत्पन्न था।

फरवरी, सन् १६०० ई०

'अशीर गढ़' के दुर्ग का घिराव करने के लिए एक बड़ी सेना भेजी गई। उक्त दुर्ग पर छल-प्रपंच से आधिपत्य स्थापित किया गया।

३ जुलाई, सन् १६०० ई०

अहमदनगर की मुसलमान शासिका चाँद बीबी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा गया तथा उसकी हत्या की गई।

१६ अगस्त, सन् १६०० ई०

अहमदनगर के दुर्ग तथा शहर पर कब्जा किया गया। इससे-पूर्व सन् १५८६ ई० में तथा सन् १५८६ ई० में दो प्रयास किये गये थे, किन्तु वे व्यर्थ सिद्ध हुए थे। अहमदनगर में चाँद बीबी का भाई बरहनुल मुल्क, जिसकी मृत्यु अप्रैल, सन् १५६५ ई० में हुई, एक ऐसा मक्कार व्यक्ति था, जिसने अपने अधिकारियों के परिवारों की प्रतिष्ठा को नष्ट किया था। अहमदनगर पर अकबर की फौज द्वारा शाहबाज़ खाँ के नेतृत्व में १८ दिसम्बर, सन् १५६५ ई० को अधिकार स्थापित किया गया। अकबर की फौज ने जनता पर अनेक अत्याचार किये। उनकी सम्पत्ति लूट ली गई।

'मुनगी पाट्टन' नामक एक समीपस्थ नगर को भी मुगलों ने लूटा। २३ फरवरी, सन् १५६६ ई० को एक सन्धि की गई थी। अहमदनगर के जागीरदार शासक के रूप में बहादुर को मान्यता देने के बदले बरार को मुगल साम्राज्य में मिलाया गया। २० मार्च, सन् १५६६ ई० को जब मुगलों ने वापस लौटना आरम्भ किया तो अहमदनगर की उत्तेजित जनता ने मुगलों का सामान लूटना शुरू कर दिया।

१ अगस्त, सन् १६०१ ई०

अकबर एक स्वल्प दौरे पर फतेहपुर सीकरी पहुँचा। वहाँ उसने ११ दिन निवास किया। जहाँगीर की आयु अब ३१ वर्ष, ८ माह हो चुकी थी। उसने खुला विद्रोह कर दिया। २० वर्ष की आयु के बाद से ही उसके मन में अपने पिता के प्रति नफरत उत्पन्न हो गई थी, जो शनैः-शनैः बढ़ती ही गई। ८ जुलाई, सन् १५८६ ई० को अकबर उदर-शूल से पीड़ित हुआ। मूर्छा की स्थिति में उसके मुँह से अस्फुट शब्द निकले कि उसे शंका है कि उसके बेटे जहाँगीर ने उसे ज़हर दिया है। अकबर ने अपने दरबार के ६

रत्नों में से एक—हकीम हुमाम पर भी ज़हर का प्रभाव न घटा सकने की शंका की। १६ मई, सन् १५९७ ई० को जबकि जहाँगीर 'राजौरी' (कश्मीर का एक हिस्सा) में निवास कर रहा था, उसके अंगरक्षकों एवं ख्वाजा फतेउल्लाह के नेतृत्व में अकबर के सैनिक जत्थों के बीच 'भिड़न्त' हो गई। जहाँगीर को शान्त करने के विचार से कि कहीं वह अनियंत्रित एवं अधिक खतरनाक न हो जाये, अकबर ने फतेउल्लाह की जीभ काटने का आदेश दिया। सन् १५९८ ई० के आरम्भ में अकबर ने जहाँगीर को तुरान के विरुद्ध युद्ध अभियान का आदेश दिया, किन्तु जहाँगीर ने इससे साफ इन्कार कर दिया। सन् १५९९ ई० के अन्तिम चरण के आस-पास दक्षिण में उलझे अकबर की अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए सलीम (जहाँगीर) ने शीघ्रता से अजमेर से आगरे के लिए कूच किया। वहाँ से वह इलाहाबाद पहुँचा। वहाँ वह एक स्वतन्त्र शासक के रूप में अधिष्ठित हो गया।

९ अगस्त, सन् १६०२ ई०

जहाँगीर के उकसाने पर ग्वालियर से करीब ३५ मील दूर 'सरइ बुर्की' तथा 'अन्तरी' गाँवों के बीच, घात लगाकर अबुल फ़जल की हत्या कर दी गई।

७ फरवरी, सन् १६०३ ई०

अकबर के पिता की बहन गुलबदन बेगम की ८२ वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई। गुलबदन बेगम ने अपने भाई हुमायूं के शासन-काल के सम्बन्ध में अपनी संस्मरणिका लिखी है।

अक्तूबर, सन् १६०३ ई०

शाहजादे सलीम को राणा अमरसिंह (स्व० राणा प्रताप के पुत्र) से युद्ध करने के लिए भेजा गया। कुछ दूर जाकर सैनिक जत्थों एवं अस्त्र-शस्त्र के अभाव का बहाना करके वह लौट आया।

सन् १६०४ ई०

ओरछा के प्रधान वीरसिंह देव, जिसने अबुल फजल के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा था, के खिलाफ सेना भेजी गई। अकबर की फौज बुरी तरह पीछे खदेड़ी गई।

जहाँगीर की पत्नी मानबाई की हत्या कर दी गई—यद्यपि उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उसने आत्महत्या की थी।

एक दिन अकबर अपने शयन-कक्ष के बाहर, जब वह दोपहर की नींद लेने भीतर गया, दौवारिक को ऊँघते हुए देखकर क्रुद्ध हो उठा। उसने आदेश दिया कि दौवारिक को आगरे के दुर्ग के ऊपर से नीचे फेंक दिया जाय।

अकबर के सामने ही जहाँगीर भी इतना क्रूर तथा निर्मम था कि उसने एक जीवित समाचार-लेखक की खाल उतरवा ली, एक बालक को बधिया करवा दिया तथा एक नौकर को इतना पिटवाया कि उसकी मृत्यु हो गई।

२१ अगस्त, सन् १६०४ ई०

अपने विद्रोही बेटे का दमन करने के लिए अकबर ने इलाहाबाद के लिए कूच किया। मार्ग में ही उसे अपनी माता की बीमारी का समाचार मिला, जिसके कारण उसे वापस लौटना पड़ा।

२६ अगस्त, सन् १६०४ ई०

अकबर की माता 'मरियम मकानी' की मृत्यु ७७ वर्ष की आयु में हो गई।

६ नवम्बर, सन् १६०४ ई०

दिवंगता को श्रद्धांजलि अर्पित करने एवं शोक का झूठा बहाना करते हुए सलीम आगरे पहुँचा। उसके साथ आये माऊ तथा पठानकोट के शासक राजा बसु को 'बलिदान का बकरा' बनाते हुए गिरफ्तार करने की कोशिश की गयी, किन्तु बसु भागकर अपने अधीनस्थ प्रदेशों में पहुँच गया। बाद में जहाँगीर को एक घर में कैद करके पीटा गया।

११ मार्च, सन् १६०५ ई०

शाहजादे दनियाल की, जिसने अकबर द्वारा कई बार बुलावा भेजने के बावजूद भी दक्षिण से आगरा लौटने से इन्कार कर दिया था, अत्यधिक मदिरापान से मृत्यु हो गई।

२२ सितम्बर, सन् १६०५ ई०

सिकंदरा के राजमहल में अकबर बीमार हुआ।

१५ अक्तूबर, सन् १६०५ ई०

भारतवर्ष में ४८ वर्ष, ८ माह तथा ३ दिन शासन करने के बाद ७३ वर्ष की आयु में एक रात अकबर की मृत्यु हो गई। उसके तीन बेटे एवं तीन बेटियाँ थीं। उसके दो बेटों की मृत्यु हो चुकी थी। दो बेटियों—शाहज़ाद (खानम सुल्तान) तथा शुकरुन्निसा बेगम की शादियाँ हुई थीं। तीसरी अविवाहिता बेटी आराम बेगम की मृत्यु जहाँगीर के शासनकाल में हुई।

: ३ :

अकबर का धूर्ततापूर्ण परिवेश

अकबर के सभी पूर्वज क्रूर, बर्बर, दुराचारी और पाशविक वृत्ति के थे। प्रपौत्र औरंगजेब तक तथा उसके बाद भी सभी उत्तराधिकारी अन्याय, अत्याचार और अमानवीय दुराचारों के जीवन्त प्रतिरूप थे। स्वयं अकबर तथा उसके समस्त समकालीन भी क्रूरता और बर्बरता में किसी से कम नहीं थे, अपितु उसी क्रम-बद्ध श्रेणी की कड़ियाँ थे। आगे के प्रकरणों में हम इन तथ्यों पर सम्यक् प्रकाश डालेंगे कि अकबर तथा उसके हिंस्र पशतुल्य सेनापतियों ने जो स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता दिखलाई, जनता को यातनायें दीं, क्रूरता तथा बर्बरता का परिचय दिया, उनकी कोई परिसीमा नहीं थी। अकबर तथा उसके सेनापति कुकृत्यों तथा हड़कंपों के धूम्रपुँज बनकर छा गये थे।

अकबर का जन्म तथा पालन-पोषण अशिक्षित तथा बर्बर वातावरण में हुआ था। यह दूषित वातावरण अपरिमित शराबखोरी, व्यभिचार तथा असीमित दुष्कृत्यों एवं अनाचारों के कारण और भी अधिक मलिन तथा पाशविक बना दिया गया था। अतः अकबर के सम्बन्ध में जैसा कि कहा जाता है कि वह 'अनन्त सद्‌गुणों का रत्न' था, पूर्णतः भ्रांत तथा गलत मत है। अपने पूर्वजों एवं उत्तराधिकारियों के समान वह भी दुराचारी और लम्पट था। गाय की खाल ओढ़े भेड़िया था। यदि यह मान भी लिया जाये कि वह 'प्रकृति की विलक्षण व्युत्पत्ति था', 'सद्‌गुणों की खान' था तो उसके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र उसके गुणों से पूर्णतः वंचित हो भ्रष्ट, दुराचारी और कामी नहीं होते। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि किसी का पूर्वज तो अनंत सद्‌गुणों की खान हो, किन्तु उसके उत्तराधिकारी क्रूर और बर्बर हो जायें! यह मात्र तर्क है और इस प्रकार के तर्कों के द्वारा हम जिन निष्कर्षों पर

पहुँचते हैं, उन्हें अकबर के शासन से सम्बन्धित प्राप्त विवरणों में उल्लेखित तथ्यों से पूर्ण समर्थन प्राप्त होता है।

इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि भारत एक हज़ार वर्षों से भी अधिक काल तक विदेशी शासनतन्त्र के अधीन गुलाम रहा, जिसके कारण सरकारी संरक्षण में साम्प्रदायिक एवं राजनीतिक स्वार्थ-सिद्धि के लिए इतिहास-लेखन की परम्परा प्रबल रूप में कपटपूर्ण ही रही है। इसी का यह दुष्परिणाम है कि भारत के अतीत का सहज-सीधा एवं वास्तविक इतिहास लिखने का कार्य गुनाह समझा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सही इतिहास को प्रस्तुत करना एक ऐसा 'पाप' है, जिसका कोई उन्मोचन नहीं। यही कारण है कि भारतीय इतिहास अनेकानेक आकस्मिक एवं कल्पित घटनाओं, धर्मान्धताओं, त्रुटियों, असंगतियों, अव्यवस्थित एवं विवेकहीन निष्कर्षों तथा विचारों से परिपूर्ण है। इस प्रकार भ्रांत एवं असंगत मत एवं निष्कर्ष ऐसे हैं, जो तर्क एवं प्रमाणीकरण के विधान के हल्के से झटके को भी सहन नहीं कर सकते तथा विवेचना मात्र से ही चूर-चूर हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि भारतीय इतिहास में जो मत प्रतिपादित किये गये हैं एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं, वे कपटपूर्ण हैं। जब हम प्रमाणीकरण के विधान का आश्रय ग्रहण करते हैं एवं घटनाओं की तार्किक विवेचना आरम्भ करते हैं तो वे वर्णन असंगत सिद्ध होते हैं एवं उनका आधार विलुप्तप्राय: होने लगता है। भारतीय इतिहास में अकबर की महानता एवं उदारता सम्बन्धी वर्णन भी ऐसी ही घटनाएँ हैं जो बलात् समाविष्ट की गईं, हमारे इतिहासकारों ने भ्रान्तियों के आधार पर जिनका परिपोषण किया है। स्पष्ट है कि अकबर को महान् तथा उदार कृत्रिम रूप से प्रस्तुत किया गया है। हमारे इतिहासकारों ने इतिहास में ऐसी व्यवस्था इसलिए की है कि अकबर को हिन्दू सम्राट्, अशोक, जिन्हें उनकी दया एवं करुणा के कारण विश्व के साहित्य एवं इतिहास में सम्मानित किया जाता है तथा जिन्हें महान् एवं उदार सम्राटों की परम्परा में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाता है, के समकक्ष, साम्प्रदायिक महत्त्व की दृष्टि से प्रस्तुत किया जा सके। इस प्रकार प्राय: मुस्लिम बादशाह अकबर को हिन्दू सम्राट् अशोक की श्रेणी में स्थान दिया जाने लगा है, जिसका कोई भी ऐतिहासिक आधार पुष्ट एवं प्रामाणिक नहीं है।

स्मरणीय है कि अकबर का पितृ-पक्ष तैमूरलंग तथा मातृ-पक्ष चंगेज़ ख़ाँ से सम्बन्धित था। तैमूरलंग और चंगेज़ ख़ाँ संसार के दो क्रूरतम एवं सबसे अधिक लूट-खसोट करने वाले थे, जिन्होंने अपने अन्यायों एवं अत्याचारों से सम्पूर्ण विश्व को थर्रा दिया था तथा सम्पूर्ण मानवता को पैरों तले कुचलकर रख दिया था। जिनके सामने उदारता और सहृदयता नाम की कोई चीज़ नहीं थी। विध्वंस जिनके जीवन का प्रमुख ध्येय था। न्यायाधीश श्री जे० एम० शेलट ने लिखा है[1] कि अकबर का पितामह बाबर फारस की पूर्वी सीमा पर स्थित एक छोटे राज्य फरगना के स्वामी उमर शेख का बेटा था। उमर शेख का बाप अबु सईद तैमूरलंग का प्रपौत्र था। उमर शेख की पहली पत्नी तथा बाबर की माँ कुतलुग निगार खानम् क्रूरतम मंगोल चंगेज़ ख़ाँ के दूसरे बेटे चगताई ख़ाँ के वंशज 'यूनस ख़ाँ' की दूसरी बेटी थी। कहा जा सकता है कि भारत के सभी मुसलमानों एवं बादशाहों की रगों में संसार की दो क्रूर एवं बर्बर जातियों का खून था।

अकबर के दादा बाबर को लोग नरभक्षी समझकर दहशत खाते थे तथा जहाँ कहीं भी वह जाता था, लोग उसके डर से भाग जाया करते थे। इस पुस्तक के एक आगामी प्रकरण में हम यह दिखलायेंगे कि स्वयं अकबर को उसकी समकालीन जनता एक जंगली पशु समझती थी। अकबर सदैव लूट-खसोट में व्यस्त रहता था तथा जहाँ भी वह जाता था, वहाँ की जनता उससे डरकर अन्यत्र भाग जाती थी।

बाबर के सम्बन्ध में श्री जे० एम० शेलट का मत है[2] कि बाबर ने 'दीपालपुर' नगर पर, समस्त दुर्गरक्षकों को तलवार के घाट उतारकर अपना कब्जा जमाया।···[3]बाबर के 'सेनापति' ने···शत्रुओं की पिटाई की तथा इब्राहिम लोधी की फौज में भय उत्पन्न करने की दृष्टि से (जबकि उसकी सेना दिल्ली की ओर आगे बढ़ रही थी) सभी सैनिकों का वध कर दिया।···श्री जे० एम० शेलट ने बाबर के सम्बन्ध में आगे उल्लेख किया

---

१. 'अकबर', जे० एम० शेलट, पृष्ठ ६, १९६४, भारतीय विद्या भवन, चौपाटी, बम्बई।
२. वही, पृष्ठ ६।
३. वही, पृष्ठ ८।

है—"गर्मी के दिन थे, जब हम आगरा पहुँचे। भय के कारण सभी नगर निवासी भाग खड़े हुए थे। न तो हमारे लिए अन्न था, न हमारे घोड़ों के लिए चारा। शत्रुता तथा (हमसे) घृणा के कारण गाँव वाले यह सब खाद्य-पदार्थ उठा ले गये थे।[1] कई वर्षों के श्रम के बाद···भीषण मार-काट के द्वारा···हमने शत्रुओं की पिटाई की तथा उन्हें खत्म किया।"

अपने द्वारा कत्ल किये गये मनुष्यों की खोपड़ियों की मीनार खड़ी करने में बाबर को किस प्रकार पैशाचिक आनन्द प्राप्त होता था इसकी विवेचना करते हुए कर्नल टॉड ने लिखा है[2] कि फतेहपुर सीकरी में राणा सांगा को परास्त करने के बाद "विजय की खुशी में कत्ल किये गये लोगों के सिरों के 'पिरामिड' खड़े किये गये तथा एक छोटी पहाड़ी पर, जो युद्ध के मैदान से दिखलाई पड़ती थी, खोपड़ियों की एक मीनार खड़ी की गई तथा विजेता बाबर ने 'गाजी' की उपाधि धारण की।"

विंसेंट स्मिथ द्वारा उद्धृत असफ खाँ के जेवनार के सम्बन्ध में टेरी का कथन है कि "तैमूर वंश के शाही खानदान में व्याप्त दोषों में सर्वप्रधान दोष अत्यधिक शराबखोरी था। शराबखोरी का यही दोष अन्य मुस्लिम शाही खानदानों में भी था। स्वयं बाबर सबसे ज्यादा शराबखोर था।"

बाबर ने स्वयं यह आत्मोक्ति की है[3] कि वह पक्का लौण्डेबाज़ था। अतः प्राप्त विवरणों में उल्लेखित तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अकबर का पितामह तथा भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य की नींव डालने वाला बाबर एक जंगली, बर्बर पशु से अधिक अच्छा नहीं था।

उसकी संस्मरणिका में अनेक कुकृत्यों एवं बर्बरताओं की आत्मस्वीकृतियाँ प्राप्त हैं। हम यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना उचित समझते हैं।

---

१. अकबर, जे० एम० शेलट, पृष्ठ १०।

२. एनल्स् एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, कर्नल जेम्स टॉड, भाग १, पृष्ठ २४६।

३. 'अकबर : दी ग्रेट मुगल', विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ २६४। जहीरुद्दीन मोहम्मद बाबर—संस्मरणिका, अनुवादक—जॉन लीडन एवं विलियम रस्किन। भाष्यकार—सर लूकसकिंग, दो भागों में, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १६२१।

उसकी संस्मरणिका में एक स्थान पर लिखा है—[१] "हमने काफी संख्या में कैदी बनाये। ('तम्बूल' के विरुद्ध लड़ाई जीतने के बाद) मैंने आदेश दिया कि उनके सिर काट लिये जाएँ। यह मेरी पहली लड़ाई थी।[२] जो लोग ('कोहद' तथा 'हाँगू' के बीच हुई लड़ाई में आत्मसमर्पण करने वाले अफगान) जीवित उपस्थित किये गये थे, उनके सिर काट लेने के आदेश जारी किये गये। उनकी खोपड़ियों की एक मीनार खड़ी की गई।[३] हाँगू में भी मेरे सैनिक जत्थों ने सौ या दो सौ विद्रोही अफगानों के सिर काट लिये। यहाँ भी कटे सिरों की मीनार खड़ी की गई।[४] 'संगेर' (किवि जाति का दुर्ग) पर अधिकार स्थापित किया गया। मेरी सेना के जिन लोगों ने अपने पदों के अनुरूप्र कार्य नहीं किया (अर्थात् मारकाट नहीं की, खून नहीं बहाया), उनकी नाक काट ली गई।[५] 'बन्नू' नामक स्थान पर कटे सिरों का एक समूह एकत्रित किया गया।···शत्रुओं के सैनिक जत्थे हमें लड़ने के लिए उकसा रहे थे। इन अफगानों की कटी खोपड़ियों की एक मीनार खड़ी की गई। इस प्रकार 'बजौर' के हमले की सफलता से मुझे संतोष हुआ···युद्ध के मैदान पर मैंने काटी गई खोपड़ियों के समूह से एक स्तम्भ खड़ा करने का आदेश दिया।[६] 'पंजकोरा' को लूटने के लिए हिन्दल बेग के नेतृत्व में मैंने एक सेना भेजी। 'पंजकोरा' में सेना पहुँचने से पहले ही वहाँ के निवासी भाग खड़े हुए।[७] 'सैयदपुर' के निवासियों को, जिन्होंने विरोध किया, काट फेंका गया। उनकी पत्नियों तथा बच्चों को कैदी बना लिया गया तथा उनकी समूची सम्पत्ति लूट ली गई।[८] इब्राहिम लोधी के अफगान सेना-पतियों को पीछे खदेड़ दिया गया तथा लाहौर बाजार एवं शहर को लूटा

---

१. पूर्वोक्त, भाग १, पृष्ठ ११८,
२. पृष्ठ २५६।
३. पृष्ठ २५७।
४. पृष्ठ २५८।
५. पूर्वोक्त, भाग २, पृष्ठ ३८।
६. पृष्ठ ८३।
७. पृष्ठ १४९।
८. पृष्ठ १५१।

गया एवं आग लगा दी गई। जब मैं पहली बार आगरा पहुँचा तो यह नजर आया कि वहाँ के लोगों तथा मेरे आदमियों के बीच प्रबल पारस्परिक वैमनस्य, घृणा एवं शत्रुता की भावना थी, गाँव के किसानों तथा सैनिकों ने मेरे आदमियों का बहिष्कार कर दिया तथा भाग खड़े हुए। बाद में दिल्ली तथा आगरा को छोड़कर प्रत्येक स्थान के लोगों ने मेरी आज्ञाओं को मानने से इन्कार कर दिया।[1] जब मैं आगरा पहुँचा, गर्मी के दिन थे, मेरे डर के कारण वहाँ के सभी निवासी भाग खड़े हुए। गाँव वालों ने, हमसे घृणा तथा शत्रुता के कारण विद्रोह कर दिया तथा लूटमार एवं चोरी शुरू कर दी। मार्ग अवरुद्ध हो गये। कासिमी इस समय एक छोटी फौज के साथ 'बयाना' की ओर आगे बढ़ रहा था। उसने कुछ लोगों के सिर काट डाले तथा उन्हें लेकर मेरे पास पहुँचा। मुल्ला तुर्क अली को आदेश दिया गया था कि वह 'मेवात' को लूटने तथा उसे ध्वस्त करने की प्रत्येक सम्भावना का निरीक्षण करे। मगफूर दीवान को भी इसी प्रकार के आदेश देते हुए कहा गया कि वह कुछ दूरस्थ सीमावर्ती प्रदेशों पर हमला करने, गाँवों को नष्ट करने तथा वहाँ के निवासियों को बन्दी बनाने के लिए आगे बढ़े।"

बाबर की क्रूरता एवं बर्बरता का अध्ययन करने के पश्चात् अकबर के पिता हुमायूँ तक जब हम पहुंचते हैं तो यह पाते हैं कि बाबर की अपेक्षा हुमायूँ और भी अधिक क्रूर और भ्रष्ट था, क्योंकि भारतवर्ष में अपने पैर जमाने, यहाँ लूट-खसोट करने तथा हमला करने के लिए बाबर ने श्रम-संघर्ष किया था तथा स्वयं अपनों का भी खून बहाया था किन्तु हुमायूँ को खून की दीवार पर खड़ी मुगल सल्तनत एवं भारत के निवासियों के मांस के लोथड़ों में लिपटी निर्जीव पुष्कल धनराशि पैतृक रूप में प्राप्त हुई थी।

विंसेंट स्मिथ[2] ने लिखा है—"हुमायूँ अफीम खाने का आदी था।" हुमायूँ एक डाकू तथा लूट-खसोट करने वाला भी था। इस संदर्भ में विंसेंट स्मिथ ने हुमायूँ के विश्वसनीय नौकर जौहर के कथन का उद्धरण प्रस्तुत किया है। जौहर ने लिखा है कि "जब अकबर का जन्म हुआ, सल्तनत

---

१. भाग २, पृष्ठ २४७।
२. 'अकबर : दी ग्रेट मुगल', पृष्ठ ६।

विहीन बादशाह अपनी अत्यधिक गरीबी के कारण परेशान हो गया कि उक्त अवसर का जश्न कैसे मनाया जाये ? बादशाह ने तब आदेश दिया कि (जौहर उन उपकरणों को लाये जो उसे धरोहर के तौर पर रखने के लिए सौंपे गये थे।) तदनुसार मैं (जौहर) गया तथा दो सौ 'शहरुक्खी' (चाँदी के सिक्के), चाँदी का कंगन एवं कस्तूरी का एक कोया ले आया। सिक्कों तथा कंगन के सम्बन्ध में उसने (हुमायूँ) आदेश दिया कि उन्हें जिससे लिया गया है उसे लौटा दिया जाए।" इस उद्धरण के अध्ययन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि अकबर के जन्म के कुछ समय पूर्व उसके बाप हुमायूँ ने डाका-ज़नी का काम किया था तथा किसी व्यक्ति से दो सौ सिक्के तथा चाँदी का एक कंगन उसने लूटा था। उसके लिए यह प्रसन्नता का विषय था कि उस पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। इसके साथ ही उसे डर लगा कि कहीं उसकी लूट का कोई दुष्परिणाम उसके नवजात बेटे पर न पड़े। किसी प्रकार का कहर न टूट पड़े, अतः हुमायूँ ने लूटे गए माल को उसके स्वामी को लौटा देने का आदेश दिया।

भारतवर्ष के मुसलमान बादशाहों के लिए गद्दी प्राप्त करने के लिए, जैसी कि यह एक सामान्य-सी बात थी, हुमायूँ को भी अपने दिवंगत पिता का सिंहासन प्राप्त करने के लिए अपने ही भाइयों एवं रिश्तेदारों से खून-खराबी एवं लड़ाई करनी पड़ी। एक के बाद दूसरी लड़ाई करने के बाद हुमायूँ को जब अपने बड़े भाई 'कामरान' को गिरफ्तार करने में सफलता मिली तो हुमायूँ ने कामरान को पाशविक यातनायें दीं। विंसेंट स्मिथ ने लिखा है[1]—"कामरान अत्यन्त तंगी तथा परेशानी का जीवन व्यतीत कर रहा था। उसे अवसर दिया गया कि वह एक औरत का वेष बदलकर भाग जाए किन्तु गिरफ्तार कर लिया गया तथा हुमायूँ के सामने उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा। हुमायूँ ने निश्चय किया कि कामरान को दण्ड देने के लिए उसे अंधा करना पर्याप्त होगा। इस सम्बन्ध में जौहर का विवरण विस्तारपूर्ण हैं। उसके वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि हुमायूँ को अपने भाई के दुःखों की कुछ भी चिन्ता न थी।'''एक व्यक्ति कामरान के घुटनों पर बैठाया गया। उसे खींचकर तम्बू से बाहर लाया गया तथा उसकी

१. अकबरः दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ १९।

आँखों में एक बर्छी घुसेड़ दी गयी।...उसकी आँखों में फिर नींबू का रस तथा नमक डाला गया।...कुछ समय बाद उसे घोड़े की पीठ पर बिठा दिया गया।[1] हुमायूँ द्वारा उसके परिवार को यातनाएँ नहीं दी गईं।"

ऊपर उद्धृत प्रसंग का विश्लेषण करते हुए कोई भी यह सोच सकता है कि हुमायूँ जब अपने भाई को इतनी कठोर यातना दे सकता था तो दूसरों पर वह कितना अन्याय और अत्याचार नहीं करता होगा ! अपने सगे भाई के प्रति ऐसा रवैय्या था तो दूसरों के लिए तो वह साक्षात् यमदूत रहा होगा। यह प्रसंग कि हुमायूँ ने अपने भाई की पत्नी को कोई यातना नहीं दी, सिद्ध करता है कि उसके हाथ जो भी औरत आती थी, उसे वह अत्याचारपूर्वक भ्रष्ट करता था तथा यातनाएँ देता था। भारतवर्ष के मुसलमान बादशाह इतने पतित थे कि उन्हें नैतिक ज्ञान तो था ही नहीं। वे हर किसी की पत्नी को इसलिए छोड़ देते थे कि उनका उपयोग हरम के लिए किया जा सके।

यह प्रश्न भी उभरकर सामने आता है कि हुमायूँ ने जब अपने भाई तक को नहीं छोड़ा तब इस बात के क्या प्रमाण हैं कि उसने अपने भाई की पत्नी को कोई यातना नहीं दी होगी ? स्पष्ट है कि हुमायूँ इतना निर्मम और निष्ठुर था कि उसे अपने रिश्तेदारों पर भी दया नहीं आती थी। अपने भाई की पत्नी के प्रति उसकी किंचित् दया प्रदर्शित करने का जो उल्लेख प्राप्त होता है, वह मात्र चाटुकारिता है।

बाबर ने खुद अपने बड़े बेटे हुमायूँ का मूल्यांकन करते हुए उल्लेख किया है कि वह अपने भाई का कातिल था। २६ जून, १५२६ को बाबर ने हुमायूँ से विनती की थी कि यदि वह बादशाह बने तो अपने भाई को कत्ल न करे।[2] तरुण हुमायूँ की धन-लिप्सा, बर्बरता तथा लड़ाइयों के सम्बन्ध में स्वयं बाबर ने अपनी संस्मरणिका में संकेत दिया है। बाबर ने लिखा है—"हुमायूँ दिल्ली गया हुआ था। वहाँ उसने कुछ मकानों को खुलवाया, जहाँ खजाने थे। फौज की शक्ति द्वारा उसने वहाँ अपना कब्जा जमाया।

१. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ २०।
२. क्रिसेन्ट इन इंडिया, पृष्ठ २३१, लेखक श्री एस० आर० शर्मा, हिन्द किताब लि०, बम्बई-१, १९६६।

निश्चय ही हुमायूँ से इस आचरण की मुझे अपेक्षा नहीं थी। बुरी तरह घायल होने के कारण मैंने उसे कुछ पत्र लिखे, जिनमें उसकी निन्दा की गई थी तथा उसके कलंक की चर्चा थी।"[1]

हुमायूँ इतना अधिक स्वेच्छाचारी तथा दंभी था कि उसने एक अपमान-जनक धर्मविधि लागू कर दी, जिसका परिपालन उसके द्वारा शासित संपूर्ण जनता को बलात् करना पड़ता था। मुस्लिम सरकारी इतिहास-लेखक बदायूँनी ने उल्लेख किया है कि "वह (हुमायूँ) जब आगरा पहुँचा, उसने धर्म के द्वारा धर्म-विधि कोर्निस करने का एक नया-नियम वहाँ की जनता पर लागू कर दिया।"[2] उक्त नियम के अनुसार कोर्निस करते समय यह कहा जाता था कि जनता हुमायूँ के सामने झुकते हुए जमीन चूमे।

विंसेंट स्मिथ का कथन है कि—"हुमायूँ अफीम खाने का आदी था।"[3] श्री शेलट ने लिखा है[4] कि आगरे में "कामरान सहसा ही बीमार पड़ गया तथा उसने यह शंका व्यक्त की कि उसे बाबर की पत्नियों द्वारा हुमायूँ के उकसाए जाने पर ज़हर दिया गया था।[5] बदखशान में करीब १ वर्ष व्यतीत करने के बाद कार्य में शिथिलता बतरनी शुरू कर दी। तथा अपने पिता की अनुमति प्राप्त किये बिना ही वह सहसा भारत लौट आया। उसे जो काम सौंपा गया था उसकी उसने उपेक्षा की। हुमायूँ के इस आचरण से अप्रसन्न होकर बाबर ने उसे उसकी जागीर सम्भल भेज दिया।[6] गुजरात में चम्पा-नेर को विजित करने के पश्चात् हुमायूँ ने, जैसाकि वह अन्य कई अवसरों पर कर चुका था, जश्न मनाना तथा कर्तव्यों के प्रति उपेक्षा तथा आलस्य बरतना आरम्भ कर दिया।"

१. बाबर की संस्मरिणका, भाग २, पृष्ठ ३१५।
२. "मुन्तखबुत-तवारीख"—अब्दुल कादिर बिन मुलुक शाह उर्फ अल् बदायूँनी, मूल फारसी से जार्ज एस० ए० रेंकिंग द्वारा अनूदित एवं संपादित, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता द्वारा बेप्टिस्ट मिशन प्रेस (१८९८) में मुद्रित।
३. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, १९५८, पृष्ठ ९।
४. अकबर, जे० एम० शेलट, पृष्ठ ३२।
५. वही, पृष्ठ २०।
६. वही, पृष्ठ २४।

अकबर का वही पिता हुमायूँ एक क्रूर, भ्रष्ट, दुर्गुणी, कामी तथा शराबखोर बादशाह था। श्री शेलट ने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है कि—"आगरा लौटने के बाद हुमायूँ ने अत्यधिक मात्रा में अफीम लेना शुरू कर दिया। जनहित के कार्य उसके द्वारा उपेक्षित थे।"[1] मुगल फौज ने जब 'चुनार' के दुर्ग में प्रवेश किया, रूमी खाँ को क्षतिपूर्ति का बर्बरतापूर्ण दंड दिया गया, जिससे हुमायूँ को संतोष हुआ। लगभग ३०० अफगान तोपचियों के हाथ कटवा दिये गये। रूमी खाँ की नियुक्ति कमांडर के रूप में की गई थी, किन्तु ईर्ष्यालु प्रधानों द्वारा उसे जहर दे दिया गया। 'गौर' में अनुत्तरदायित्व का परिचय देते हुए, हुमायूँ ने अनिश्चितकाल के लिए स्वयं को ऐशो-आराम के लिए हरम में बंद कर लिया। उसने अपने आपको प्रत्येक प्रकार की आराम-तलबी तथा ऐय्याशी के प्रवाह में छोड़ दिया।[2] हुमायूँ के प्रति अमीरों के रुष्ट एवं असन्तुष्ट होने के कारण स्पष्ट हैं। सन् १५३८ ई० तक हुमायूँ की चरित्रहीनता, कर्तव्यों के प्रति उसकी उपेक्षा तथा आलस्य, अफीम खाने की आदत तथा अन्य दुष्कृत्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गये थे। अपने दुर्गुणों के कारण वह बदनाम हो चुका था।···यह जानकर कि उसके दोनों भाई हिंदल तथा कामरान उसकी हत्या करने को तैयार हैं, हुमायूँ ने (बंगाल से) आगरे लौटने का निश्चय किया।"

हुमायूँ की कामुकता का एक उदाहरण हमीदा बानू के साथ उसके विवाह के विश्लेषण से प्राप्त होता है। हुमायूँ की आयु ३३ वर्ष थी तथा हमीदा बानू १४ वर्ष की किशोरी थी। हुमायूँ ने उससे बलपूर्वक शादी की थी। यह स्पष्टतः एक नाबालिग लड़की के साथ हुमायूँ द्वारा किये गए बलात्कार का मामला है। हुमायूँ उन दिनों एक भगोड़े का जीवन व्यतीत कर रहा था। भारतवर्ष से पलायन करने को वह मजबूर था। सिंध के रेगिस्तानी इलाकों में लूट-खसोट तथा डाकेज़नी द्वारा अपना जीवन-यापन कर रहा था। ऐसी स्थितियों में 'हुमायूँ अपने भाई हिंदल को देखने आया। हिंदल के हरम में उसने मीर बाबा दोस्त, जो हिंदल का धार्मिक पथ-निर्देशक था, की बेटी हमीदा बानू को देखा। हुमायूँ ने उसका हाथ थामने की

---

१. अकबर, जे० एम० शेलट, पृष्ठ २६।

२. वही, पृष्ठ २६।

इच्छा व्यक्त की। हुमायूँ के साथ शादी करने के प्रस्ताव का स्वयं हमीदा बानू ने विरोध किया। हिंदल ने भी इस शादी का विरोध किया। अंततः सितम्बर १५४१ में हुमायूँ ने २ लाख रुपए देकर हमीदा बानू से शादी कर ली। इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि हुमायूँ ने वस्तुतः बाबा दोस्त की बेटी को धमकी देकर तथा दूसरों से लूटी गई राशि द्वारा घूस देकर खरीदा था।

यह पर्यवेक्षण करने के पश्चात् कि अकबर के समस्त पूर्वज, उसके बाप हुमायूँ से लेकर चंगेज खाँ तथा तैमूरलंग तक क्रूर, बर्बर, कुटिल-खल-कामी एवं शराबखोर थे, अब हम यह विश्लेषण करेंगे कि उसके समस्त उत्तराधिकारी भी पूर्वजों के समान ही विषयासक्त, क्रूर-बर्बर एवं चरित्रहीन थे।

यह तर्क दिया जा सकता है कि यद्यपि अकबर का जन्म एक बर्बर वंश में हुआ था, तथापि किसी दृष्टि से किसी सीमा तक वह उदार था तथा अपने पूर्वजों के समान वह बर्बर और विषयासक्त नहीं था, न ही उसके गुणों का प्रभाव उसके उत्तराधिकारियों पर पड़ने की अपेक्षा की जा सकती थी, जिसके कारण उत्तराधिकारी बर्बर ही रहे। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अकबर के पूर्वज तथा उत्तराधिकारी तो बर्बर तथा विषयासक्त थे, अकेले अकबर चरित्रवान एवं उदार था। उसके पूर्वजों के दुर्गुणों का कोई दुष्प्रभाव उस पर नहीं था, न ही उसके सद्गुणों का कोई अच्छा प्रभाव उसके उत्तराधिकारियों पर पड़ सका। तर्क के रूप में इसे स्वीकार करते हुए भी अकबर के बेटे जहाँगीर की क्रूरता तथा बर्बरता प्रतिभासित है। अन्य मुसलमान बादशाहों की भाँति जहाँगीर भी एक कामी और कुटिल बादशाह था। श्री शेलट महोदय का कथन है,[1] "सलीम (भावी सम्राट् जहाँगीर) अत्यधिक मात्रा में अफीम खाने का आदी था। वह शराब भी पीता था तथा नशे में बर्बरतापूर्ण सज़ायें दिया करता था। उसने अपने वृत्त-लेखक की जीवित ही अपने सामने चमड़ी उधड़वा दी तथा एक महिला परिचारिका, जिसके साथ उक्त लेखक का प्रणय-सम्बन्ध था, का सतीत्व-हरण करवाते हुए उसे गर्भ-विहीन करवा दिया।"[2]

१. अकबर, जे० एम० शेलट, पृष्ठ ३५९।

२. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ १९१।

यदि अकबर महान् और उदार होता तो उसका बेटा जहाँगीर उसकी हत्या करने का इच्छुक न होता ! अपने पिता अकबर की हत्या करने की जहाँगीर ने कई बार चेष्टा की थी। उसकी हत्या करने की एक चेष्टा का उल्लेख विंसेंट स्मिथ ने किया था। स्मिथ महोदय का कथन है कि "सन् १५९१ ई० के आरम्भिक महीनों में जब अकबर उदर-शूल की बीमारी से पीड़ित था, उसने शंका व्यक्त की थी कि उसके बड़े बेटे जहाँगीर ने उसे जहर दिया था।" इस वर्णन के विश्लेषण से जहाँगीर की धूर्तता का पता तो चलता ही है, साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि अकबर अपने समय में सर्वाधिक घृणित व्यक्ति था।

अपने पिता अकबर को ज़हर देने में जब जहाँगीर को सफलता नहीं मिली, उसने अकबर को गिरफ्तार कर हत्या करने का प्रयास किया। विंसेंट स्मिथ महोदय ने उल्लेख किया है "(जहाँगीर द्वारा विद्रोह किये जाने के विचार से) अकबर सम्भवतः सन् १६०१ ई० के आरम्भ में आगरा लौटा। सलीम जब विद्रोह कर रहा था, उसने पुर्तगालियों तथा उनके तोप-बारूद की सहायता अपने पिता अकबर के विरुद्ध प्राप्त कर ली।"[1] अबुल फ़जल के सिर पर नेज़े से प्रहार किया गया तथा उसका सिर काट लिया गया। कटे सिर को इलाहाबाद भेजा गया, जहाँ सलीम ने उसे दूषित प्रसन्नता के साथ प्राप्त किया। उस कटे सिर के साथ उसने अपमानजनक व्यवहार का आचरण किया।[2] इलाहाबाद में शाहजादे सलीम का दरबार सुरक्षापूर्वक व्यवस्थित हो गया, पारिवारिक निरीक्षण के कार्यों से सर्वथा पृथक्, उसने निर्बाध रूप में क्रूरता बरतनी शुरू कर दी। दुर्गुणों के प्रवाह में वह बह चला। उसने अफीम लेना शुरू कर दिया। साथ-ही-साथ शराबखोरी भी वह करता था। नशा करने की उसकी आदत इस सीमा तक बढ़ी कि उसका जन्मजात भयानक स्वभाव अनियन्त्रित एवं असंयमित हो गया। सामान्य दोषों एवं अपराधों के लिए सर्वाधिक भयानक सज़ायें दी जाने लगीं। माफी आदि पर कभी सोचा भी नहीं जाता था तथा उसके अनुचर एवं सहायक भय दिखाकर मौन कर दिये जाते थे।...एक वृत्त-लेखक पर शाहजादे की

१. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ २२२।
२. वही, पृष्ठ २२७।

जिन्दगी के विरुद्ध षड्यन्त्र का दोष लगाया गया तथा जीवित ही उसकी खाल उधेड़ ली गई। सलीम शांतिपूर्वक उक्त लेखक की खाल उधेड़ते समय की यातना एवं पीड़ा को देखता रहा।[1] इलाहाबाद में उसकी क्रूरता एवं स्वेच्छाचारिता पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी तथा अपनी शराबखोरी के लिए वह कुख्यात हो गया था। यह निश्चित है कि सलीम (जहाँगीर) ने अपने पिता की मृत्यु की कामना की थी।

सलीम (जहाँगीर) के सम्बन्ध में डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव[2] लिखते हैं—२० वर्ष की आयु से ही शनैः-शनैः जहाँगीर ने अपनी प्रभुसत्ता पर ज़ोर देना शुरू कर दिया।...बाद में छिपे तौर पर उसने अवज्ञाकारिता का परिचय देना आरम्भ कर दिया तथा कुछ और समय बाद वह खुले विद्रोह करने लगा।...अकबर बीमार पड़ा था तथा विमूर्छा की स्थिति में उसके मुँह से ये अस्फुट शब्द निकले थे[3]—

दबाबा शेखुजी, (शाहज़ादा सलीम उर्फ़ जहाँगीर) चूँकि मेरे बाद सारी सल्तनत तुम्हें प्राप्त होगी, तुमने क्यों मुझपर इस प्रकार का आक्रमण किया। मेरा जीवन लेने के लिए किसी प्रकार के अन्याय की आवश्यकता नहीं। यदि तुमने मुझसे कहा होता तो मैं ये सब तुम्हें दे देता।[4]

उसी वर्ष सलीम ने दूसरी बार अपनी अवज्ञाकारिता का स्पष्ट परिचय दिया। सन् १५६८ ई० में अकबर ने सलीम को आज्ञा दी कि वह 'ट्रान्जोक्सेनिया' पर आक्रमण करे, किन्तु सलीम ने साफ इन्कार कर दिया। कुछ समय पश्चात् सलीम से कहा गया कि वह दक्षिण में शाही फौज को सम्भाले किन्तु कूच करने के समय सलीम अनुपस्थित रहा।[5] मई, १५८६ से लेकर मई, १५६८ के दौरान अकबर सलीम से प्रायः विरक्त हो चुका

१. अकबर : दी ग्रेट मुगल, पृष्ठ २३२।
२. अकबर : दी ग्रेट, भाग १, पालिटिकल हिस्ट्री, १५४२-१६०५, डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ४५७ (प्रकाशक शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० प्रा० लि०, आगरा)
३. वही, पृष्ठ ४५८-४५६।
४. वही, पृष्ठ ४६१।
५. वही, पृष्ठ ४६२।

था। सलीम का स्वत्व उससे अलग कर दिया था। सलीम के मस्तिष्क में विद्रोह का बीजारोपण हुआ।...जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ती गई, वह अधिकाधिक कामासक्त होता गया, उसकी शराबखोरी बढ़ती ही गई तथा अन्य अनेक दुर्गुण उसमें आते गये। यद्यपि उसका हरम बहुत बड़ा था किन्तु फिर भी जून १५९६ ई० में वह जैनखाँ कोका की बेटी के प्रेम में बुरी तरह फँस गया। हो सकता है, शाहजादे के प्रारम्भिक जीवन की मेहरुन्निसा (भावी नूरजहाँ) तथा अनारकली के साथ प्रेम की गाथाएँ निःसार नहीं थीं।[1] मेवाड़ के राणा के विरुद्ध जब सलीम को फौज लेकर भेजा गया, उसने अजमेर में बुरे लोगों के साथ शराबखोरी एवं काम-लिप्सा की पूर्ति में बहुत अधिक समय व्यतीत किया। अकबर की अनुपस्थिति का फायदा उठाते हुए सलीम ने खुला विद्रोह करने का निश्चय किया। उसने शीघ्रतापूर्वक अजमेर से आगरे की ओर कूच किया। उसके अधिकार में एक करोड़ की राशि तथा शाहबाज खाँ कुबू जैसे सहायक थे। इलाहाबाद लौटने के बाद सलीम पुनः अपनी पुरानी आदतों के अनुसार शराबखोरी तथा काम-लिप्सा की पूर्ति में तल्लीन हो गया। अयोग्य तथा बुरे लोगों से वह आठों पहर घिरा रहता था तथा चापलूसी पसन्द करता था। अपनी इन बुराइयों तथा दुर्गुणों के लिए वह कई वर्षों से बदनाम था किन्तु अब उसकी ये बुराइयाँ तथा दुर्गुण चरमसीमा पर पहुँच चुके थे। हर समय शराब के नशे में वह इस कदर चूर रहने लगा कि एक ऐसी भी स्थिति आई कि शराब से उसे नशा ही न होता था। अतः शराब के साथ अफीम भी खाना शुरू कर दिया। १८ वर्ष की आयु से ही उसने मदिरापान करना आरम्भ किया था तथा इस समय तक वह कभी-कभी २० प्याले तक शराब पीने लगा था। शराब तथा अफीम के नशे में वह कभी-कभी सामान्य अपराधों के लिए मृत्युदण्ड तक दे देता था। एक दिन एक वृत्त-लेखक को, जो शहजादे सलीम के अत्यधिक मदिरापान के सम्बन्ध में अकबर को सूचना देने वाला था, उसने अपने सामने जीवित अवस्था में ही उसकी चमड़ी उधेड़ लेने की सजा दी। एक लड़के को उसने बधिया (पुंसत्व-हरण) करवा दिया तथा एक घरेलू नौकर को उसने इतना पिटवाया कि उसकी मृत्यु हो गई।

---

१. अकबर : दी ग्रेट, भाग १, पृष्ठ ४६४।

न केवल अकबर का बेटा जहाँगीर, अपितु उसका पौत्र शाहजहाँ, जो जहाँगीर के बाद बादशाह बना, अपने सभी पूर्वजों, जहाँगीर एवं अकबर से लेकर चगेज खाँ एवं तैमूरलंग के समान ही क्रूर, बर्बर, भ्रष्ट और निर्मम था।

मौलवी मोइनुद्दीन अहमद ने लिखा है—"यूरोपीय इतिहासकार कभी-कभी शाहजहाँ पर हठधर्मिता का आरोप लगाते हैं। उसके संकुचित मस्तिष्क होने का मूल कारण उसकी पत्नी मुमताज थी। वह जो कुछ भी करता था, मुमताज के उकसाने पर।"[1]

श्री ई० बी० हवेल का कथन है—"शाहजहाँ द्वारा जेसूइट लोगों को कठोर दण्ड दिये गये। अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही मुमताज महल ने, जो ईसाइयों की जानी दुश्मन थी, शाहजहाँ को हुगली में बस रहे पुर्तगालियों पर हमला करने को उकसाया।"[2]

एक अन्य ऐतिहासिक कृति में यह उल्लेख प्राप्त होता है[3]—"शाहजहाँ ने कई बार साधुओं तथा धार्मिक पादरियों को आमंत्रित किया कि वे मुस्लिम धर्म को स्वीकार कर लें किन्तु जब उन्होंने शाहजहाँ के प्रस्ताव को अस्वीकार किया तो शाहजहाँ अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा तथा तत्क्षण ही उसने आदेश दिया कि दूसरे दिन ही उन पादरियों एवं साधुओं को ऐसी कठोर यातना दी जाए, जिसका कोई निदान नहीं था—अर्थात् उन्हें हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया गया।"

कीने का कथन है।[4]—"शाहजहाँ ने मुगल बादशाहों के स्वेच्छाचारी

१. दी ताज एण्ड इट्स एन्वायरमेण्ट, मौलवी मोइनुद्दीन अहमद, पृष्ठ ८, द्वि० सं०, आर० जी० बंसल एण्ड को०, ३३९ कसेरा बाजार, आगरा।
२. दी नाईन्थ सेन्चुरी एण्ड आफ्टर, एक मंथली रिव्यू जेम्स् नोलेस् द्वारा संपादित, पृष्ठ १०४१, ८वाँ भाग, लेख शीर्षक—दी ताज एण्ड इट्स् डिज़ाइनर्स, लेखक—ई० बी० हवेल।
३. दी ट्रांजेक्शन एण्ड आर्केयोलाजिकल सोसायटी ऑफ आगरा, जनवरी से जून, १८७८, पृष्ठ ५-६।
४. कीनज़ हैण्ड बुक फ़ॉर विज़ीटर्स टू आगरा एण्ड इट्स नेबरहुड, पृष्ठ ३८। (ई० ए० डंकन द्वारा पुनर्लिखित और अद्यतन कृत, थैकर्ज हैण्ड बुक आफ हिन्दुस्तान।)

दंभ में सभा का अतिक्रमण कर दिया था तथा वह पहला व्यक्ति था जिसने राजगद्दी की सुरक्षा के लिए सभी संभावित शत्रुओं की हत्या की।" रो' जोकि शाहजहाँ को व्यक्तिगत रूप से जानता था, के मतानुसार शाहजहाँ का स्वभाव हठवादिता से पूर्ण था। वह किसी का कहना नहीं मानता था। उसका स्वभाव अत्यधिक दर्प एवं घृणा का मिश्रण था।

शाहजहाँ के दरबारी लेखक ने उल्लेख किया है[1]—"शाहजहाँ का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया गया कि पूर्ववर्ती शासन काल में 'काफिरों' के नगर बनारस में मूर्तियों से युक्त कई मन्दिरों के निर्माण आरम्भ किये गये किन्तु वे पूर्ण नहीं हो पाए। 'काफिरों' की इच्छा थी कि उन मन्दिरों का निर्माण पूर्ण किया जाए। आस्था के तथाकथित रक्षक शाहजहाँ ने आदेश दिया कि बनारस तथा उसकी सल्तनत के प्रत्येक स्थान के मन्दिरों को भूमिसात् कर दिया जाये। यह सूचना दी गई कि बनारस जिले के इलाहाबाद सूबे में ७६ मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया गया।"

'दौलताबाद' की विजय के संदर्भ में बादशाहनामे के ही लेखक ने लिखा है—"कासिम खाँ तथा कम्बू ४०० ईसाई बंदियों के साथ, जिनमें पुरुष, औरत, जवान और बूढ़े सभी शामिल थे, उनकी उपास्य मूर्तियों सहित आस्था के रक्षक बादशाह के समक्ष उपस्थित हुए। आदेश दिया गया कि मुस्लिम धर्म के सिद्धान्तों की व्याख्या उन बन्दियों के सामने की जाये तथा उनसे कहा जाये कि वे मुस्लिम धर्म को स्वीकार कर लें। कुछ लोगों ने तो मुस्लिम धर्म को स्वीकार कर लिया किन्तु अधिकांश लोगों ने दृढ़तापूर्वक उक्त घृणित प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। उन्हें अमीरों के बीच वितरित कर दिया गया तथा यह निर्देश दिया गया कि उन नीच ईसाई बन्दियों को कठोर बन्धनों में रखा जाये। उनमें से कुछ बंदियों का कारागार में प्राणान्त हो गया। कुछ को यमुना में फेंक दिया गया। यही दुर्गति उनकी उपास्य मूर्तियों की भी हुई। कई मूर्तियाँ यमुना की धारा में बहा दी गई तथा शेष को चकनाचूर कर दिया गया।"

जहाँगीर के समान ही शाहजहाँ का भी सम्पूर्ण शासन-काल क्रूरतापूर्ण

---

१. बादशाहनामा, लेखक मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी, पृष्ठ ३९।

क्रिया-कलापों से परिपूर्ण रहा।[1] शाहजहाँ के बेटे औरंगजेब, जो उसके बाद बादशाह बना, के सम्बन्ध में यह सर्वविदित है कि वह अतिशय धर्मान्ध, क्रूर तथा स्वेच्छाचारी था। औरंगजेब की मृत्यु २७६ वर्ष पूर्व (अर्थात् १७०७ ई०) में हुई थी। यदि औरंगजेब अतिशय क्रूर तथा बर्बर था तो उसका प्रपितामह अकबर कितना क्रूर और बर्बर नहीं रहा होगा ! अतः यह कहा जा सकता है कि अकबर के आगे-पीछे जितनी भी पीढ़ियाँ गुजरीं, विश्लेषण करने पर हम सभी को बर्बरता की ही श्रेणी में पाते हैं। बर्बर मुस्लिम बादशाहों की शृंखला में अकबर भी एक कड़ी था। अपने बर्बर वंश में वह कोई अपवाद या उससे पृथक् नहीं था। यदि अकबर उदार और महान् होता तो कम-से-कम उसके उत्तराधिकारी तो उदार दृष्टिकोण के सदाशयी एवं व्यक्तिगत रूप में आदर एवं सार्वभौमिक-प्रिय पात्र होते। किन्तु ऐसी कोई भी बात परिलक्षित नहीं होती। यह मात्र तार्किक विवेचना है, जिन्होंने अकबर के शासन काल के सम्बन्ध में तथ्यों एवं विवरणों का अध्ययन नहीं किया है किन्तु उसके पूर्वजों एवं उत्तराधिकारियों की क्रूरता के सम्बन्ध में केवल सुना भर है, अकबर की उदारता की चर्चा मात्र से ही उससे सम्बद्ध आडम्बरों एवं गलत तथ्यों को अविलम्ब पहचान लेगा तथा हमारे निष्कर्षों का समर्थन करेगा।

अकबर की क्रूरता एवं बर्बरता के सम्बन्ध में प्रमाण देने से पूर्व हम उसके समकालीनों के चरित्र-आचरण के स्तर पर प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं। यह एक सामान्य-सा विचारणीय तथ्य है कि अकबर, जो एक बादशाह था तथा जिसके हाथों में सल्तनत की सर्वोच्च शक्ति एवं सत्ता थी, यदि उदार और महान् होता तो अपने समकालीनों को धृष्टतापूर्ण कृत्य प्रतिपादित करने की अनुमति वह कदापि न देता। वस्तुतः उसके सम-

---

१. शाहजहाँ की बर्बरता की विशद व्याख्या हमने 'ताजमहल एक हिन्दू राजभवन है' शीर्षक पुस्तक में की है। उक्त पुस्तक में हमने इस बात के भी प्रमाण प्रस्तुत किये हैं कि शाहजहाँ की कामुकता इस सीमा तक पहुँच गई थी कि उसने अपनी ही बेटी जहाँआरा तक को नहीं छोड़ा। जहाँआरा के साथ शाहजहाँ के यौन सम्बन्ध थे। पाठक स्वयं कल्पना करें कि शाहजहाँ किस हद तक चरित्रहीन रहा होगा !

कालीन सुसंस्कृत एवं सदाशय व्यक्ति होते। किन्तु यथार्थ के प्रकाश में हम देखते हैं कि उसके समकालीन जंगली भेड़ों एवं तेंदुओं की भाँति क्रूर एवं बर्बर थे। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित प्रसंग ध्यान देने योग्य हैं—

"गुजरात के भूतपूर्व अधिशासक चंगेज खाँ की माँ ने इस समय (१५७३) अकबर से शिकायत की कि जुझार खाँ हब्शी ने उसके बेटे को मरवा डाला।"[1]

एक वरिष्ठ दरबारी अबुल माली ने, "जो काबुल की ओर भागा था, मह गच (अकबर के सौतेले भाई के शाही खानदान की एक औरत) को हुमायूँ (अकबर का पिता) के साथ पहले के मित्रतापूर्ण सम्बन्धों की याद दिलाते हुए पत्र लिखा। उसने उसका स्वागत किया तथा अपनी पुत्री फखरुन्निसा की शादी उसके साथ कर दी। बाद में अपनी सास को अपने मार्ग में बाधा बनते देखकर उसने छुरा भौंककर उसकी हत्या कर दी।"

"अकबर के चाचा कामरान ने अपने विरोधियों पर राक्षसी अनाचार किये तथा उन्हें पैशाचिक यातनायें दीं। उसने औरतों तथा बच्चों तक को नहीं छोड़ा।"[2]

ऊपर प्रस्तुत उदाहरण पाठकों को आश्वस्त करने के लिए पर्याप्त होंगे कि अकबर के पूर्व अथवा बाद या उसके शासन काल के दौरान उसका सम्पूर्ण वातावरण हत्याओं, नर-संहारों, षड्यन्त्रों, व्यभिचारों एवं लूट-खसोट की घृणित घटनाओं से धूम्राच्छादित था। अकबर के ५० वर्षों के शासनकाल में मध्ययुगीन मुगल शासन के दूषित एवं गर्हणीय वातावरण में किसी भी प्रकार परिवर्तन व सुधार नहीं हुआ। यदि अकबर महान् व उदार होता तो लोग उसके युग में, उसके पूर्व अथवा बाद के युग के जीवन में स्पष्टतः अन्तर देखते। किन्तु ऐतिहासिक घटनाओं में उसके बाद तथा उसके शासनकाल के दौरान की बर्बरता एवं क्रूरता में कोई अन्तर अथवा

१. सन् १६१२ तक भारतवर्ष में मुस्लिम प्रभुसत्ता के उत्थान का इतिहास, मोहम्मद कासिम फरिश्ता द्वारा लिखित, पृष्ठ १४७। मूल फ़ारसी से जॉन ब्रिग्स द्वारा अनूदित, द्वि० भा०, एस० के० डे, ५९-ए, श्याम बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता-४ द्वारा १९६६ में पुनर्मुद्रित।

२. अकबर, एम० जे० शेलट, पृष्ठ ८८।

परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता। चूँकि अकबर का प्रपौत्र औरंगजेब क्रूरता और बर्बरता का मूर्तिमंत प्रतीक था, अतः तार्किक विवेचन मात्र से ही यह सिद्ध होता है कि अकबर भी औरंगजेब के ही समान सद्गुण सम्पन्न व्यक्ति होने सम्बन्धी तथ्य से सर्वथा विपरीत एक अत्यन्त घृणित बादशाह था तथा वह औरंगजेब से भी अधिक धर्मान्ध, क्रूर और बर्बर रहा होगा, क्योंकि अकबर औरंगजेब से १०० वर्ष पूर्व के बर्बर युग में था। अतः औरंगजेब के युग में जितनी क्रूरता एवं पाशविकता रही होगी, अकबर के युग में उससे भी अधिक क्रूरता एवं बर्बरता रही होगी। ऐसा कोई कारण दिखलाई नहीं देता कि अकबर के युग में कोई परिवर्तन रहा हो।

अगले प्रकरण में हम अकबर, उसके सेनापतियों एवं अन्य दरबारियों की क्रूरता एवं बर्बरता पर प्रकाश डालेंगे तथा यह सिद्ध करेंगे कि तार्किक विवेचना एवं सांसारिक अनुभव-ज्ञान द्वारा हमने जो निष्कर्ष निकाले हैं उन्हें ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण समर्थन प्राप्त होता है। अकबर की कल्पित महानता एवं उदारता सम्बन्धी विचार भारतीय इतिहास में इसलिए जड़बद्ध हो गये हैं, क्योंकि एक हज़ार वर्षों के विदेशी शासन-काल के दौरान इतिहास-लेखकों एवं अध्यापकों को राजनीतिक औचित्य का ध्यान रखते हुए इस रूप में प्रशिक्षित किया गया है कि वे स्वतन्त्र तार्किक ज्ञान तथा साक्ष्य के विधान का समुचित उपयोग न कर सकें। भारतीय इतिहास के विद्वानों को, जो परम्परा की घिसी-पिटी लीक पर चलते रहे, आश्चर्य होता है जब यह कहा जाता है कि किसी भी ऐतिहासिक सिद्धान्त, लेख-प्रपत्र, रिकार्ड, सरकारी इतिवृत्त, शिलालेख तथा पुरातत्त्व सम्बन्धी शोध की सत्यता के परीक्षण के लिए तर्क-ज्ञान तथा सामयिक साक्ष्य के विधान का सर्वोत्तम मानदण्ड के रूप में उपयोग किया जाना चाहिए। विभिन्न विभागों में कार्य करते हुए वे मात्र भ्रांतियों का ही आधार ग्रहण करते रहे। उनके मस्तिष्क में कल्पित घटनायें ही घर कर गई हैं तथा उनके मन में वैधानिक एवं तार्किक चिन्तन का अंकुरण ही नहीं होता।

: ४ :

अकबर की क्रूरता एवं बर्बरता

अकबर अपने पूर्वजों, उत्तराधिकारी बादशाहों एवं समकालीन सुल्तानों से किसी भी क्षेत्र में कम क्रूर एवं बर्बर नहीं था। उसकी धूर्तता, छल-प्रपंचों एवं क्रूर-बर्बर प्रकृति तथा भारतवर्ष के एक विस्तृत क्षेत्र में व्याप्त उसकी निरंकुश प्रभुसत्ता एवं उसके अपरिमित शक्ति-प्रयोग आदि पर विचार करते हुए यदि किसी तथ्य की सिद्धि होती है तो वह यह है कि भारतवर्ष में शासन करने वाले मुस्लिम बादशाहों की परम्परा में संसार के इतिहास में वह सर्वाधिक स्वेच्छाचारी, क्रूर, बर्बर एवं कामासक्त बादशाह ठहरता है।

कर्नल टॉड का कथन है[1]—'(वीरोचित जीवन व्यतीत करने वाली) सैन्य जातियों (राजपूत अथवा क्षत्रिय) की पीढ़ियाँ उसकी तलवार से समूल नष्ट हो गईं। उसकी विजयों के पूर्व जो वैभव परिव्याप्त था, समाप्त हो गया। शहाबुद्दीन, अलाउद्दीन तथा अन्य विध्वंसक नर-पिशाचों की श्रेणी में ही वह परिगणित होता है। जैसाकि प्रत्येक मुस्लिम दावे के सम्बन्ध में देखा जाता है, उसने भी एकलिंगजी (राजपूत योद्धाओं का देवता) की वेदियों को नष्ट-भ्रष्ट कर मुस्लिम धर्म के पाक ग्रंथ कुरान के उपदेश के लिए प्रवचन-मंचों का निर्माण करवाया।'

उन्न लोगों ने जो जातिवाद के समर्थक रहे या जिन्हें भार[illegible] विदेशी शासन काल के दौरान शैक्षिक अथवा अन्य किसी प्रकार का संरक्षण

---

१. एन्ल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, लेखक कर्नल जेम्स टॉड, पृष्ठ २५६, भाग १, दो भागों में, सन् १९५७ ई० में पुनः मुद्रित, रूटलेज एण्ड केगन पॉल लि०, ब्राडले हाउस, ६८-७४ कार्टर लेन, लन्दन ई-सी-४।

प्राप्त होता रहा, कभी तो सन्दर्भों को लेकर और कभी संदर्भ बिना स्थितियों की चर्चा करते हुए अकबर के चरित्र की उदारता तथा हृदय की महानता प्राचीन भारत के महानतम सम्राट् अशोक से साथ तुलना करने की प्रवृत्ति दिखलाई है। इस प्रकार के मतों के औचित्य का यथातथ्य मूल्यांकन करते हुए विंसेंट स्मिथ ने यह ठीक ही लिखा है कि—'कलिंग की विजय के पश्चात् वहाँ के कष्टों एवं दुःखों को देखकर अशोक ने जो पश्चाताप किया, अकबर शायद उसका उपहास करता तथा अशोक ने जो यह निर्णय लिया था कि भविष्य में वह कहीं भी किसी भी युद्ध का संचालन नहीं करेगा, उसकी तीव्र भर्त्सना करता।'[1]

अकबर जिन लोगों से असन्तुष्ट होता था, उन्हें कठोर यातनायें देता था तथा उसकी सम्पूर्ण जिन्दगी किस प्रकार क्रूरता एवं बर्बरता, स्वेच्छाचारिता एवं कुत्सित प्रवृत्तियों की कथा रही, इसका समुचित पर्यवेक्षण विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित ग्रन्थों से उद्धृत तथ्यों के अधोलिखित उल्लेखों से किया जा सकता है। विभिन्न विद्वानों के विचारों का अवलोकन कर पाठक स्वतः निष्कर्ष निकालें कि अकबर किस सीमा तक न्यायपरायण था तथा उसमें कहाँ तक नैतिकता थी!

विंसेंट स्मिथ का कथन है 'कामरान के इकलौते बेटे (जो अकबर का चचेरा भाई था) को अकबर के आदेशानुसार सन् १५६५ ई० में ग्वालियर में मृत्यु-दण्ड दिया गया। इस प्रकार अकबर ने एक कुत्सित उदाहरण प्रस्तुत किया, जिसका अनुकरण उसके वंशानुक्रम में शाहजहाँ एवं औरंगजेब ने बड़े पैमाने पर किया।'[2]

उपर्युक्त उद्धरण के पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि शाहजहाँ (अकबर का पौत्र) तथा औरंगजेब (अकबर का प्रपौत्र) की अतिशय धूर्तता एवं चरमसीमा तक पहुँची हुई बर्बरता उनके चरित्र के वैयक्तिक दुर्गुण नहीं थे, अपितु यह क्रूरता उन्हें वंशगत परम्परा के रूप में अकबर से प्राप्त हुई थी।

अकबर के चरित्र में विकृत काम-पिपासा तथा कुत्सित-वासना प्रमुख

१. 'अकबर : दी ग्रेट मुगल', विंसेंट स्मिथ, पृ० ५०-५१।

२. वही, पृष्ठ ५०।

एवं स्थायी दुर्गुण के रूप में जड़बद्ध थी। बाल्यकाल से लेकर जीवन के अन्तिम समय तक की विभिन्न घटनाओं में उसके ये सभी दुर्गुण सुस्पष्ट हैं।

५ नवम्बर, सन् १५५६ ई० को जबकि अकबर १४ वर्ष से भी कम आयु का किशोर था, उसने अपने विरोधी हिन्दू हेमू जिसे खून से लथपथ एवं मूर्छित अवस्था में उसके सामने लाया गया था, के गले को तलवार से काट दिया था।

अकबर के लिए पानीपत का युद्ध भविष्य निर्णायक था। इस लड़ाई को जीतने के बाद ही अकबर को हिन्दुस्तान पर प्रभुसत्ता का राजमुकुट प्राप्त हो सका। पानीपत की लड़ाई का विवेचन करते हुए विंसेंट स्मिथ का कथन है कि सम्भवत: हेमू की विजय हो जाती किन्तु अकस्मात ही एक तीर उसकी आँख में आ घुसा, जिसने उसका मस्तक भेद दिया। वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। उसकी सेना तितर-बितर हो गई तथा अकबर की फौज का अवरोध करने में समर्थ न हो पाई। हेमू का हाथी जंगल की ओर भाग गया था पर उसे पकड़कर लाया गया एवं उसके सवार को अकबर तथा बहराम खाँ के समक्ष पेश किया। अकबर ने अपनी तलवार से हेमू के गले पर प्रहार किया। पास ही खड़े लोगों ने भी खून से लथपथ शव में अपनी तलवारें घोंप दीं। हेमू का कटा सिर प्रदर्शन के लिए काबुल भेजा गया तथा उसका धड़ दिल्ली के एक दरवाजे पर लटका दिया गया। यह सरकारी मनगढ़न्त कथा कि जब अकबर के संरक्षक बहराम खाँ ने उसे निर्देश दिया कि वह शत्रु के अर्ध-मूर्छित शरीर पर तलवार से प्रहार करे तो असहाय बन्दी के प्रति अकबर में कारुणिक भावना उत्पन्न हो गई, जिससे उत्प्रेरित होकर उसने हेमू के शरीर पर तलवार का वार करने से इंकार कर दिया—यह दरबारी चाटुकारों की मनगढ़न्त कहानी प्रतीत होती है।[1] विंसेंट स्मिथ द्वारा पर्यवेक्षित इस तथ्य की अन्तिम पंक्तियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दरबारी चाटुकारों ने किस प्रकार समय-समय पर ऐतिहासिक सन्दर्भों में झूठे तथ्यों का समावेश किया तथा अपने संरक्षक बादशाहों के पाशविक कुकृत्यों पर परदा डालते हुए उन्हें बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया। मध्ययुगीन मुस्लिम सरकारी-इति-

---

१. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ २६।

वृत्तों के अध्येता छात्रों को चाहिए कि इस प्रकार की घटनाओं के उल्लेखों का सावधानी से मनन करें।

पानीपत की महान् विजय के पश्चात् अकबर की विजयी सेना ने दक्षिण की ओर बढ़ते हुए सीधे दिल्ली की ओर कूच किया। दिल्ली के द्वार अकबर के लिए खुल गये, उसने राज्य में प्रवेश किया। आगरा भी उसके अधिकार में आ गया था। उस युग की बीभत्स परम्परा के अनुरूप वध किये गए और लोगों के कटे हुए सिरों की एक मीनार खड़ी की गई। हेमू के परिवार और विपुल खजानों पर अधिकार किया गया। उसके वृद्ध पिता को मौत की सजा दी गई।[1]

मालवा के सुलतान बाज बहादुर को मध्य भारत में देवास के निकट संगरूर में पराजित करने के बाद अकबर के सेनापति अधम खाँ एवं पीर मोहम्मद ने क्रूरतापूर्ण घृणित कृत्य प्रतिपादित कर अपने-आपको तथा अपने बादशाह (अकबर) को कलंकित किया। भयभीत बदायूँनी इसका साक्षी था। बन्दी जत्थे उनके सामने उपस्थित किए गए, जिन्हें उन्होंने मरवा डाला, ताकि खून की नदियाँ प्रवाहित हो सकें। पीर मोहम्मद ने हँसी उड़ाते हुए पाशविक मजाक किया। जब उसकी भर्त्सना की गई तथा विरोध प्रदर्शन किया गया तो उसने जबाब दिया, 'एक ही रात में इन समस्त बन्दियों को पकड़ा गया। उनके साथ अब क्या व्यवहार किया जा सकता है?' यहाँ तक कि सैयद तथा शिक्षित शेख भी जब हाथों में कुरान लेकर उससे भेंट करने आए तो उन्हें भी कत्ल कर दिया गया।

युद्ध के पश्चात् अधम खाँ को, जिसकी नियुक्ति कुछ काल के लिए मालवा के राज्यपाल के रूप में की गई थी, वापस बुला लिया गया तथा उसके स्थान पर पीर मोहम्मद की नियुक्ति की गई। एक अयोग्य व्यक्ति पर इस प्रकार का विश्वास करके तथा एक महत्त्वपूर्ण पद पर उसकी नियुक्ति करने में अकबर ने एक भयंकर भूल की। पीर मोहम्मद ने बुरहानपुर तथा बीजागढ़ पर हमला कर दिया। बीजागढ़ के दुर्ग में उसने 'कत्ले-आम' किया जैसाकि बदायूँनी का मत है—कत्ले आम करते हुए अथवा बुरहानपुर एवं असीर गढ़ के समस्त निवासियों को बन्दी बनाते हुए एवं

१. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ २९।

नर्बदा नदी के दक्षिण तट पर बसे अनेक नगरों एवं ग्रामों को ध्वस्त करते हुए पीर मोहम्मद ने चंगेज खाँ की-सी क्रूरता दिखलाई।'[1] दूसरे शब्दों में, पीर मोहम्मद ने चंगेज खाँ की क्रूरता एवं वर्बरता का अनुकरण किया।

एक दरबारी अलगा खाँ का कत्ल कर देने के जुर्म में अधम खाँ को आगरे के दुर्ग के बुर्ज से नीचे फेंके जाने एवं टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाने का आदेश दिया गया। इस सम्बन्ध में स्मिथ महोदय ने लिखा है—"अधम खाँ को आगरे के बुर्ज से सिर के बल फेंका गया। पहली बार फेंकने से अर्ध-मृत होने के कारण अकबर ने अपने आदमियों को उसे पुनः ऊपर ले जाकर दुबारा नीचे फेंकने का आदेश दिया। उसकी गर्दन टूट गई तथा सिर के टुकड़े-टुकड़े हो गए।"[2] अधम खाँ के सिर के टुकड़े-टुकड़े होने की वीभत्स घटना से सम्बन्धित एक यथार्थ चित्र का प्रदर्शन "साऊथ केन्सिंगटन" में आयोजित 'अकबर-नामा' की चित्र-प्रदर्शनी में किया गया था।

एटा जिले (सकित परगना) में आठ गाँवों की जनता के विरुद्ध जब अकबर ने स्वयं एक आक्रमण का संचालन किया था तो "परोख नामक गाँव में करीब एक हज़ार विद्रोहियों को एक मकान में बन्द कर जिन्दा जलवा दिया गया था।"

"एक असामान्य घटना अप्रैल, सन् १५६७ में घटित हुई जबकि शाही तम्बू दिल्ली के उत्तर में स्थित हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थस्थान 'थानेश्वर' में लगा हुआ था। इस घटना के विवरण से अकबर के क्रूर एवं बर्बर स्वभाव पर प्रकाश पड़ता है। वहाँ पवित्र कुण्ड पर एकत्रित होने वाले संन्यासी दो दलों में विभक्त हो गये थे। अबुल फज़ल ने इन्हें 'कुर' तथा 'पुरी' की संज्ञा दी है। 'पुरी' दल के नेता ने अकबर से शिकायत की कि 'कुरों' ने अनधिकृत रूप से उसकी पारम्परिक गद्दी पर कब्जा कर लिया है। इस प्रकार उन्हें तीर्थयात्रियों से प्राप्त होने वाले दान लेने से रोक दिया है एवं स्वयं उसे एकत्रित करने में लगे हैं। (उन्हें सशस्त्र लड़ाई द्वारा उक्त समस्या को सुलझा लेने की अनुमति प्रदान की गई।) पहले तलवारों से लड़ाई आरम्भ हुई। बाद में तलवारों को अलग कर दिया गया तथा मुक्केबाजी व तीरों

१. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ ४०।
२. वही, पृष्ठ ४३।

का आश्रय ग्रहण किया गया। अन्त में उन्होंने पत्थरबाजी की। अकबर ने जब देखा कि पुरी दल की संख्या अधिक हो गई है तो उसने अपने कुछ बर्बर अनुयायियों को इशारा किया कि वे कमज़ोर दल की मदद करें। इस सहायता से कुर पुरी दल के संन्यासियों को जल्दी ही खदेड़ भगाने में समर्थ हो गये। पराजित दल का पीछा किया गया तथा अधिक संख्या में उन भगोड़ों को मार डाला गया। सरकारी इतिवृत्त लेखक ने सावधानी से आगे उल्लेख किया है कि उक्त खेल को देखकर अकबर को अत्यधिक आनन्द हुआ। अन्य इतिहासकारों का कथन है कि दोनों दलों में एक दल की संख्या दो या तीन सौ थी तथा दूसरे दल की पाँच सौ। अकबर द्वारा मदद देने पर कुल मिलाकर संख्या करीब एक हज़ार हो गई। अबुल फज़ल के इस उल्लेख की कि उक्त हिंसात्मक दृश्य को देखकर "बादशाह को अत्यधिक आनन्द प्राप्त हुआ"[1] के प्रति तबकात के लेखक ने अपनी सहमति व्यक्त की है। यह एक निराशाजनक बात है कि अकबर जैसे व्यक्ति ने इस प्रकार के खूनी खेल को प्रोत्साहन दिया।"

ऊपर उल्लिखित घटना के अवलोकन से अकबर की रुचियों एवं उद्देश्यों पर धुंधला-सा प्रकाश पड़ता है। चूँकि वह एक धर्मान्ध मुसलमान था, अतः उसके द्वारा उपेक्षित एवं उसकी दृष्टि में गर्हणीय हिन्दू संन्यासियों के दो दलों द्वारा एक-दूसरे के साथ हिंसात्मक ढंग से मार-काट करने एवं हत्याएँ करने के दृश्य को देखकर उसे आनन्द हुआ। मनुष्यों के दो जत्थों द्वारा परस्पर छुरेबाजी तथा पत्थरबाजी करते हुए दृश्य से अकबर को अत्यधिक आनन्द-प्राप्ति के तथ्योल्लेख से अकबर के मन में जड़बद्ध क्रूरता, बर्बरता एवं स्वार्थमय छल-प्रपंच की ही अवस्थिति सिद्ध होती है।

अकबर के युग की जनता उसके आगमन का समाचार सुनते ही भयभीत होकर भाग खड़ी होती थी। जनता उसे लूट-खसोट करने वाला नर-भक्षक पशु समझती थी। इस तथ्य का भलीभाँति स्पष्टीकरण हिन्दुओं के दो प्रमुख तीर्थ-केन्द्र बनारस एवं प्रयाग में अकबर के आगमन तथा वहाँ उसके द्वारा की गई विध्वंस-लीला एवं लूट-खसोट के कारनामों से होता है। विंसेंट स्मिथ का कथन है—"अकबर ने तब प्रयाग एवं बनारस की

१. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ ५६-५७।

ओर कूच किया। वहाँ उसने इसलिए लूट-खसोट की, क्योंकि जनता ने अपने घरों के द्वार बन्द कर लिये थे।"[१] ध्यान देने की बात है कि जनता सामान्यतः शाही सवारियों को देखने तथा उपहारादि प्रस्तुत करने को उत्सुक रहती है। बनारस तथा प्रयाग में अकबर के आगमन पर वहाँ की जनता इसलिए भाग खड़ी हुई कि उनके मन में भय था कि लूट-खसोट, बलात्कार, व्यभिचार आदि की दुर्घटनाएँ अकबर की बर्बर और खूनी फौज द्वारा अवश्य ही सम्पन्न होंगी। जनता के मन में यह भय न होता तो वह घरों में तालेबन्दी कर वहाँ से पलायन न करती। अकबर की खूनी फौज जहाँ भी जाती थी, वहाँ लूट-खसोट तथा व्यभिचार आदि की घटनाएँ सामान्य बात थीं। भारतवर्ष में उसके शासनकाल के दौरान लगभग आधी शताब्दी तक इस प्रकार के जघन्य-कृत्य एवं अमानवीय कार्य निरन्तर चलते रहे।

अकबर द्वारा कठोर यातनायें दिये जाने के सन्दर्भ में एक घटना का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। मशहद के मोहम्मद मीराक नामक व्यक्ति को, जो खाँ जमान का एक विशेष विश्वस्त आदमी था (तथा जिसने अकबर के खिलाफ विद्रोह किया था।) पाँच दिन तक लगातार संत्रास-स्थल पर कठोर यातनाएँ दी गईं। प्रतिदिन उसे लकड़ी के एक साँचे में बन्द कर दिया जाता था तथा एक हाथी के सामने डाल दिया जाता था। हाथी उसे अपनी सूँड़ में ऊपर उठाता था तथा मैदान के एक किनारे से दूसरे किनारे पर फेंक दिया करता था। इस प्रकार दी जाने वाली यातना का सही कारण नहीं बताया गया था, अतः हाथी उसे प्रतिदिन एक किनारे से दूसरे किनारे फेंक कर उसके साथ खेलता रहा। इस भीषण बर्बर घटना का उल्लेख अबुल फज़ल ने एक शब्द की भी काँट-छाँट किये बिना यथा-तथ्य रूप में किया है।[२]

चित्तौड़ के दुर्ग को विजित करने के पश्चात् अकबर की क्रूर फौज द्वारा संभावित अपमानों, नष्ट-भ्रष्ट करने के कृत्यों, बलात्कार एवं व्यभि-चार आदि की घटनाओं से बचने के लिए राजपूत महिलाओं एवं किशोर-

१. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ ५८।
२. वही, पृष्ठ ६४।

किशोरियों द्वारा सामूहिक रूप में भयावह अग्नि-प्रवेश को पसन्द करने सम्बन्धी घटना के विवेचन से इस तथ्य के साक्ष्य प्राप्त होते हैं कि अकबर के शासन-काल में किस प्रकार के बर्बरतापूर्ण पाशविक कर्म किये जाते थे। विंसेंट स्मिथ ने उल्लेख किया है कि जौहर की क्रिया से दुर्ग पूर्णतः विजित होने के पूर्व ही बड़े पैमाने पर समाप्त हो चुका था। तीन विभिन्न पावक-कुण्डों में अग्नि प्रज्वलित की गई। नौ रानियों, पाँच राजकुमारियों, उनकी पुत्रियों एवं दो भिक्षुओं तथा समस्त सेनापतियों के परिवारों ने, जो अपनी रियासतों से दूर नहीं जा सके थे, या तो स्वयं को ज्वाला में भस्म कर डाला या वे आक्रमण में मारे गये। दूसरे दिन सुबह अकबर ने दुर्ग में प्रवेश किया। आठ हजार राजपूतों ने सिर पर कफन बाँधकर मरने-मारने की कसम खाई। अकबर ने जब यह देखा कि राजपूत उसका दृढ़ता से मुकाबला कर रहे हैं तथा उसकी सेना के मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर रहे हैं तो वह क्रोधित हो उठा। उसने राजपूत सैनिक जत्थों तथा नगर में जन-सामान्य के साथ दयाविहीन क्रूरता के कार्य किए। अकबर से ईर्ष्या एवं घृणा के कारण आठ हज़ार शक्तिशाली राजपूतों को ४० हज़ार किसानों द्वारा मदद होते देखकर अकबर ने कत्ले-आम का आदेश दिया। इस कत्ले-आम में तीस हज़ार लोग मारे गये तथा अनेक लोग बन्दी बनाये गये।

"नवम्बर सन् १५७२ ई० को जब अकबर अहमदाबाद पहुँचा, भगोड़ा शासक मुज़फ्फरशाह अनाज के एक खेत में छिप गया था। उसे पकड़कर अकबर के सामने उपस्थित किया गया। 'कैम्प' के पीछे चलने वाले कुछ लोगों ने उसकी प्रजा पर अत्याचार करते हुए लूट-खसोट की। अकबर ने अपनी क्रूरता का परिचय देते हुए आदेश दिया कि प्रतिरोध करने वालों को हाथी के पैरों तले कुचलकर मार डाला जाये।"

निरक्षर अकबर के मन में कितनी क्रूरता भरी थी, इसका स्पष्ट दिग्दर्शन 'हम-ज़बान' नामक एक वरिष्ठ दरबारी को उसके द्वारा दिये गये दण्ड से किया जा सकता है। हम-ज़बान ने गुजरात प्रदेश के 'सूरत' नगर में अकबर के खिलाफ विद्रोह किया था। २७ फरवरी, सन् १५७३ ई० को उसे गिरफ्तार किया गया। चूँकि 'हम-ज़बान' शब्द से 'अपनी ज़बान का सच्चा' अर्थ अभिव्यक्त होता है, अतः "उसकी जीभ कटवाकर उसे बर्बरतापूर्ण सजा दी गई।"

सन् १५७३ ई० में "हुसैन कुली खाँ (खाँ ज़मान) अपने बन्दियों के साथ अकबर के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा था। मसूद हुसैन मिर्जा की आँखें सी दी गई थीं।...अन्य तीन सौ बन्दियों को उनके चेहरे की खाल उतार कर गर्दभ, शूकर एवं श्वानों की खालें मढ़कर अकबर के सामने उपस्थित किया गया। उनमें से कुछ लोगों को विभिन्न प्रकार से बर्बर यातनाएँ दी गईं।...यह जानकर खेद होता है कि अकबर जैसे बादशाह ने इस प्रकार के बर्बर व्यवहार किये।...इस प्रकार की क्रूरता एवं बर्बरता उसे पैतृक रूप में अपने तातार पुरखों से प्राप्त हुई थी। जिस प्रकार की क्रूरता एवं बर्बरता का उसने आचरण किया उससे मिर्जा-विद्रोह एवं उपद्रव शान्त नहीं हुए। गुजरात में वे पुनः आरम्भ हो गये।"[1]

"२ सितम्बर, सन् १५७३ ई० को अहमदाबाद की लड़ाई लड़ी गई। उस युग की बर्बर परम्परा के अनुसार दो हज़ार से भी अधिक विद्रोहियों का सिर काट कर उनसे एक पिरामिड निर्मित किया गया।"

"अफ़गान नेताओं के सिर काटकर उन्हें नाव में भरकर दाऊद (बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के अफगान शासक) के पास भेज दिया गया। यह इस बात की चेतावनी थी कि उसकी भी उसी प्रकार दुर्दशा संभावित थी।...३ मार्च, सन् १५७५ ई० को दाऊद की फौज के साथ 'तुरोकई' में निर्णायक युद्ध हुआ।...युग की बर्बर रीति का अनुकरण करते हुए मुनीम खाँ ने अपने बन्दियों को कत्ल कर दिया। कटे सिरों की संख्या आठ गगन-चुम्बी मीनार तैयार करने के लिए पर्याप्त थी।"[2]

दाऊद के विरुद्ध दूसरी लड़ाई 'राज-महल' के निकट गुरुवार दिनांक १२ जुलाई को लड़ी गई। दाऊद पराजित हुआ तथा उसे बन्दी बना लिया गया। "प्यास से व्याकुल होकर वह पानी माँगने आया।...उसके जूते में पानी भरकर वे उसके सामने लाये।...उसका सिर काटने के लिए काँटेदार जबड़ानुमा दो तिकड़ियाँ उसके गले में लगाई गईं।...उसके सिर में भूसा भरा गया तथा तेल-सुगन्धि से युक्त करके उसे सईद खाँ के अधिकार में सौंप दिया गया।...सईद खाँ ने बाद में 'बीदर' नामक गाँव में अकबर से

---

१. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ ८२।

२. वही, पृष्ठ ९२।

भेंट की तथा दाऊद का सिर दरबार में फेंककर उपस्थित किया। दाऊद का धड़ 'तंडा' के द्वार पर लटका दिया गया।"[1]

सन् १६०३ ई० में अथवा इसी समय के आस-पास एक घटना और घटी। अकबर अपराह्न के समय विश्राम-कक्ष में आराम किया करता था।'''उस दिन वह समय से पहले ही आरामगाह में आ पहुँचा। वहाँ उसने किसी भी नौकर को नहीं देखा।'''जब वह सिंहासन तथा शाही गद्दी के निकट पहुँचा, उसने एक अभागे शमा जलाने वाले को देखा, जो साँप की तरह बल खाई हुई अवस्था में सिंहासन के निकट गहरी नींद में लेटा हुआ था। इसे देखकर अकबर क्रोध से आग-बबूला हो उठा। उसने आदेश दिया कि उक्त शमा जलाने वाले को मीनार से नीचे फेंक दिया जाये। इस प्रकार उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो गये।

शेख अब्दुल नबी तथा उसके विरोधी मखदुमुल मुल्क को मक्के की तीर्थयात्रा के बहाने देश-निकला दिया गया। उन्हें वापस लौटने की अनुमति मिली थी। सन् १५८२ ई० में अहमदाबाद में मखदुमुल मुल्क की मृत्यु हो गई। वह विपुल सम्पत्ति एवं बहुमूल्य पुस्तकें छोड़ गया था। जिन पर कब्जा कर लिया गया। उसके पुत्रों को कई बार अनेक कष्ट एवं यातनायें भोगनी पड़ीं जिससे वे गरीब हो गये। उनकी आर्थिक स्थिति गिर गई। दो वर्ष पश्चात् अब्दुल नबी की हत्या बादशाह के गुप्त आदेशानुसार कर दी गई।[2]

बिहार तथा बंगाल में अनेक व्यक्तियों के प्रति जो क्रूरता बरती गई, उससे सम्बद्ध विशेष मामलों ने दुर्भावना उत्पन्न कर दी तथा ऐसा कहा जाता है कि अधिकारियों की धनलिप्सा ने 'आग में घी' का काम किया।[3]

जिन विरोधियों को जनता के सामने सज़ा नहीं दी जा सकती थी, उन्हें औपचारिक रूप में सज़ा देने अथवा उनकी हत्या करवाने के लिए गुप्त एवं व्यक्तिगत आदेश देते हुए अकबर को कभी नैतिकता का अहसास नहीं हुआ।[4]

---

१. वही, पृष्ठ १०४।
२. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विसेंट स्मिथ, पृष्ठ १३०।
३. वही, पृष्ठ १३२।
४. वही, पृष्ठ १३५।

अकबर के सम्बन्ध में प्रचलित अनेक क्रूर-कृत्यों की गाथाओं एवं अबुल फज़ल द्वारा चाटुकारिता के रूप में उल्लेखित जन-सामान्य की यातनाओं के तथ्यों के अतिरिक्त भी अकबर के अनेक बर्बर कर्मों के संदर्भ प्राप्त होते हैं। सन् १५८१-८२ ई० में बड़ी संख्या में शेखों एवं फकीरों को, जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप में अकबर के नये धर्म-प्रवर्तन का विरोध किया था, कांधार प्रदेश में निष्कासित कर दिया गया। वहाँ उनका गुलामों की स्थिति में घोड़ों के बदले विनिमय किया गया।[1]

यशवन्त (मुसलमान इतिवृत्त लेखक इस नाम का गलत उच्चारण प्रस्तुत करते हुए इसे दशबंध उल्लेखित करते हैं) नामक एक तरुण एवं सुन्दर चित्रकार ने अकबर के दरबार में व्याप्त कुत्सित वातावरण, अप्राकृतिक व्यभिचार, शराबखोरी, वेश्याकर्म तथा अन्य कुकृत्यों, अतिचारों एवं अनाचारों से दुःखी होकर अपने-आपको छुरा मारकर आत्महत्या कर ली।

अकबर के वरिष्ठतम दरबारी, सेनापति तथा साले राजा भगवानदास ने भी अकबर के दरबार के कुकृत्यों के असह्य हो जाने पर स्वयं को छुरा मारकर आत्महत्या कर ली। राजा भगवानदास ने भी अकबर के दरबार में यह महसूस किया कि वहाँ जीवन असह्य, अपमानजनक, भ्रष्ट तथा क्रूर हो चला था। कोई भी व्यक्ति, जिसके मन में किंचित् भी मानवता होगी, इस प्रकार के वातावरण में रहना पसन्द नहीं करेगा। मुस्लिम सरकारी गाथाओं के अन्तर्गत कहा जाता है कि राजा भगवानदास एवं यशवन्त ने पागलपन के दौरे के कारण आत्महत्या की। इस प्रकार की घटनायें भारतवर्ष में मुगलों के भ्रष्ट शासन के विरोध में घटित होती थीं। चाटुकार दरबारी लेखक ऐसे मामलों को गलत रूप में उल्लेखित करते थे, तथा ऐसी प्रत्येक घटना को 'पागलपन' से सम्बन्धित घोषित करते थे। इतिहासकारों को चाहिए कि मुस्लिम दरबारी लेखकों ने घटनाओं को जिस रूप में प्रस्तुत किया है, उन्हें उसी रूप में कभी स्वीकार न करें।

विंसेंट स्मिथ का कथन है "व्हीलर ने उल्लेख किया है कि अकबर ने वेतन पर एक जहर देने वाला नौकर रखा था[2], जिसका काम अकबर के आदेशानुसार लोगों को केवल ज़हर देना था।...दोषी व्यक्तियों को अनेक

१. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ १५९।
२. वही, पृष्ठ २५०।

प्रकार से दंड दिया जाता था तथा उनमें भय उत्पन्न किया जाता था।...
दण्ड देने के तरीकों में हत्या करवाना, हाथियों से कुचलवा देना, फांसी पर लटकवा देना, सिर कटवा देना आदि शामिल थे। बाबर नैतिकता के अह-सास के बिना खाल उधेड़ लेने का आदेश दिया करता था। छोटी गलतियों एवं अपराधों के लिए अंग-भंग तथा चाबुक से पिटवाने जैसे क्रूरतापूर्ण दण्ड सामान्य रूप में दिये जाते थे। दीवानी, फौजदारी अथवा दण्ड-विधान की कार्यवाहियों के कोई रिकार्ड नहीं रखे जाते थे। जो व्यक्ति न्यायाधीश के पद पर आसीन होते थे, कुरान के कानूनों का पालन करते थे। कुरान के उसूलों को सही ढंग से मानने वाले न्यायाधीशों को ही योग्य करार दिया जाता था। न्याय के क्रूर विधानों को अकबर प्रोत्साहित करता था। दण्ड-स्थल में किस प्रकार की क्रूरता बरती जाती थी तथा संत्रास उत्पन्न किया जाता था, इसका यथार्थ चित्रण अकबरनामा के समकालीन प्रतिदर्शनों के अन्तर्गत साऊथ केन्सिगटन में किया गया था।"

चित्तौड़ के दुर्ग-रक्षक सैनिकों के प्रति किये गये अनाचारपूर्ण व्यवहार तथा विद्रोही मिर्जाओं के अनुयायियों को दी गई यातनाओं में अकबर ने भीषण क्रूरता बरती थी।[1] विंसेंट स्मिथ ने ऐसे दो तथ्यों का उल्लेख किया है, जिनमें अकबर की निरंकुश स्वेच्छाचारिता एवं क्रूरता दिखलाई पड़ती है। अकबर ने जितने भी युद्ध एवं आक्रमण किये, चाहे वे राजनीतिक प्रति-द्वन्द्वी के प्रति हों या किसी विद्रोही के प्रति, सभी में उसने पाशविक क्रूरता का परिचय दिया। ऐसी कोई भी घटना नहीं है, जिसमें अकबर ने किसी प्रकार की दया दिखलाई हो। विंसेंट स्मिथ का कथन है कि यदि ऐसी कोई घटना हो भी जिसमें अकबर ने दया आदि दिखलाई हो तो उसके पीछे कारुणिक भावना की अपेक्षा कोई 'नीति' ही अधिक थी। दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि किसी घटना में अकबर की दया दिखलाई पड़ती है तो वह स्वार्थ-सिद्धि की किसी नीति से उत्प्रेरित थी।

विंसेंट स्मिथ का उल्लेख है, "वह (अकबर) जैसाकि एक जेसूइट लेखक ने लिखा है, सही अर्थों में 'पूर्वी देशों का संत्रास' था।"[2] लगभग चार दशाब्दी के काल तक उसकी निरंकुश स्वेच्छाचारिता का भ्रष्ट शासन

१. अकबर : दी ग्रेट मुगल, विंसेंट स्मिथ, पृष्ठ २५१।
२. वही, पृष्ठ २५६।

कायम रहा। जन-सामान्य द्वारा अकबर को प्रेम नहीं किया जाता था, अपितु लोग उससे डरते थे—दहशत खाते थे। बहुत पहले से ही लोगों के बीच उसका भय व्याप्त था। वह अपने-आपको जनता की पवित्र भावना का अनादर करने तथा अपमान करने में स्वतन्त्र समझता था। सन् १५८१ ई० के अन्त में जब उसका पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया तो स्वेच्छाचारिता के क्षेत्र में वह बहुत आगे बढ़ गया। कुछ निर्लज्ज कार्यों को करने में वह पूरी स्वतन्त्रता बरतने लगा था।

कुरान के कानूनों में निर्धारित भीषण सजायें स्वच्छन्दतापूर्वक दी जाती थीं। अकबर को और न ही अबुल फजल को शपथ ग्रहण करने एवं साक्षी प्रस्तुत करने जैसे न्यायिक औपचारिकताओं के नियम मान्य थे। फौजदार से सदैव यही अपेक्षा की जाती थी कि वह विद्रोहियों को, जो हमेशा बहु-संख्या में ही होते थे, कम करने के लिए दमन-नीति अपनाये तथा शाही भुगतानों की वसूली के लिए जब कभी आवश्यकता पड़ती थी, हुक्म अदूली करने वाले ग्रामीणों के विरुद्ध फौजदार को फौजी जत्थों का उपयोग करने की पूरी छूट थी।

अकबर की स्वेच्छाचारिता एवं बर्बर निरंकुशता का एक विलक्षण उदाहरण कर्नल टॉड ने प्रस्तुत किया है। कर्नल टॉड[1] का कथन है, "जोधा-बाई के देहावसान पर अकबर ने आदेश दिया कि शोक-प्रदर्शन के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपने सिर के बाल एवं दाढ़ी मुंडा दे। इस आज्ञा के पालन के लिए शाही नाई नियुक्त किये गये। शाही नाई जब हाड़ा राजपूतों के सैन्य-कक्षों में पहुँचे, उन्होंने शोक-प्रदर्शन के आदेश को अमान्य करते हुए शाही नाइयों के साथ मार-पीट की। (ऐसा सम्भव है कि नाइयों ने शाही आज्ञा का पालन करने के लिए जबरदस्ती की हो, जिससे हाड़ा राजपूतों का खून उबल पड़ा हो।) राजा भोज (रणथंभोर के दुर्ग के भूतपूर्व प्रधान राव सुरजन के पुत्र तथा अकबर के सेनापतियों में से एक) के शत्रुओं को शाही नाइयों के विरोध करने पर गुस्सा आ गया। उन्होंने अकबर को सूचना दी कि हाड़ा राजपूतों ने दिवंगता रानी की स्मृति का अपमान करते हुए शाही नाइयों के साथ निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार किया है। अपने शूर-वीर राजपूत

१. एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीस ऑफ राजस्थान, लेखक कर्नल टॉड, भाग २, पृष्ठ ३८५।

सेनापति की सेवाओं को विस्मृत करते हुए अकबर ने आदेश दिया कि राव भोज को बेड़ियों से बाँधकर बलपूर्वक उनकी मूँछ साफ कर दी जाएँ। इसकी सूचना प्राप्त होते ही राजपूतों ने अपने हथियार उठा लिये। तत्काल ही सैनिक-कक्षों में हंगामा मच गया तथा विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो गई। अवसरानुसार अकबर यदि अपनी भूल पर पश्चात्ताप करते हुए बूंदी राजपूतों के सैन्य-कक्षों में भेंट के लिए न जाता तो सम्भव है-खूनखराबी की स्थिति उत्पन्न हो जाती।"

राजपूतों में जातीय भावना प्रबल होती है। लोक-मर्यादा को वे विस्मृत नहीं कर पाते। ऐसी महिलाओं के प्रति, जो मुस्लिम हरम में जाना तथा वहाँ जीवन व्यतीत करना स्वीकार कर लेती थीं, उनके मन में कोई आदर या सम्मान की भावना नहीं होती थी। दाढ़ी-मूँछ को वे अपने पौरुष और शौर्य का प्रतीक मानते थे। यही कारण है कि अकबर ने जब जोधाबाई की मृत्यु पर दाढ़ी-मूँछ मुँडवाने का आदेश दिया तो हाड़ा राजपूतों के मन में रोष उत्पन्न हो गया। एक ऐसी महिला (जोधाबाई) जो अपने पवित्र आदर्श से गिर गई थी तथा जिसने किसी वीर राजपूत के साथ हिन्दू परम्परा की पवित्र पद्धति के अनुसार विवाह करना स्वीकार न कर मुस्लिम हरम में एक पुंश्चली का जीवन व्यतीत करना पसंद किया, के प्रति उन हाड़ा राजपूतों के हृदय में कोई सम्मान नहीं था। अतः दाढ़ी-मूँछ मुँडवा देने का आदेश गर्वीले राजपूतों के लिए रोषजनक था। धूर्त तथा मक्कार अकबर राजपूतों का अपमान करने के किसी भी अवसर को छोड़ना नहीं चाहता था। इस अवसर का भी लाभ उठाते हुए अकबर ने उन राजपूतों को, जो उसके अधीन दरबारी तथा सेनापति आदि थे, दाढ़ी-मूँछ मुँडवाने तथा सिर के बाल आदि साफ कराने का आदेश दिया। राजपूत कट्टर हिन्दू होते हैं। अपनी इच्छा से चाहे तो वे यह उतरवा लेते, किन्तु पारम्परिक-आदर्श से पतित एक महिला के लिए उन्होंने दाढ़ी-मूँछ मुँडवाना अपमानजनक समझा।

शोक-संतप्त अकबर कत्लेआम करवाने तथा दूसरों की हत्या करवाने को मनोरंजन करने एवं मन-बहलाने का एक साधन समझता था। अनाचार तथा अतिचार की भीषणता का ऐसा अस्तित्व क्या संसार में कभी कहीं रहा होगा? सरकारी इतिवृत्त लेखक फरिश्ता ने उल्लेख किया है;

"शाहजादा मुराद मिर्जा (मई सन् १५९९ ई० में) सख्त बीमार पड़ा तथा उसकी मृत्यु हो गई। उसे 'सापूर' में दफनाया गया। बाद में उसका शव वहाँ से हटाकर लाया गया तथा उसके प्रपिता हुमायूँ की कब्र के पास दफनाया गया। अपने बेटे की मृत्यु के दुःख से ध्यान हटाने के साधन के रूप में अकबर के मन में दक्षिण पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न हो गई।"[1]

चित्तौड़ के दुर्ग-रक्षक सैनिकों के प्रति अकबर ने जो भीषण क्रूरता दिखलाई इसका एक स्पष्ट उल्लेख हमें श्री शेलट की पुस्तक के पृष्ठ १०५-१०६ पर प्राप्त होता है। श्री शेलट महोदय का कथन है—"२४ फरवरी, सन् १५६८ को अकबर ने चित्तौड़ में प्रवेश किया। उसने कत्लेआम और लूट का आदेश दिया। हमलावर सारा दिन सड़कों पर नर-संहार करते हुए विध्वंसक-कृत्य करते हुए घूमते रहे। मारे गये लोगों की संख्या इतनी अधिक थी कि उनके यज्ञोपवीतों का वज़न मनों था।"[2]

"एक घायल 'पट्ट' गोविन्दश्याम (उर्फ कुम्भ श्याम) के मन्दिर के निकट पड़ा था। उसे अकबर ने स्वयं अपने हाथी द्वारा कुचलवाकर मरवा डाला। आठ हज़ार योद्धा राजपूतों के अतिरिक्त दुर्ग के भीतर करीब ४० हजार किसान भी थे जो देख-रेख तथा अन्य मदद के कार्य कर रहे थे। कत्लेआम का आदेश तबतक वापस नहीं लिया गया, जबतक उनमें से ३०

---

१. "सन् १६१२ तक भारतवर्ष में मुस्लिम प्रभुसत्ता का इतिहास"; मोहम्मद कासिम फरिश्ता द्वारा लिखित। मूल फ़ारसी से जॉन ब्रिग्स द्वारा ४ भागों में अनूदित, पृष्ठ ७१, भाग २। एस० डे, ५९-ए, श्याम बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता-४ द्वारा प्रकाशित।
उपर्युक्त घटना के उल्लेख से इस बात की संभावना की जाती है कि दिल्ली में हुमायूँ की कब्र का होना एक धोखा है। अपनी पुस्तक "भारतीय इतिहास की कुछ भयंकर भूलें" में हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि दिल्ली में जिसे हुमायूँ का मकबरा कहा जाता है, वह मूलतः एक हिन्दू राजभवन है।

२. 'अकबर', जे० एम० शेलट, भारतीय विद्या-भवन, चौपाटी, बम्बई, (१९६४) द्वारा प्रकाशित।

हज़ार किसान नहीं मार डाले गये। यद्यपि संघर्ष समाप्त हो गया तथापि कत्लेआम जारी रहा। हमलावरों के क्रूर हाथों से न तो मंदिर बचे न मीनारें। सभी कलात्मक वस्तुओं को उन्होंने ध्वस्त कर डाला। जब यह सब कुछ खत्म हो गया, तो २८ फरवरी, सन् १५६८ को अकबर ने अजमेर की तीर्थयात्रा शुरू की।" भीषण नर-संहार और लूट-खसोट के बाद अकबर की यह तीर्थयात्रा "सौ-सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली" की कहावत चरितार्थ करती है।

पंजाब में इब्राहिम मिर्जा के साथ लड़ाई के दौरान बंदी बनाये गये तीन सौ लोगों के साथ हुसैन कुली खाँ आया। उन बंदियों में मसूद हुसैन मिर्जा भी शामिल था, जिसकी आँखें सी दी गई थीं। शेष लोगों को गाय की खालों, जिनमें से सींग भी नहीं निकाले गए थे, में उपस्थित किया गया। कुछ बंदियों को छोड़ देने का आदेश दिया गया। शेष बंदियों को विभिन्न प्रकार की अवांछनीय यातनायें देकर मार डाला गया। उसी दिन सैय्यद खाँ मुल्तान से आया। उसने इब्राहिम का सिर प्रस्तुत किया। विद्रोहियों को दी गई सजायें क्रूर तथा बर्बर थीं।[1]

गुजरात के विद्रोहियों के खिलाफ की गई लड़ाई में मोहम्मद हुसैन एवं अख्तियार के कटे सिर आगरा तथा फतेहपुर सीकरी के द्वारों पर टाँगकर प्रदर्शित करने के लिए भेजे गये। तैमूर वंश की परम्परा के अनुसार उस दिन जिन विद्रोहियों का कत्ल किया गया, उनके कटे सिरों का एक 'पिरामिड' अकबर ने बनवाया।[2]

"इस तथ्य पर विचार करना व्यर्थ नहीं होगा कि दो राजपूत सेनापतियों (भगवानदास एवं मानसिंह—जिन्हें अकबर ने राणा प्रताप के खिलाफ शाहबाज़ खाँ की सहायता करने के लिए नियुक्त किया था) को इसलिए सहसा ही बर्खास्त किया गया, क्योंकि उन्होंने सिसोदिया वंश के योद्धा अधिनायक को गिरफ्तार करने के सम्बन्ध में शाहबाज़ खाँ द्वारा सुझाये गये बर्बरतापूर्ण एवं पाशविक उपायों के प्रति अपना विरोध व्यक्त किया था।"

अकबर ने अपने सभी कर्मचारियों के मन में अपने प्रति अत्यधिक

---

१. अकबर, जे० एम० शेलट, पृष्ठ १२९-१३६।
२. वही, पृष्ठ १४१।

दहशत की भावना पैदा कर दी थी। बदायूँनी द्वारा उल्लेखित एक घटना के अवलोकन से इस तथ्य का भली-भाँति स्पष्टीकरण हो जाता है। बदायूँनी का कथन है—"राज्याभिषेक के समय लाहौर से अबुल माली भाग गया। उसके रक्षक पहलवान गुल गुज़ ने बादशाह के क्रोध से भयभीत होकर आत्महत्या कर ली।"[1]

"विजय के दूसरे दिन बादशाह पानीपत आया। वहाँ उसने कत्ल किये गये लोगों के कटे सिरों की एक मीनार बनवाई।"[2]

अकबर के दो सेनापतियों, अधम खाँ एवं पीर मोहम्मद द्वारा मालवा के शासक शाहबाज़ बहादुर की पराजय का उल्लेख करते हुए बदायूँनी का कथन है—"बाज़बहादुर के नौकरों तथा पत्नियों आदि सभी को वन्दी बना लिया गया। विजय के दिन दोनों सेनापतियों (अधम खाँ एवं पीर मोहम्मद) के सामने बंदियों को उपस्थित किया गया। बंदियों के जत्थे-के-जत्थे मार डाले गये, ताकि खून की नदी प्रवाहित हो सके। पीर मोहम्मद ने मुस्कराते हुए मज़ाक किया—'इन बंदियों के गले में ऐसा क्या 'रोग' है, जो खून की नदी बह चली है।"[3] जब मैंने (बदायूंनी) पीर मोहम्मद के मजाक की भर्त्सना की, उसने जवाब दिया—'एक ही रात में इन सबको बंदी बनाया गया हैं, इनके साथ क्या किया जाये ?' उसी रात लूट-खसोट में तल्लीन वे हत्यारे मुसलमान बंदियों, जिनमें शेखों तथा सैय्यदों की बीवियाँ भी शामिल थीं, को बाँधकर उनके साज़-सामान सहित उज्जैन ले आये। वहाँ के शेख तथा सैय्यद उससे भेंट करने के लिए हाथों में कुरान लिये उपस्थित हुए, किन्तु पीर मोहम्मद ने उन सबको मरवा डाला एवं जलवा दिया।··· अधम खाँ ने विजय का सम्पूर्ण विवरण दरबार को भेज दिया।"

"उन दिनों पीर मोहम्मद ने, जिसने अधम खाँ के राजधानी लौट जाने पर मालवा में अपनी सत्ता पूर्ण रूप से स्थापित कर ली थी, एक बड़ी फौज तैयार की तथा बुरहानपुर पर चढ़ाई कर दी। बीजागढ़ को अपने अधीन

१. 'मुन्तखबुत तवारीख' अब्दुल कादिर बदायूँनी द्वारा लिखित, (मूल फारसी) अनुवादक-संपादक—जार्ज एस० ए० रैंकिंग, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित। भाग २, पृष्ठ ४।
२. वही, पृष्ठ १०।
३. वही, पृष्ठ ४२-४३।

कर लिया तथा कत्लेआम का आदेश दिया। वह खान देश की ओर मुड़ा और तबतक सन्तुष्ट नहीं हुआ, तबतक कि बुर्हानपुर तथा अमीर गढ़ के समस्त निवासियों का संहार करने तथा उन्हें बंदी बनाने में उसने चंगेज खाँ की बराबरी नहीं कर ली। नर्बदा नदी पार करके उसने संघर्ष को चरम-सीमा की स्थित तक पहुँचा दिया और कई नगरों को ध्वस्त कर डाला। कई गाँवों को जलाकर राख कर दिया।"[1]

अकबर के मामा ख्वाजा मुअज्ज़म ने जब अपनी पत्नी की हत्या कर दी, तो अकबर ने पहले लात-घूंसों एवं छड़ी से उसकी पिटाई करवाई। बाद में उसे सन के कपड़े पहनाकर ग्वालियर भेज दिया गया। वहाँ उसकी मृत्यु हो गई।

"९७१ हिज़री में बादशाह ने इस्फाहन के मिर्जा मुकीम तथा कश्मीर के मीर याकूब को उनके शिया होने के अपराध के कारण मरवा डाला। ये दोनों हुसैन खाँ की बेटी को नजराने के तौर पर दरबार में लाए थे।"[2] अकबर की कामुकता का यह एक अन्य उदाहरण है। इस सम्बन्ध में हम एक स्वतन्त्र प्रकरण में सम्यक् रूप से प्रकाश डालेंगे।

हुसैन कुली खाँ पंजाब से आया। वह अपने साथ मसूद हुसैन मिर्जा, जिसकी आँखें सी दी गई थीं, तथा मिर्जा के अनुयायियों को बड़ी संख्या में बंदी बनाकर फतेहपुर लाया था। बंदियों की संख्या करीब ३०० थी। उनके चेहरे की खाल खींचकर उनपर गधे, सूअर तथा कुत्ते की खाल मढ़कर, बादशाह के सामने हाजिर किया गया। उनमें से कुछ लोगों को विभिन्न प्रकार की यातनायें देकर मरवा डाला गया। मुलतान से सैय्यद खाँ बादशाह को उपहार प्रस्तुत करने के लिए उपस्थित हुआ। वह अपने साथ मिर्जा इब्राहिम हुसैन का सिर, जिसे उसने उसकी मृत्यु के बाद काट लिया था, लाया था। इस कार्य से दरबार में उसे समर्थन प्राप्त हुआ। इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार कटे सिर प्रस्तुत कर अकबर को प्रसन्न करने की कोशिशें की जाती थीं।

९८० हिज़री में जब नगरकोट के शहर एव मन्दिर पर बर्बरतापूर्ण आक्रमण किया गया तथा अकबर की फौज ने वहाँ अपना कब्जा स्थापित

१. मुन्तख़बुत-तवारीख, अनुवाद, भाग २, पृष्ठ ४६।
२. वही, पृष्ठ १३८।

किया, उसके सैनिकों ने "विजय के मद में चूर होकर तथा बुतपरस्ती के प्रति अत्यधिक घृणा होने के कारण अपने जूतों को (गायों एवं मनुष्यों के) खून से भर लिया तथा उनकी छाप मन्दिर की दीवारों एवं द्वारों पर अंकित की।"[1]

अकबर जिन व्यक्तियों को पसन्द नहीं करता था, छल-प्रपंच द्वारा जाल बिछाकर उनकी हत्या करवा दिया करता था। मुइज्जुल मुल्क तथा मुल्ला मोहम्मद यज़दी के जीवनांत से इस तथ्य को भली-भाँति प्रदर्शित किया जा सकता है। वे दोनों फिरोज़ाबाद पहुँचे। बादशाह ने आदेश दिया कि उनके रक्षकों को उनसे अलग कर दिया जाए तथा उन्हें नाव में बिठा-कर जमुना नदी के मार्ग से ग्वालियर पहुँचाया जाये। बाद में अकबर ने आदेश दिया कि उन्हें खत्म कर दिया जाये। उन्हें नाव में बैठाया गया तथा जब नावें नदी के गहरे पानी में पहुँचीं, तो नाविकों को आदेश दिया गया कि नावे नदी में डुबा दी जाएँ।...कुछ समय पश्चात् काज़ी याकूब बंगाल से आया। अकबर ने आदेश दिया कि वह उन दोनों के पीछे जाये।...एक के बाद एक सभी मुल्लाओं, जिनके प्रति अकबर के मन में शंका थी, को मौत के घाट उतार दिया गया।...हाजी इब्राहिम को रणथम्भोर भेजा गया। वहाँ उसकी मृत्यु हो गई। उसका शव चिथड़ों में लिपटा हुआ पाया गया।

अपनी बर्बर जिज्ञासा की तृप्ति के लिए अकबर ने एक बार कुछ शिशुओं का जीवन ही समाप्त कर डाला। ये शिशु उनकी निर्धन माताओं को धन देकर खरीदे गये थे। पशुओं की भाँति उन्हें उनकी माता से दूर ले जाया गया। इस बात पर जोर देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि उक्त शिशु हिन्दू रहे होंगे। सहज ही कल्पना की जा सकती है कि इस प्रकार के पैशाचिक कृत्य से उन अभागी माताओं के हृदय में कितनी मार्मिक पीड़ा हुई होगी। सरकारी इतिवृत्त लेखक बदायूँनी का कथन है—'इसी समय (९८७ हिज़री के आस-पास) दरबार में एक ऐसे मनुष्य को पेश किया गया, जिसके न तो कान थे, न कर्ण-छिद्र। इसके बावजूद भी जो कुछ कहा जाता था, वह सुन लेता था। उक्त मामले की स्थितियों को सत्यापित

---

१. मुन्तखबुत-तवारीख, अनुवाद, भाग २, पृष्ठ १६५।

करने की दृष्टि से एक आदेश जारी करते हुए कहा गया कि कुछ दूध पीते शिशुओं को आबादी से दूर एकान्त में रखा जाये, जहाँ किसी भी प्रकार का कोई शब्द उन्हें सुनाई न पड़े। कुशल नर्सों को उन शिशुओं की देख-भाल करने के लिए नियुक्त किया गया। उन्हें इस बात का सख्त निर्देश था कि वे शिशु किसी भी प्रकार का शब्द न सुन पायें। इस आदेश के परिपालन के लिए उनकी माताओं को धन देकर १२ बच्चों को खरीदा गया तथा एक ऐसे मकान में उन्हें रखा गया जो 'मूक-गृह' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तीन या चार वर्ष पश्चात् सभी बच्चे मूक हो गये, क्योंकि उनका पालन-पोषण एक ऐसे एकान्त परिवेश में किया गया था, जहाँ किसी भी प्रकार की मानवी आवाज नहीं पहुँच सकती थी। किसी भी प्रकार की ध्वनि उन बच्चों को वहाँ सुनने को नहीं मिलती थी।' आगे बदायूँनी का कथन है कि उनमें से कई कुछ समय बाद मर गए। अकबर की क्रूरता की यह एक मिशाल है, जिसके द्वारा उसने यश प्राप्त करने की दुश्चेष्टा की। संभवतः संसार के किसी अन्य बादशाह अथवा सम्राट् ने इस प्रकार का प्रयोग नहीं किया होगा। न ही यातना देकर जीवन बरबाद करने के ऐसे उपाय पर उन्होंने कभी सोचा होगा।

जलेसर के शेख कुतुबुद्दीन को अन्य फकीरों के साथ भक्कर (सिंध में) निष्कासित कर दिया गया। वहाँ उसकी मृत्यु हो गई। स्पष्ट है कि रेगिस्तान के सूखे इलाके में प्यास तथा भूख के कारण ही उसका शरीरान्त हुआ होगा।[1]

बड़ी संख्या में शेख तथा फकीरों का विभिन्न स्थानों पर विशेषकर कांधार, भेजकर घोड़ों के बदले विनिमय किया गया। इस घटना के अव-लोकन से यह स्पष्ट होता है कि अकबर खच्चरों, घोड़ों तथा गधों को मनुष्यों से अधिक महत्त्व देता था तथा जिन्हें वह पसन्द नहीं करता था, उनके बदले जानवरों का विनिमय करते हुए उसमें नैतिकता का कोई आग्रह नहीं था।

अकबर एक धर्मान्ध मुस्लिम बादशाह था किन्तु उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वह समस्त धर्मों तथा सम्प्रदायों को एक दृष्टि से देखता

---

१. मुन्तखबुत-तवारीख, अनुवाद, पृष्ठ ३०८।

था। अकबर वस्तुतः जिस हिन्दू या मुसलमान को पसन्द नहीं करता था, उसे जानवरों से बदतर समझता था। इसके लिए हम उसके द्वारा किये गये एक दूसरे विनिमय का उल्लेख करना चाहेंगे। इस समय के आस-पास बादशाह ने शेखों के एक सम्प्रदाय, जो इलाही नाम से जाने जाते थे, को गिरफ्तार किया। इस्लाम के कानूनों एवं आदेशों के अनुसार ही उन्होंने इस प्रकार के नामों की खोज की थी। बादशाह ने उनसे कहा कि क्या वे अपने गर्व के लिए पश्चाताप करने को तैयार हैं? उसके आदेशानुसार उन्हें भक्कर तथा कांधार भेज दिया गया, जहाँ व्यापारियों से तुर्की टट्टुओं के बदले उनका विनिमय किया गया। इस प्रकार के उदाहरणों के निदर्शन से यह स्पष्ट होता है कि अकबर जिन लोगों को पसन्द नहीं करता था उन्हें गुलाम बनाकर भक्कर तथा कांधार के बाज़ारों में बेचने के लिए भेज दिया करता था।

अकबर ने ख्वाजा मोइनुद्दीन के नाती शेख हुसैन को भक्कर निष्कासित कर दिया,[1] क्योंकि मक्के की तीर्थयात्रा से लौटने के बाद उसने बादशाह का अभिवादन निर्धारित नियमों के अनुसार करना अस्वीकार कर दिया था।"'शेख अधम के पौत्रों को, जो जौनपुर के बड़े शेखों में परिगणित होते थे, उनकी बीवियों एवं परिवारों के साथ, अकबर ने अजमेर भेज दिया तथा उनके लिए कुछ राशन निर्धारित कर दिया। वहाँ उनमें से कुछ की मृत्यु हो गई और कुछ गरीबी की अवस्था में रह रहे थे। 'राशन निर्धारित' करने सम्बन्धी शब्द उन भूखे मरते लोगों के लिए स्पष्टतः न्यायोचित हैं। इन उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि अपनी सम्पूर्ण जनता के साथ अकबर वही व्यवहार करता था जो वह पसन्द करता था तथा ठीक समझता था। जो वह करता था, वही न्यायोचित होता था। वह अपनी जनता को यातनायें दे सकता था, उन्हें बेच सकता था, उनकी पत्नियों को भ्रष्ट कर सकता था, उन्हें निष्कासित कर सकता था तथा भूखों मार सकता था।

अकबर में नैतिकता किंचित मात्र भी नहीं थी। किसी भी व्यक्ति को बदमाश गुण्डों के जत्थों द्वारा मरवा देता था। शेख अब्दुल नबी की हत्या

---

१. मुन्तखबुत-तवारीख, पृष्ठ ३०९।

करवाने में उसने इसी पद्धति का उपयोग किया था। इतिवृत्त लेखक बदायूँनी का कथन है, शेख फतेहपुर आया (हिजरी ९९२ में) तथा वहाँ उसने कुछ अश्लील भाषा का प्रयोग किया। क्रोध पर काबू न पा सकने के कारण बादशाह ने उसके चेहरे पर प्रहार किया। (यह दलील दी गई कि मक्के की तीर्थयात्रा के लिए उसने सात हजार का कर्ज लिया था, जो उसने वापस नहीं किया है।) उसे बंदी बनाकर राजा टोडरमल को सौंप दिया गया। कुछ समय बाद उसे कर न देने वाले दोषी के समान कार्यालय के ही गणना-कक्ष में कैद कर दिया गया। एक रात बदमाशों के जत्थे ने उसे मार डाला।[1]

सरहिंद के एक दरबारी हाजी इब्राहीम को भी, उसके सभी अधिकार छीनकर तथा उसकी धन-सम्पत्ति ज़ब्त कर, यातना देकर मरवा डालने के लिए रणथम्भोर के दुर्ग में भेज दिया गया।[2]

अकबर ने काज़ी जलाल मुल्तानी को यह सोचकर दक्षिण के लिए भेज दिया कि वहाँ के शासक काजी को विभिन्न प्रकार की यातनायें देकर मार डालेंगे, किन्तु अकबर की उक्त अभिलाषा पूरी नहीं हो सकी, क्योंकि दक्षिण के मुस्लिम शासकों के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उन्होंने उसे पुरस्कृत किया। संभवतः इसके पीछे यह कारण रहा हो कि दक्षिण के मुस्लिम शासक अकबर से घृणा करते थे। अतः अकबर के शत्रु को शरण देकर उन्होंने प्रसन्नता का अनुभव किया।

आगे के एक प्रकरण में हम इस तथ्य का सम्यक् रहस्योद्घाटन करेंगे कि अकबर के बहुचर्चित दर्पपूर्ण विवाहों के सम्बन्ध में जो यह कहा जाता है कि वे भारतवर्ष में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक एकता एवं समन्वय की दृष्टि से किये गये थे, पूर्णतः गलत है तथा उक्त विवाह सेना द्वारा शाही हरम के लिए बलात् भारतीय नारियों के निर्लज्ज अपहरण थे। भारतीय नारियों के साथ अकबर के झूठे विवाहों में राजा भारमल की कन्या के साथ शादी (अपहरण) बहुचर्चित रही है। वस्तुतः भारमल की कन्या के साथ अकबर का विवाह नहीं हुआ था, अपितु अपनी क्रूर-निर्मम सेना द्वारा उसने भारमल की कन्या का अपहरण करवाया था। उक्त अवसर पर जैसाकि

---

१. मुन्तखबुत-तवारीख, अनुवाद, भाग २, पृष्ठ ३२१।
२. वही, पृष्ठ ३२।

होना चाहिए, अकबर किसी सुखी, प्रिय अवगुंठन में सुस्मित वधु को नहीं ले जा रहा था, अपितु उसकी डोली में एक क्रन्दन-रत सिसकती हुई बाला थी। इस घटना के विवेचन से अकबर की कामासक्ति, क्रूरता तथा नारियों के प्रति उसकी अपहरणवृत्ति का परिचय मिलता है। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव की पुस्तक के एक पृष्ठ के फुटनोट के उल्लेख से अकबर नारियों का एक क्रूर अपहरणकर्ता सिद्ध होता है। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव का कथन है कि—"जैसाकि विंसेंट स्मिथ का कथन है, उक्त विवाह 'दवोसा' में सम्पन्न नहीं हुआ। देवोसा तथा अकबर के मार्ग के अन्य स्थानों की जनता उसके आगमन का समाचार सुनकर भाग खड़ी हुई थी।"[1]

हिन्दू नारियों का अपहरण कर शाही हरम में बन्द कर लिये जाने सम्बन्धी अकबर की क्रूरता का यथातथ्य मूल्यांकन इस तथ्योल्लेख से किया जा सकता है कि अम्बेर (जयपुर) के शासक भारमल की कन्या को जीवन में केवल एक बार थोड़ी दया प्रदर्शित करते हुए पितृ-गृह जाने की अनुमति प्राप्त हुई थी। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने उल्लेख किया है, 'बादशाह की हिन्दू पत्नी अम्बेर की राजकुमारी को केवल एक बार अपने भाई भूपत के देहावसान पर शिष्टाचारवश शोक व्यक्त करने पिता के घर जाने की अनुमति दी गई थी।'[2] इसका तात्पर्य यह है कि अकबर के हरम में नारियों की स्थिति आजन्म दण्ड प्राप्त बन्दियों के समान ही होती थी। उन्हें कठोर बंधनों में रखा जाता था। बाहरी संसार के किसी व्यक्ति से भेंट करने की बात तो दूर, उन्हें अपने सगे-सम्बन्धियों से भेंट करने तथा माता-पिता के घर जाने की अनुमति प्राप्त नहीं होती थी।

अकबर चूंकि एक धर्मान्ध मुसलमान था तथा हिन्दुओं से सख्त नफ़रत करता था, अतः हिन्दुओं के मकानों एवं भवनों को अपहृत कर वह उन्हें ईसाइयों को सौंप दिया करता था। इस तथ्य का साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव का कथन है, "एक कुलीन हिन्दू परिवार ने कुछ मकानों पर अपना दावा किया। ये मकान जेसूइट पादरियों को नये धर्मान्तरित विवाहित ईसाइयों के निवास की व्यवस्था के लिए दिये गये थे।

१. अकबर : दी ग्रेट, डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, प्रकाशक—शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० (प्रा०) लि०, आगरा। भाग १, पृष्ठ ६३।
२. वही, भाग १, पृष्ठ १४३।

जेवियर ने आगरे में उन मकानों पर अधिकार के लिए अकबर से आदेश प्राप्त कर लिया था। उक्त मकान लाहौर के 'मिशन' के अधिकार में थे। मकानों पर दावा करने वाले हिन्दू परिवारों को मकानों के हस्तांतरण में अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। 'पिन्हेइरो' को इससे सन्तोष हुआ।" डॉ० आशीर्वादीलाल की पुस्तक के पृष्ठ ४०६ के फुटनोट के तथ्योल्लेख से ज्ञात होता है कि 'पिन्हेइरो' तथा उसके सहयोगियों पर चर्च में मनुष्य का मांस खाने, बालकों का अपहरण करने तथा युवकों की हत्या करने के दोष लगाये गये। एक घरेलू नौकर से जालसाज़ी कर पादरियों को ज़हर देने का भी एक प्रयास किया। सन् १६०० ई० के क्रिसमस के दिन पिन्हेइरो ३९ लोगों के धर्मान्तरित होने सम्बन्धी सूचना देने में समर्थ हो सका। एक धर्मान्तरित व्यक्ति का नाम 'पालदा' (सम्भवतः प्रह्लाद) था, जो एक सम्मानीय ब्राह्मण परिवार से सम्बन्धित वैद्य था।

किसी भी व्यक्ति की प्रकृति एवं स्वभाव का अवलोकन प्रायः उसकी रुचियों से किया जा सकता है। अकबर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि मनुष्य तथा जंगली जानवरों की खूँखार लड़ाइयों को देखकर उसे अतिशय आनन्द तथा मानसिक संतोष प्राप्त होता था। उसके मनोरंजन का यह भी एक बड़ा साधन था। मान्सरेट ने उल्लेख किया है कि एक बार अकबर ने पादरियों को तलवार-बाज़ मनुष्य तथा जंगली जानवरों की खूँखार लड़ाई देखने के लिए आमन्त्रित किया, किन्तु उन्होंने जवाब दिया कि वे उक्त खूनी लड़ाई नहीं देख सकेंगे, क्योंकि उनके धर्म में इसकी अनुमति नहीं है। ईसाई धर्म के नियमों एवं नैतिकता के यह सर्वथा प्रतिकूल है। इस प्रकार के हत्या-काण्ड को संयोजित करना अथवा देखना ईसाई धर्म में स्वीकार्य नहीं है।

अकबर के सम्बन्ध में यह बहुचर्चित विषय रहा है कि वह हिन्दू विधवाओं को उनके पतियों की चिताओं के साथ जलकर भस्म हो जाने सम्बन्धी सती होने की परम्परा में कई अवसरों पर हस्तक्षेप किया करता था। प्रायः कहा जाता है कि अकबर उक्त परम्परा का उन्मूलन करना चाहता था। अकबर के इस प्रकार के हस्तक्षेपों को लोग उसकी (तथा-कथित) प्रगतिशील विचारधारा कहते हैं। यह पूर्णरूपेण भ्रांत धारणा है तथा अकबर के सही व्यक्तित्व को ग़लत ढंग से प्रस्तुत करना है। सती प्रथा

में अकबर ने तब ही हस्तक्षेप किया जबकि उसका उद्देश्य किसी हिन्दू शोक-विह्वल नारी को अपने हरम में लाना होता था। सती प्रथा को समाप्त करने सम्बन्धी धारणा के सर्वथा प्रतिकूल अकबर उसे एक आडम्बर-युक्त प्रदर्शनी मानता था, जिसे महलों के ऊपरी छज्जों को देखने के लिए वह प्राय: विदेशियों को आमन्त्रित करता था। मान्सरेट ने उल्लेख किया है कि बादशाह ने आदेश दिया कि सती प्रथा का एक दृश्य देखने के लिए पादरियों को बुलाया जाये। अनभिज्ञता की स्थिति में वे वहाँ गये जहाँ कोई हिन्दू नारी सती होने वाली थी। सती होने के दृश्य को देखकर खेद की मुद्रा में उन्होंने महसूस किया कि उक्त काण्ड कितना क्रूर तथा बर्बर था। रुडोल्फ ने अन्ततः खुले-आम बादशाह की भर्त्सना की कि इस प्रकार के काण्ड को न्यायोचित करार देना तथा अनुमोदित करना अपराध है। यह उदाहरण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि अकबर सती प्रथा को समाप्त करना नहीं चाहता था, अपितु वह इसे एक कौतुकपूर्ण प्रदर्शनी समझता था। इससे उसकी आत्म-बद्ध क्रूरता एवं बर्बरता पर प्रकाश पड़ता है।

एक बार एक अधिकारी को अकबर ने आदेश दिया कि वह सिंधु नदी के कम पानी वाले भाग का पता लगाकर आये। अधिकारी ने लौटकर जवाब दिया कि ऐसा कोई स्थान नदी में नहीं है। बादशाह ने पूछा कि क्या वह वास्तव में अभिसूचित स्थान पर गया था ? जब उसे यह पता चला कि अधिकारी स्थान खोजने गया ही नहीं था तो उसने उसे गिरफ्तार करने का आदेश दिया। उसे उस स्थान पर घसीटकर लाया गया, जहाँ उसे जाने को कहा गया था। बैल की खाल के एक फूले हुए थैले में उसे लम्बा करके बाँध दिया गया तथा नदी की धारा में उतारा गया। उक्त विचित्र दृश्य को देखने के लिए समूची फौज़ नदी के किनारे एकत्रित हो गई थी। थैले में बंद अधिकारी नदी के मध्य में इधर-उधर धारा के थपेड़े खाता रहा। वह चीख-चीखकर रो रहा था तथा दया की भीख माँग रहा था कि उसे क्षमा कर दिया जाये, किन्तु बादशाह का हृदय नहीं पसीजा। शाही खेमे से दूर जब वह बहता चला गया तो बादशाह ने आदेश दिया कि उसे धारा के थपेड़ों से मुक्त किया जाय। उसे शाही 'सम्पत्ति' के रूप में मानते हुए बेचने के लिए सभी बाजारों में घुमाया गया। अन्ततः एक गुलाम के रूप में उसकी नीलामी की गई। अस्सी सोने के सिक्कों में उसके एक मित्र ने उसे खरीदा।

उक्त धन को शाही खजाने में जमा किया गया। यह घटना इस तथ्य का प्रमाण है कि अकबर दोषी अधिकारियों को पैशाचिक ढंग से सजाएं तो देता ही था, साथ ही उन्हें बेचकर वह सौदेबाज़ी भी करता था। वह एक क्रूर-हृदयहीन व्यक्ति था, जो मनुष्यों को बेचकर अपने खज़ाने के लिए धन अर्जित करता था।

मान्सरेट ने उल्लेख किया है कि 'गैबर' (खैबर) की घाटी से निकलने के बाद मैदान में पहुँचते ही बादशाह ने कुछ गाँवों को जला देने का आदेश दिया, क्योंकि वहाँ के निवासियों ने उसे अनाज देना तथा उसके मार्ग में खाद्यान्न की आपूर्ति करना अस्वीकार कर दिया था। अकबर इतना धूर्त तथा मक्कार था कि उसने सोचा कि कहीं उसकी फौज खैबर की घाटी में उलझकर खत्म न हो जाये या उसके भारत वापस लौटने का मार्ग बन्द न कर दिया जाये, अतः उसने गाँवों को जला देने का आदेश दिया।

मान्सरेट का कथन है कि जिन राजकुमारों को सजायें दी जाती थीं, उन्हें ग्वालियर के दुर्ग की कालकोठरी में भेजा जाता था। जहाँ जंजीरों में जकड़े हुए, गन्दगी के बीच वे सड़ जाया करते थे। कुलीन अपराधियों को सज़ा देने के लिए कुलीन दरबारियों को नियुक्त किया जाता था किन्तु जो सामान्य या नीच कुलोत्पन्न होते थे उन्हें या तो सन्देशवाहक कप्तानों के हवाले कर दिया जाता था या प्रमुख जल्लाद को सौंप दिया जाता था। प्रमुख जल्लाद एक ऐसा अधिकारी होता था जो महल में भी विभिन्न प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित होता था। बादशाह के सामने वह दण्ड देने के विभिन्न हथियारों; यथा—चमड़े के चाबुक, ताँबे के तेज़ तीरों एवं प्रत्यंचा तथा ऐसे चाबुक, जिनके सिरों पर धातुओं के छोटे-छोटे कीलों वाले गोले लगे रहते थे, (इस हथियार के सम्बन्ध में हमारा ख्याल है कि प्राचीनकाल में इसे 'वृश्चिक' कहा जाता था) आदि के साथ सदैव उपस्थित रहता था। विभिन्न प्रकार की जंजीरें तथा हथकड़ियाँ, लोहे के अन्य हथियार आदि राजमहल के प्रमुख द्वार पर टंगे रहते थे। इन हथियारों की देख-रेख प्रमुख जल्लाद ही करता था।

भारतवर्ष के मुस्लिम बादशाह जनता में अपना प्रभुत्व स्थापित करने तथा उनके हृदय में दहशत उत्पन्न करने के तरह-तरह के घृणित प्रदर्शन करते थे। इनमें से एक उपाय हड्डी के ढाँचों, नर कंकालों, अंग-भंग की गई

लाशों में भूसा आदि भरकर जनता के सामने प्रदर्शित करना था। इस प्रकार के प्रदर्शनों का महत्त्व समझने में मध्ययुगीन बादशाह अपनी 'सूझ-बूझ' के लिए काफ़ी आगे बढ़े हुए थे। इस प्रकार के खूंखार प्रदर्शन कर वे जनता को सदैव भयभीत रखते थे, अकबर इसका कोई अपवाद नहीं था। जनता को भयभीत रखने तथा अपनी अधीनता स्वीकार करवाने के लिए वह भी इस प्रकार के खूंखार प्रदर्शन करता था, इसके लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। बहराम खाँ के विद्रोह का प्रमुख कारण अकबर वली बेग को मानता था। वली बेग की मृत्यु एक युद्ध में घायल होकर हुई थी। अकबर ने आदेश दिया कि उसका सिर काट लिया जाये। उसका कटा सिर प्रदर्शन के लिए समूचे हिन्दुस्तान में भेजा गया। जब उसका प्रदर्शन इटावा में किया जा रहा था, उसे लाने वाले समस्त पैदल सैनिकों को बहादुर खाँ ने मरवा डाला।

अकबर की अनैतिकता

समकालीन मुस्लिम एवं यूरोपीय ग्रंथों, इतिवृत्तों एवं अन्य विवरणों का अध्ययन करने से यह सिद्ध होता है कि अकबर एक अत्यधिक कामासक्त बादशाह था। उसकी विषयासक्ति चरमसीमा पर पहुँची हुई थी। विभिन्न शासकों के प्रति अकबर के युद्ध-अभियान का मुख्य उद्देश्य वस्तुतः अपने हरम को सुन्दर स्त्रियों से भरना होता था। यदि पराजित शासक मुसलमान होते तो अकबर उनके हरम पर अपना अधिकार जमा लेता था। यदि वे हिन्दू होते तो उन्हें बन्दी बनाकर कठोर यातनाएँ दी जाती थीं तथा विवश किया जाता था कि वे अपनी बहनों, पुत्रियों अथवा परिवार की अन्य महिलाओं को शाही हरम में भेजें।

युद्धों के अतिरिक्त अकबर अपने हरम के लिए सुन्दर रमणियों को प्राप्त करने के लिए अन्य अनेक तरीके भी अपनाता था। कभी भेंटकर्ताओं को विवश किया जाता था कि वे अकबर को खुश करने के लिए नज़राने के बतौर सुन्दर औरतों को पेश करें। कभी उसके सेनापति उसके क्रोध को शांत करने के लिए रूपसियों को प्रस्तुत करते थे। कभी अकबर के निर्देशानुसार प्रत्यक्ष हस्तक्षेप द्वारा अथवा सेना की सहायता से अपहरण द्वारा भी जन-सामान्य के बीच से सुन्दर औरतों को शाही हरम में लाया जाता था। कभी ऐसा भी होता था कि जो हिन्दू नारियाँ सती होना चाहती थीं, उन्हें बलात् शाही हरम में प्रवेश के लिए छोटी-मोटी लड़ाई कर बन्दी बना लिया जाता था।

विधिवत् विवाह करके लाई गई चुनीदा बेगम भी जब वैभवपूर्ण हरम के सुसज्जित पिंजरों में बन्द करके रखी जाती थी तो बादशाह की वासना की तुष्टि मात्र करने वाली असहाय रखैलों के दुर्भाग्य की कल्पना पाठक स्वयं कर सकते हैं। ये स्त्रियाँ सदैव बुर्के में रहती थीं। बादशाह स्वयं ही

यदा-कदा इन्हें कुछ देर के लिए अवगुण्ठन-मुक्त करता था। उनके लिए जीवन का अस्तित्व मूक पशुओं के समान होता था।

तत्कालीन जेसूइट का साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए स्मिथ का कथन है—"सन् १५८२ ई० में अक्वाविवा के अधीन प्रथम जेसूइट मिशन के अनुभव इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि अकबर शराब पीने का बहुत आदी था। सदाशय पादरी ने अनेकानेक स्त्रियों के साथ अकबर के यौन-सम्बन्धों को देखकर उसकी दृढ़तापूर्वक भर्त्सना की। पादरी की इस साहसिक भर्त्सना पर अकबर क्रुद्ध नहीं हुआ प्रत्युत कुछ लज्जित होते हुए उसने इस बात की उपेक्षा कर दी। अकबर को तो नशाखोरी और कामुकता अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में मिली थी, फिर एक पादरी की भर्त्सना का उसपर क्या प्रभाव हो सकता था।"

दूसरों की पत्नियों के अपहरण की प्रबल इच्छा रखने वाले अकबर पर उत्तेजित हुए एक व्यक्ति के घातक आक्रमण का विवरण प्रस्तुत करते हुए स्मिथ महोदय ने लिखा है—"जनवरी के प्रारम्भिक दिनों में सन् १५६४ में अकबर दिल्ली गया। ११ जनवरी को जब वह निज़ामुद्दीन की दरगाह से लौट रहा था तो एक व्यक्ति ने एक मदरसे के छज्जे से अकबर पर तीर चलाया जिससे उसका कंधा घायल हो गया। आक्रमणकारी फौलाद नाम का एक हिन्दू गुलाम था। दुष्कृत्यों को समाप्त करने के विचार से उसकी हत्या करने के इस प्रयास से अकबर भयभीत होकर कुछ हताश हो गया और उसने दिल्ली के परिवारों की कुछ स्त्रियों को विवाह द्वारा हस्तगत करने की एक नई योजना बनाई। उसने एक शेख को बाध्य किया कि वह अपनी पत्नी को तलाक दे दे ताकि अकबर उससे विवाह कर सके। अकबर पर किए गए प्रहार के आतंक ने उसकी इस प्रकार की अवांछनीय कार्यवाहियों को समाप्त कर दिया। अकबर द्वारा विभिन्न दरबारियों की मान-प्रतिष्ठा नष्ट करने की दुश्चेष्टाओं से उत्तेजित होकर ही सम्भवतः उक्त प्रहार का साहस किया गया था। फिर भी अकबर पत्नियाँ और रखैलें रखने में आजीवन स्वच्छन्द रहा।"

अकबर के मन में स्त्रियाँ प्राप्त करने की लालसा सदैव बनी रहती थी। उसकी अपरिमित काम-वासना तथा नित नई स्त्रियों के प्रति उसकी गर्हणीय इच्छा का सम्यक् दिग्दर्शन इस घटना से कराया जा सकता है कि

जब उसके सेनापति अधम खाँ ने मध्यभारत में देवास के निकट मालवा के व्यभिचारी मुस्लिम शासक बाज़ बहादुर को पराजित करके उसके हरम पर अधिकार कर लिया तो यह खबर मिलते ही उन्नीस वर्षीय अकबर ने २७ अप्रैल, १५६१ को आगरे से कूच कर दिया क्योंकि वह इस बात से उत्तेजित हो उठा और नहीं चाहता था कि उसके योग्य सम्पत्ति पर उसका सेनापति अधिकार जमा ले। अधम खाँ की माता माहम अंगा अकबर के हरम की अधीक्षिका थी। अकबर के सम्भावित क्रूर प्रतिशोध के भय से माहम अंगा ने एक दरबारी को भेजकर अपने दुरात्मा पुत्र को अकबर के प्रस्थान की सूचना भिजवा दी और स्वयं भी अकबर के पीछे चली। माहम अंगा के अनुनय-विनय पर अधम खाँ का आत्मसमर्पण स्वीकार कर लिया गया। अधम खाँ भी कम दुष्ट नहीं था। उसने दो रूपसियों को अन्यत्र छिपा लिया। (अकबर तबतक आगरा वापिस नहीं आया जबतक कि उन दो रूपसियों का अभ्यर्पण नहीं हो गया।) माहम अंगा ने सोचा कि यदि उन दोनों रूपसियों को बादशाह के समक्ष उपस्थित किया गया तो उसके पुत्र की धूर्तता का पर्दाफाश हो जाएगा, अत: उसने (यह विचार करके कि मृतक के सम्बन्ध में पोल कैसे खुलेगी) उन दोनों असहाय, अबला रूप-सियों को मौत के घाट उतरवा दिया। अकबर ने भी इस घटना पर विशेष ध्यान नहीं दिया और वह इस घटित को अघटित समझ बैठा। माहम अंगा के इस क्रूर कृत्य के सम्बन्ध में अबुल फजल ने उसकी समझारी और सूझ-बूझ की सराहना करते हुए किसी प्रकार की शर्म नहीं की। ज्ञातव्य है कि अबुल फज़ल ने कई वर्णनों में माहम अंगा के दुष्कृत्यों की सराहना की है। अबुल फ़जल द्वारा माहम अंगा जैसी औरत की सराहना एवं प्रशंसा के पीछे यह कारण प्रतीत होता है कि माहम अंगा हरम में जिन स्त्रियों पर नियंत्रण रखती थी उनमें से कुछ अबुल फ़जल की काम-वासना की तुष्टि के लिए अवश्य ही भेजी जाती रही होंगी।

अकबर को १४ वर्ष की किशोरावस्था में ही सुविस्तृत साम्राज्य प्राप्त हुआ था एवं उसके अधिकार में बर्बरों एवं क्रूरों की एक विशाल सेना थी। उसके पास लूट-खसोट की अनन्त धन-सम्पत्ति भी थी। उसके हरम में स्त्रियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी अत: उसका कामुक हो जाना स्वाभाविक ही था, और वह ऐसा था भी। स्मिथ महोदय का कथन

है, "अबुल फ़ज़ल ने बार-बार इस तथ्य का उल्लेख किया है कि अकबर अपने प्रारम्भिक जीवन में प्राय: पर्दे के पीछे रहता था।" यौवनावस्था में वह सारा समय हरम में व्यतीत करता था तो पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि अपने बाद के जीवन में भी वह कितना कामासक्त रहा होगा ?

अकबर ने अपने संरक्षक एवं मंत्री बहराम खाँ को पदच्युत कर दिया एवं अंतत: उसकी हत्या करवा दी ताकि वह अनियंत्रित रूप से वेश्याओं से खिलवाड़ कर सके। उसका जीवन पूर्णरूपेण इन पुंश्चलियों द्वारा नियंत्रित एवं संचालित होने लगा था। स्पष्टत: वह शासकीय क्रिया-कलापों में किसी प्रकार की रुचि नहीं लेता था। हरम के नियंत्रण के लिए उसने माहम अंगा को अनुमति दे रखी थी। माहम अंगा एक अविश्वसनीय एवं अयोग्य स्त्री थी।

हमारे इतिहासकारों द्वारा माहम अंगा के क्रूर कृत्यों का यथातथ्य मूल्यांकन नहीं किया गया है। वह अकबर के लिए सुन्दरियाँ जुटाया करती थी तथा प्रभावशाली दरबारियों में हरम की सुन्दरियों को उपहार रूप में प्रस्तुत किया करती थी। उसका यही कार्य-व्यापार था कि हरम की देख-रेख करे तथा वहाँ की स्त्रियों का नियंत्रण करे। जब जहाँ जैसी आवश्यकता हो, वहाँ उनकी पूर्ति करें। हम इस बात का उल्लेख पहले ही कर चुके हैं कि माहम अंगा ने किस प्रकार अपने बेटे को अकबर के कोप-भाजन होने से बचाने के लिए दो हिन्दू महिलाओं की हत्या करवा दी थी।

अकबर की काम-वासना का उल्लेख करते हुए मुन्तखाबुत तवारीख में बदायूंनी का कथन है—"यह वह स्थान (मथुरा) था, जबकि दिल्ली के कुलीनों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के सम्बन्ध में अकबर ने विचार प्रकट किया। कुलीनों की बेटियों को चुनने तथा उनकी स्थितियों की जाँच-पड़ताल के उद्देश्य से नपुंसकों को हरमों में भेजा गया। अब्दुल वासी की पत्नी विलक्षण सुंदरी थी। एक दिन बादशाह की विषय-लोलुप दृष्टि उस पर पड़ी। मुगल बादशाहों का ऐसा कानून था कि यदि बादशाह किसी स्त्री की कामना करता था तो उसके पति को उससे तलाक लेना पड़ता था। इस प्रकार वह स्त्री शाही हरम में प्रविष्ट होती थी।" अकबर की काम-पिपासा की पूर्ति-हेतु उसके आदेशानुसार नपुंसक अथवा छोकरे मुख्य रूप से स्त्रियों का निरीक्षण करते थे तथा उनकी शारीरिक जाँच-पड़ताल कर अकबर को

सूचना देते थे कि कौन उसके योग्य है। उस भीषण एवं भयावह स्थिति की सहज ही कल्पना की जा सकती है, जबकि खूंखार दिखने वाले स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश हथियारों से सुसज्जित अकबर के अधिकारी प्रत्येक घर में किसी भी आयु एवं किसी भी स्थिति की सुन्दर स्त्री को बादशाह की काम-पिपासा के प्रशासन हेतु उठा ले जाने के उद्देश्य से प्रविष्ट होते थे। स्त्रियों को बलात् उठाकर ले जाया जाता था एवं बादशाह के सामने पेश किया जाता था।

कभी-कभी ऐसा भी होता था कि शाही अपहर्ताओं से अपने आपको सुरक्षित रखने के लिए कितनी ही महिलाएँ अपने को बदसूरत एवं अना-कर्षक बनाने के उद्देश्य से अपना शरीर आग की लपटों में झुलसा लेती थीं या तेज़ाब आदि के प्रयोग से स्वयं को कुरूप बना लेती थीं। बादशाह के हरम तथा सज्जित पिंजरों में स्थायी रूप से आजन्म यातनापूर्ण जीवन व्यतीत करने से बचने के लिए कुछ स्त्रियों ने शाही अपहर्ताओं की काम-पिपासा तृप्त कर उन्हें घूस दिया होगा। कितनी ही स्त्रियों को उनके शारी-रिक सौन्दर्य एवं गठन के निरीक्षण के लिए नंगा कर दिया जाता था। इस प्रकार नग्न कर जाँच-पड़ताल के बाद उन्हें बादशाह के सामने पेश किया जाता था। वस्तुतः यही वह कारण था, कि अकबर जहाँ भी जाता था, उससे भयभीत होकर वहाँ की जनता पलायन कर जाती थी। जनता अकबर से केवल इसलिए भयभीत नहीं रहती थी कि वह उनकी धन-सम्पत्ति को लूट-खसोट लिया करता था या उसके द्वारा विभिन्न प्रकार की यातनाएँ दी जाती थीं या अंग-भंग के दण्ड दिये थे, बल्कि जनता अकबर से इसलिए भी आतंकित रहती थी कि वह उनकी पत्नियों, माताओं, बहनों एवं पुत्रियों को अपनी काम-पिपासा के लिए उठवा ले जाया करता था।

तत्कालीन लेखों में इस बात के भी संकेत प्राप्त होते हैं कि अकबर सुन्दर स्त्रियों का उपयोग न केवल अपनी काम-तृप्ति के लिए करता था, अपितु वह उनका विनिमय भी करता था। दरबारियों की काम-वासना-तृप्ति के लिए वह उन्हें उपहार स्वरूप प्रदान भी करता था। 'अकबर : दी ग्रेट मुगल, के पृष्ठ १८५ पर विंसेंट स्मिथ का कथन है—"ग्रिमसन के इस कथन की कि अकबर स्वयं को किसी एक स्त्री के प्रति निष्ठ रखता था तथा अपनी शेष रखैलों को दरबारियों में वितरित कर दिया करता था, पुष्टि

किसी अधिकृत उल्लेख से नहीं होती। ऐसा हो सकता है कि अकबर ने ऐसा कोई अभिवचन दिया हो किन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि अकबर ने अपने वचन का पालन किया हो या उसने सत्य बात ही कही हो।" आईने अकबरी के भाग ३, पृ० ३७८ पर अकबर के वचन उद्धृत हैं कि—"यदि पहले ही मुझमें यह बुद्धिमत्ता जागृत हो जाती तो मैं अपनी सल्तनत की किसी भी स्त्री का अपहरण कर अपने हरम में नहीं लाता, क्योंकि मेरी प्रजा मेरे बच्चों के समान है।" इस प्रकार के उल्लेख चाटुकार दरबारी लेखकों ने किए हैं। यथार्थ चरित्र को छिपाने वाले खोखले, धूर्ततापूर्ण इस प्रकार के विवरणों से भारतीय इतिहास में अकबर का मूल्यांकन करते हुए पाठकों को धोखा ही होगा। इस प्रकार के विवरणों को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। बाहरी रूप से इन विवरणों में साधुता प्रदर्शित होती है। किन्तु इनके पीछे उसकी गहरी चालें होती थीं। धूर्त और चरित्रहीन अकबर अपने आपको 'साधु' प्रदर्शित करने के लिए अपने चापलूस दरबारी-लेखकों से इस प्रकार के उल्लेख करवाया करता था।

अकबर के शासनकाल में स्त्रियों के खुले व्यापार, आदान-प्रदान तथा क्रय-विक्रय की प्रथा प्रचलित थी। इसका यथातथ्य चित्रण बदायूँनी ने किया है। उसका कथन है—"इस वर्ष (हि० सा० ९७१) बादशाह ने शिया होने का दोषारोपण करके इस्फाहन के मिर्जा मुकीम एवं कश्मीर के मीर याकूब को मृत्युदंड दिया। उन दोनों ने हुसैन खाँ की बेटी को नज़राने के बतौर दरबार में पेश किया था।" इस तथ्योल्लेख से इस बात के संकेत प्राप्त होते हैं कि अकबर के शासनकाल में उसकी सल्तनत से कोई भी किसी की भी बेटी, बहन अथवा बीवी को अपहृत कर उपहार के रूप में प्रस्तुत कर सकता था।

अकबर के शासनकाल में स्त्रियों को अपहृत किया जाता था या युद्ध के बाद जिन्हें बलात् उठा लिया जाता था, उनके प्रति बड़ा ही क्रूर व्यवहार किया जाता था। निष्ठुरतापूर्वक उनका शीलहरण किया जाता था। बलात्कार और व्यभिचार की घटनाएँ सामान्य थीं। उन स्त्रियों को अल्प मूल्य पर बेच दिया जाता था तथा नगर में वेश्याओं का जीवन व्यतीत करने के लिए उन्हें बाध्य किया जाता था। यही कारण है कि दिन-प्रतिदिन उन असहाय एवं अबला स्त्रियों की संख्या बढ़ती ही जाती थी। बदायूँनी ने

दरबारी इतिवृत्त के पृ० ३११ पर उल्लेख किया है---"बादशाह के विभिन्न राज्यों से राजधानी में वेश्याओं की संख्या इतनी बढ़ गई थी कि उनकी गणना करना मुश्किल हो गया था। अकबर ने उनके निवास-स्थान के लिए निरीक्षक, सहायक तथा सचिव नियुक्त कर दिए थे। यदि कोई किसी भी स्त्री के साथ सम्भोग करना चाहता या उनमें से किसी को अपने घर ले जाना चाहता तो सरकारी अधिकारियों के साथ साठ-गांठ कर वैसा कर सकता था। किन्तु किसी व्यक्ति को अकबर यह अनुमति नहीं देता था कि वह किसी नर्तकी को रात के समय कतिपय शर्तों को पूरा किए बिना अपने घर ले जा सके। यदि कोई प्रसिद्ध दरबारी किसी कंवारी को प्राप्त करना चाहता था तो उसे सहायक अधिकारी के माध्यम से प्रार्थना-पत्र देना पड़ता था। अभिलषित कंवारी को प्राप्त करने के लिए दरबार से अनुमति प्राप्त करनी होती थी। शराब-खोरी और भ्रष्टाचार के कारण कई बार दो दल बन जाते थे। आपस में सिर-फुटव्वल होते थे। गुप्त रूप से अकबर कुख्यात वेश्याओं को बुलवाता तथा उनसे झगड़े के कारणों के सम्बन्ध में पूछताछ करता।" अकबर के शासनकाल में इस प्रकार की घटनाएँ दैनन्दिन तथा सामान्य थीं।

भारतवर्ष में मुस्लिम शासनकाल में वेश्यावृत्ति का सर्वाधिक प्रचार हुआ। स्थान-स्थान पर वेश्यालय स्थापित हुए। इन समस्त घृणित कृत्यों का पूर्ण उत्तरदायित्व मुगल बादशाह अकबर पर ही था। वेश्यावृत्ति को उसका संरक्षण प्राप्त था। उसी के इशारों पर भारतवर्ष में वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिला।

युद्धादि के पश्चात् पराजित शत्रुओं से की गई संधियों में एक मुख्य शर्त प्रायः यह होती थी कि पराजित शत्रु अकबर अथवा उसके अधिकारियों के लिए अभिलषित स्त्रियाँ (अपनी बेटी, पत्नी अथवा बहन) समर्पित कर दे। इस प्रकार अकबर ने प्रायः समस्त प्रमुख हिन्दू राजाओं की कन्याओं का एक विशाल समूह अपने हरम में एकत्रित कर लिया था। उसके हरम में अधिकांश हिन्दू ललनाएँ थीं। अकबर ने उन्हें युद्धादि के बाद ही प्राप्त किया था।

पराजित शत्रुओं की असंख्य अपहृत स्त्रियों के साथ किस प्रकार बलात्कार किया जाता था तथा उन्हें वेश्या बनने के लिए बाध्य किया जाता

था, इससे सम्बन्धित निर्देश बदायूँनी ने किया है। उसका कथन है—"जैन खाँ कोका तथा आसफ खाँ को मवान तथा बजूर के अफगानों को दण्ड देने तथा जल्लालह रोशनाई को विनष्ट करने के लिए नियुक्त किया गया था, उन्होंने उनमें से अधिकांश को मौत के घाट उतार दिया तथा जल्लालह की बीवियों, उसके परिवार के सदस्यों एवं भाई वहादत अली तथा अन्य १४०० परिजनों को बन्दी बनाकर दरबार में भेज दिया। बंदियों के सम्बन्ध में कल्पना की जा सकती है ?" इन अपहृत स्त्रियों का वितरण दरबार में एकत्रित क्रूर एवं बर्बर व्यक्तियों के बीच किया जाता था। इन्हीं स्त्रियों को कभी-कभी भेंटकर्ताओं को उपहारस्वरूप प्रदान किया जाता था। वासना के भूखे भेड़ियों द्वारा उन स्त्रियों की कैसी दुर्दशा की जाती होगी, यह कल्पनातीत है। उन्हें बेघरबार कर बरबाद किया गया। उनके साथ बलात्कार और व्यभिचार की क्रूर घटनाएँ हुई होंगी। उन्हें भूखों मारा गया होगा एवं अपमानित जीवन व्यतीत करते हुए अन्धकारपूर्ण कोठरियों में बुर्कों में बन्द रखा गया होगा। उनके बुर्कों का अनावरण केवल बादशाह अथवा उच्च अधिकारी ही करते होंगे। उन्हें उतना ही भोजन दिया जाता था, जितने से वे जीवन का अस्तित्व बचाए रख सकें। कहा जा सकता है कि उनका जीवन पशुओं से भी बदतर रहा होगा। अकबर की पैशाचिक काम-पिपासा के सम्बन्ध में एक इतिहास पुस्तक के सम्पादक (फादर मन्सरेट) का कथन है—"एक से अधिक स्त्रियाँ रखने की अपनी आदत को छोड़ने में अकबर असमर्थ था। इस लोकापवाद में कोई तथ्य नहीं है कि उसने एक बार अपनी बीवियों को दरबारियों में वितरित कर देने की इच्छा व्यक्त की थी।" इतिहासकार द्वारा प्रस्तुत यह वितरण सत्य नहीं है क्योंकि लोकापवाद पूर्ण रूप से सत्य था। अकबर की पत्नियों की संख्या निश्चित नहीं थी क्योंकि वह सल्तनत की सभी स्त्रियों को अपने हरम की बीवियाँ समझता था। युद्धोपरांत अपहृत हिन्दू स्त्रियाँ उसके हरम में घसीट लाई जाती थीं, अतः उनकी संख्या अनन्त थी। अतः स्त्रियों के दरबारियों में वितरित की जाने की बात सत्य प्रतीत होती है।

अकबर के दरबार में ईसाई और इस्लाम की समान विशिष्टताओं पर प्रायः वाद-विवाद हुआ करता था। इस सम्बन्ध में मन्सरेट ने अपनी कमेंट्री के पृष्ठ ६० पर लिखा है कि, "रोडल्फ ने मुसलमानों को यह मानने के

लिए बाध्य कर दिया कि उनके पैगम्बर ने एक अनुच्छेद में लौण्डेबाजी की अनुमति दी है। जब यह बात प्रमाणित हो गई तो मुसलमान लज्जित हो गए।"

पुर्तगालियों के प्रति अकबर मित्रतापूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करता था, किन्तु उसके सेनापति उनपर आक्रमण कर दिया करते थे। इस प्रकार की एक घटना का उल्लेख करते हुए मन्सरेट का कथन है—"इस विवाद का सम्बन्ध उस जहाज से था, जिसे पुर्तगालियों ने विजित कर लिया था। मंगोलों ने नीचता का परिचय देते हुए दोस्ती के बहाने दमन द्वीप में जासूस भेजे। जेकोबस लोयीजियस कोटिग्नस के नियन्त्रण में एक जहाजी बेड़ा जब तापती नदी के मुहाने पर लंगर डाले हुए था, रात्रि के समय सहसा ही घात लगाकर उन्होंने हमला किया। नौ जहाजी बन्दी बनाए गए तथा विजय की खुशी मनाते हुए उन्हें सूरत लाया गया। उनके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया गया। दूसरे दिन उन्हें प्राण-दण्ड दिया गया, क्योंकि वे धन-सम्पत्ति एवं कुलीन सुन्दर स्त्रियों के लालच में नहीं आए और उन्होंने मुसलमान बनने से इन्कार कर दिया। उनके कटे सिर फतेहपुरम् (फतेहपुर सीकरी) लाकर बादशाह के सामने पेश किये गए। यद्यपि अकबर को सब मालूम था परन्तु कालान्तर में उसने इस घटना के प्रति अपनी अनभिज्ञता ही प्रकट की।"

स्पष्ट है कि धर्म-बदलने वाले नए लोगों को उपहार में जो अपहृत हिन्दू महिलाएँ दी जाती थीं उन्हें वेश्यावृत्ति, बलात्कार एवं व्यभिचार के लिए दासी बनाकर रखा जाता था। ऐसी स्त्रियाँ प्रायः प्रत्येक युद्ध के बाद अपहृत की जाती थीं। उपर्युक्त घटना में प्रयुक्त 'कुलीन' शब्द का सम्बन्ध उन्हीं स्त्रियों से है, जिनका प्रयोग धर्म बदलने वाले नए लोगों के लिए प्रलो-भन के रूप में किया जाता था। मुस्लिम दरबारी इतिवृत्तों में अधिकांशतः हिन्दू महिलाओं को ही वेश्याओं, दासियों, नर्तकियों के रूप में उल्लिखित किया गया है।

पूर्ववर्ती किसी प्रकरण में हम यह विश्लेषण कर चुके हैं कि अकबर सती प्रथा को समाप्त नहीं करना चाहता था। इस प्रकार के दुःखपूर्ण दृश्यों को वह कौतुकपूर्ण मनोरंजन के अवसर समझता था। ऐसे अवसरों पर वह अपने मुसलमान दरबारियों एवं विदेशियों को भी मन बहलाने के

लिए आमन्त्रित किया करता था। सती होने की ऐसी कुछ घटनाओं के उदाहरण हैं जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि अकबर ने हस्तक्षेप किया। इन हस्तक्षेपों का प्रमुख उद्देश्य उन विधवाओं को हरम में ले जाना था। हम केवल दो दृष्टान्त प्रस्तुत करेंगे।

"राजा रायसिंह की कन्या का विवाह पन्ना के राजा रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र के साथ सम्पन्न हुआ था। जब राजा रामचन्द्र का देहावसान हुआ, अकबर ने उनके पुत्र को राजसिंहासन-आसीन होने के लिए पन्ना रवाना किया। किन्तु राजधानी के निकट पहुँचते ही वीरभद्र शिविका से गिर पड़ा तथा उसकी मृत्यु हो गई। उसकी पत्नी ने स्वर्गवासी पति के साथ सती हो जाने की अपनी इच्छा की घोषणा की। इसमें अकबर ने हस्तक्षेप किया।" इस घटना के परीक्षण से यह उद्‌घाटित होता है कि यह केवल एक सती होने जा रही नारी के अपहरण से ही सम्बन्धित घटना नहीं है, अपितु इसके पीछे एक हत्या की पूर्व-निर्धारित योजना भी लक्षित होती है। अकबर के दरबार में वीरभद्र के निवासकाल के दौरान अकबर ने अवश्य ही उसकी पत्नी को देखा होगा, तभी से उसपर उसकी कुदृष्टि रही होगी। इस घटना में कितने ही संदेहास्पद स्थल हैं। अपनी राजधानी पहुँचने के पूर्व ही वीरभद्र शिविका से क्यों और कैसे गिरा होगा और यदि यह मान भी लें कि वह किसी दुर्घटनावश शिविका से गिर भी पड़ा, तो कुछ ही फीट की ऊँचाई से उसका गिरना उसके लिए प्राणघातक कैसे सिद्ध हुआ कि तुरन्त उसकी मृत्यु हो गई ? स्पष्ट है, अकबर ने वीरभद्र की पत्नी पर अधिकार जमाने के उद्देश्य से उसकी हत्या करवाई तथा शिविका से गिर-कर मृत्यु होने की अफवाह फैलवा दी।

सती-प्रथा में अकबर द्वारा हस्तक्षेप किये जाने की ऐसी ही एक दूसरी संदेहास्पद घटना है। "राजा भगवानदास के चचेरे भाई को पूर्वी प्रान्तों में भेजा गया। विशेष आदेश पालन के लिए उसने घोड़े तेज दौड़ाये। गर्मी तथा अत्यधिक थकावट के कारण चौसा के निकट उसका शरीरान्त हो गया। उसकी विधवा पत्नी—उदयसिंह की बेटी ने सती हो जाने की तैयारी आरम्भ कर दी। अकबर ने घटना-स्थल पर पहुँचकर उसे रोका। उसके सम्बन्धियों को प्राणदान दिया। उन्हें केवल कैदी बनाया गया। घटना की सही तिथि तथा स्थान के सम्बन्ध में उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

अबुल फ़जल ने जो उल्लेख किया है, उसमें स्पष्टता तथा यथार्थता का अभाव है।" (अकबर : दी ग्रेट मुगल, पृष्ठ १६३)।

इतिहास के छात्रों एवं अधिकारी विद्वानों को चाहिए कि इस प्रकार के झूठे तथ्यों एवं उल्लेखों को उसी रूप में मान्यता न दें। ऐसे उल्लेखों का किंचित भी महत्त्व नहीं है, विशेषकर ऐसी स्थिति में जबकि अबुल फजल को एक 'निर्लज्ज चाटुकार' लेखक की संज्ञा दी गयी है। इतिहास के विद्वानों को चाहिए कि वे ऐसे उल्लेखों का परीक्षण एवं विश्लेषण करें। उक्त घटना से सम्बद्ध भ्रमात्मक एवं असंयोजित निर्देश का पुनर्गठन करते हुए हम यह देखते हैं कि जयमल को जब कार्यभार सँभालने के लिए रवाना किया गया, वह पूर्ण स्वस्थ था। अपने दरबारी सहयोगी, स्वजनों एवं प्रिय पत्नी से विदा लेने के तत्काल बाद ही जयमल की मृत्यु हुई। इससे यह तथ्य प्रकट होता है कि उसे कार्य-सम्पादन का जाली आदेश दिया गया। मार्ग में जबरदस्ती गिराकर असहाय अवस्था में उसकी हत्या की गई। अकबर को उसके सम्बन्ध में प्रत्येक स्थिति की जानकारी मिलती रही होगी। अकबर के द्वारा घोड़े पर बैठकर तत्काल सही स्थान पर पहुँचना यह सिद्ध करता है कि जयमल का शरीरान्त अकबर के महल के निकट ही हुआ होगा। इससे इस तथ्य के भी संकेत प्राप्त होते हैं कि अकबर सही स्थान पर इसलिए पहुँचा, क्योंकि उक्त हत्या एक पूर्व-निर्धारित योजना थी तथा हत्या के उद्देश्य से ही किराए के गुण्डे उस स्थान पर नियुक्त किए गए थे। जयमल की पत्नी ने जब सती होने की तैयारी आरम्भ की तब यह कहा जाता है कि अकबर शीघ्र ही घोड़े पर सवार होकर वहाँ पहुँचा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सती होने के अवसर पर अकबर किसी साहित्यिक प्रणय-गाथा के नायक के समान रंगमंच के परदे के पीछे से घोड़े पर सवार उपस्थित हुआ। सती होती राजपूत ललना को रोकने के विषय में उसने किसी सेनापति पर विश्वास नहीं किया, न ही उसने यह काम पुलिस अधिकारी को सौंपा, क्योंकि उसे उन पर विश्वास नहीं था। तेजस्विनी राजपूत विधवा वीरांगना के सम्बन्धियों ने उसका उसके हरम में डाले जाने का विरोध किया। यह कहा जाता है कि अकबर ने उन्हें बन्दी बनाकर कालकोठरी में डलवा दिया। इस कथा की समाप्ति सहसा ही बिना इस बात का निर्देश दिये होती है कि अकबर ने बाद में

क्या किया अथवा शोकाकुल विधवा कन्या पर क्या बीती ? राह के काँटे समाप्त करके अकबर ने विधवा राजकन्या को अपने हरम में 'आश्रय' एवं 'संरक्षण' दिया होगा ? सती-प्रथा का उन्मूलन तो अकबर की जालसाज़ी और धोखा था।

उपर्युक्त दो दृष्टान्तों से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अकबर एक अत्यन्त धूर्त बादशाह था। अपने दरबारियों की पत्नियों, जिन पर उसकी विषयासक्त दृष्टि पड़ती थी, को प्राप्त करने के लिए वह इस प्रकार के आडम्बरपूर्ण नाटक रचा करता था। इस अभिनव अन्तर्दृष्टि से इतिहास के विद्वानों को अन्य संदेहास्पद घटनाओं का परीक्षण एवं विश्लेषण करना चाहिए।

अकबर की आक्रामक सेना से लड़ते हुए जब रानी दुर्गावती ने वीरगति प्राप्त की तो प्रचलित प्रथा के अनुसार एक भयावह जौहर हुआ। केवल दो नारियाँ—कमलावती (रानी दुर्गावती की बहिन) तथा पूरणगढ़ के राजा की कन्या (दिवंगता वीरांगना रानी की पुत्रवधू) ही जीवित शेष रहीं। उन्हें अकबर के हरम में आगरे भेज दिया गया। धर्मान्ध मुस्लिम लेखक यह उल्लेख करते हैं कि यद्यपि रानी दुर्गावती के पुत्र वीर नारायण के साथ पूरणगढ़ के राजा की कन्या का विवाह हुआ, किन्तु सहवास नहीं हो पाया था। स्पष्टत: यह एक धोखा है। मुस्लिम लेखक भ्रमात्मक ढंग से यह प्रतिपादित करते हैं कि अकबर अपने हरम में केवल कुंवारियों को ही प्रविष्ट करता था। यह अकबर की एक धूर्त चाल थी कि वह विवाहित स्त्रियों को भी कुंवारी घोषित कर अपने हरम में प्रविष्ट करता था। यथार्थ को यदि इस ढंग से उल्लिखित नहीं करवाया जाता तो सम्भव है कि एक 'घमण्डी' बादशाह की (तथाकथित) प्रतिष्ठा पर आघात होता। एक भ्रष्ट बादशाह इस प्रकार अपने द्विविध व्यक्तित्व को छिपाए रखता था। धर्मान्ध काज़ी, दरबारी तथा स्वयं अकबर संरक्षण प्राप्त चापलूस लेखकों से इस प्रकार के उल्लेख करवाया करते थे कि अकबर अपने हरम में केवल कुँवारियों को ही प्रवेश देता था। इस प्रकार विवाहित महिलाएँ भी कुंवारी कन्या के रूप में ही उल्लिखित की जाती थीं, जैसा कि रानी दुर्गावती की पुत्रवधू के सम्बन्ध में वर्णित किया गया है।

अकबर का दरबारी लेखक अबुल फ़ज़ल अपने आश्रयदाता के अतिशय

चापलूस के रूप में कुख्यात है। स्त्रियों के प्रति अकबर की आसक्ति-जैसे घृणित कृत्य को भी वह गौरव के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। उसके अनुसार स्त्रियों को व्यवस्थित करना यद्यपि एक बड़ी समस्या थी, तथापि कर्तव्य का पालन करते हुए, संसार के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करने की दृष्टि से दया और कृपा दिखाते हुए वह उन्हें पनाह दिया करता था। अबुल फ़ज़ल (आईने अकबरी, पृष्ठ १५) का कथन है—बादशाह अच्छी व्यवस्था में औचित्य को पसन्द करने वाला है। व्यवस्था के माध्यम से ही संसार में सत्य और यथार्थ प्रतिभासित होते हैं।

अकबर के हरम की विवेचना करते हुए अबुल फ़ज़ल का कथन है—"बादशाह अकबर ने एक विशाल भवन समूह का निर्माण करवाया है। इसमें सुन्दर गृह-कक्ष हैं जहाँ बादशाह विश्रान्ति के क्षण व्यतीत करता है। यद्यपि वहाँ पाँच हज़ार से भी अधिक स्त्रियाँ हैं, तथापि उनमें से प्रत्येक के निवास के लिए एक कक्ष दिया गया है। बादशाह ने उसमें श्रेणी विभाजन कर रखा है तथा उनकी सेवा के लिए परिचारिकाओं का भी प्रबंध कर रखा है। प्रत्येक विभाग की देख-भाल करने के लिए साध्वी स्त्रियों को दारोगा और अधीक्षक नियुक्त कर रखा है। एक को लिपिक का काम सौंप रखा है।" पांच हज़ार औरतों में से प्रत्येक को गृह-कक्ष प्रदान किए गए थे, यह पूर्णतः झूठ और भ्रांत तथ्य है। भारतवर्ष में हम कहीं भी अकबर के समय में निर्मित अन्तःपुर के खण्डहर अथवा ध्वंसावशेष नहीं देखते, जिसमें पाँच हज़ार गृह-कक्षों की व्यवस्था सम्भव हो।

अकबर की कामासक्ति इस सीमा तक बढ़ी हुई थी कि दरबारियों की बीवियाँ तक सुरक्षित नहीं थीं। आईने अकबरी के पृ० १५ पर बदायूंनी का कथन है—"बेगमें, कुलीन दरबारियों की बीवियाँ अथवा अन्य स्त्रियाँ जब कभी अकबर की सेवा में पेश होने की इच्छा करती हैं, तो उन्हें पहले अपनी इस इच्छा की सूचना देकर उत्तर की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। जिन्हें यदि योग्य समझा जाता है, तो हरम में प्रवेश की अनुमति दी जाती है। कुछ विशेष वर्ग की स्त्रियाँ वहाँ पूरे एक महीने तक रहने की अनुमति प्राप्त कर लेती हैं। बड़ी संख्या में विश्वसनीय पहरेदारों के होने पर भी बादशाह स्वयं उनकी चौकसी रखता था।"

प्रस्तुत उद्धरण का विश्लेषण करते हुए हम कतिपय प्रश्न करना चाहते

हैं। प्रथमतः कितनी विवाहित स्त्रियों ने अकबर के साथ हरम में रहकर भ्रष्ट होने की इच्छा की होगी ? क्या उनकी संख्या बहुत अधिक थी ? क्या सभी दरबारियों की पत्नियों ने स्वेच्छा के अकबर के हरम में प्रवेश की उत्कण्ठा दिखलाई तथा अपने पतियों के आश्रय से विमुक्त होकर अकबर के हरम में विशिष्ट रूप से प्रवेश के लिए प्रार्थनाएँ भेजीं ? अकबर के हाथों अपना सर्वस्व भ्रष्ट करवाने में क्या वे अपना सौभाग्य समझा करती थीं ? द्वितीयतः, क्या दरबारियों की पत्नियों के लिए अकबर के हरम में प्रवेश विशेषाधिकार का विषय था कि वे अपने पतियों, पुत्र-पुत्रियों एवं घरों को छोड़ने को तैयार हो जाती थीं ? अकबर के साथ सहवास से उनका ऐसा क्या भाग्योदय हो जाता था ? अकबर के हरम में ऐसा क्या आकर्षण था कि वे स्वेच्छा से वहाँ चली जाया करती थीं ? "जिन्हें योग्य समझा जाता है" शब्दों का तात्पर्य केवल इतना ही है कि जिन स्त्रियों को अकबर काफी सुन्दर एवं आकर्षक देखता था, उन्हें ही अपने हरम में खींच मँगवाने को प्रवृत्त होता था। "हरम में पूरे एक महीने तक रहने की अनुमति प्राप्त कर लेती हैं।" शब्दावली का अर्थ यह है कि अकबर अपने दरबारियों की पत्नियों (निश्चित रूप से पुत्रियों एवं बहनों को भी) को उनके साथ आमोद-प्रमोद एवं सहवास के लिए कम-से-कम एक महीने बलात् रोक रखता था। यदि अकबर दूसरों की स्त्रियों को एक महीने हरम में रोककर रखता था, तो ऐसा कोई कारण नहीं कि वह उन्हें और अधिक समय के लिए या स्थायी रूप से न रोक रखता रहा होगा। अन्तिम पंक्ति "बड़ी संख्या में विश्वसनीय पहरेदारों के होने पर भी अकबर स्वयं उनकी चौकसी रखता था" का तात्पर्य यह है कि उन स्त्रियों को बलात् उनके घरों से उठवा लिया जाता था तथा धमकियाँ आदि देकर उन्हें हरम में रोक रखा जाता था। इस प्रकार साधारण दिखलाई पड़ने वाले उद्धरणों में कुत्सित एवं गर्हणीय अर्थ छिपे हुए हैं। उनके सूक्ष्म अध्ययन एवं विश्लेषण से अकबर के शासनकाल में व्याप्त भ्रष्टाचार पर प्रकाश पड़ता है।

अपने महल के निकट एक विस्तृत वेश्यालय की व्यवस्था में भी अकबर की बड़ी रुचि थी। कितनी वेश्याएँ अक्षत-योनि हैं, इसका लेखा-जोखा वह रखता था और उनसे बातचीत को समय भी निकाल लेता था। अबुल फ़ज़ल ने (आईने अकबरी, पृष्ठ २७६) उल्लेख किया है—"बादशाह ने

महल के समीप ही एक मद्यशाला स्थापित की है। सल्तनत से एकत्रित की गई वेश्याओं की संख्या इतनी अधिक थी कि उन्हें गिन सकना मुश्किल था। (उस क्षेत्र को 'शैतानपुरा' के नाम से पुकारा जाता था।)

मुस्लिम दरबारी इतिवृत्तों में प्रायः 'वेश्या' शब्द से उन हिन्दू नारियों का अर्थ सूचित होता है, जिन्हें मुस्लिम आक्रमणों में उनके पतियों एवं भाइयों की हत्या के बाद पकड़कर दासी बनाया गया एवं वेश्या बनने के लिए मजबूर किया गया।

उपर्युक्त विवरण पर विचार करने से अकबर के समय में दयनीय नागरिक जीवन की भयावह स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। यह स्पष्ट होता है कि अकबर के शासन-काल में लौंडेबाज़ी, वेश्यावृत्ति तथा फौजदारियों एवं शराबखोरी का बाज़ार गर्म था। लौंडेबाज़ी के लिए छोकरों को सजा-सँवार कर प्रदर्शित किया जाता था। अकबर के शासन-काल की इन विलक्षण, दुर्लभ एवं अतुलनीय विशेषताओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। संसार के किसी भी बादशाह अथवा सम्राट् के शासनकाल में ऐसा नहीं हुआ।

लौंडेबाज़ी की प्रवृत्ति अकबर को वंश-परम्परा से प्राप्त हुई थी। यह उसकी अमूल्य पैतृक 'निधि' थी। अकबर के दादा बाबर ने अपनी संस्मरणिका में एक प्रिय छोकरे के साथ अप्राकृतिक सम्भोग की विस्तृत चर्चा की है। बाबर का पुत्र हुमायूँ भी सुन्दर छोकरों को सदैव अपने अधिकार में रखता था। अकबर स्वयं हिजड़ों एवं छोकरों की एक पूरी रेजिमेंट, जैसा कि अबुल फ़ज़ल ने उल्लेख किया है, अपने महल के निकट रखता था।

अकबर के शासनकाल में उसके दरबारियों द्वारा अपने भृत्यवर्ग में प्रिय छोकरों एवं हिजड़ों को रखना कोई असामान्य बात नहीं थी। ऐसे ही एक तथ्य का उल्लेख अबुल फ़ज़ल ने किया है, "१२वें वर्ष यह सूचना दी गई कि मुज़फ्फर कुतुब नामक सेनापति एक छोकरे को प्यार करता था। अकबर ने उक्त छोकरे को बलात् अलग करा दिया, जिससे मुज़फ्फर फकीर बनकर जंगल में चला गया। अकबर ने विवश होकर उसे वापस बुलाया और उसका प्रिय छोकरा उसे सौंप दिया।" (आइने अकबरी, पृष्ठ ३७४)।

मध्ययुगीन मुस्लिम समाज की स्थिति पर प्रकाश डालने वाला ऐसा ही क और भी दृष्टांत अबुल फ़ज़ल ने प्रस्तुत किया है, "हि० स० ९८८ में

आदिल शाह की एक जवान हिंजड़े द्वारा, जिसके साथ उसने अपनी अनैतिक इच्छा की पूर्ति की कोशिश की थी, हत्या कर दी गई। उसकी लौंडेबाजी की वासना बहुत तीव्र थी। कुछ प्रयत्न के बाद बिहार के मलिक बरीद ने दो जवान तथा सुन्दर हिजड़े उसके लिए भेजे, किन्तु अपनी अपरिमित काम-पिपासा को शांत करने के प्रथम प्रयास के बाद ही वह बड़े हिजड़े द्वारा छुरा भोंककर मार दिया गया।" इस उद्धरण से इस बात के संकेत मिलते हैं कि मध्ययुगीन मुस्लिम शासनकाल में सुन्दर छोकरों को धन-सम्पत्ति के रूप में रखा जाता था। उच्च अधिकारियों को सुन्दरी, सुरा और स्वर्ण के साथ छोकरे भी भेंट किए जाते थे। प्रचलित अप्राकृतिक व्यभिचार के कितने ही उदाहरण मुस्लिम दरबारी इतिवृत्त से प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

उपर्युक्त नीचता और क्रूरता के अतिरिक्त अकबर अपनी शक्ति का उपयोग करते हुए अपनी प्रजा को बाध्य करता था कि वे अपनी पत्नियों, बेटियों और बहनों का नग्न-प्रदर्शन सामूहिक रूप से आयोजित करें। कर्नल टाड ने (राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ २७४-७५) उल्लेख किया है कि उक्त पद्धति अकबर की नित्यप्रति नये-नये ढंग आविष्कृत करने वाली बुद्धि की उपज थी। अथवा नव-वर्ष दिवस का तात्पर्य नये वर्ष का पहला दिन नहीं है, अपितु एक उत्सव है, जिसे अकबर ने प्रचलित किया है। इसे अकबर ने खुशरोज (प्रमोद-दिवस) की संज्ञा दी है। यह उत्सव प्रत्येक महीने के प्रमुख त्यौहार के बाद ९वें दिन मनाया जाता है। खुशरोज के दिन दरबार के क्षेत्र में एक मेला आयोजित किया जाता था। मेले में केवल महिलाएँ ही भाग लेती थीं। व्यापारियों की पत्नियाँ प्रत्येक देश और प्रान्त की प्रसिद्ध वस्तुएँ प्रदर्शित करती थीं। दरबारियों की पत्नियाँ वहाँ क्रय करती थीं। बादशाह स्त्री का वेश बनाकर वहाँ जाया करता था। इस प्रकार वह व्यापारिक वस्तुओं का महत्त्व ज्ञात करता था तथा सल्तनत के दरबारी अधिकारियों के चरित्र के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करता था।" चाटुकार अबुल फ़ज़ल ने खुशरोज मेले के सम्बन्ध में अवांछनीय उद्देश्य को दूसरे ही रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उसने उस युग के खोखलेपन को छिपाने की चेष्टा की किन्तु भावी पीढ़ी इस प्रकार के उल्लेखों को कभी स्वीकार नहीं कर सकती कि खुशरोज़ आदि के अवसरों पर अकबर वेश बदलकर मुस्लिम सुन्दरियों के मुंह से निकली 'पश्तो' भाषा की अस्पष्ट

बातों से अथवा पारस्परिक चर्चा से या राजस्थान के मेले में वहाँ की मिश्रित 'भाषा' से व्यापारिक वस्तुओं के महत्त्व एवं मूल्य आदि तथा अपने अधिकारियों के चरित्र आदि सम्बन्धी सद्परिणाम प्राप्त करता था। खुश-रोज़ के मेले के पीछे अकबर का एकमात्र उद्देश्य सुन्दरियों को अपने हरम के लिए चुनकर फांसना था। मेलों में वह वेश बदलकर शिकारी भेड़ियों के समान औरतें तलाश करता था। हर महीने ९वें दिन आयोजित खुश-रोज़ के मेले ऐसे बाज़ार होते थे, जहाँ अकबर राजपूती प्रतिष्ठा का विनिमय करता था। इसी तथ्य का निर्देश सुविख्यात योद्धा पृथ्वीराज ने (अपनी स्वरचित कविता में, जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि राणा प्रताप की वीरोचित आत्मा को प्रदीप्त करने, जब वे अकबर के खूंख़ार हमलों का बहादुरी से सामना कर रहे थे तथा राष्ट्रहित के लिए जंगलों में जीवन व्यतीत कर रहे थे, वह संप्रेषित की गई थी) भी दिया है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं किया जा सकता है कि 'नौ रोज़' के अवसरों पर कितने कुलीन (राजपूत) वंशों की प्रतिष्ठा पर अकबर द्वारा आघात पहुँचाया गया। राजपूत-नारियों को अपहृत कर उनका सतीत्व भंग किया गया। अपने सर्वोच्च नारी-आदर्श से स्खलित राजपूतों की श्रृंखला में पृथ्वीराज ही ऐसे थे जिनकी प्रतिष्ठा उनकी पत्नी (मेवाड़ की राजकुमारी तथा 'सुक्तावत' वंश की नींव डालने वाले की कन्या) के अपूर्व साहस एवं सद्गुण से सुर-क्षित थी। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि अकबर ने कितने ही राजपूत वंशों की महिलाओं को अपहृत कर उनकी प्रतिष्ठा धूल में मिला दी थी। केवल पृथ्वीराज की प्रतिष्ठा उनकी पत्नी द्वारा वीरोचित साहस प्रदर्शित करने से आदर्श के शिखर से च्युत नहीं हो पाई थी। खुशरोज़ के एक उत्सव के अवसर पर मुगल बादशाह मेवाड़ की पुत्री के रूप और तेज-स्विता को देखकर मुग्ध हो गया। भूखी वासना की तृप्ति के उद्देश्य से आयोजित 'हिंद' के उस संयुक्त नारियों के मेले में से अकबर ने मेवाड़ की उस वीरांगना पुत्री (मेवाड़ के लोक-गीतों के अनुसार शक्तिसिंह की पुत्री किरण देवी) को अलग कर लिया। यह कहना अनुचित न होगा कि अकबर सिसोदिया वंश की एक राजकुमारी को भ्रष्ट कर उस वंश की प्रतिष्ठा धूल में मिलाने की दुर्भावना रखता था। खुशरोज़ के उत्सव के कुछ समय पश्चात् राजकुमारी ने स्वयं को एक ऐसे भवन में बन्द पाया जहाँ से बाहर

जाने के रास्ते पर अकबर खड़ा था। उसके शीलभंग की दुर्भावना से वह ग्रस्त था। किन्तु अकबर को पहचानने के बदले उसने अपनी कंचुकी से एक कटार निकाली तथा अपूर्व साहस दिखलाते हुए उसने कटार अकबर के वक्ष पर रख दी। कटार की नोक पर उस वीरांगना हिन्दू ललना ने खुशरोज़ के मीना बाज़ार के संयोजन को समाप्त करने की अकबर को शपथ दिलवाई।

कवि-हृदय योद्धा पृथ्वीराज के बड़े भाई को ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। उसकी पत्नी में बादशाह के कुत्सित इरादे का विरोध करने का या तो साहस नहीं था या अपने शील की रक्षा कर सकने के सद्गुण से वह वंचित थी। खुशरोज़ के एक उत्सव के बाद वह स्वर्ण अलंकारों से लदी किन्तु अपने नारीत्व की अमूल्य निधि सतीत्व को लुटाकर अपने घर लौटी। पृथ्वीराज ने इस सम्बन्ध में लिखा है—"स्वर्ण एवं रत्नों के आभूषणों से सुसज्जित वह अपने घर लौटी किन्तु मेरे भाई, तुम्हारे मुख पर अब तुम्हारी मूँछ कहाँ हैं ?" वह राजकुमारी अकबर की क्रूर काम-पिपासा के अग्नि-कुण्ड में अपना शील झोंककर आई थी।

अकबर की काम-वासना के सम्बन्ध में ऊपर हमने नमूने के तौर पर कई उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। अकबर की गर्हणीय वासना न जाने कितने लोगों की प्रतिष्ठा भस्मीभूत कर चुकी थी। एक तटस्थ पाठक को आश्वस्त करने के लिए इतना ही पर्याप्त है कि अकबर का सम्पूर्ण जीवन अमानवीय कृत्यों एवं व्यभिचारों से पूर्ण था।

: ६ :

शराबखोरी और नशेबाजी

अकबर परले दर्जे का शराबी था। उसे शराब पीने की इतनी बुरी लत थी कि उसे सुधारना असम्भव था। शराब ही नहीं, वह अन्य मादक द्रव्यों का भी अत्यधिक मात्रा में सेवन करता था। ये व्यसन उसकी रग-रग में समाए हुए थे और इन व्यसनों से उसे कभी भी छुटकारा न मिल सका। सामान्यतः अन्याय, पाशविक अत्याचार तथा अन्य घृणित कृत्य करने वाले लोग दिमाग से उन जघन्य अपराधों का बोझ दूर करने के लिए शराब आदि नशीली चीजों का सहारा लेते ही हैं। अकबर भी अपनी अमानुषिक करतूत को भुलाने के लिए शराब, अफ़ीम, ताड़ी आदि मादक द्रव्यों का सेवन करता था। ये व्यसन अकबर के ही थे, ऐसी बात नहीं है। ये तो उसकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे थे। इस प्रकार ये व्यसन अकबर को विरासत में ही मिले थे क्योंकि जिस वातावरण में अकबर का जन्म हुआ था उसमें सर्वत्र शराबखोरी, नशेबाज़ी, षड्यंत्रों, हत्या की योजनाओं, व्यभिचारों और वेश्यागमन का ही बोलवाला था।

आसफ खाँ द्वारा आयोजित एक भोजोत्सव सम्बन्धी 'टेरी' के उल्लेख का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए स्मिथ महोदय ने अपनी पुस्तक 'अकबर : दी ग्रेट मुगल' के पृष्ठ २९४ पर कहा है, "बादशाह (अकबर) का, जैसाकि सर्वविदित है, कोई सिद्धान्त (नैतिक मानदण्ड) नहीं था। अपने जीवन के अधिकांश समय में उसने अत्यधिक मात्रा में मदिरापान किया।" स्मिथ महोदय का यह स्पष्ट उल्लेख है कि—'शराबखोरी तैमूरशाही खानदान का ही प्रमुख दोष न था, यह दुर्गुण अन्य मुस्लिम शाही वंशों का भी था। बाबर (अकबर का दादा) एक जबरदस्त पियक्कड़ था। हुमायूँ (अकबर का बाप) अफीम खाने का आदी था, जिससे उसकी बुद्धि जड़ हो गई थी। अकबर इन दोनों व्यसनों का अभ्यस्त था।' (अर्थात् वह शराब भी पीता था और

अफीम भी खाता था) । नशे की हालत में वह विभिन्न प्रकार के पागल-पन के कार्य किया करता था। समकालीन इतिवृत्तों में उसके पागलपन की कतिपय घटनाओं का वर्णन किया गया है। बादशाह द्वारा प्रस्तुत कुकृत्य-पूर्ण 'उदाहरणों' का शाहजहाँ तथा दरबारी सरदारों ने 'ईमानदारी' से पालन किया। अकबर के दो जवान बेटे अपने यौवन-काल में अत्यधिक मद्यपान के कारण मृत्यु के मुँह में समा गए। उसका बड़ा बेटा अपने अच्छे स्वास्थ्य के कारण ही बच गया—किसी सद्गुण के कारण नहीं। अर्थात् शराबखोरी और नशेबाज़ी में वह अपने पिता तथा छोटे भाइयों से किसी तरह कम न था। ब्लोचमेन द्वारा संगृहीत दरबारी सरदारों के जीवनवृत्त से मद्यपान के कारण हुई मौतों की आश्चर्यजनक संख्या का पता चलता है। सिंध का मिर्ज़ाजानी बेग इस व्यसन का बुरी तरह शिकार था। दक्षिण में आसीरगढ़ के पतन के बाद उसने इतनी शराब पी कि उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। एक-दूसरे उच्च अधिकार (शाहबाज़ खाँ, संख्या ५७) अत्यधिक मात्रा में शराब, गाँजा तथा दो प्रकार की अफीम का मिश्रण लेने का आदी था। इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

विंसेंट स्मिथ ने 'अकबर : दी ग्रेट मुगल' पुस्तक के पृष्ठ २४४ पर उल्लेख किया है कि किस प्रकार अकबर जरूरत से ज्यादा शराब पीकर विभिन्न प्रकार के पागलपन का कार्य किया करता था। आगरे में 'हवाई' नामक हाथी को उसने नावों के पुल पर सरपट दौड़ा दिया। वह एक विशेष प्रकार की नशीली ताड़ी तैयार करने की कल्पना करता था। जब तक वह तैयार नहीं कर ली गई, उसके स्थान पर उस समय (१५८०) में अफीम का सुगन्धित अर्क लिया करता था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी मद्यपान तथा अफीम से तैयार किए गए विभिन्न प्रकार के नशीले पेयों को लेने की कुल-परम्परा का उसने भी पालन किया। कभी-कभी तो वह अत्यधिक मात्रा में नशा करता था।

सन् १५८२ ई० में अक्वाविवा के नेतृत्व में आए प्रथम जेसूइट मिशन ने जो अनुभव किया, उसके साक्ष्य से निःसंदिग्ध रूप से यह सिद्ध होता है कि सूरत के पतन के एक वर्ष बाद के काल में अकबर अत्यधिक शराबखोरी का आदी हो गया था। सदाशय इस पादरी ने विभिन्न औरतों के साथ अकबर के लम्पट और व्यभिचारपूर्ण सम्बन्धों की घोर भर्त्सना करने का

साहस किया है। पादरी की इस धृष्टता से क्रुद्ध होने से स्थान पर अकबर ने उससे मांफी माँगी। उसने अपनी इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए कुछ दिन तक उपवास भी रखा। पर उपवास के दिनों में शराब पीने की मनाही नहीं थी। उसने इस सीमा तक शराब पीनी शुरू कर दी कि उपवास नशे के दुर्गुणों के सामने फीके पड़ गए। कभी-कभी अकबर पादरी रोडाल्फ को पूर्णतः भूल जाता था। बहुत समय तक उसे भीतर नहीं बुलवाता था। पादरी बाहर प्रतीक्षा करता रहता था। ईश्वर के सम्बेन्ध में उपदेश के लिए उसे कभी भीतर बुलाता भी था तो पादरी महोदय के बोलना आरम्भ करते ही अकबर नींद में खो जाता था। कारण यह था कि कभी तो वह ताड़ी (जो अत्यधिक मादक खजूर की शराब होती थी) और कभी अफीम से तैयार किए गये विभिन्न नशीले पेय पीता था जो कई प्रकार के मसाले तथा सुगन्धित द्रव्य मिलाकर बनाए जाते थे। अकबर द्वारा नशा करने के बुरे आचरण का उसके तीनों जवान बेटों ने पूरी "ईमानदारी" से पालन किया। इनमें से दो बेटों—मुराद तथा दानियाल की मृत्यु नशे के दुष्प्रभाव के कारण हो गई। सलीम भी इस बुराई से अपने-आपको कभी अछूता न रख सका।" (अकबर : दी ग्रेट मुगल, पृ० ८२)।

अबुल फ़ज़ल ने एक विचित्र कथा का उल्लेख किया है। "एक बार एक विशेष शराब-पार्टी का आयोजन किया गया, जिसमें चुने हुए सरदारों को ही आमन्त्रित किया गया था। वार्ता के दौरान यह चर्चा छिड़ गई कि हिन्दुस्तान के योद्धा नायक अपने सम्मान के सामने पार्थिव जीवन को तुच्छ समझते हैं। यह कहा गया कि दो राजपूत योद्धा दो पांती वाले भाले की ओर, जिसे तीसरा व्यक्ति पकड़े हो, विरोधी दिशाओं से ऐसी दौड़ लगा सकते हैं जिससे भाले की पांतें दोनों प्रतिस्पर्द्धियों का वक्ष बेधकर उनकी पीठ के पार निकल जायें। (यह सुनकर) अकबर ने अपनी तलवार की मूठ दीवार में फँसा दी तथा घोषणा की कि वह उसकी तरफ दौड़ लगाएगा। राजा मानसिंह ने झटका देकर तलवार गिरा दी। ऐसा करते हुए बादशाह का हाथ कट गया। अकबर ने मानसिंह को धक्का देकर गिरा दिया तथा उसका गला दबा दिया। मानसिंह के गले को अकबर की पकड़ से मुक्त कराने के लिए सैय्यद मुजफ्फर को अकबर का हाथ मरोड़ना पड़ा। अकबर

ने निश्चित रूप से अत्यधिक मात्रा में शराब पी रखी होगी।" (अकबर : दी ग्रेट मुगल, पृ० ८१)।

"यद्यपि अकबर के अविवेकी और चाटुकार दरबारी लेखकों ने उसके अत्यधिक मद्यपान का उल्लेख नहीं किया है तथा उसके सम्बन्ध में प्रकाश में आई कहावतों में उसके अत्यधिक मात्रा में पीने के उद्धरण अपवाद रूप में ही शामिल किये गये हैं, तथापि यह निश्चित है कि कई वर्षों तक उसने अपने वंश की परम्परा का पालन किया तथा कभी-कभी तो वह अपनी सहन-शक्ति से भी अधिक पीया करता था। जहांगीर का कथन है—"मेरे पिता, चाहे नशे में या सामान्य स्थिति में हों, मुझे सदैव 'शेखू बाबा' कहकर पुकारा करते थे।" इससे यह ध्वनित होता है कि लेखक का पिता (अकबर) अधिकांशतः नशे की हालत में ही रहता था।

अकबर के दरबारी-लेखक अबुल फ़ज़ल ने अपनी स्वभावगत धूर्तता का परिचय देते हुए अकबर सम्बन्धी अतिरंजित वर्णन करके उसकी कम-ज़ोरियों पर पर्दा डालने की कोशिश की है। आइने अकबरी (अनुवाद, एच० ब्लोचमैन) के पृष्ठ ५७ पर उसका कथन है कि, "अकबर कभी अधिक शराब नहीं पीता, अपितु 'अब्दारखाना' विषयक तथ्यों पर अधिक ध्यान देता है। महल में अथवा यात्रा के दौरान वह गङ्गाजल ग्रहण करता है।" सम्भवतः अबुल फ़ज़ल का यह मन्तव्य है कि अकबर जो शराब आदि पिया करता था, वह उसके गले से नीचे उतरते ही पवित्र गंगाजल में परिवर्तित हो जाती थी अथवा शराब एवं अन्य नशीले पेयों के दुष्प्रभावों को दूर करने (अपने पापों को धोने) के लिए अकबर गंगाजल ग्रहण करता था। गंगाजल के निर्देश का तात्पर्य केवल इतना ही है कि अकबर अपने शासन-काल में बहुमत प्राप्त जनता को धोखे में रख सके। ऐसा उल्लेख करवाने में अकबर का एकमात्र उद्देश्य यह था कि वह हिन्दुओं का विश्वास प्राप्त कर सके।

बादशाह को जब सभी शराब पीने, अफीम लेने अथवा कुकनार की (कुकनार को अकबर 'सबरस' के नाम से पुकारता था) जो सभी प्रकार के नशीले द्रव्यों तथा शराबों का सारतत्त्व था, इच्छा होती है, तो परि-चारक उसके सामने फलों का पात्र प्रस्तुत कर देता है। (आईने अकबरी, पृ० ६९) इस सन्दर्भ के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि

अकबर या तो मूर्ख रहा होगा, जिसने अपने परिचारक को यह अनुमति दी थी कि जब यह शराब अथवा अन्य द्रव्यों (अफीम, ताड़ी आदि) की माँग करे तो वह उनके सामने फलों का रस पेश कर दे अथवा परिचारक को यह अधिकार रहा होगा कि किसी सख्त धाय की भाँति अकबर के आदेशों का उल्लंघन कर सके तथा अकबर जब शराब, अफीम आदि की माँग करे तो उसे फल लेने के लिए विवश कर सके। एक तीसरा विकल्प जो अधिक सत्य प्रतीत होता है, यह है कि अकबर जिन नशीली वस्तुओं तथा शराब, अफीम आदि को लेने का आदी था, उनके लिए चाटुकार अबुल फ़ज़ल का 'फल' एक सांकेतिक शब्द था। तात्पर्य यह कि अकबर द्वारा नशीली वस्तुओं की माँगों का अबुल फ़जल ने 'फल' शब्द के संकेत से उल्लेख किया है।

जेसूइट पादरी मन्सरेट, जो अकबर के दरबार में रह चुका था, का कथन है—"अकबर अपनी प्यास या तो पोस्त से बुझाता था या पानी से। जब वह अत्यधिक मात्रा में पोस्त का तरल द्रव्य ले लेता है तो काँपते हुए, बुद्धिशून्य होकर लुढ़क जाता है। (अर्थात् विमूर्च्छित हो जाता है।)" (मन्सरेट की कमेंट्री, पृ० १९९)।

अकबर अपने ही समान पियक्कड़ों एवं नशेबाजों को पसन्द करता था। इसका उल्लेख समकालीन इतिवृत्त लेखक बदायूँनी ने किया है। बदायूँनी का कथन है (पृष्ठ ३२४), "बादशाह ने काजी अब्दुल सामी को काजी-उल-कुज़ात् के रूप में नियुक्त किया था। अब्दुल सामी दांव लगाकर शतरंज खेला करता था। शराब के प्याले खाली करने में वह जन्म से ही कुख्यात था तथा अकबर की यह आदत उससे पूर्णतः मिलती थी। उसके सम्प्रदाय में घूँसखोरी तथा भ्रष्टाचार सामयिक कर्तव्य समझे जाते थे।"

इतिवृत्त लेखक फरिश्ता ने उल्लेख किया है—"इसी समय (सन् १५८२) अन्तड़ियों में पीड़ा की शिकायत के कारण बादशाह बुरी तरह बीमार पड़ गया। जब उसने अपने पिता हुमायूँ के समान अफीम खाने की आदत डाली तो जनता उसकी इस आदत से भयभीत हो गई।"

सामान्य व्यक्ति भी यदि शराबखोर एवं नशेबाज हो तो बुरा समझा जाता है तथा उसकी संगति खतरनाक समझी जाती है। अकबर के समान शराबी व्यक्ति को यदि बर्बरों की भीषण फौज की ताकत भी प्राप्त हो

जाए, जो समस्त विरोधियों को समाप्त करने की सामर्थ्य रखती हो, तो उससे मानवता का कितना विध्वंस होगा यह कल्पनातीत है ? निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अकबर का शासनकाल भारतीय इतिहास का एक सर्वाधिक कलंकित युग था, जबकि भारत का एक बृहद् भाग उसके अधीन था। जनता उसकी शराबखोरी एवं नशेबाज़ी के परिणामस्वरूप अत्याचारों एवं स्वेच्छाचारिता से पीड़ित होकर कराह रही थी। अकबर के निरंकुश शासन-तन्त्र का कोई सिद्धान्त नहीं था—उसकी कोई व्यवस्था नहीं थी। अपने राजतन्त्र की शक्ति से अकबर ने मानवता का कितना अहित किया—हिन्दू जनता पर कितने अत्याचार किए, इसकी गणना कौन कर सकता है। ऐसे लम्पट, भ्रष्टाचारी, शराबखोर एवं व्यभिचारी बादशाह को 'महान्' की संज्ञा देना एवं उसकी 'अशोक' से तुलना करना कहाँ तक तर्कसंगत है ? इसका निर्णय कोई भी विवेकशील व्यक्ति कर सकता है।

संस्कृत की एक लोकोक्ति में कहा गया है—

यौवन धन-सम्पत्तिः प्रभुत्वम् अविवेकता।
एकैकमपि अनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

भावार्थ यह कि यौवन, धन, सत्ता, पद—इनमें से कोई भी एक मनुष्य को बरबाद कर सकता है—उसे पतन के गर्त में गिरा सकता है। यदि ये चारों मिल गए तो कितना अनर्थ होगा इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

उपर्युक्त सूक्ति की सत्यता अकबर के शासनकाल के सन्दर्भ में पूर्ण-रूपेण चरितार्थ होती है।

: ७ :

शादियाँ नहीं, सरासर अपहरण

अपनी सैनिक-शक्ति के आधार पर राजपूत कन्याओं तथा अन्य महिलाओं को अपहृत कर उन्हें बलात् हरम में डालने सम्बन्धी अकबर के घृणित कृत्यों का प्रायः किसी महाकाव्योचित नायक के साहसिक सत्कर्मों की भाँति उल्लेख किया गया है। विभिन्न पुस्तकों एवं लेखों में इस प्रकार के तथ्य प्राप्त होते हैं कि अकबर ने भारत में साम्प्रदायिक एकता की दृष्टि से हिन्दू कन्याओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। ऐसी शादियों को अकबर की राजनीति के उत्कृष्ट उदाहरणस्वरूप भी प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार यथार्थ घटनाओं पर पर्दा डालने की चेष्टा की जाती है। अकबर एक धूर्त राजनीतिज्ञ था तथा अपनी काम-लिप्सा की पूर्ति के लिए अपहरण की घटनाओं को उसने विवाह के रूप में लिखवाया। ये तथाकथित विवाह अपहरण के मुँह-बोलते उदाहरण हैं।

इससे पहले एक प्रकरण में भी हम बता चुके हैं कि किस प्रकार उच्छृंखलता एवं स्वेच्छाचारिता का परिचय देते हुए शेख अब्दुल वासी की खूबसूरत एवं आकर्षक बीवी का अपहरण कराया गया था। अब्दुल वासी से उसकी बीवी छीन लेने की घटना के बाद इतिहास में उसका कोई नामोनिशान प्राप्त नहीं होता। सम्भवतः अकबर ने अब्दुल वासी की बीवी पर अधिकार जमा लेने के बाद अपने किसी 'भाड़े के टट्टू' द्वारा उसकी हत्या करा दी होगी।

अकबर के अभिभावक एवं संरक्षक बहराम खाँ को भी अब्दुल वासी के समान ही दुर्भाग्य का शिकार होना पड़ा था, क्योंकि अकबर की कामुक दृष्टि उसकी बीवी सलीमा सुल्तान बेगम पर थी। सलीमा सुल्तान अकबर की फुफेरी बहन (उसके पिता की बहन की बेटी) थी। उसके शौहर बहराम खाँ से उसके समस्त अधिकार, सत्ता तथा दरबारी पद छीन लेने

तथा अन्त में उसकी हत्या करा देने के पीछे अकबर का एकमात्र उद्देश्य सलीमा सुल्तान को अपने हरम के लिए अपहृत करना था। अकबर का यह एक अत्यन्त घृणित एवं निन्दनीय कृत्य था। अकबर की धूर्तता पर विचार करते हुए इसे एक कृतघ्नतापूर्ण कर्म कहा जाएगा, क्योंकि बहराम खाँ ने ही समस्त भयावह चुनौतियों से अकबर की रक्षा की थी और अकिंचन् स्थिति से ऊपर उठाकर उसका भविष्य-निर्माण करते हुए उसे गद्दी-नशीन कराने में सहयोग दिया था किन्तु अकबर ने बहराम खाँ के प्रति किसी प्रकार की कृतज्ञता प्रदर्शित करने के स्थान पर उसकी बीवी (अपनी फुफेरी बहन) को छीनकर उसकी हत्या करा दी।

डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव का कथन है (अकबर : दी ग्रेट, पृ० ४१) कि सन् १५५७ ई० के आरम्भ में ही जबकि अकबर की आयु मात्र १५ वर्ष थी, बहराम खाँ को उस दिन अपने खिलाफ रचे जा रहे षड्यन्त्र की शंका हुई जिस दिन मानकोट से वापसी के दौरान मार्ग में अकबर के हाथियों ने उसके शिविर में घुसकर खलबली मचा दी और उसे कुचलने की चेष्टा की। बहराम खाँ के विरुद्ध शाही कोप प्रकट करने का अकबर का यह एक तरीका था। बहराम खाँ की शादी सलीमा सुल्तान से जालंधर में उस समय हुई थी जब शाही फौज मानकोट से (जम्मू प्रान्त में) लाहौर जा रही थी। अकबर नहीं चाहता था कि सलीमा सुल्तान की शादी बहराम खाँ से हो। वह उसे खुद अपने हरम के लिए प्राप्त करना चाहता था। उक्त घटना के बाद से योजनाबद्ध ढंग से बहराम खाँ को 'शिकार' बनाने की दुश्चेष्टाएँ की गईं। कई बार शाही हाथियों को उसके शिविर में घुसाकर उसे कुचलवाने के प्रयास किये गए। सम्भवत: अकबर ने बहराम खाँ के समस्त सत्तात्मक अधिकार छीनकर उसे खुले युद्ध के लिए बाध्य किया होगा। उसे निष्कासित कर दिया गया तथा पाटन तक उसका पीछा करते हुए उसकी हत्या करवा दी गई। अकबर के पक्ष के समकालीन विवरणों में यह दर्शाने की चेष्टा की गई है कि बहराम की हत्या एक अफगान ने की, जिसका उसके साथ वैमनस्य था, इस प्रकार के तथ्य दरबारी चाटुकार लेखकों द्वारा लिखे गए हैं। बहराम खाँ की इस हत्या का आरोप अकबर पर लगाने की आशंका ही नहीं की जा सकती थी। वे सभी एक ऐसे धूर्त और क्रूर बादशाह के अधीन थे जिसके हाथों में अपरिमित

निरंकुश सत्ता थी। वे जो भी उल्लेख करते थे, अपने बादशाह के संकेतों के अनुसार करते थे। अकबर ने ही बहराम खाँ की हत्या करवाई—इसका स्पष्टीकरण इस तथ्य से होता है कि बहराम खाँ ने जिस दिन सलीमा सुल्तान से सगाई की, उसी दिन से उसकी हत्या की कुचेष्टाएँ की जाने लगी थीं। हत्या के समय बहराम अकेला नहीं था, अपितु उसके साथ उसके अनेक अनुचर भी थे। उसकी हत्या के तुरन्त बाद उसकी बीबी सलीमा सुल्तान को, जिस पर लोलुप अकबर की कामुक दृष्टि थी, उसके ८ वर्षीय पुत्र अब्दुल रहीम के साथ शीघ्र ही अकबर के हरम में भेज दिया गया। यही लड़का कालान्तर में बड़ा होने पर खानखाना के नाम से विख्यात हुआ। १५ वर्षीय अकबर का यह जघन्य अपराध था कि उसने बहराम की वैधानिक रूप से परिणीता पत्नी को अपने हरम में लेने के लिए एक सर्वोच्च राजभक्त कर्मचारी के समस्त अधिकार छीनकर उसकी हत्या करवा दी और अन्ततः उसकी बीबी को हरम में ले ही लिया। इस घटना से अकबर की काम-पिपासा तथा प्रेमोन्माद पर प्रकाश पड़ता है।

जयपुर के हिन्दू राज परिवार की कन्या के साथ अकबर के तथाकथित विवाह सम्बन्धी झूठे एवं भ्रान्त तथ्यों के उल्लेखों से भी भारतीय इतिहास के पृष्ठ काले किए गए हैं। हमारे इतिहासकारों ने यह विवाह साम्प्रदायिक एकता की दृष्टि से अकबर की राजनीतिज्ञता के ज्वलन्त उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।

उक्त विवाह की तथ्य-कथा इस बात का एक ज़बरदस्त प्रमाण है कि किस प्रकार सम्प्रदाय-विशेष के लोगों तथा राजनीतिज्ञों ने अपने काल्पनिक सिद्धान्तों के परिपोषण एवं ऐतिहासिक सन्दर्भों में उनके समावेश के लिए भारतीय इतिहास को अपभ्रष्ट करने का प्रयास करते हुए झूठे तथ्यों का उल्लेख किया है।

अधिकांश इतिहासकारों का कथन है कि शेख मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह में इबादत के लिए आगरे से अजमेर जाते हुए उन्नीस वर्षीय अकबर जब सांभर से गुज़रा, तब जयपुर का प्रौढ़, बहादुर एवं स्वाभिमानी शासक भारमल शीघ्रता से वहाँ पहुँचा तथा अकबर से अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव किया। यह एक नीचतापूर्ण झूठा तथ्योल्लेख है। इस कथन पर सरसरी नज़र डालने से ही विवेकहीनता का परिचय मिलता है। कोई भी

व्यक्ति, जिसे मध्ययुगीन राजपूतों के आत्मगौरव तथा परम्पराओं के सम्बन्ध में तो जानकारी है किन्तु इतिहास के सम्बन्ध में बेशक अनभिज्ञता है इस तथ्योल्लेख को पहचान लेगा कि यह विवरण झूठ एवं अप्रामाणिक है। भारतवर्ष में राजपूतों की परम्परा रही है कि वे विदेशी लुटेरों के हाथों अपनी महिलाओं की प्रतिष्ठा एवं सतीत्व भ्रष्ट होता देखने की अपेक्षा जौहर की ज्वाला धधका, उसमें उन्हें भस्म कर देना कहीं अधिक अच्छा समझते थे। ऐसी ही एक महत् जाति का नेतृत्व करने वाले एक सदस्य के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उसने स्वेच्छा से आगे बढ़कर अकबर को अपनी कन्या समर्पित कर दी। क्या यह तथ्योल्लेख तर्कसंगत प्रतीत होता है ? स्वाभिमानी राजस्थान की सुप्रतिष्ठा के प्रति यह कलंकपूर्ण आक्षेप है। यथार्थ कथा अत्यन्त हृदय-विदारक है। किन्तु इसे धृष्टतापूर्वक दबा दिया गया है। चाटुकार लेखकों ने अकबर के आडम्बरों एवं धूर्तता पर पर्दा डालने के लिए घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया है।

राजपूती शान के खिलाफ भारमल ने खून का घूंट पीते हुए अकबर के हरम के लिए अपनी प्रिय कन्या क्यों समर्पित की ?—इस तथ्य का एक सूत्र हमें डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव की पुस्तक में (पृ० ६१-६२ पर) प्राप्त होता है। जयपुर के शासक भारमल के अधिकृत प्रदेश में अकबर के एक सेनानायक शरफुद्दीन ने लगातार हमले बोलकर खलबली मचा दी थी। भय तथा सन्त्रास की स्थिति उत्पन्न होने पर भारमल को अपमानजनक अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इन्हीं हमलों के दौरान शरफुद्दीन को तीन राजपूत राजकुमारों—खंगार, राजसिंह तथा जगन्नाथ को बन्दी बनाने और बन्धक के रूप में रोक रखने में सफलता मिल गई। उन्हें सांभर में कैद रखा गया तथा यातनाएँ देकर मार डालने की धमकी दी गई। उन राजकुमारों की जीवन-रक्षा के लिए—उन्हें कैद से मुक्त कराने के लिए भारमल को अकबर के हरम के द्वार पर अपनी कन्या के सतीत्व की बलि चढ़ानी पड़ी। उन्होंने स्वयं कहा है कि सामान्य परिस्थिति में, राजपूत सुन्दरी के पैर अथवा हाथ की उंगली के नाखून पर भी किसी विदेशी अथवा लुटेरे की कामुक दृष्टि नहीं पड़ने दी जाती थी। इतना कठोर प्रतिबन्ध था उस युग में।

डॉ० श्रीवास्तव ने उल्लेख किया है—"कछवाहा वंश के प्रधान

(भारमल) को विनाश का मुंह देखना पड़ा, अतः असहाय स्थिति में उसने समझौते का सहारा लेते हुए अकबर के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्वीकार किया।" यही कारण है कि राजपूत सुन्दरी को समर्पित करने के तुरन्त बाद तीनों राजकुमारों को मुक्त कर दिया। विवाह न होकर यह अपहरण का कृत्य था, क्योंकि समस्त कार्य भारमल की राजधानी अथवा अकबर की राजधानी में सम्पन्न न होकर मार्ग में ही एक स्थान पर सम्पन्न हुआ। एक राजपूत शासक भारमल के लिए अपने ही नगर में—राजस्थान के गौरव-मण्डित मध्यवर्ती क्षेत्र में—अपने ही सहयोगियों एवं सम्बन्धियों के बीच अकबर को अपनी कन्या समर्पित कर देना अत्यन्त हृदय-विदारक एवं शर्मनाक बात थी। एक मुसलमान को अपनी कन्या समर्पित कर देना एक राजपूत के लिए नरकवास अथवा सर्वनाश से भी अधिक भयावह एवं लज्जाजनक घटना समझी गई। भारमल के लिए यह कोई हँसी-खेल न था। उसे विवश होकर इस प्रकार का निर्णय (जो उसका दुर्भाग्य था) लेना पड़ा। एक स्वाभिमानी राजपूत के लिए यह मौत से भी अधिक बुरी बात थी। किन्तु उसने अनुभव किया कि इसके अतिरिक्त उसके पास और कोई विकल्प न था। उसके सामने दो ही रास्ते थे। या तो वह उन तीनों राजकुमारों का अकबर की यातनाओं द्वारा वध होता हुआ तथा बाद में अपनी सम्पूर्ण राजधानी में बर्बरतापूर्ण अत्याचार होते हुए और विनाश की ज्वाला में जन-जीवन को झुलसते हुए देखे अथवा अपनी कन्या को खोकर अपमानजनक घृणित शान्ति की वार्ता करे। स्पष्ट है, भारमल अपने हृदय को अमर नेता राणा प्रताप की भाँति पाषाण बनाने में समर्थ न हो सका। राणा प्रताप की भाँति बहादुरी से लड़ते हुए अकबर का विरोध करने के स्थान पर उसने अपनी कन्या को समर्पित करने का शर्मनाक विकल्प स्वीकार किया।

समर्पित राजपूत कन्या पर अधिकार होने के दूसरे ही दिन अकबर ने आगरे के लिए प्रस्थान किया। अपहृत राजपूत ललना को उसने व्याजोक्ति रूप में 'वधू' की संज्ञा दी। कहने का तात्पर्य यह कि विवाह आदि का कोई समारोह नहीं किया गया। उन दिनों जब राजकीय परिवारों की शादियाँ होती थीं तो महीनों धूमधाम रहती थी। समारोहों का ताँता लग जाया

करता था, महीनों भोजोत्सव आदि मनाए जाते थे, फिर यह विवाह एक ही दिन में कैसे सम्पन्न हो गया ?

व्याजोक्ति के रूप में पुनः यह उल्लेख प्राप्त होता है कि भारमल ने अकबर को दहेज के रूप में सोने की जीन युक्त हजारों घोड़े, हाथी, जवाहरात तथा नकदी प्रदान की। यह दहेज नहीं था अपितु बन्दी राजकुमारों को छुड़ाने के लिए दी गई फिरौती थी। राजकुमारों को मुक्त करने के लिए अकबर ने भारमल से उसकी कन्या की भी माँग की थी और धनराशि की भी।

डॉ० श्रीवास्तव ने यह भी उल्लेख किया है कि देवसा तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों की जनता अकबर के आगमन पर भाग खड़ी हुई थी। इससे यह सिद्ध होता है कि लोग अकबर से नरभक्षी शिकारी शेर के समान दहशत खाते थे। उसका स्वागत खुश होकर राजकीय वर के रूप में नहीं किया जा सकता था।

एक दूसरा सूत्र यह प्राप्त होता है कि तीनों राजकुमारों की मुक्ति के लिए भारमल ने अपनी कन्या समर्पित करने सम्बन्धी कार्य के लिए चगतई खाँ नामक एक मुसलमान को समझौता-वार्ता के लिए मध्यस्थ नियुक्त किया। यदि यह विवाह होता तो एक राजपूत शासक एक मुसलमान को मध्यस्थ के रूप में कभी नियुक्त न करता।

भारमल द्वारा अपनी कन्या समर्पित किए जाने के बाद अकबर ने शरफुद्दीन को आदेश दिया कि उसी प्रकार से एक-दूसरे राजपूत अधिकृत नगर मेड़ता में हमले आदि बोल कर लोगों में डर पैदा किया जाए। अतः वे सभी विवरण, जिनमें इस कार्य को विवाह बताया गया है भ्रांत तथ्यों से पूर्ण कपटजाल हैं। ये सब कुचक्र हैं। यद्यपि अकबर ऐसी बातों पर विशेष ध्यान नहीं देता था, फिर भी अपहरण अथवा समर्पण जैसे कृत्य को शादी के छद्मवेश में गौरवान्वित करके प्रस्तुत करने में उसे कोई आपत्ति नहीं होती थी। जहाँ तक भारमल का प्रश्न था, उसका यह चाहना स्वाभाविक ही था कि इस नीचतापूर्ण समर्पण के कृत्य को स्वेच्छापूर्वक विवाह के रूप में व्यक्त किया जाए। यह तो भावी पीढ़ी पर निर्भर करता है कि वह सामयिक परिस्थितियों के रहस्यों तक पहुँचे तथा भ्रान्तिपूर्ण जालसाजियों

एवं राजनीतिक धोखाधड़ियों को अस्वीकार कर दे और अपनी आँखों में धूल न पड़ने दे।

डॉ० श्रीवास्तव ऐसा विश्वास करते हैं कि भारमल की कन्या के साथ अकबर के विवाह का "समारोह अत्यधिक प्रशंसनीय ढंग से सम्पन्न किया गया।" (अकबर : दी ग्रेट, पृ० ६२) किन्तु आगे चलकर वे कलाबाज़ी खाते हैं और गिरगिट की तरह रंग बदलकर पृ० ११३ पर एक टिप्पणी के अन्तर्गत यह उल्लेख करते हैं—"कोई भी मध्ययुगीन हिन्दू, चाहे उसकी सामाजिक स्थिति कितनी भी निम्न क्यों न रही हो, एक मुसलमान के साथ विवाह-सम्बन्ध पसन्द नहीं करता था, चाहे वह शाही खानदान से ही सम्बन्ध रखता हो। एक हिन्दू की दृष्टि में मुसलमान का स्पर्श मात्र उसे भ्रष्ट अथवा पतित बना देता था।"

मांडवगढ़ में जब शाही शिविर लगे थे, अकबर ने उसी प्रकार से "खानदेश के शासक मिर्जा मुबारक शाह की बेटी का हाथ माँगा। उसे प्रमुख हिजड़ा एतिमाद खाँ लाया तथा सन् १५६३ ई० में उसे अकबर के हरम में प्रविष्ट किया गया। स्पष्टतः यह भी विवाह की घटना नहीं थी क्योंकि मुबारक शाह की बेटी को एक फौजी सेनापति द्वारा, जिसने फौजी ताकत के जोर पर खानदेश के शासक के समक्ष अपमानजनक स्थिति उत्पन्न कर दी, बलात् लाया गया था तथा अकबर के हरम में प्रविष्ट कराया गया था।" (अकबर : दी ग्रेट, पृ० ११३)। इस घटना से यह भी सिद्ध होता है कि अकबर के शासनकाल में हिजड़े भी सेनापति के पद पर होते थे।

कल्याणमल के भाई काहन की बेटी के साथ अकबर ने शादी की। कल्याणमल बीकानेर का शासक था। उसके पुत्र रायसिंह को शाही सेवा में रख लिया गया। कल्याणमल अत्यधिक मोटा होने की वजह से घोड़े की सवारी नहीं कर सकता था, अतः उसे बीकानेर जाने की अनुमति दे दी गई। (अकबर : दी ग्रेट, पृ० १२६-२७)।

यह भी विवाह की घटना न होकर कन्या को समर्पित कर देने की शर्मनाक घटना थी। विवाह की इन समस्त तथाकथित घटनाओं में कन्या के नाम का उल्लेख कहीं नहीं किया गया है, क्योंकि उसका सतीत्व एक ऐसी निधि (चल सम्पत्ति) थी, जिसका विनिमय किया गया। कन्या को

समर्पित करने अथवा सतीत्व-विनिमय का उद्देश्य था आक्रामक मुस्लिम सेना के हाथों सम्पूर्ण अधिकृत प्रदेशों में लूट-खसोट, डाकेज़नी तथा विध्वंस से बचाव। बीकानेर के शासक कल्याणमल को यदि अकबर द्वारा विशेष अनुग्रह के रूप में शाही सेवा में लिया जाता तो उसके बीकानेर वापस लौटने की अनुमति देने की बात ही नहीं उठती। उसे वापस लौटने की अनुमति देने सम्बन्धी तथ्य से यह प्रदर्शित होता है कि उसे अपने भाई की बेटी समर्पित कर अपनी स्वतन्त्रता का विनिमय (खरीदने) करने के लिए बाध्य किया गया। उसे अपनी मुक्ति के लिए सौदेबाज़ी के रूप में विपुल धन-राशि देने के लिए भी विवश किया गया। इस घटना के पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि कल्याणमल की स्वयं की बेटी कम-से-कम शादी योग्य नहीं थी। यदि उसकी स्वयं की बेटी होती तो उसके भाई की बेटी के स्थान पर अकबर उसे उसकी अपनी ही पुत्री समर्पित करने के लिए बाध्य करता।

डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव का कथन है, "जैसलमेर के शासक रावल हरराय ने अकबर के साथ अपनी कन्या का विवाह किया।" डॉ० श्रीवास्तव इस विवाह के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए आगे लिखते हैं—"राजकुमारी को शाही शिविर में लाने के लिए राजा भगवानदास को बीकानेर भेजा गया।" स्मरणीय है कि इन तथाकथित विवाहों में से प्रत्येक विवाह में अकबर के सेनापति नगरपालिका के दारोगाओं की भाँति, जो फंदा लिए आवारा भटकते पशुओं को पकड़ते हैं, शस्त्रास्त्रों से सज्जित सैनिक टुकड़ियों के साथ सुन्दर हिन्दू कन्याओं का पता लगाते थे, अकबर के हरम के लिए वे असहाय अबला ललनाओं को उनके अनिच्छुक एवं दुःखी माता-पिता से बलात् छीनकर लाया करते थे।

काँगड़ा उर्फ नगरकोट के बहादुर शासक विधिचन्द पर हमला बोलकर जब उन्हें अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया तो उन्होंने अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के अतिरिक्त ५ मन स्वर्ण तो दिया (अकबर : दी ग्रेट, पृ० १४३-१४४) किन्तु अकबर के हरम के लिए डोला भेजने तथा मुगल आधिपत्य स्वीकार करने सम्बन्धी शर्तों को पूर्ण नहीं किया।" इतिवृत्त लेखक बदायूंनी ने एक टिप्पणी में लिखा है—"मुगलों ने ज्वालामुखी देवी की मूर्ति के शीर्ष पर स्थित स्वर्णिम छत्र को तीरों से छेद डाला। मन्दिर में

पूजा के लिए रखी गई २०० काली गायों को वे हाँक लाए। उनका वध करके उनके खून से उन्होंने अपने जूते भर लिये और मन्दिर की दीवारों एवं दरवाजों पर अपने जूतों की छाप अंकित कर दी।" इस प्रकार के अन्याय एवं अत्याचार तथा हरजाने के रूप में भारी सम्पत्ति देने के बावजूद भी विधिचन्द ने अपने परिवार की महिला को अकबर के हरम के लिए समर्पित करना अस्वीकार कर दिया। प्रस्तुत उद्धरण के अध्ययन से यह प्रदर्शित होता है कि राजपूत अपने परिवार की महिलाओं की प्रतिष्ठा तथा सतीत्व को कितना महत्त्व देते थे तथा पराजित शत्रुओं के परिवार की महिलाओं को फौजी ताकत के ज़ोर पर अपने हरम में एकत्रित करने का अकबर का आचरण कितना घृणित था।

डॉ० श्रीवास्तव का कथन है (पृ० २१३, २१५), "बाँसवाड़ा के शासक रावल प्रताप तथा डूँगरपुर के शासक रावल आसकरण को अकबर की सेवा में उपस्थित होने के लिए राजी किया गया। वे उसके अधीन जागीरदार हो गये। अकबर ने डूँगरपुर के शासक की कन्या से विवाह किया। लूनकरण एवं बीरबल द्वारा समझौते की वार्ता सम्पन्न हुई। अकबर जब फ़तेहपुर सीकरी लौट रहा था, वे कन्या को उसके शिविर में लाए।"

उपर्युक्त उद्धरण इस बात का एक ज्वलंत उदाहरण है कि भारतीय इतिहास को किस प्रकार अंधानुकरण करते हुए लिखा गया है। "अकबर की सेवा में उपस्थित होने के लिए राजी किया गया।" शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि उनका अपमान करते हुए उन्हें अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। उनका अपमान तब पूरा हुआ, जब डूँगरपुर की कन्या (दबाव पड़ने पर) समर्पित की गई। यह शादी की घटना नहीं थी। इस तथ्य से सिद्ध होता है कि असहाय कन्या को लूनकरण तथा बीर-बल उसके पिता के रक्षात्मक संरक्षण से बलात् खींच लाए तथा अकबर जब फतेहपुर सीकरी के मार्ग में था—उसे उसके हरम में डाल दिया गया। राजपूत राजकुमारियों की प्रतिष्ठा पर आघात करते हुए उनका सतीत्व भंग करना अकबर के शासन तथा जीवन का एक प्रमुख लक्ष्य था। धूर्तता-पूर्ण कथन द्वारा इस घृणित तथा अपमान कृत्य को अकबर के एक उदार कर्म के रूप में गौरवान्वित किया गया है। इस प्रकार का पक्षपात, भ्रांत एवं झूठे तथ्य विश्व-साहित्य तथा शैक्षणिक पाठ्य पुस्तकों में और कहीं

नहीं मिल सकते। अर्थात् सत्य पर पर्दा डालने के ऐसे तथ्य और कहीं प्राप्त नहीं हो सकते।

शेख अब्दुन नबी ने जब अकबर की इस प्रकार की अनेक शादियों का विरोध किया (अकबर : दी ग्रेट, पृष्ठ २३१-२३२) तो उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध मक्का भेज दिया गया। सन् १५८३ ई० में जब वह भारत लौटा, संदेहास्पद स्थिति में उसकी मृत्यु हो गई। स्पष्ट है, अकबर ने उसकी हत्या करवा दी। एक धर्मान्ध मुसलमान होने के कारण अब्दुन नबी को अकबर द्वारा हिन्दू ललनाओं को अपहृत करने पर कोई आपत्ति नहीं थी। उसका विरोध तो मुसलमानों पर आक्रमण किए जाने तथा मुस्लिम परिवारों की औरतों को अपहृत करने के प्रति था। जैसाकि अकबर ने अब्दुल वासी के परिवार के साथ किया था।

अकबर अपने अधीनस्थ लोगों एवं पराजित शत्रुओं पर न केवल अपने हरम के लिए उनकी औरतों को समर्पित करने के लिए दबाव डालता था, अपितु अपने पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों के लिए औरतें समर्पित करने के लिए उन्हें बाध्य करता था। "छोटे तिब्बत के शासक अलीराय ने अपनी सुरक्षा की दृष्टि से शाहजादे सलीम के साथ अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव रखा। उसकी कन्या को लाहौर लाया गया तथा १ जनवरी, १५७२ ई० को शादी सम्पन्न हुई।" (पृ० ३५४)

ऊपर प्रस्तुत उद्धरण से यह प्रदर्शित होता है कि छोटे तिब्बत के शासक को धमकी दी गई कि यदि वह सलीम के हरम के लिए अपनी कन्या समर्पित नहीं करेगा तो छोटे तिब्बत पर हमला बोलकर उसे बरबाद कर दिया जायेगा। इसी प्रकार २६ जून, १६८६ को लाहौर में बीकानेर के रायसिंह की कन्या के साथ शाहजादे सलीम की दूसरी शादी सम्पन्न हुई। (अकबर : दी ग्रेट, पृ० ३५४-३५७)। इस घटना को विवाह की संज्ञा देना मिथ्या दंभ मात्र है। विवाह बीकानेर में सम्पन्न न होकर लाहौर में हुआ, क्योंकि बीकानेर के शासक ने एक विदेशी लुटेरे के हाथों अपनी कन्या सौंपते हुए स्पष्टतः लज्जा एवं अपमान महसूस किया। जनता द्वारा निंदा एवं भर्त्सना की जाने के भय के कारण एक शक्तिशाली मुसलमान बादशाह के साथ अपनी कन्या के विवाह का समारोह अपनी राजधानी में मनाने का वह साहस न कर सका।

इतिवृत्त लेखक फरिश्ता ने उल्लेख किया है (द्वि० खं० पृ० १७३-१७४) कि किस प्रकार अकबर के पुत्र दानियाल के लिए बीजापुर के शासक की कन्या का अपहरण किया गया। सन् १६०० ई० में "बीजापुर के इब्राहीम आदिलशाह ने अकबर को मनाने तथा शाहजादे दानियाल मिर्जा के साथ अपनी कन्या की शादी करने के लिए अपनी सहमति व्यक्त करने एक राजपूत भेजा। तदनुसार मीर जमालुद्दीन हुसैन अंजोई नामक एक सरदार को बीजापुर से दुल्हन को सुरक्षापूर्वक लाने के लिए रवाना किया गया। जून, १६०४ में मीर जमालुद्दीन हुसैन शाही दुल्हन के साथ वापस लौटा। वह अपने साथ दहेज का बहुमूल्य सामान भी लिये हुए था। पैथान के निकट गोदावरी के तट पर उसने दुल्हिन को (सुल्तान की बेटी को) दानियाल को सौंप दिया। वहीं बड़ी धूम-धाम के साथ विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ तथा उत्सव मनाया गया। इसके बाद मीर जमालुद्दीन हुसैन बादशाह के दरबार में शामिल होने आगरे की ओर बढ़ गया। ८ अप्रैल, सन् १६०५ ई० को बुरहानपुर में अत्यधिक शराब पीने के कारण दानियाल की मृत्यु हो गई।"

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि बीजापुर के शासक की बेटी का अपहरण दबाव डालकर किया गया। जो समारोह मनाया गया वह विवाह का नहीं था, अपितु एक दूसरी लड़की को सफलतापूर्वक अपहृत करने की खुशी में मनाया गया जश्न था। उसके नाम को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। असहाय अबला युवती के अपहरण के कुछ महीने बाद ही दानियाल की मृत्यु हो गई। यदि बीजापुर के शासक का बस चलता तो वह एक दुराचारी, शराबखोर और मरणासन्न शाहजादे को अपनी कन्या शादी में न देता।

शेलट महोदय ने शाहजादे सलीम के साथ हिन्दू राजकुमारियों की दो शादियों का उल्लेख किया है। उनका कथन है—"२ फरवरी, सन् १५८४ ई० को लाहौर में बड़ी धूमधाम एवं आडम्बर के साथ राजा भगवानदास की कन्या के साथ शाहजादे सलीम का विवाह सम्पन्न हुआ। जून, सन् १५८६ ई० में भगवानदास के निवास-स्थान पर रायसिंह की कन्या का विवाह सलीम के साथ हुआ।" (अकबर, पृ० १९६)।

विद्वान् लेखक ने यह समझने में गलती की है कि ये धूमधाम, आडम्बर

तथा समारोह शादियों से सम्बन्धित थे। उक्त घटनाएँ शादियों की न होकर अपहरण की थीं। यह मात्र इस तथ्य के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि कन्याओं के नामों का उल्लेख नहीं किया गया है। उन्हें बलात् लाहौर लाया गया, जो कि कन्याओं के निवास-स्थान से बहुत दूर स्थित था। प्रथम घटना के अपहरण तथा दमन की नीति को छिपाने की दृष्टि से समारोह आदि मनाए गए। दूसरी घटना में रायसिंह की कन्या को दूरस्थ राजस्थान से उसके दुःखी एवं असहाय माता-पिता से छीनकर भगवानदास के लाहौर स्थित निवास-स्थान में लाया गया और तब उसे जहाँगीर को सौंपा गया। भगवानदास का परिवार तब से अकबर के अधीन था, जब से उसके पिता भारमल ने (अपनी कन्या समर्पित कर) राजपूती शान पर पानी फेरते हुए, खून के घूँट पीकर अपमानजनक स्थिति में अकबर को तथा उसके उत्तराधिकारियों को अपने राज्य से कितनी ही औरतें उठवा मँगाने की अनुमति दे दी थी। अतः उनके लिए अन्य राजपूत शासक भाइयों को इसी प्रकार अपमानित होते हुए तथा दयनीय स्थिति में देखना किंचित् मनः-शान्ति एवं सांत्वना की बात थी। यही कारण है कि भगवानदास तथा उसके दत्तक पुत्र मानसिंह अकबर तथा उसके शाहजादों के लिए राजपूत कन्याओं का अपहरण करवाने से सदैव "एजेन्ट" का कार्य करते थे। ऐसा ही एक वह अवसर था जब लाहौर में भगवानदास के निवास-स्थान पर राजा रायसिंह की कन्या को जहाँगीर के हरम के लिए सौंपा गया।

बदायूँनी का कथन है—"१६ वर्ष की आयु में सलीम ने राजा भगवानदास की कन्या के साथ शादी की। राजा ने अपनी कन्या के दहेज में कई अश्व-पंक्तियाँ, अबीसीनियाँ, भारत तथा सिरकासिया के छोकरे एवं युवतियाँ, जवाहरात, सोने के बर्तन, रजत-पात्र तथा सभी प्रकार की सामग्रियाँ प्रदान कीं, जिनकी गणना भी नहीं की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त विवाह के समय उपस्थित अमीरों को, उनके पद तथा श्रेणी के अनुरूप फारसी, तुर्की तथा अरबी घोड़े दिए, जिन पर सोने की ज़ीनें कसी थीं। (मुतखाबुत तवारीख, द्वितीय खण्ड, पृ० ३५२)।

इस वर्णन को एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि किस प्रकार अधीनस्थ राजपूत शासकों को विदेशी आक्रामकों को अपनी प्रिय कन्याएँ एवं बहनें सौंपने के साथ-साथ अपनी मुक्ति एवं स्वतन्त्रता के

लिए प्रचुर सम्पत्ति भी देने के लिए विवश किया जाता था। इसका दहेज के रूप में उल्लेख करना, सत्य का उपहास करना है—यथार्थ पर पर्दा डालना है। कौन हिन्दू स्वेच्छा ने अपनी सुन्दर, प्रिय तथा व्यवस्थित ढंग से लालित-पालित कन्याओं को उन विदेशियों को देना पसन्द करेगा, जो शराबखोर, नशेबाज़, चरित्र-भ्रष्ट, नर-संहारक तथा हिन्दुओं एवं हिन्दुस्थान को घृणा की दृष्टि से देखने वाले थे। जिन्होंने ऐसा किया भी उन्होंने अन्नत: अपमानित और विजित होने के बाद विवश होकर ऐसा किया। पहले उन्होंने दृढ़तापूर्वक आक्रामक मुसलमानों का सामना एवं विरोध किया, फिर सहस्त्रों की संख्या में अपनी महिलाओं को जौहर की ज्वाला में झोंक दिया। मुसलमानों के भीषण अत्याचारों से, विध्वंस के भयावह ताण्डव से जब उनका उत्साह मन्द पड़ गया, उनकी युद्ध की उमंग टूट गई, लूट-खसोट, अशान्ति और अव्यवस्था से, जब उनकी आत्मा कराह उठी, तभी उन्होंने अत्यन्त दयनीय स्थिति में अधीनता स्वीकार करने एवं किसी भी मूल्य पर बाह्य शान्ति खरीदने का निर्णय किया।

भारतीय इतिहास के लेखकों को ऐसा कोई अधिकार नहीं है कि वे यथार्थ तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करें, सत्य पर पर्दा डालें तथा अपहरण के घृणित कृत्यों का शादियों के रूप में उल्लेख करें। विदेशी आक्रामकों द्वारा राजपूत योद्धाओं पर युद्धों में किये गए अन्यायों, अत्याचारों, बर्बरतापूर्ण अपमानों को छिपाया नहीं जा सकता। ऐसा करना इतिहास के साथ अन्याय करना है।

इतिहास को सदैव पक्षपातरहित रखना चाहिए। इतिहासकारों को राजनीतिज्ञों की भूमिका अदा नहीं करनी चाहिए, न ही उन्हें राजनीतिज्ञों के संकेतों पर कार्य करना चाहिए। उन्हें राजनीतिज्ञों के इंगित पर सत्य को तोड़ने-मरोड़ने अथवा बर्बरतापूर्ण कृत्यों को छिपाने की आवश्यकता नहीं है। पाठक इतिहासकार से सत्य का समुचित अनुसंधान करने तथा उसे बिना किसी अतिशयोक्ति के, इधर-उधर के तथ्यों को बिना सम्बद्ध किए सुव्यवस्थित घटनाक्रम के साथ प्रस्तुत करने की अपेक्षा करता है। वर्तमान समय में सामान्य तौर पर भारतीय इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में इतिहासकारों की ऐसी प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। इनमें से कोई भी उत्तर-दायित्व भारतीय इतिहासकार पूरी तरह नहीं निभा रहे हैं।

प्रशासक अथवा राजनीतिज्ञ तो ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए अपने स्वयं के सिद्धान्त-सूत्र अथवा टिप्पणियाँ सम्बद्ध कर सकते हैं, किन्तु इतिहास में केवल सत्य की, पूर्ण सत्य की तथा सत्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। इतिहासकार अपने पाठकों के समक्ष ऐतिहासिक यथार्थ के ही घटनाक्रम का उद्‌घाटन करें। अकबर तथा उसके बेटों के तथाकथित विवाहों के सन्दर्भ में नग्न सत्य यही है कि वे सभी घृणित तथा सरासर स्पष्ट अपहरण के कृत्य थे, पर चाटुकार लेखकों ने उनका विवाह के रूप में उल्लेख किया है।

: ८ :

विजय-अभियान

भारतीय इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में प्राय: इस प्रकार के भ्रांत मत अथवा विचार व्यक्त किये गये हैं कि अकबर की विजयों का उद्देश्य जिन विभिन्न खण्ड-राज्यों तथा जागीरों में भारत उस समय विभाजित था, उन्हें समाप्त कर एक संयुक्त, सुदृढ़, संगठित एवं एकात्मक राष्ट्र की स्थापना करना था। इस प्रकार के उल्लेखों में ऐसा मान लिया जाता है कि अकबर एक भारतीय था तथा उसके मन में देशभक्ति का उत्साह उमड़ रहा था एवं भारत के भविष्य एवं यहाँ की बहुसंख्यक जनता—हिन्दुओं के प्रति 'सहजात प्रेम' की भावनाएँ हिलोरें भर रही थीं। ये दोनों अनुमान गलत हैं तथा इन भ्रान्त तथ्यों पर आधारित निष्कर्ष भी अनधिकृत एवं अनुचित हैं।

अकबर न तो अपने विचारों से और मन से ही भारतीय था तथा न शरीर से और अपने कृत्यों से ही। किसी भी रूप में उसे 'भारतीय' नहीं स्वीकार किया जा सकता। वह पूर्णत: एक विदेशी था—एक आक्रामक और पूर्णत: साम्राज्यवादी था, जिसकी बिजयों का एकमात्र उद्देश्य भारतीय जनता तथा उनकी संस्कृति को जड़मूल सहित समाप्त करना था। किसी भी मूल्य पर जन-जीवन, जन-सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठा को विनाश की ज्वाला में झोंककर वह अपने धर्मान्ध सम्मान की रक्षा करने को लालायित था।

विंसेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'अकबर : दी ग्रेट मुगल' के पृष्ठ ८ पर ठीक ही लिखा है कि "अकबर भारतवर्ष में एक विदेशी था। उसकी रगों में बूंद मात्र भी भारतीय रक्त नहीं था। (पितृ पक्ष में) वह सीधे तैमूर लंग का सातवाँ वंशज था। १३वीं शताब्दी में एशिया में हड़कम्प मचाने वाले मंगोल नर-पिशाच चंगेज खाँ के द्वितीय पुत्र चगताई की सन्तति

यूनुस खाँ की बेटी बाबर की माँ थी।" इस तरह मातृपक्ष से अकबर की रगों में चंगेज खाँ का खून था। उसकी माँ फारस की रहने वाली थी।

अतः स्पष्टतः कुलोत्पत्ति में अकबर पूर्णतः एक विदेशी था। ऐसी स्थिति में एक अन्य तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि यद्यपि अकबर आनुवंशिक रूप में भारतीय नहीं था किन्तु रुचि के अनुसार उसे भारतीय स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि उसके दो पूर्वजों तथा उत्तराधिकारियों ने भारत को अपनी जन्म-भूमि बना लिया था। कई पाठक इस प्रकार के वाक्छलों पर जीवनपर्यन्त विश्वास करते रहते हैं तथा संकुचित विचार-धारा की परिधि से बाहर निकलने का प्रयास ही नहीं करते। यदि अकबर ने सचमुच अपने व्यक्तित्व, संस्कृति तथा धर्म को भारत की बहुसंख्यक हिन्दू जनता की संस्कृति और धर्म में विलीन कर दिया होता तो निश्चय ही उसे भारत की नागरिकता प्राप्त करने का हक होता और उसे भारतीय नागरिक माना जाता। यदि अपने पृथक् धर्म और संस्कृति को असंयुक्त रखते हुए भी उसने अपना जीवन हिन्दू जनता के कल्याण हेतु उत्सर्ग किया होता तो उसे कृतज्ञता का पात्र माना जा सकता था। किन्तु अकबर का सम्पूर्ण जीवन अपनी प्रजा का संहार करने, खून-खराबे, लूट-खसोट, उन्हें अपमानित करने एवं उनका सर्वस्व तबाह कर देने में व्यतीत हुआ था। अतः उसे तो अधिवास अथवा देशीकरण के कारण नागरिकता प्राप्त नागरिक भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। उसे 'भारतीय' स्वीकार करने के लिए भारतवर्ष में केवल उसकी शारीरिक उपस्थिति अथवा वास को किसी सिद्धान्त के रूप में मान्यता नहीं दी जा सकती। यदि कोई दस्यु-दल किसी गाँव को अपना 'कार्य-क्षेत्र' बनाते हुए वहाँ के कुछ निवासियों की बलात् सहायता लेकर आस-पास के गाँवों में निरन्तर लूट-खसोट करे, उपद्रव मचाए, अपमान एवं अनादर के कृत्य करे तो क्या उन डाकुओं को उस गाँव के निवासी के रूप में स्वीकार किया जा सकता है ? यदि कोई व्यक्ति किसी मकान में ज़बरदस्ती प्रवेश कर वहाँ के दो कमरों में बलात् अधिकार जमा ले तो क्या उसे मकान मालिक के दामाद के रूप में मान्यता दी जा सकती है ? ठीक यही स्थिति भारतवर्ष में अकबर तथा उसके उत्तराधिकारियों की थी। भारतवर्ष उनके 'शिकार' का केन्द्र था, उनसे त्रस्त था, फिर भी उन्हें अनिच्छा से पनाह दिये हुए था। मुगल

बादशाहों में से किसी ने भी अपने अन्तिम क्षणों तक भारतवर्ष को कभी अपना घर न माना, न ही उन्होंने हिन्दुओं को अपने भाइयों के रूप में स्वीकार किया। वे सदैव टर्की, इराक, ईरान, सीरिया, अफगानिस्तान तथा अबीसीनिया को ही अपनी मातृभूमि मानते रहे। मक्का तथा मदीना को अपने तीर्थ-केन्द्रों के रूप में स्वीकार करते रहे तथा बहुसंख्यक भारतीयों को वे अपना भयावह शत्रु मानते रहे। हिन्दुओं का नर-संहार करना तथा उनके निवास-स्थानों को बरबाद करना वे अपना पवित्र धार्मिक कर्तव्य समझते रहे। यही उनका 'शबाब' रहा है। यद्यपि उन्होंने भारत को अपना निवास-स्थान बना लिया था तथापि जब उनके ऐसे घृणित आदर्श, पतित कृत्य एवं गर्हणीय विचारधाराएँ थीं, तो क्या उन्हें भारतीय माना जा सकता है? उन्होंने भारत को अपना निवास-स्थान अथवा जघन्य कार्य-क्षेत्र बनाकर स्थिति और भी विषम कर दी। भारतवर्ष को अपना जघन्य कार्य-क्षेत्र बनाते हुए वे लूट-खसोट तथा अपहरण आदि कुकृत्य सहजतापूर्वक निरन्तर कर सकते थे। भारत में रहते हुए आस-पास के क्षेत्र में निरन्तर लूटमार कर सकते थे। यह उनका नित्य-नैमित्तिक कर्म था जो वे अविराम करते थे। अतः यह कहा जा सकता है कि किसी देश का नागरिक होने के लिए केवल वहाँ शारीरिक उपस्थिति अथवा काफी समय से रहते आना, जो कि नागरिकता का केन्द्रीय तत्त्व है, ही पर्याप्त नहीं है, अपितु इसके लिए उस देश की धरती के कण-कण से प्रेम, वहाँ के निवासियों से स्नेहिल सम्बन्ध तथा उन दोनों की सेवा के लिए अपने आपको उत्सर्ग करने की भावना की आवश्यकता होती है। अकबर में इनमें से एक भी गुण होना तो दूर रहा, वह प्रत्येक दृष्टिकोण से भारत तथा भारतीयों के लिए जीवनपर्यन्त खतरा ही बना रहा तथा उसकी मौत को न केवल अधिकांश जनता ने अपितु स्वयं उसके बेटे जहाँगीर एवं समस्त दरबारियों ने 'संत्रास से मुक्ति' माना।

चूँकि अकबर एक भारतीय नहीं था, अतः इसमें आश्चर्य नहीं कि उसने भारतीय शासकों को अपने अधीन करने के लिए निर्ममतापूर्वक क्रूर एवं बर्बर ढंग से उनका दमन किया, खून-खराबी तथा लूट-खसोट का भय दिखाकर उन्हें बलात् अपना दरबारी बनने के लिए विवश किया। "वास्तव में अकबर जैसा आक्रामक बादशाह कभी नहीं हुआ। अकबर के

जीवन को परिचालित करने वाली दुर्भावना उसकी महत्त्वाकांक्षा थी। उसका सम्पूर्ण शासनकाल युद्धों में व्यतीत हुआ।...उसके आक्रमणों का उद्देश्य प्रत्येक राज्य की स्वतन्त्रता समाप्त करना था।...गोंडवाना की जनता आसफखाँ (अकबर के सेनापति) की अपेक्षा रानी दुर्गावती के अधीन अधिक सुखी थी।" (अकबर : दी ग्रेट मुगल, पृ० २५१) मेल्लेसन तथा वान नोअर द्वारा प्रतिपादित विरोधी मतों को स्मिथ महोदय ने 'असत्य' एवं 'मूर्खतापूर्ण' कहकर अस्वीकार किया है।

"अकबर की साम्राज्य-लिप्सा कभी सन्तुष्ट नहीं हुई। समस्त राष्ट्रों और राज्यों पर अपने शासन का विस्तार करने की उस धर्मोन्मत्त की प्रबल इच्छा थी। वह सभी राज्यों को अपनी तलवार की धार के नीचे देखना चाहता था।" (अकबर : दी ग्रेट मुगल, पृ० १६०)।

ऐसी किसी भी विशेष घटना को प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं जो (अकबर द्वारा) राणा प्रताप पर किये गये आक्रमण के उद्देश्य पर प्रकाश डाले। अबुल फ़ज़ल (अकबर द्वारा नियुक्त दरबारी इतिवृत्त लेखक) ने राणा प्रताप पर आरोप लगाया है कि 'अपनी हठवादिता, उद्दण्डता, दुस्साहस, अनुज्ञा, वंचना तथा छल-कपट के कारण वह दण्ड का पात्र है। उसकी देश-भक्ति ही उसका अपराध थी।...सन् १५७६ ई० में किये गये आक्रमण का उद्देश्य राणा प्रताप को बरबाद करना तथा मुगलिया सल्तनत के बाहर रहने के उसके स्वाभिमान को अन्तिम रूप से चकनाचूर करना था। बादशाह ने राणा प्रताप को मारने की तथा उसके राज्य पर कब्जा कर लेने की इच्छा की थी। जबकि राणा प्रताप, आवश्यकता पड़ने पर अपने जीवन को भी बलिदान कर देने की तैयारी करते हुए इस बात के लिए कृत-संकल्प था कि उसका रक्त एक विदेशी के रक्त के मिश्रण में कभी दूषित नहीं होगा तथा उसका राष्ट्र स्वतन्त्र व्यक्तियों का उन्मुक्त राष्ट्र ही रहेगा। अनेक संकटों और विपत्तियों के पश्चात् उसे सफलता मिली तथा अकबर असफल हुआ।' (वही, पृ० १०६-१०८)

"पूर्वी प्रान्तों तथा कारा के राज्यपाल आसफ खाँ को बुन्देलखण्ड में पन्ना के राजा को पराजित करने के बाद अकबर ने शाही फौज के साथ गोंडवाना पर आक्रमण करने का निर्देश दिया। उक्त राज्य पर तब (१५६४ ई० से) एक वीरांगना रानी दुर्गावती का शासन था। रानी

दुर्गावती पिछले १५ वर्षों से अपने अवयस्क पुत्र के स्थान पर शासन कर रही थी। यद्यपि उसका पुत्र अब वयस्क हो चुका था तथा एक वैधानिक राजा के रूप में स्वीकृत भी हो चुका था, तथापि रानी ही राज्य की बागडोर सँभाले हुए थी। रानी महोबा के चन्देल वंश की राजकुमारी थी। चन्देल राजवंश पिछले ५०० वर्षों से भारत का शक्तिशाली राज्य था। उसके अकिञ्चन पिता को अपने स्वाभिमान के प्रतिकूल अपनी कन्या गोंडराज को देने के लिए विवश होना पड़ा था जो वैभव-युक्त तो था पर उसकी सामाजिक स्थिति उससे काफी हीन थी। रानी दुर्गावती अपने महान् पूर्वजों के वंश-गौरव के अनुरूप ही योग्य सिद्ध हुई। अबुल फ़ज़ल के कथनानुसार उसने "अपनी दूरदर्शितापूर्ण योग्यता के द्वारा महान् कार्य करते हुए" अनन्य साहस एवं कार्य-क्षमता का परिचय दिया तथा अपने राज्य पर कुशलतापूर्वक शासन किया। उसने बाज़ बहादुर आदि के साथ युद्ध किये तथा सदैव विजय प्राप्त की। उसकी सेना में युद्ध के लिए २० हज़ार घुड़सवार तथा एक हजार प्रसिद्ध हाथी थे। उक्त पराजित राज्यों के राजाओं के खज़ाने युद्ध के पश्चात् उसके हाथ लगे। बन्दूक चलाने तथा शर-संधान करने में वह पूर्ण दक्ष थी। वह सदैव आखेट करने जाया करती थी तथा अपनी बन्दूक से जंगली जानवरों का शिकार किया करती थी। उसने ऐसी प्रथा अपना ली थी कि जब उसे पता चलता था कि कोई शेर दिखाई दिया है तो वह जबतक उसका शिकार नहीं कर लेती थी, तबतक जल तक ग्रहण नहीं करती थी। अपने राज्य के विभिन्न भागों में उसने कई जनहित के कार्य करवाये थे। इस प्रकार उसने जनता का हृदय जीत लिया था। आज भी लोग आदरपूर्वक उसका नाम लेते हैं। ऐसी सद्चरित्रा, उदार-हृदया एवं महिमावती रानी पर अकबर के आक्रमण का कोई कारण नहीं था। इसके लिए कोई दलील पेश नहीं की जा सकती। इसके पीछे केवल अकबर की विजय-लिप्सा एवं लूट-खसोट की इच्छा थी। श्रीमती बेवरिज ने यह सही तथ्यांकन किया है कि, "अकबर एक प्रबल साम्राज्यवादी तथा राज्यों को हड़प करने वाला था, जिसके 'सूर्य-तेज' के सामने लार्ड डलहौजी का महान् सितारा भी धूमिल पड़ गया।...अपनी फौजी ताकत तथा अपार सम्पत्ति के ज़ोर पर उसने युद्ध आरम्भ किये तथा एक के बाद दूसरे प्रदेशों को अपनी सल्तनत में शामिल कर लिया।"

(ए० एस० बेवरिज, वान नोअर, प्रथम खण्ड, पृष्ठ vii)

"अकबर सम्भवतः कलिंग विजय के पश्चात् वहाँ के दुःखों को देखकर अशोक द्वारा अनुभव किये गये पश्चात्ताप का उपहास करता तथा अशोक द्वारा भविष्य में फिर कभी किसी राष्ट्र पर आक्रमण न करने सम्बन्धी निर्णय की तीव्र भर्त्सना करता।" महानता एवं उदारता के सन्दर्भ में प्रायः अशोक एवं अकबर की तुलना की जाती है, किन्तु यह तुलना पूर्णतः असंगत प्रतीत होती है। कलिंग विजय के पश्चात् युद्ध की विभीषिका देखकर अशोक के मन में पश्चात्ताप हुआ था तथा उसने निश्चय किया था कि वह भविष्य में कभी युद्ध न करेगा। इसके विपरीत अकबर युद्ध की विभीषिका देखकर प्रमुदित हुआ करता था।

काउन्ट वान नोअर का विश्वास है कि अकबर की विजयों का उद्देश्य समस्त छोटे-छोटे राज्यों को एक बृहद् साम्राज्य के रूप में संयोजित करना था। स्मिथ महोदय इस मत को 'भावात्मक विकार' कहकर अस्वीकार करते हैं। उनका कथन है—"विभिन्न राज्यों को संयोजित करने (हड़प करने) की अकबर की लिप्सा एक सामान्य बादशाह की महत्त्वाकांक्षा थी, जिसे पर्याप्त सैनिक शक्ति का समर्थन प्राप्त हुआ था। रानी दुर्गावती के उत्कृष्ट एवं सुव्यवस्थित प्रशासन पर अकबर द्वारा किये गये आक्रमण के सन्दर्भ में कोई नैतिक दलील नहीं दी जा सकती। इस आक्रमण का सिद्धान्त साम्राज्यवाद का विस्तार था, जिसने आगे चलकर कश्मीर, अहमदनगर तथा अन्य राज्यों को संयोजित करने की दुष्प्रेरणा दी। किसी भी युद्ध को आरम्भ करते हुए अकबर का कोई सिद्धान्त नहीं था। एक बार जब वह झगड़ा आरम्भ कर देता था तो निर्ममतापूर्वक शत्रु का विनाश करने में जुट जाता था। उसके क्रियाकलाप ठीक उसी प्रकार के होते थे, जिस प्रकार अन्य शक्तिशाली, महत्त्वाकांक्षी तथा निष्ठुर बादशाहों के थे।" (अकबर : दी ग्रेट मुगल, पृ० ५)

अकबर का सम्पूर्ण शासनकाल पृथ्वी के अधिक-से-अधिक भाग पर उसकी निरंकुश शासन-तन्त्र की लिप्सा को तृप्त करने हेतु एक के बाद दूसरे राज्य पर आक्रमण करने, वहाँ नर-संहार करने, बर्बरतापूर्ण खून-खराबियों, लूट-खसोट तथा एक के बाद एक राज्य को हड़पने का एक भयावह नाटक था। सम्पूर्ण विश्व के अधिक-से-अधिक भाग में वह अपने

स्वेच्छाचारी शासन-तन्त्र का प्रसार करना चाहता था।

अकबर के सेनापति शरफुद्दीन ने ज्यों ही जयपुर के शासक भारमल को पूर्णतः मुगलिया सल्तनत के अधीन किया और खून के घूँट पीते हुए राजपूती शान के खिलाफ एक विदेशी मुस्लिम हरम के लिए अपनी कन्या समर्पित करने के लिए विवश किया, त्यों ही अकबर ने उसे एक दूसरे स्वतन्त्र हिन्दू राज्य मेड़ता (भूतपूर्व जोधपुर रियासत के अन्तर्गत) पर आक्रमण करने एवं उसे मुगलिया सल्तनत में मिलाने का कार्य सौंपा।

अकबर को अपने स्वेच्छाचारी शासन-तन्त्र के अन्तर्गत किसी भी प्रकार की परिसीमा स्वीकार्य न थी। इसका स्पष्ट उदाहरण उसने मुगलिया सल्तनत के प्रति राजभक्त तथा अपने परिपालक एवं संरक्षक बहराम खाँ को कपट तथा छल से पराजित करके दिया। अकबर की स्वेच्छाचारिता इस पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी थी कि उसने न केवल बहराम खाँ की हत्या ही करवाई बल्कि उसके सम्मान एवं प्रतिष्ठा पर आघात करते हुए उसने उसकी बीवी का अपहरण तक किया तथा उसके बेटे को अपना जी-हुजूरिया होने को बाध्य किया।

अकबर ने मालवा के शासक बाज़ बहादुर पर आक्रमण करके उसे मुगलिया सल्तनत के अधीन किया और अपनी फौज में एक सामान्य अधिकारी के रूप में कार्य करने को बाध्य किया।

रानी दुर्गावती के राज्य पर आक्रमण किया गया। युद्धक्षेत्र में उस वीरांगना ने आत्महत्या कर ली। उसकी बहन तथा पुत्र-वधू बलात् अकबर के हरम में डाल दी गई।

भारत के अमर वीर राणा प्रताप ने अकबर के द्वारा किये गये हमलों का दृढ़तापूर्वक सामना करते हुए अपनी वीरांगना माता के दूध की लाज रखी तथा मुस्लिम सेना के बर्बरतापूर्ण खून-खराबे, नर-संहार तथा लूट-खसोट के बीच भी सदा हिन्दू राष्ट्र-ध्वज ऊपर उठाये रखा। उसपर अनेक अन्याय और अत्याचार किये गये और कई बार उसे निराशा और निराश्रयता के गर्त में झोंकने की कुचेष्टाएँ की गईं। इसका एकमात्र कारण प्रत्येक राज्य को मुगलिया सल्तनत के अन्तर्गत करने के लिए उनके साथ नीचतापूर्ण सन्धि करने की अकबर की कभी न तृप्त होने वाली लिप्सा थी।

अकबर की खुली तलवार से क्षत-विक्षत छोटे-छोटे राज्यों (जागीरों) में कत्लेआम, लूट-खसोट, बलात्कार, आगज़नी, तबाही एवं बरबादी के साथ औरतों को उठा ले जाने के कृत्य, मनुष्यों को गुलाम बनाने तथा हिन्दू मन्दिरों को अपवित्र करते हुए उन्हें मस्जिदों में परिवर्तित करने सम्बन्धी गर्हणीय दुष्कर्म किये जाते थे। इसके शिकार चित्तौड़, रणथंभोर, कालिंजर, गुजरात, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, कश्मीर, खानदेश, अहमदनगर, असीरगढ़, बांसवाड़ा, डूँगरपुर, बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर, सिरोही, काबुल, नगरकोट, बूँदी आदि राज्य हुए।

विजित शत्रुओं से अकबर किस प्रकार धन-सम्पत्ति एवं उनकी नारियाँ नज़राने के रूप में वसूल किया करता था इसके स्पष्ट संकेत बूँदी के सरदार राय सुरजन हाड़ा के साथ की गई संधि की शर्तों के अध्ययन से प्राप्त होते हैं। राय सुरजन को धोखे में रखकर तथा विभिन्न प्रलोभन देकर रणथंभोर का दुर्ग समर्पित करने और मुगलिया सल्तनत की अधीनता स्वीकार करने को फुसलाया गया। इसके लिए उसे कुछ विशेष छूट देने की बात कही गई। राय सुरजन द्वारा रखी गई संधि की शर्तें इस प्रकार थीं —(एनल्स एण्ड एंटिक्विटीज़ आफ़ राजस्थान, ले० कर्नल टाड, खण्ड २, पृ० ३८२-८३)

(१) शाही हरम के लिए डोला भेजने सम्बन्धी राजपूतों के लिए अपमानजनक परम्परा से बूँदी के सरदारों को मुक्त किया जाये।

(२) जिज़िया कर से छूट प्रदान की जाये।

(३) बूँदी के सरदारों को अटक पार करने को विवश न किया जाये।

(४) नौरोज़ के उत्सव पर शाही महल में लगने वाले मीना बाज़ार में बूँदी के जागीरदारों को अपनी पत्नियों तथा अन्य महिला रिश्तेदारों को प्रदर्शनी रचाने के लिए भेजने की परम्परा से मुक्त किया जाये।

(५) दीवान-ए-आम में प्रवेश करते समय उन्हें अस्त्र-शस्त्रों से पूर्ण रूप से सज्जित होकर प्रवेश करने की विशेष सुविधा होनी चाहिए।

(६) उनकी पवित्र देव-प्रतिमाओं और पवित्र स्थानों को आदर की दृष्टि से देखा जाये।

(७) उन्हें कभी भी किसी हिन्दू पदाधिकारी के अधीन न रखा जाये।

(८) उनके घोड़ों पर शाही मुहर नहीं दागी जाये।

(९) उन्हें लाल दरवाजे तक राजधानी की सड़कों में नगाड़े बजाने की अनुमति प्रदान की जाये तथा दरबार में प्रवेश करते समय उन्हें दंडवत् (कोर्निस) करने का आदेश नहीं दिया जाना चाहिए।

(१०) बादशाह के लिए जैसे दिल्ली राजधानी है, वैसे ही हाड़ाओं के लिए बूंदी होनी चाहिए तथा बादशाह को उनकी राजधानी न बदलने का आश्वासन देना चाहिए।

उपर्युक्त संधि की शर्तों के अध्ययन के बड़े दूरगामी परिणाम निकलते हैं। पहली शर्त से यह परिलक्षित होता है कि अकबर पराजित शत्रुओं को बलपूर्वक अपने अधीन करते समय उन्हें अपनी नारियाँ शाही हरम में भेजने के लिए बाध्य किया करता था। यदि पराजित शत्रु मुसलमान होते थे तो स्वाभाविक रूप से उनके हरम की औरतें 'विजयी' के हरम में शामिल कर ली जाती थीं। यदि विजित शत्रु कोई हिन्दू होता था तो उसे उसके परिवार की सुन्दर नारियाँ अकबर, उसके पुरखे तथा उत्तराधिकारियों के शाही हरम के लिए समर्पित करने हेतु विवश किया जाता था। इस प्रकार की घृणित परम्परा का पालन करने के लिए बाध्य होने के कारण हिन्दू सरदारों में प्रबल विरोध तथा विक्षोभ की भावना थी क्योंकि मुसलमानों तथा हिन्दुओं की जीवन-पद्धति तथा रीति-रिवाजों में आकाश-पाताल का अन्तर था। मुसलमान हत्या, कत्लेआम, भ्रष्टाचार, धोखेबाजी, षड्यन्त्रों और प्रति षड्यन्त्रों की योजनाओं में तल्लीन रहा करते थे। वे अफीमची तथा शराबी थे। उनका जीवन अशिक्षा एवं बर्बरता के वातावरण में व्यतीत होता था। इसके विपरीत हिन्दू धर्म-भीरु होते थे। वे शान्त, पवित्र एवं धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे।

भारतीय इतिहासकारों को यह विश्वास करने को कहा जाता है कि डोला भेजने का तात्पर्य विवाह था; किन्तु सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर पता चलता है कि डोला भेजने का तात्पर्य विवाह न होकर उससे सर्वथा पृथक् एक घृणित कृत्य होता था। डोला भेजने की अधिकांश घटनाएँ हिन्दू ललनाओं के खुल्लमखुल्ला अपहरण अथवा दबाव डालकर भगा ले जाने के कृत्यों से सम्बन्धित थीं। यही कारण है कि इन घटनाओं से सम्बद्ध समस्त क्रिया-कलाप (?) एक ही दिन में सम्पन्न हो जाते थे। 'डोला'

शब्द यद्यपि एकवचन का सूचक है, तथापि इसका अर्थ एक ही युवती से युक्त एक पालकी नहीं लेना चाहिए। 'डोला' का अर्थ बहुवचन के रूप में समुदायकवाचक संज्ञा का अभिसूचक होता था। इससे यह अर्थ ध्वनित होता है कि मुस्लिम विजेता विजित शत्रुओं को इतनी पालकियाँ (शिविकाएँ) भेजने का आदेश दिया करते थे, जिनमें उनके स्वयं के लिए, उनके पुत्रों एवं दरबारियों के लिए, स्त्रियाँ होती थीं। हिन्दू-धर्मानुसार पवित्र परिणय की पद्धति में कन्या को आदर के साथ विदा किया जाता है और वैसे ही सम्मानजनक ढंग से वर-पक्ष द्वारा ग्रहण किया जाता है। ऐसी हृदय-विदारक अपहरण की घटनाओं को विवाह की संज्ञा देना ऐतिहासिक सत्य को छिपाना है। उसका उपहास करना है। हिन्दू-धर्म की विवाह-पद्धति में हिन्दू नारी को सभी प्रकार की सुरक्षाएँ एवं प्रतिष्ठा प्रदान की जाती है। उसे परिवार में महत्त्वपूर्ण स्थान तथा पूर्ण नारी स्वातन्त्र्य प्राप्त होता है। मुस्लिम हरमों के लिए अपहृत की गई हिन्दू नारियों को पर्दा-दर-पर्दा महलों के आन्तरिक भागों में बन्द कर दिया जाता था। उनकी उन्मुक्त स्वर-कोकिला बन्दिनी बना दी जाती थी। उन्हें अपने पितृगृह जाकर अपने परिवार के लोगों से भी मिलने की अनुमति नहीं दी जाती थी, न ही अपने भूतपूर्व हिन्दू रिश्तेदारों से उन्हें किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने का अधिकार होता था। विजित की गई औरतों से भरे हुए हरम में शृंगार-प्रसाधन उपलब्ध होने की तो बात दूर, उन्हें नियमित रूप से भोजन आदि भी प्राप्त होने की आशा नहीं होती थी। हमारे वर्तमान युग में भी अभी हाल ही में निज़ाम के हरम की औरतों की दयनीय स्थिति प्रकाश में आई है। उनकी दशा इतनी करुणाजनक थी कि उनके बालों में जूँ पड़ गई थीं, पर उन्हें अपने बाल संवारने के लिए एक माशा तेल भी प्राप्त नहीं होता था। अधिकांश मामलों में हरम की औरतें परस्पर, बादशाह द्वारा तथा यहाँ तक कि भृत्यवर्ग द्वारा भी घृणा की दृष्टि से देखी जाती थीं। मुस्लिम हरम यथार्थतः पापाचारों तथा षड्यन्त्रों के केन्द्र होते थे। कभी-कभी हरम की राजकुमारियों की हत्या करवा दी जाती थी अथवा उन्हें ज़हर दे दिया जाता था, जैसाकि हम जहाँगीर की पत्नी जयपुर की राजकुमारी मानबाई के मामले में देखते हैं। यद्यपि उसका अपना भाई अकबर के दरबार में एक उच्च पदस्थ दरबारी था, फिर भी वह अपनी बहन की रक्षा न कर सका।

अकबर के समय के यूरोपीय विवरणों में इस प्रकार के तथ्य साक्ष्य के रूप में प्राप्त होते हैं कि हरम की औरतें मुसलमान दरबारियों को उनके अनौचित्यपूर्ण तथा गुप्त प्रेम के कारण उपहार के रूप में प्रदान की जाती थीं। अतः इस प्रकार के समस्त तथ्य कि अकबर हिन्दू सरदारों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने को इच्छुक रहता था, तथाकथित विवाहों के पीछे उसका एक महत् सराहनीय उद्देश्य होता था, पूर्णतः निराधार हैं तथा इनमें कोई ऐतिहासिक संगति नहीं है।

रणथंभोर की सन्धि की दूसरी शर्त से यह प्रकट होता है कि अकबर ने घृणित जिज़िया कर समाप्त कर दिया था, यह एक गलत धारणा है। अन्यथा सन्धि की शर्तों में इसका उल्लेख न होता। अगले पृष्ठों में हम इसकी व्याख्या करेंगे कि हिन्दू सरदार जो अकबर के दरबार में उपस्थित होता था, यह याचना करता था कि उसे जिज़िया कर देने से छूट दी जाये। प्रत्येक मामले में अकबर के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उसने जिज़िया कर को प्रत्यक्षतः समाप्त करने के लिए उदार हृदय से आदेश दिए। किन्तु उन आदेशों का यह तात्पर्य नहीं होता था कि उन्हें परिपालित भी किया जाये। ऐसे कुछ उदाहरण मिलते हैं, जिनमें अकबर ने जिज़िया कर को समाप्त करने की घोषणा की और उनमें से कुछ मामलों में छूट दी गई, किन्तु अधिकांशतः उसके आदेशों का मन्तव्य दरबार में उपस्थित सरदार को प्रसन्न करना तथा दरबार से सन्तुष्ट करके बाहर भेजना होता था। दरबार की ओर पीठ होते ही, हिन्दू सरदारों के वहाँ से जाते ही उन आदेशों को पूर्ण करने का कष्ट कौन उठाता? यह पूर्णतः सन्देहास्पद है कि बूँदी की प्रजा तथा वहाँ के सरदार अधिक काल तक स्वयं को जिज़िया कर से मुक्त रख पाये होंगे। प्रायः ऐसा हुआ है कि जिन शर्तों पर मुसलमान सन्धि के लिए सहमत हुए, उन्हें स्वीकार करने के पीछे उनके दमन करने की ही नीति रही। एक बार दमन अथवा पराजित करने का कार्य जैसे ही पूर्ण हुआ, शर्तें हटा ली जाती थीं। मुसलमान उनकी ओर ध्यान भी नहीं देते थे तथा विजित हिन्दू सरदार अपने-आपको पूर्ण गुलामी की स्थिति में पाते थे।

बूँदी के प्रधान द्वारा यह माँग कि उसके सरदारों को सिन्धु (अटक में) पार करने के लिए बाध्य न किया जाये, सम्बन्धी शर्त की प्रायः ऐसी

व्याख्या की जाती है कि चूँकि उस युग के हिन्दू अत्यधिक कट्टर होते थे, अत: हिन्दुस्तान की सीमाओं को लाँघकर बाहर जाने के प्रति उन्हें आपत्ति हुआ करती थी। यह पूर्णतः गलत व्याख्या है, जिसकी कोई तार्किक संगति नहीं है। हिन्दू धर्म की ओर से देश की सीमा को लाँघकर बाहर जाने सम्बन्धी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। स्मरणीय है कि एक समय भारत के क्षत्रियों ने भारतीय सीमाओं के बाहर भी अपनी महत् विजयों के कीर्ति-स्तम्भ स्थापित किये थे। इन्हीं क्षत्रियों के बेटे राजपूत थे। स्पष्ट है कि अपने पूर्वजों की विजयों से उन्हें युद्ध की प्रेरणा मिलती थी तथा भारत के बाहर मातृभूमि के गौरव के लिए युद्ध करने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। बूँदी के प्रधान द्वारा उन्हें भारत की सीमा के बाहर न भेजने सम्बन्धी माँग का तात्पर्य केवल इतना ही था कि उन्हें आश्वस्त किया जाये कि उन्हें निक्षेप अथवा प्रतिभू या दास के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जायेगा। हिन्दुस्तान के बाहर मुस्लिम प्रभुसत्ता को परिपुष्ट करने, उनकी विजयों के लिए तथा हिन्दुस्तान में उनके साम्राज्य के लिए गुलाम के रूप में वे कार्य करने के इच्छुक नहीं थे। हिन्दू सरदार बाहरी देशों में 'मुस्लिम पराक्रम' बढ़ाने के लिए अपने जीवन की बाज़ी लगाने को प्रस्तुत नहीं थे। यह भी स्मरणीय है कि यदि उन्हें भारत में जीवित वापस लौटने की आशा भी होती थी तो भी ऐसी स्थिति में यह आवश्यक नहीं था कि वे अपने बाल-बच्चों तथा अन्य सम्बन्धियों को सुरक्षित ही पाते। महाबत खाँ, जो पहले एक राजपूत था किन्तु बाद में जिसने मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लिया, जब काबुल में जहाँगीर के लिए युद्ध कर रहा था तो उसकी पत्नी तथा उसके बच्चों को उनके निवास-स्थान से निकाल बाहर कर दिया गया, क्योंकि शाहजादे परवेज़ के लिए स्थान की आवश्यकता महसूस की गई। इस प्रकार की निष्ठुरतापूर्ण धूर्तता, स्वेच्छाचारिता, अपहरण तथा लूट-खसोट से भयभीत होने के कारण हिन्दू सरदार अपने परिवार को छोड़ने तथा दूरस्थ स्थानों में मुसलमानों के लिए युद्ध आदि करने से पराङ्मुख होते थे। मुस्लिम फौजों के साथ दूरस्थ मुस्लिम देशों में जाने पर दबाव तथा यातनाओं की धमकियों से उन्हें धर्म-परिवर्तन का भी खतरा होता था। इन्हीं सब कारणों से हिन्दू मुसलमानों के अनुचर बनकर सिन्धु को पार करना पसन्द नहीं करते थे।

सन्धि की इस शर्त से कि बूँदी के सरदारों को मीना बाज़ार में अपने परिवार की महिलाओं को न भेजने की छूट दी जाये, यह सिद्ध होता है कि अकबर के अधीनस्थ सभी दरबार तथा दरबारी अपनी सुन्दर पत्नियों, कन्याओं एवं बहनों को उस वार्षिक समारोह में भेजने के लिए बाध्य किये जाते थे। अकबर उन सबके सतीत्व एवं शील से उन्मुक्त जघन्य क्रीड़ा किया करता था।

सन्धि की इस शर्त से कि बूँदी के सरदारों को शाही महल में अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर प्रवेश करने की अनुमति प्रदान की जाये, ऐसे संकेत प्राप्त होते हैं कि मुसलमानों के महलों के क्षेत्र में जब वे प्रवेश करते थे तो उन्हें अस्त्र-शस्त्र विहीन कर दिया जाता था। मुस्लिम बादशाहों द्वारा ऐसा प्रबन्ध इसलिए किया गया कि आवश्यकता पड़ने पर धोखा देकर उन पर आक्रमण किया जा सके, उनकी हत्या करवाई जा सके अथवा बन्दी या बन्धक के रूप में उन्हें पकड़कर इच्छानुसार अपमानजनक शर्तें मनवाई जा सकें। मुसलमानों के इतिहास में इस प्रकार के मामले नित्य की घटनाएँ हो गई थीं।

बूँदी राज्य के अन्तर्गत पवित्र देव-स्थानों को दूषित एवं नष्ट-भ्रष्ट नहीं किये जाने सम्बन्धी शर्त से स्पष्टतः यह सिद्ध होता है कि अकबर के समय में हिन्दुओं के धार्मिक देवालय तथा मन्दिर स्वच्छन्दतापूर्वक मस्जिदों, मुस्लिम महलों, घुड़सालों अथवा वेश्यालयों में परिवर्तित किये जाते थे। बदायूँनी ने शिकायत की है कि अकबर ने मस्जिदों को घुड़सालों में परिवर्तित किया अथवा हिन्दू दौवारिकों की नियुक्ति की तो उसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि जिन हिन्दू प्रासादों एवं मन्दिरों को मुस्लिम फौजी जत्थों ने जीता उन्हें विजय की पहली लहर में मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया, बाद में इन्हें मुसलमान दूसरे उपयोगों में लाये। एक व्यावहारिक एवं महत्त्वाकांक्षी बादशाह होने के कारण अकबर यह बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि समस्त विजित हिन्दू भवनों को मस्जिदों में ही परिवर्तित किया जाए। वह उन्हें दूसरे उपयोगों में भी लाना चाहता था। कट्टर धर्मान्ध मुसलमान होने के कारण बदायूँनी यह चाहता था कि अधिकांश विजित भवनों को, विशेषकर हिन्दू मन्दिरों एवं देवालयों को मस्जिदों के रूप में प्रयुक्त किया जाना चाहिए। अकबर ऐसी अनुमति नहीं दे सकता था कि

भव्य हिन्दू मन्दिरों एवं प्रासादों को मस्जिदों में ही परिवर्तित किया जाये, जबकि उसे उन मन्दिरों एवं प्रासादों को अन्य अस्थायी उपयोग में लाने की आवश्यकता पड़ती थी। अकबर भी उतना ही धर्मान्ध मुसलमान था, जितना कि बदायूँनी। वह कभी सपने में भी नहीं सोच सकता था कि किसी भूतपूर्व वास्तविक मस्जिद को सराय अथवा वेश्यालय में परिवर्तित किया जाये।

बूँदी के प्रधान की यह माँग कि उनके घोड़ों पर शाही मुहर दागने की परम्परा से उन्हें मुक्त किया जाये, से यह प्रदर्शित होता है कि अकबर के शासनकाल में उस प्रत्येक नागरिक को, जो घोड़े रखता था, बाध्य किया जाता था कि वह अपने घोड़े पर शाही मुहर लगवाये। लोगों को गुलाम बनाने की यह एक अत्यन्त ही घृणित पद्धति थी। इससे प्रत्येक व्यक्ति शाही गुलाम हो जाता था। युद्ध के समय उन व्यक्तियों को, जिनके घोड़ों पर शाही मुहर दगी होती थी, बाध्य किया जा सकता था कि वे एक विदेशी मुसलमान बादशाह के लिए लड़ाई लड़ते हुए अपने जीवन की बाज़ी लगायें। घोड़ों पर शाही मुहर दागने का मतलब ही यह था कि घोड़े रखने वाले व्यक्तियों को बादशाह का गुलाम बनाया जाये—उन्हें शाही सेवा के लिए विवश किया जाये।

बूँदी के प्रधान द्वारा शाही महल तक उनके आगमन के सूचनार्थ नक्कारे बजाने की अनुमति दी जाने की माँग करने का तात्पर्य यह है कि उन्हें आश्वस्त किया जाये कि उनके राजकीय अधिकारों का अपहरण नहीं किया जायेगा तथा वे उसका उपभोग करने के लिए स्वतन्त्र रहेंगे।

बूँदी को राजधानी रखे जाने सम्बन्धी शर्त से यह अभिप्राय था कि उन्हें यह आश्वासन दिया जाये कि उन्हें उनके पुराने निवास-स्थान से निष्कासित नहीं किया जायेगा, क्योंकि इन स्थानों में उन्हें अपनी प्रजा का आदर एवं सम्मान प्राप्त होता था। अन्य सर्वथा अपरिचित स्थानों में उनके जाने का तात्पर्य था पूर्णतः मुस्लिम बादशाहों के आश्रित होना तथा उनके गुलाम बनना। बूँदी के सरदार यह नहीं चाहते थे कि राजधानी परिवर्तन के साथ वे ऐसे स्थानों में जायें जहाँ की जनता उनके लिए अपरिचित हो।

रणथंभोर की सन्धि के इस विश्लेषण से ऐसी विभिन्न घृणित पद्धतियों

का पता चलता है, जिनके द्वारा अकबर के शासनकाल में समस्त विजित सरदारों की हस्ती मिटाकर थोड़े समय में ही उन्हें ऐसी अकिंचन स्थिति तक पहुँचा दिया गया, जिससे कि मुस्लिम बादशाह भारतीय महिलाओं, धन-सम्पत्ति तथा नगर-प्रान्तों का स्वच्छन्द उपयोग कर सकें। निष्कर्षतः अकबर की विजयों का उद्देश्य भारतवर्ष को एक संगठित साम्राज्य अथवा राष्ट्र के रूप में संयुक्त करना नहीं था, अपितु अपने स्वेच्छाचारी शासन-तन्त्र के अन्तर्गत वह यहाँ के राज्यों का दमन करना चाहता था। "अकबर : दी ग्रेट मुगल" पुस्तक के पृष्ठ ५ पर विंसेंट स्मिथ का यह कथन कि "विभिन्न राज्यों को हड़पने की अकबर की लिप्सा उसकी राजोचित महत्वाकांक्षा का परिणाम थी," जिसे फौजी ताकत का पूर्ण समर्थन प्राप्त था, एक समुचित निष्कर्ष है तथा इससे उनकी इतिहास सम्बन्धी बुद्धिमत्ता, प्रतिभा एवं अन्तर्दृष्टि परिलक्षित होती है।

: ६ :

लूट-खसोट का अर्थ-व्यवस्था

मध्ययुगीन भारतीय इतिहास सम्बन्धी पुस्तकों में बहुधा रज़िया, अलाउद्दीन खिलजी, फिरोजशाह तुगलक, शेरशाह तथा अकबर जैसे मुसलमान बादशाहों के शासन-काल की राजस्व-व्यवस्था के विषय में विस्तृत उल्लेख प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के समस्त वर्णन काल्पनिक एवं साम्प्रदायिक हैं जिनमें सत्य ही पूर्णतः उपेक्षा की गई है। इन वर्णनों का विश्लेषण करने से उस समय के दरबारी तिथिवृत्त लेखकों की मनःस्थिति का परिचय मिलता है। उनके अधिकांश वर्णन अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों से परिपुष्ट नहीं होते।

भारतवर्ष में मोहम्मद-बिन कासिम से लेकर मुस्लिम शासन के अन्त अर्थात् सन् १८५८ ई० तक बिना किसी अपवाद के किसी भी मुस्लिम बादशाह के शासन-काल में कोई व्यवस्थित राजस्व-प्रणाली नहीं थी। उनकी अर्थ-व्यवस्था लूट-पाट की थी जोकि प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रिश्वत, सूदखोरी और विभिन्न प्रकार के करों पर आधारित थी। उनके कर्मचारी हिन्दू सरदारों की मृत्यु पर उनके उत्तराधिकारियों के होते हुए भी उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति हस्तगत कर लेते थे। इस प्रकार उनके खजाने की वृद्धि होती थी। सैनिक शक्ति को वे लट-खसोट और डाकाज़नी के लिए काम में लाते थे। युद्धोपरान्त हिन्दुओं की धन-सम्पत्ति दरबारियों में बँट जाती थी एवं व्यभिचार में लुटा दी जाती थी। खज़ाना खाली होने पर लुटेरों की सेना फिर लूट-खसोट के अभियान पर निकल जाती थी। क्या ऐसी स्थिति में नियमित अर्थ-व्यवस्था सम्भव हो सकती थी?

शासन द्वारा निर्धारित नियमों के अन्तर्गत राजस्व-प्राप्ति एक मान्य तथा कानूनी-पद्धति होती है। राजस्व से प्राप्त धन-राशि जन-कल्याण पर खर्च की जाती है। समाज में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखने, जनता की

सुरक्षा तथा अन्य आवश्यक एवं आधारभूत सेवाओं में उपयोग करने के लिए ही राज्य को राजस्व प्राप्त करने का अधिकार होता है। ऐसी मान्यता भी है कि विभिन्न करों एवं प्राप्तियों के कतिपय सिद्धान्त होते हैं। उदाहरण के लिए आय का एक निश्चित प्रतिशत कर आदि के रूप में निर्धारित होता है। कर की प्राप्ति की एक निश्चित अवधि भी होती है। यदि किसी व्यक्ति से अन्यायपूर्वक कर वसूल किया जाता है तो उसकी न्यायिक जाँच की भी व्यवस्था होती है। भारतवर्ष में मुस्लिम शासनकाल में जिसे राजस्व-व्यवस्था की संज्ञा दी गई है, उसके अन्तर्गत इन सिद्धान्तों अथवा नियमों में से किसी का भी परिपालन नहीं किया जाता था। मुसलमानों की राजस्व-व्यवस्था का तात्पर्य लूट-खसोट एवं शोषण था।

भारतवर्ष में मुस्लिम शासकों की यह प्रवृत्ति थी कि लूट-खसोट और शोषण जारी रहे क्योंकि इसके अतिरिक्त वे कुछ और कर ही नहीं सकते थे। भारतीय जनता और भूमि के प्रति उन्हें कोई सद्भाव नहीं था और न ही वे अपने कुकृत्यों के लिए भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी थे। वे तो केवल कुरान को ही मान्य समझते थे। उनके आधार और प्रकाश-स्तम्भ मक्का और मदीना थे। वास्तव में, वे भारतीय जनता से घृणा करते थे। वे कभी उन्हें 'हिन्दू' कहकर नहीं पुकारते थे। यहाँ की स्थानीय जनता को वे कतिपय आपत्तिजनक नामों; यथा—काफिर, बदमाश, गुलाम, चोर-डाकू एवं नीच कहकर सम्बोधित करते थे—भारतीय जनता के प्रति जब उनका यह भाव था तो क्या यह सत्य प्रतीत नहीं होता कि वे हिन्दुओं को केवल दण्डित करना, उनका शोषण करना तथा बलपूर्वक उनकी धन-सम्पत्ति हस्तगत करना ही अपना धर्म समझते थे। भारतीय इतिहासकारों को इस वास्तविकता को स्वीकार करने में लज्जा का अनुभव क्यों होता है?

एक दूसरी महत्त्वपूर्ण विचारणीय बात यह है कि मुस्लिम शासनकाल से सम्बन्धित अभिलेखों एवं ग्रन्थों में हम यह देखते हैं कि मुस्लिम बादशाह अपने ही रिश्तेदारों से, विद्रोही सेनापतियों से तथा हिन्दू राजाओं से सदैव युद्ध में व्यस्त रहते थे। इन युद्धों में लूट-पाट तथा दोनों प्रतिस्पर्द्धी दलों द्वारा स्थानीय जनता पर आक्रमण आदि की घटनायें उस युग की सामान्य बात थी। युद्ध करने वाले मुस्लिम बादशाहों के प्रतिस्पर्धी दलों में बहुधा

उनके सम्बन्धियों; यथा—दारा, शुजा, औरंगजेब तथा मुराद को ही हम पाते हैं। इस प्रकार सदैव युद्ध में संलग्न साम्राज्य की आर्थिक व्यवस्था का लूट-खसोट से प्राप्त धन-राशि पर निर्भर रहना सम्भव था।

अकबर, फिरोजशाह तुगलक, शेरशाह अथवा तैमूरलंग जैसे मुस्लिम बादशाह अथवा आक्रामकों के शासन से सम्बन्धित विवरणों में जो इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं कि उन्होंने सड़कों का निर्माण कराया तथा राजपथों के किनारे थोड़ी-थोड़ी दूर पर धर्मशाला आदि की स्थापना की, बिल्कुल निराधार है। वस्तुतः भारतवर्ष में हिन्दू शासकों ने अपनी प्रजा की सुविधा के लिए जो निर्माण-कार्य किये थे, मुस्लिम बादशाहों ने उन्हीं का उल्लेख अपने नाम से करवाया। मुस्लिम शासकों द्वारा धर्मार्थ विश्रान्ति-गृह बनवाने सम्बन्धी उनके दावों को सत्य माना जाये तो समस्त राजपथों के दोनों किनारों पर उन भवनों की अखण्डित शृंखला मिलनी चाहिए थी, किन्तु ऐसा कोई भी भवन या उसका भग्नावशेष दिखलाई नहीं देता। मुस्लिम बादशाहों ने तो केवल विनाश किया था। उनकी विनाश-लीला का एक उदाहरण यह है कि पूर्ववर्ती हिन्दू शासकों ने राजपथों के किनारे पथिकों की सुविधा के लिए जो वृक्ष लगवाये थे, उन्हें आक्रामक मुसलमानों ने ईंधन, नावों, मचानों तथा अन्य उपयोगों के लिए कटवा लिया था।

मध्ययुगीन भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में विभिन्न परीक्षाओं के लिए प्रश्न-पत्र तैयार करने वाले विद्वान् तथा परीक्षक जहाँगीर, अकबर, शेरशाह, मोहम्मद तुगलक अथवा फिरोजशाह के शासनकाल से सम्बन्धित तथाकथित सुधारों, जन-कल्याण योजनाओं, राजस्व-व्यवस्था तथा प्रशासन के सिद्धान्तों पर प्रश्न पूछकर वास्तव में भारतीय परम्पराओं पर कुठाराघात करते हैं एवं अनपेक्षित तथ्यों को प्रोत्साहन देते हैं। अच्छा होता यदि छात्रों से शिवाजी तथा राणा प्रताप के शासन के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे जाते कि किस प्रकार उन्होंने मुसलमानों के अनवरत आक्रमणों, नर-संहारों तथा विध्वंसों का प्रतिरोध करते हुए भी शासन की सुचारु व्यवस्था जन-कल्याण के लिए की एवं किस प्रकार उन्होंने जन-सामान्य का प्रेम एवं श्रद्धा प्राप्त करते हुए उनके हृदयों पर राज्य किया? विदेशी आक्रमणों के सहस्रों वर्षों के भीषण उत्पात, विप्लव एवं विध्वंस के बावजूद मातृभूमि के लिए बलिदान की प्रेरणा दी। इतिहास के शिक्षक तथा

विद्वान् अपनी सदाशयता का परिचय देते हुए हिन्दू शासकों के सम्बन्ध में इस प्रकार के प्रश्न पूछ सकते हैं।

समस्त मुसलमान बादशाहों में अकबर को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अतः यदि हम यह सिद्ध करें कि उसका प्रशासन लूट-खसोट, व्यभिचार एवं खून-खराबे पर आधारित था तो यह उस पारस्परिक विचारधारा पर एक घातक प्रहार होगा जिसके अनुसार यह माना जाता है कि भारतवर्ष में मुस्लिम प्रशासन व्यवस्थित था तथा वे जन-कल्याण के लिए चिन्तित रहा करते थे।

धर्मान्ध चाटुकार मुसलमान दरबारी इतिवृत्त लेखक बदायूँनी का कथन है—"(अकबर) बादशाह ने सरहिन्द के मुल्ला मुजदी को राजस्व विभाग का प्रधान तथा इस्लाम शाह को पेशकार बना दिया। समशेर खाँ को उसने राजकोष का अधीक्षक बनाया। वे जन्म से ही दुष्ट थे।...... इन्होंने सभी प्रकार के दमन एवं स्वेच्छाचारिता से काम किया तथा सेना को इतना उत्तेजित कर दिया कि विवश होकर मासूम खाँ को विद्रोह करना पड़ा।"

उपर्युक्त उद्धरण में 'राजस्व' शब्द से आशय उस राशि से है जो बल-पूर्वक तथा यातनाएँ देकर वसूल की जाती थी। इस वसूली के लिए सभी प्रकार के छल-प्रपंचों का आश्रय लिया जाता था एवं सेना की भी सहायता ली जाती थी।

बदायूँनी ने यह भी स्पष्ट उल्लेख किया है—"इसी वर्ष (हि० स० ९८७) बगदाद के काजी अली ने, जिसकी नियुक्ति शेख अब्दुल नबी के होने के बावजूद भी भूमि की व्यवस्था तथा उसपर कब्जा रखने वालों की देख-रेख के लिए की गई थी, उन्हें (अनुदत्त भूमि पर अधिकार रखने वालों को) दरबार में पेश किया तथा उनकी अधिकांश भूमि को अपने कब्जे में कर लिया एवं कम उपजाऊ भूमि उनके पास रहने दी।"

मक्के की तीर्थ यात्रा के लिए बादशाह ने कुछ धन-राशि अब्दुल नबी को दी थी। उसने वह राशि यात्रा पर खर्च नहीं की, इसका उल्लेख करते हुए बदायूँनी ने पृ० ३२१ पर लिखा है—"शेख अब्दुल नबी फतेहपुर आया तथा वहाँ उसने कुछ अशिष्ट भाषा का प्रयोग किया। भावावेश पर काबू पाने में असमर्थ बादशाह ने उसके मुँह पर आघात किया। तब मक्के

की तीर्थ यात्रा की सात हजार रुपये की राशि का भुगतान न करने के उपलक्ष्य में उसे बन्दी बनाकर राजा टोडरमल को सौंप दिया गया। कुछ समय के लिए उसे कार्यालय के गणना-कक्ष में बन्दी रखा गया। एक रात जन-समूह ने उसकी हत्या कर दी।''

बदायूँनी का कथन है, ''हि० सं० ९९० में सैयद मीर फतेह उल्ला फतेहपुर आया। सदर के पद पर उसे नियुक्त करते हुए उसका सम्मान किया गया। काट-छाँटकर गरीबों की भूमि ज़ब्त करने का काम उसे सौंपा गया।

हि० सं० ९९१ में अकबर ने एक हुक्मनामा जारी किया कि अमीर या गरीब सभी नज़राना पेश करने आयें।''

बदायूँनी ने लिखा है कि हि० सं० ९९२ में अकबर ने आदेश दिया कि सभी परगनों में पट्टे की भूमि पर अधिकार रखने वाले जबतक अनुदान, आवश्यक भत्ते तथा पेंशन का फरमान सदर के निरीक्षण एवं सत्यांकन के लिए पेश न करें, तबतक उनकी धारिता मान्य न समझी जाये। इसके लिए भारत के पूर्वी छोर से लेकर पश्चिम में मक्कान (सिन्धु) तक के लोग अत्यधिक संख्या में दरबार में उपस्थित हुए। यदि उनमें से किसी का शक्तिशाली कोई संरक्षक बादशाह के निकट मित्रों में से होता था तो वह अपने मामले को आसानी से सुलझा लेता था, अन्यथा शेखों के प्रधान सैयद अब्दुल रसूल को नजराने प्राप्त होते थे। जो सिफारिशें या नजराने नहीं जुटा पाते थे, वे बरबाद हो जाते थे। कितने ही भूमि-पट्टाधारी अपने लक्ष्य की पूर्ति के पूर्व ही हज़ारों की संख्या में उपस्थित लोगों की भीड़ में गर्मी के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए। यद्यपि बादशाह को इसकी सूचना प्राप्त हो गई थी परन्तु किसी को भी यह साहस नहीं हुआ कि वह उन्हें बादशाह के सामने पेश कर सके।

बदायूँनी का कथन है कि ''देश के सभी परगनों की भूमि—उपजाऊ, बंजर, नहरी, कुएँ वाली, पहाड़ी, रेतीली, जंगली—की पैमाइश कराई गई। जितनी भी भूमि कृषि-योग्य थी उसे एक-एक करोड़ रुपये कर वाली भूमि के टुकड़ों में बाँटकर उसपर एक-एक 'करोड़ी' अधिकारी नियुक्त किया गया। इन करोड़ियों की ज़मानत ले ली जाती थी। इन करोड़ियों के लालच के कारण अधिकांश भूमि पर खेती नहीं होती थी। भूमि-कर की

वसूली के अत्याचार के कारण किसानों की पत्नियाँ और बच्चे बिक जाते थे और मजबूर होकर वे दूसरे स्थानों को चले जाते थे। इस प्रकार सब अव्यवस्था हो गई थी परन्तु राजा टोडरमल ने अधिकांश करोड़ियों को सज़ायें दीं। भूमिकर अधिकारियों की क्रूरता के कारण बहुत से अच्छे करोड़ी मारे गये। उनको कब्र और कफ़न भी न मिला। देश की सारी भूमि जागीरों के रूप में अमीरों के कब्जे में आ गई। अमीरों का दायित्व था कि वे बादशाह की सहायता के लिए एक निश्चित सेना रखें एवं जन-सामान्य के हितों का ध्यान रखें परन्तु उन्होंने इन दोनों कार्यों के प्रति उपेक्षा दिखलाई और अपने खजाने भरे। आपातकाल में वे अपने सैनिकों सहित उपस्थित अवश्य होते थे परन्तु उनके सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होते थे।''

इस उद्धरण का सतर्कतापूर्वक विश्लेपण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने निरंकुश स्वामी अकबर के प्रतिनिधि टोडरमल द्वारा लागू की गई भूमि-कर पद्धति कृषकों को यातनायें दिये जाने पर ही आधारित थी। भूमिकर चुकाने के लिए उन्हें अपने बीवी-बच्चे बेचने पड़ते थे। क्रूर यातनायें सहते-सहते उनके प्राण-पखेरू भी उड़ जाते थे। भारतीय इतिहास के पृष्ठों में टोडरमल के भूमि सम्बन्धी सुधारों की बड़ी प्रशंसा की जाती है तथा इतिहास के छात्रों, प्राध्यापकों एवं विद्वानों द्वारा इस लूट-पाट की नीति के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के काल्पनिक ताने-बाने बुने जाते हैं। इस निराधार प्रसिद्धि का खण्डन करने के लिए इतिहास-ज्ञान की अपेक्षा नहीं है। यदि यह भूमि-कर व्यवस्था इतनी ही उत्तम होती तो अंग्रेजी शासन के पश्चात् स्वतन्त्र भारत में इसे तुरन्त अपना लिया जाता। यह तो तर्कमात्र है। क्या एक के बाद दूसरे हिन्दू राज्य को क्रूरतापूर्वक हड़पने और लूटमार से धन-संग्रह करने वाले किसी विदेशी शासक से उदारतापूर्ण शासन की आशा की जा सकती है। भारत के विद्यालयों और विश्व-विद्यालयों एवं विश्व में अन्यत्र भी भारत का जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह तो मात्र विडम्बना है, इतिहास का उपहास है।

इस अनर्थकारी भूमि-सुधार का उद्देश्य केवल यह था कि अकबर के राज्य की सभी प्रकार की भूमि की पैमाइश करके समान एकड़ टुकड़ों में बाँटा जाये और एक करोड़ रुपये भूमि-कर के भागों में विभक्त किया जाये। इस बात का बिल्कुल ध्यान नहीं रखा गया कि उस भूमि-भाग में

कुल मिलाकर भी एक करोड़ रुपये मूल्य की उपज हो सकती है अथवा नहीं। किसान एक करोड़ रुपये भूमि-कर तभी दे सकते हैं जबकि उन्हें चार करोड़ की उपज प्राप्त हो। कुछ भूमि बंजर भी हो सकती है और यदाकदा अनावृष्टि भी उपज को प्रभावित कर सकती है। समान-भूमि-खण्ड समान उपज देंगे यह भी एक अन्य अनर्थकारी धारणा है।

उक्त योजना का तीसरा अनर्थकारी पहलू यह था कि कृषकों का शोषण करने वाले करोड़ी (प्रत्येक भूमि-खण्ड से बादशाह के लिए १ करोड़ राजस्व वसूल करने वाले) नामक मध्यस्थ अधिकारी की नियुक्ति जनता से येन-केन प्रकारेण उक्त राशि की वसूली के लिए की जाती थी। इस प्रकार की नियुक्ति से किसानों तथा बादशाह के बीच सम्बन्ध पूर्णतः विच्छिन्न हो जाया करता था। और बादशाह को कृषि-क्षेत्र और उसकी उपज से कोई सम्बन्ध नहीं रहता था। प्रशासन करोड़ी से एक लाख रुपये प्राप्त करता था। स्पष्ट है कि करोड़ी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी किसानों से कम-से-कम दो करोड़ रुपये वसूल किया करता था, जिसमें से एक करोड़ वह राजकोष के लिए भेजा करता था तथा एक करोड़ अपने पारिश्रमिक के रूप में अपने पास रख लिया करता था। सहज ही कल्पना की जा सकती है कि प्रजा पर भूमि-कर का बोझ कितना अधिक रहता होगा ? शोषण की यह पद्धति, जिसके द्वारा कृषकों को कम-से-कम दो करोड़ (एक करोड़ बादशाह के लिए तथा करोड़ करोड़ी के लिए) की राशि देने के लिए विवश किया जाया था, क्रूरता की चरमसीमा थी। प्रति वर्ष दो करोड़ का भूमि-कर जुटाने के लिए कृषकों को अपनी भूमि से कम-से-कम आठ करोड़ रुपये मूल्य की उपज प्राप्त करनी अपेक्षित होनी चाहिए थी। क्या यह किसी भी स्थिति में सम्भव हो सकता था ?

बादशाह के लिए भूमि के प्रत्येक टुकड़े से एक करोड़ रुपये वसूल करने के लिए करोड़ियों को गुण्डे, बदमाश-लठैतों की व्यवस्था करनी पड़ती होगी ? जो प्रजा से बलपूर्वक दो करोड़ की राशि वसूल करने में करोड़ियों की मदद करते थे। इसके लिए बादशाह की बर्बर सेना भी करोड़ियों की सहायता के लिए तत्पर रहती थी।

उक्त पद्धति का अन्तिम अनर्थकारी पहलू यह था कि एक बार जो राशि निर्धारित कर दी जाती थी, उसे संत्रस्त एवं भयभीत जनता से हर

हालत में वसूल किया जाता था। उनपर भीषण अत्याचार किये जाते थे। उनके घर बरबाद कर दिये जाते थे। उनके परिवार के लोगों को मरणान्तक यातनायें दी जाती थीं अथवा उन्हें गुलामों के रूप में बिकने के लिए भेज दिया जाता था।

संसार में ऐसी पैशाचिक पद्धति कहीं भी अस्तित्व में नहीं रही होगी। फिर भी आदर्श बादशाह के रूप में अकबर की प्रशस्ति गाई जाती है एवं उसे देव-तुल्य अनुपम गुण-सम्पन्न माना जाता है।

बादशाह के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हुए, पैशाचिक भूमि-कर पद्धति के प्रचलित-कर्ता टोडरमल को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि, प्राप्त उल्लेखों के अनुसार, कम- से-कम एक बार अवश्य उसकी हत्या का प्रयास किया गया हो।

गुजरात विजय के तुरन्त बाद उक्त शोषण-पद्धति को कार्यान्वित करने के लिए टोडरमल को वहाँ भेजा गया। बर्बर मुस्लिम सेनाओं द्वारा उक्त प्रान्त पर क्रूरतापूर्ण हमला करने तथा लूट-खसोट करने के तुरन्त बाद उक्त पद्धति वहाँ भी कार्यान्वित की गई। इससे अकबर की भीषण दमन-नीति का परिचय मिलता है। बदायूँनी (पृ० १७४) का कथन है—'टोडरमल जब गुजरात के लेखों से स्पष्ट आय व्ययक-चिट्ठे को लेकर उपस्थित हुआ, उसे अकबर ने एक तलवार भेंट में दी।' स्पष्ट ही आय-व्ययक के चिट्ठे से तात्पर्य यह है कि बादशाह को गुजरात के हिसाब की अन्तिम पाई तक अदा की गई। गुजरात की निर्लज्ज विजय के पश्चात् वहाँ की गई लूट-खसोट एवं खून-खराबे से प्राप्त धनराशि भी सम्भवतः बादशाह को पेश की गई।

इस प्रकार का भ्रष्ट और क्रूर शासन लूट-खसोट से प्राप्त धन-राशि के आधार पर ही चलाया जा सकता था। यह भी ज्ञातव्य है कि लूट-खसोट की धन-राशि बर्बर सैनिकों के बीच वितरित की जाती थी ताकि वे विद्रोह न कर दें। इस प्रकार उन्हें खुश रखा जाता था। निःसंदिग्ध रूप से यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम शासन काल में लूट-खसोट की धन-राशि का अपव्यय ही किया जाता था, जिस कारण से बादशाह का खजाना सदैव खाली रहता था। उसकी स्थिति एक दिवालिये के समान रहती

थी। इस सम्बन्ध मे अकबर : दी ग्रेट मुगल पुस्तक के पृष्ठ ४५ पर विंसेंट स्मिथ का कथन है कि एक अवसर पर जब उसने अपने ख़जाँची को १८ रुपये लाने के लिए कहा तो खजाँची पर उक्त अल्प राशि भी न जुटा सका।

विंसेंट स्मिथ के मतानुसार—"अबुल फज़ल ने (अकबर के) सुधारों की बहुत प्रशंसा की है। दूसरी ओर बदायूँनी ने उसके सर्वथा विरुद्ध उल्लेख किए हैं। अबुल फज़ल के दरबारी कपटपूर्ण उल्लेखों की अपेक्षा बदायूँनी के उल्लेख सत्य के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। मुझे विश्वास है कि भूमि-कर पद्धति पूर्णरूप से असफल हुई। परिणामस्वरूप कृषकों को यातनाएँ दी गई एवं उनसे क्रूरता का व्यवहार किया गया। अकबर और टोडरमल के सुधारों के इतने अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन इतिहासों में मिलते हैं कि बदायूँनी का विवरण पढ़कर स्तम्भित रह जाना पड़ता है। यद्यपि अकबर तथा टोडरमल के प्रति बदायूँनी का व्यक्तिगत वैमनस्य था तथा अपने मताग्रह के विद्वेष के कारण उनके सम्बन्ध तिक्त हो गये थे, तथापि (मेरे विचारानुसार) यह सम्भव नहीं है कि इस सम्बन्ध में उसके साक्ष्य को अमान्य कर दिया जाये। क्योंकि उनके द्वारा प्रस्तुत तथ्य अन्य स्रोतों से परिपुष्ट होते हैं।"

विंसेंट स्मिथ महोदय ने उक्त पद्धति को 'असफल' मानने में थोड़ी भूल की है। उनके मतानुसार उक्त योजना को कार्यान्वित करते हुए अत्यधिक क्रूरता बरती जाती थी, अतः वह सफल नहीं हो सकी। किन्तु वास्तव में उक्त योजना अकबर की अपूर्व सफलता थी, क्योंकि इसका उद्देश्य जनता की संपूर्ण कमाई का शोषण करना था। शोषण करते हुए जनता के प्रति निर्ममतापूर्ण व्यवहार स्वाभाविक ही था। अतः यह कहा जा सकता है कि शोषण की उद्देश्य-पूर्ति की दृष्टि से अकबर की यह योजना सफल ही रही।

अकबर : दी ग्रेट पुस्तक के पृष्ठ १०८-१० पर डॉ० श्रीवास्तव ने लिखा है कि—"इस महत्त्वपूर्ण सफलता (उज़बेकों के विरुद्ध, ६ जून, १५६७, जबकि बहादुर और खान जमान को पकड़कर हाथी के पाँवों के नीचे कुचलवा दिया गया।) के पश्चात् अकबर इलाहाबाद गया और वहाँ से वह बनारस गया, जिसे लूट लिया गया क्योंकि वहाँ के निवासियों

ने धृष्टतापूर्वक नगर के प्रवेश-द्वार बादशाह के लिए बन्द कर दिये थे। बनारस से वह जौनपुर और वहाँ से कड़ा मानिकपुर की ओर बढ़ा। मार्ग में उसने उजबेकों के सहयोगियों का दमन किया।"

हम पहले ही यह उल्लेख कर चुके हैं कि राजस्थान में देवसा तथा अन्य नगरों की जनता अकबर के आगमन का समाचार सुनते ही भाग खड़ी हुई थी। यहाँ हम देखते हैं कि बनारस तथा इलाहाबाद की जनता ने भी अकबर के आगमन का स्वागत न करके नगर-प्रवेश के द्वार बन्द कर दिये। यह इस बात का प्रमाण है कि अकबर जहाँ भी गया, उसकी बर्बर सेना ने वहाँ आतंकमय भयावह स्थिति उत्पन्न कर दी। सामान्यत: जनता राजाओं अथवा बादशाहों के स्वागत-सम्मान को अपनी प्रतिष्ठा समझती थी। अकबर के भय से यदि जनता भाग खड़ी होती थी तो इससे यही स्पष्ट होता है कि वह उसे नर-भक्षक राक्षसों से भी अधिक घृणित समझती थी। केवल इतना ही पर्याप्त प्रमाण है कि अकबर एक उदार बादशाह तथा महान् व्यक्ति न होकर सर्वाधिक निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी क्रूर बादशाह था। आश्चर्य और दु:ख का विषय है कि इतिहास के धुरन्धर विद्वान् इतने विरोधी साक्ष्य प्राप्त होने पर भी क्रूर और व्यभिचारी अकबर को 'महान्' की संज्ञा से विभूषित करते हैं।

फरिश्ता के दरबारी इतिहास (भाग २, पृ० १३३-१४४) के अनुसार, "युद्ध में रानी दुर्गावती की निर्मम हत्या के बाद आसफ खाँ (रानी दुर्गावती पर आक्रमण करने के लिए नियुक्त अकबर का सेनापति) चौरागढ़ की ओर बढ़ा तथा वहाँ आक्रमण कर उसने उस प्रदेश को विजित किया। रानी के पुत्र को हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया गया। (लूट-खसोट में) हीरे-जवाहरात, सोने-चाँदी की प्रतिमाएँ, सोने से भरे लगभग सौ घड़े तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ विजेता के हाथ लगीं। लूट की इस सम्पूर्ण सम्पत्ति में से आसफ खाँ ने अल्पांश ही बादशाह को भेंट किया। उसके हाथ कम-से-कम सौ हाथी लगे थे किन्तु उसने केवल ३०० सामान्य पशु ही बादशाह को भेजे। बहुमूल्य वस्तुओं में से तो कुछ भी उसने बादशाह को नहीं दिया।"

लूट-खसोट करने के लिए हिन्दू तथा मुस्लिम राज्यों पर अकबर के आक्रमणों और सामान्य डकैतियों में केवल यही अन्तर निर्दिष्ट किया जा

सकता है कि डाकू-दल साधारण घरों में बलपूर्वक लूट-मार करते थे जबकि अकबर अपनी शाही सेना की शक्ति के बल पर समृद्ध राज्यों पर आक्रमण कर लूट-मार करता था। क्रूरतापूर्वक वह सामान्य जनता, समृद्ध राजाओं और सम्पन्न श्रेष्ठियों को लूटकर अपना राजकोष समृद्धिशाली बनाता था। ऐसे क्रूर, नृशंस, विलासी एवं धर्मान्ध शासक को 'महान्' की संज्ञा देते हुए क्या हमारे इतिहासकार लज्जा का अनुभव नहीं करेंगे ?

: १० :

दुर्व्यवस्थित प्रशासन

अकबर के शासन-काल में किसी भी प्रकार का कोई व्यवस्थित प्रशासन नहीं, था जिसकी चर्चा की जाये। फ्री-स्टाइल कुश्ती की भाँति स्वेच्छाचारितापूर्ण नीति और नियम चला करते थे। अकबर के शासन-काल में कानूनों का पालन कोई भी नहीं करता था क्योंकि वास्तव में कोई कायदे-कानून थे ही नहीं। अनेक प्रकार की दुर्व्यवस्थाएँ व्याप्त थीं। शासकीय यातनाओं और क्रूरताओं के विरुद्ध अनवरत विद्रोह होते थे। लूट-खसोट की नीति अपनाई हुई थी। कत्लेआम, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, घूसखोरी, हत्याओं, षड्यंत्रों, डाकेजनी, स्त्रियों के अपहरण और बलात्कार एवं सर्वत्र हिन्दुओं पर अत्याचार का बोलबाला था। संक्षेपतः पूर्ण अराजकता का साम्राज्य था।

विंसेंट स्मिथ ने अकबर : दी ग्रेट मुगल पुस्तक के पृष्ठ २७७ पर लिखा है—"शासन-व्यवस्था वैयक्तिक स्वेच्छाचारितापूर्ण थी। भारी करों को कठोरतापूर्वक वसूल करने का निर्देश दिया गया था। इस कार्य के लिए नियुक्त सेना के भोजनादि की व्यवस्था प्रजा को ही करनी पड़ती थी। लोक-शासन दुर्व्यवस्थित था तथा स्थानीय शासक भी स्वेच्छाचारी थे। उन्हें क्रूरतम सज़ाएँ देने का अधिकार था। सामान्य रूप से जो सज़ाएँ दी जाती थीं, उनमें सूली पर चढ़ा देना, हाथी के पैरों तले कुचलवा देना, सिर कटवा देना, दाहिना हाथ कटवा देना तथा बर्बरतापूर्वक बेंतों से पिटवाना आदि शामिल थे। अधिकारियों की जैसी मर्जी होती थी, वैसी सजाएँ दी जाती थीं। उनके द्वारा दी जाने वाली क्रूर सजाओं पर प्रतिबन्ध लगाने का कोई प्रभावशाली कानून नहीं था।"

"भारतवर्ष में मुसलमानों का इतिहास राष्ट्रीय एवं सामाजिक विकास का इतिहास न होकर निरंकुश बादशाहों, विलासितापूर्ण दरबारों एवं

बर्बर विजयों का इतिहास था।" प्रजा की सुख-समृद्धि के सम्बन्ध में अकबर और पूर्ववर्ती हिन्दू राजाओं के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि अकबर के शासन-काल में प्रजा किसी प्रकार भी खुशहाल नहीं थी। सभी प्राप्त अभिलेख त्रुटिपूर्ण हैं। इतिहास में जन-सामान्य के जीवन-स्तर सम्बन्धी उल्लेख अनुपलब्ध हैं। कृषकों के लिए महत्त्वपूर्ण भूमि-कर व्यवस्था का पूर्ण विवरण भी उपलब्ध नहीं है और जो दरबारी अभिलेख प्राप्त हैं वे अत्यधिक-त्रुटिपूर्ण और पक्षपातपूर्ण हैं। शिक्षा, कृषि एवं वाणिज्य की स्थिति के सम्बन्ध में जो उल्लेख प्राप्त हैं, वे भी अपूर्ण एवं तथ्यहीन हैं।

विसेंट स्मिथ द्वारा उल्लिखित तथ्यों पर विचार करते हुए हमें आश्चर्य होता है कि स्मिथ महोदय ने आखिर किस आधार पर अपनी पुस्तक का शीर्षक 'अकबर : दी ग्रेट मुगल' रखने का दुःसाहस किया ? समझ में नहीं आता कि उन्होंने 'ग्रेट' विशेषण का प्रयोग किस आधार पर किया है ?

स्मिथ महोदय ने ठीक ही उल्लेख किया है कि ऐसा कोई अभिलेख प्राप्त नहीं होता, जिससे यह सिद्ध हो कि अकबर का शासन जन-कल्याण के लिए था, जैसाकि मिथ्या रूप में दावा किया जाता है, यदि अकबर का शासन जनता के लिए कल्याणकारी होता तो तत्सम्बन्धी प्रचुर प्रमाण प्राप्त होते।

परम्परा के विपरीत हमारा मत है कि अकबर की मिथ्यानुमानित महानता के सम्बन्ध में दरबारी चाटुकारों, साम्प्रदायिक विचारों के प्रचारकों तथा इतिहासकारों, जिनमें विसेंट स्मिथ जैसे दूरदर्शी विद्वान् भी शामिल हैं, द्वारा हम सब प्रवंचित होते रहे। ये सब निषेधपूर्ण तथ्योलेखों की परिधि में सीमित रहे हैं कि इस बात की सिद्धि का कोई प्रमाण नहीं है कि अकबर के शासन से देश की जनता लाभान्वित हुई। हम इस तथ्य के प्रति अपनी पूर्ण सहमति व्यक्त करते हैं कि ऐसा कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता। किन्तु उन प्रमाणों के विषय में क्या कहा जाए कि अकबर एक बर्बर विलासी था तथा उसका शासन यातनापूर्ण हत्याओं के खून से सिंचित तथा लूट-खसोट से भरा था ? झूठ के बार-बार कहे जाने के कारण वर्तमान इतिहासज्ञ विमोहित हो गये हैं, अतः वे वस्तुस्थिति जानने और व्यक्त

करने की ओर ध्यान ही नहीं देते।

प्रशासन का पूरा ढाँचा सैनिक-शक्ति पर आधारित था। स्थानीय शासन किसी भी विधान अथवा कानून से बँधा हुआ नहीं होता था। वह शाही निरंकुशता का प्रतिनिधि होता था तथा अपने प्रदेश में इच्छानुसार आचरण कर सकता था। सामान्यतः जनता अपने को उन्हीं व्यवहारों के अनुकूल बना लेती थी, जिन्हें उनके स्थानीय शासक उनके लिए उचित समझते थे। ऐसे अधिकारी बहुत ही कम थे जिन्होंने छल-कपट से दूसरों की सम्पत्ति नहीं हड़पी।

अबुल फ़ज़ल ने स्वीकार किया है कि "सारे हिन्दुस्तान में जब उदार शासक राज्य करते थे, सारी फसल का छठा भाग भूमि-कर के रूप में वसूल किया जाता था। तुर्किस्तान, ईरान तथा तुरान में क्रमशः पाँचवाँ, छठा तथा दसवाँ भाग वसूल किया जाता था।" किन्तु अकबर ने एक तिहाई भाग वसूल करने का आदेश दिया था। इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय राजाओं द्वारा तथा फारस में जो भूमि-कर वसूल किया जाता था, अकबर के शासनकाल में उससे दुगुना वसूल किया जाता था। अबुल फ़ज़ल के विचार से ऐसा प्रतीत होता है कि महसूल आदि विविध करों की छूट के कारण भूमि-कर दुगुना किया गया था, जो उचित ही था। किन्तु वस्तु-स्थिति यह नहीं थी। ओल्डहम ने एक टिप्पणी में उल्लेख किया है कि "सभी नहीं, किन्तु बाद में अधिकांश करों को फिर से लागू किया गया। निस्संदेह देयकर की राशि भी बहुत अधिक निर्धारित की जाती थी।··· कठोरतापूर्वक यह राशि वसूल की जाती थी।"

इस कथन से अकबर के शासन की धर्मान्धता एवं भेदभाव की नीति का रहस्योद्‌घाटन हो जाता है। भूमि-कर के रूप में मुसलमानों से दसवाँ भाग और हिन्दुओं से तीसरा भाग वसूल किया जाता था। धर्मान्ध मुसल-मान होने के कारण अकबर ने हिन्दुओं को नष्ट करने में कोई कसर नहीं उठाई थी।

"कुरान में निर्धारित अंग-भंग करने की सजाएँ स्वच्छन्दतापूर्वक दी जाती थीं। अकबर तथा अबुल फ़ज़ल में से कोई भी शपथ तथा साक्ष्य की न्यायिक औपचारिकताओं का ध्यान नहीं रखता था। फौजदार से यही आशा की जाती थी कि जैसे भी हो वह विद्रोहों का दमन करे। राजकीय

कर प्राप्त करने के लिए आज्ञा-भंग करने वाले ग्रामीणों से कर वसूल करने के लिए उसे सेना की सहायता प्राप्त करने की अनुमति थी।"

इतिहासकार प्रायः अकबर के प्रबुद्ध शासन की प्रशंसा करते हुए अबुल फज़ल कृत आईने-अकबरी के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। विंसेंट स्मिथ ने इतिहास के भोले-भाले लेखकों और अध्यापकों को यह कहकर सावधान किया है कि 'आईने-अकबरी का पट 'वाक्छल' के ताने-बाने से बुना गया है।' जल्दी में आईने-अकबरी पढ़ने वाला व्यक्ति उसमें वर्णित अकबर द्वारा स्थापित संस्थानों एवं विस्तृत सांख्यिकीय सारणियों को देखकर यह समझने की भूल कर बैठता है कि इस तिथिवृत्त में अकबर के शासनकाल सम्बन्धी पर्याप्त विवरणात्मक तथ्य उपलब्ध हैं परन्तु सूक्ष्म अध्ययन से यह भ्रमपूर्ण धारणा छिन्न-भिन्न हो जाती है। उदाहरणतः, 'शिक्षा सम्बन्धी विनियम' (भाग २, आईन २५) जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर औपचारिक शब्दों में कहा गया है कि लड़कों को पढ़ना-लिखना सिखाया जाए। ''इस प्रकरण की समाप्ति ऐसे निराधार उल्लेख से होती है कि 'इन विनियमों ने शिक्षा में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया एवं मुस्लिम स्कूलों पर आश्चर्य-जनक प्रभाव डाला।' स्पष्टतः निर्धारित पाठ्यक्रम का इन बातों से कोई सम्बन्ध नहीं था। भारत में या विश्व में अन्यत्र कहीं भी किसी संस्था ने इस प्रकार की योजना को कार्यान्वित करने का प्रयास नहीं किया। चाटु-कार तिथिवृत्तकार ने तो मात्र अपने स्वामी की प्रशस्ति में अतथ्यपूर्ण अध्याय जोड़ा है।

इतिहासकारों को चाहिए कि स्मिथ महोदय के उक्त विद्वत्तापूर्ण वक्तव्य पर गंभीरता से विचार करें। आईने-अकबरी आरम्भ से लेकर अन्त तक काल्पनिक विवरण है। सम्पूर्ण इतिवृत्त चाटुकार अबुल फ़ज़ल ने कल्पना के आधार पर प्रतिदिन एकान्त में बैठकर जोड़े हैं जो अधिकृत नहीं कहे जा सकते। उसके समस्त उल्लेख परस्पर विरोधी और भ्रांत हैं।

जब कभी नास्तिक या उदारपन्थी बादशाह कुरान के निर्देशों का उल्लंघन करता था तो कट्टर धार्मिक विद्रोह या उसकी हत्या का रास्ता अपनाते थे। परन्तु दोनों ही कार्य दुःसाध्य होते थे। शक्तिशाली बादशाह जहाँ तक उचित समझता था, कुरान के निर्देशों की अवज्ञा करता था। अपने शासन के अन्तिम ३२ वर्षों में अकबर ने भी ऐसा किया। कुरान को

अत्यधिक अवज्ञा के कारण सन् १५८१ में उसकी शासन-सत्ता डगमगा गई थी परन्तु इस संकट पर विजय पाने के पश्चात् वह आजीवन स्वेच्छाचारी बना रहा। ऐसी स्थिति में उसके लिए किसी मंत्रि-परिषद् के वैधानिक नियमों का मानना और मंत्रियों की निश्चित संख्या रखना एवं उसका वैशिष्ठ्य मानना भी उसके लिए आवश्यक नहीं होता था "अकबर के शासन के अन्तिम दिनों में १६०० अधिकारी थे। उनकी नियुक्ति, स्थायित्व, पदोन्नति और कार्यभार मुक्ति बादशाह की स्वेच्छा पर निर्भर थी। बादशाह अपनी प्रजा और समस्त अधिकारियों का उत्तराधिकारी अपने आप को ही समझता था और उनकी मृत्यु पर सब धन-सम्पत्ति हड़प कर ली जाती थी। मृत व्यक्तियों के वास्तविक उत्तराधिकारियों को अपना जीवन बादशाह के आश्रित होकर पुनः प्रारम्भ करना पड़ता था।

राज्य में कर-निर्धारण की जिस पद्धति के लिए अकबर तथा टोडरमल को बहुत अधिक श्रेय दिया जाता है, उसका प्रमुख लक्ष्य शाही राजस्व में वृद्धि करना था। अकबर संकुचित भावनाओं का व्यावसायिक व्यक्ति था, वह भावुक सेवी नहीं था। उसकी समस्त नीतियों का आधार प्रमुखतः सत्ता तथा धन हड़पना था। जागीरों आदि सम्बन्धी समस्त व्यवस्थाओं का उद्देश्य ही सत्ता, वैभव तथा शाही सम्पत्ति में वृद्धि करता था। जन-सामान्य के सुख तथा कल्याण के सम्बन्ध में उसके प्रकाशकीय मानदण्डों के बारे में आधार रूप से हमें कुछ भी पता नहीं चलता। सन् १५६५ से लेकर १५६८ तक की अवधि में उत्तर भारत में जो सर्वाधिक भयानक अकाल पड़े, जिनके उल्लेख रिकार्डों में हैं तथा जिन अकालों ने उत्तर भारत को बरबाद कर दिया, उन्हें रोकने के लिए निश्चय ही उन्होंने कुछ नहीं किया। अकबर ने जो वृहद् सम्पत्ति एकत्रित की (जिसे उसने छः नगरों में रखवाया था) तहखानों में ही पड़ी रही। उनका कुछ भी उपयोग नहीं किया। (अकबर : दी ग्रेट मुगल, पृष्ठ २५३-२५५)।

सभी कार्यालय-अधिकारी बादशाह को धोखा देने का भरसक प्रयत्न करते थे। "यह समझ लेना चाहिए कि शाही आदेशों का सही ढंग से पालन, आरम्भ से लेकर अन्त तक, अधूरे तौर पर ही किया जाता था। सभी प्रकार के छल-कपट का खुलकर प्रयोग किया जाता था। अकबर को इन सबकी जानकारी रहती थी किन्तु वह इस ओर विशेष ध्यान नहीं देता

था।" (वही, पृ० १०२)।

स्मिथ महोदय ने ऊपर जो कुछ भी उल्लेख किया है, पूर्णरूप से न्याय-संगत है। इसके कुछ तथ्यों की सम्यक् विवेचना करने की आवश्यकता जान पड़ती है। अकबर एक निष्ठुर बादशाह था। यदि उसका लाभ होता था तो वह जाल-साजियों की ओर ध्यान नहीं देता था। कुछ राजाज्ञाओं की अवज्ञा की उपेक्षा करना वह साधारण बात समझता था। क्रूर और अधम शासन-पद्धति में अकबर तथा उसके 'भाड़े के टट्टुओं' में समझौता था कि यदि अकबर कभी दरबार में उपस्थित हिन्दुओं को प्रसन्न करने के लिए दिखावटी कोई आदेश दे दे तो उसे कार्यान्वित न किया जाये।

डॉ० श्रीवास्तव ने उल्लेख किया है कि "अकबर ने बहलौल मलिक नामक हिजड़े को सुरक्षित शाही भूमि का दीवान नियुक्त किया। उसने उक्त हिजड़े को ऐतिमाद खाँ की उपाधि देकर उसकी पदोन्नति की। सितम्बर, १५६२ में होने वाली राजस्व की वसूली के लिए बादशाह ने नए नियम निर्धारित किए। इन नए नियमों के सम्बन्ध में समकालीन लेखकों में से किसी ने भी कोई संकेत नहीं दिया है। अबुल फ़ज़ल ने केवल इतना उल्लेख किया है कि 'राजस्व, जोकि बादशाहत की नींव, सल्तनत का अवलम्ब तथा सैनिकशक्ति का सूत्र होता है, उचित आधार पर लागू किया गया। बदायूँनी ने लिखा है कि व्यय में भी पर्याप्त मितव्ययता से काम लिया गया।

राजस्व के इन नए नियमों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि वे केवल जालसाज़ी थे, क्योंकि समकालीन लेखकों में से किसी ने भी उनका उल्लेख नहीं किया है। डॉ० श्रीवास्तव समकालीन लेखकों की इस उपेक्षा के लिए खेद व्यक्त करते हैं। डॉ० श्रीवास्तव खेद इसलिए प्रकट करते हैं कि वे उनके साक्ष्यों पर विश्वास करते हैं। कहा जाता है कि नियम बनाए गए, किन्तु इस सम्बन्ध में दरबारी लेखक मौन हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नियम नहीं बनाए गये। दूसरी ओर ऐसा उल्लेख मिलता है कि नई अर्थ-व्यवस्था लागू की गई। इससे यह सिद्ध होता है कि एक हिजड़े ऐतिमाद खाँ द्वारा जनता के गले में दबाव, उत्पीड़न तथा शोषण का फन्दा और ज़ोर से कसने के लिए उक्त व्यवस्था लागू की गई। यह भी विचारणीय है कि क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में मितव्ययता के बहाने उनकी सम्पत्ति

हड़पी गई। यही वह नई व्यवस्था थी, जिसकी प्रायः दुहाई दी जाती है।

उक्त नियमों के सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि जनता को निराश्रयता और दरिद्रता की स्थिति तक पहुँचा देने के लिए वे बादशाही लूट-खसोट की नई पद्धतियाँ थीं। इस तथ्य का स्पष्टीकरण ब्लोचमैन (आईने अकबरी का अंग्रेजी अनुवाद, पृ० १३) की टिप्पणी से हो जाता है। उन्होंने लिखा है—"अपने पोषक पिता शम्सुद्दीन मोहम्मद एतगाह खान की मृत्यु के बाद अकबर ने वित्तीय मामलों की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया। उसे ज्ञात हुआ कि राजस्व विभाग 'चोरों का अड्डा' है। वित्त-विभाग के पुनर्गठन के लिए उसने ऐतिमाद खाँ की नियुक्ति की। सन् १५६५ में उसने (ऐतिमाद खाँ ने) खानदेश के राजा मीरन मुबारक (१५६५-१५६६) की बेटी को अकबर के हरम में प्रवेश कराया। सन् १५७८ में जबकि पंजाब में अकबर की उपस्थिति आवश्यक थी, ऐतिमाद खाँ उसकी सहायता के लिए पहुँचना चाहता था। उसने अत्यन्त कठोरता से बकाया कर वसूल किया। इससे उसकी हत्या का षड्यन्त्र रचा गया। इसी वर्ष मक़सूद अली द्वारा उसकी हत्या कर दी गई।"

अकबर के प्रायः प्रत्येक राजस्व प्रशासक की हत्या की गई। (टोडरमल भी गुप्त रूप से कत्ल हुआ था।) इससे यह स्पष्टतः अनुमान लगाया जा सकता है कि वसूलियों के समय कितनी क्रूरता और दमन का बोलबाला रहता था। ऐतिमाद खाँ जैसे हिजड़े से भला इसके अतिरिक्त क्या अपेक्षा की जा सकती थी; कि अकबर के हरम से लिए वह स्त्रियों का अपहरण करे, मानो स्त्रियाँ किसी बाड़े में बन्द जानवर हों एवं उन्हें खदेड़कर अकबर के हरम में पहुँचाए? टोडरमल भी इसी प्रकार के कार्यों में लगा रहता था। अतः यह सिद्ध होता है कि ये तथाकथित राजस्व मन्त्री अकबर के लिए औरतों का व्यापार करने वाले थे। वे खोज-खोजकर सुन्दर स्त्रियों को अकबर के लिए अपहृत किया करते थे। ऐसे दलालों से राजस्व सम्बन्धी नियमों के पालन की क्या आशा की जा सकती थी?

अकबर के विश्वासपात्र किस प्रकार के व्यक्ति अथवा हिजड़े आदि थे, इसका एक स्पष्ट उदाहरण हमें स्वयं अबुल फ़ज़ल द्वारा प्रस्तुत किए गये तथ्य में मिलता है। उसका कथन है कि 'शाह महराम-बहारलू काबुल खान नामक एक नाचने वाले लड़के पर फिदा था। बादशाह ने उक्त लड़के को

बलात् हटवा दिया। इससे शाह कुली ने साधु के वस्त्र धारण कर लिए तथा जंगल में चला गया। बहराम ने प्रयत्नपूर्वक उसका पता लगाया तथा उसका छोकरा उसे वापस सौंपा गया। अकबर ने कृपापूर्वक उसे अपने हरम में प्रवेश की अनुमति दे दी। पहली बार उसे हरम में आने की अनुमति दी गई थी। वह अपने घर गया तथा वहाँ उसने अपने अण्डकोश कटवा दिए। महराम का अर्थ ही यह होता है कि जिसे हरम में प्रवेश की इजाजत मिल जाए। हि० स० १०१० में आगरे में उसकी मृत्यु हो गई। नारनौल में, जहाँ उसने प्रमुखतः अपना जीवन व्यतीत किया था, उसने उनके भव्य भवन बनवाए तथा कई बड़े तालाब खुदवाए।"

अकबर का दरबार इस प्रकार के हिजड़ों तथा अप्राकृतिक व्यभिचारियों से भरा रहता था। असहाय जनता पर शासन के लिए इन्हें निरंकुश अधिकार दिए जाते थे। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि शाह कुली ने अकबर के सुहावने हरम में कोई गलत काम अवश्य किया होगा, जिसके कारण अकबर ने उसे बाध्य किया कि वह अपने अण्डकोश कटवा दे। संसार में ऐसा कौन होगा जो स्वेच्छा से अपने अण्डकोश कटवाना चाहेगा। पाठक भवन-निर्माण सम्बन्धी धोखे पर ध्यान दें। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि एक नीच, चापलूस और गिरा हुआ हिजड़ा नारनौल में भव्य-भवनों का निर्माण करवाए तथा तालाब खुदवाए। इस तथ्य से स्पष्ट है कि किस प्रकार पूर्ववर्ती हिन्दू भवनों आदि के निर्माण का श्रेय निर्लज्जता से मुसलमानों को दिया जाता रहा है।

अकबर किस प्रकार अयोग्य व्यक्तियों के द्वारा अपना कुख्यात प्रशासन चलाता था, इसकी एक झाँकी अबुल फ़ज़ल के विवरण में मिलती है। उसका कथन है कि खान जहान का भाई इस्माइल कुली खान १२०० औरतों को रखे हुए था। वह इतना शक्की मिजाज़ था कि जब दरबार में जाता था तो स्त्रियों के पाजामों के नाड़ों पर मोहर लगा देता था। इस कारण उन स्त्रियों ने रुष्ट होकर, जहर देकर उसकी हत्या कर दी।

ऐतिमाद खाँ की हत्या की घटना का उल्लेख करते हुए अबुल फ़ज़ल का कथन है—"ऐतिमाद खाँ की हत्या करने वाला मकसूद अली एक आँख से अन्धा था। जब उसने अपनी कष्टप्रद स्थिति का वर्णन ऐतिमाद खाँ के सामने पेश किया तो उसने मजाक उड़ाते हुए कहा कि इस अन्धी आँख में

'कोई पेशाब करे।' इस बात से क्रुद्ध होकर मकसूद ने वहीं उसकी हत्या करा दी।'' एक अन्य विवरण में कहा गया है कि मक़सूद ने उसकी हत्या बिस्तर से उठते हुए की। अकबर के दरबारी किस प्रकार अश्लील और गन्दी भाषा का प्रयोग करते थे तथा उनकी हत्याओं के क्या कारण होते थे, उन सबसे अकबर के शासन की निरंकुशता, त्रास तथा उसके दरबार के नैतिक पतन पर प्रकाश पड़ता है। यह भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि दरबारियों की हत्याओं की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता था। यही कारण है कि ऐतिमाद खाँ की हत्या के सम्बन्ध में दो विभिन्न उल्लेख प्राप्त होते हैं। एक उल्लेख के अनुसार उसकी हत्या दरबार में हुई। दूसरे उल्लेख के अनुसार हत्या उसके घर में हुई। दरबारियों की हत्या के सम्बन्ध में यदि ध्यान दिया जाता तो कई प्रकार के उल्लेख प्राप्त न होते। इस प्रकार के नीच आदमियों की यदि हत्या कर भी दी जाती थी तो कोई विशेष बात नहीं होती थी। वस्तुतः इस प्रकार की हत्याओं से प्रत्येक दरबारी खुश होता था; क्योंकि इनमें से प्रत्येक अत्याचारी और निरंकुश होता था तथा अपने हरम में अधिक से अधिक स्त्रियों को रखता था।

तारीख-ए-फिरोजशाही के पृ० २९० से एक टिप्पणी उद्धृत करते हुए ब्लोचमैन ने विवेचन किया है कि मुस्लिम शासन के अन्तर्गत हिन्दुओं की क्या दशा थी? उक्त टिप्पणी में कहा गया है—''दीवान के लगान वसूल-कर्त्ता जब हिन्दुओं से लगान वसूल करें तो उन्हें दीनतापूर्वक भुगतान करना चाहिए। अगर लगान वसूलकर्ता उनके मुँह में थूकना चाहें तो धर्म-भ्रष्ट हो जाने के भय को छोड़कर उन्हें अपना मुँह खोलना चाहिए, ताकि वह उनके मुँह में थूक सकें। ऐसी स्थिति में (अपना मुँह खोले हुए) उन्हें उनके सामने खड़ा होना पड़ता था। इस प्रकार मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के मुँह में थूकने तथा उन्हें अपमानित करने का उद्देश्य यह सिद्ध करना होता था कि मुसलमानों के अधीन काफ़िर कितने आज्ञाकारी होते थे। ऐसा करके वे इस्लाम को गौरवान्वित करना चाहते थे। उनके अनुसार इस्लाम ही सच्चा धर्म था। वे हिन्दू धर्म को झूठा मानते थे तथा उक्त नाटकीय कृत्यों द्वारा वे हिन्दुत्व को अपमानित और निन्दित करना चाहते थे। उन मुसलमानों के अनुसार अल्लाह ने खुद उन्हें ऐसा करने का हुक्म दिया है। हिन्दुओं के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करना मुसलमानों के लिए धर्म का कार्य—'सवाब'

है, क्योंकि हिन्दू मोहम्मद मुस्तफा के सबसे बड़े दुश्मन हैं। मुस्तफ़ा ने हिन्दुओं को मारने, उनकी सम्पत्ति को लूटने तथा उन्हें गुलाम बनाने का आदेश दिया है।"

मुस्लिम शासनकाल में शाही हरम में पुरुषों को बधिया करके अथवा उन्हें नपुंसक बनाकर भेजा जाता था। अबुल फ़ज़ल ने गुजरात के ऐतिमाद खाँ का कथन प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि "वह मूलतः गुजरात के शासक सुलतान महमूद का एक हिन्दू नौकर था। उसके मालिक ने उसपर विश्वास करके उसे हरम में जाने की इजाज़त दे दी। कहा जाता है कि सुलतान के प्रति कृतज्ञ होकर उसने कपूर खाना प्रारम्भ किया तथा खुद को नपुंसक बना लिया।"

इस उद्धरण में कई विरोधी बातें हैं। यदि सुलतान ने ऐतिमाद खाँ पर विश्वास करके उसे हरम में जाने की अनुमति दी थी तो उसे अपने-आपको नपुंसक बना लेने की क्या आवश्यकता थी ? यदि उक्त उल्लेख का यह तात्पर्य है कि सुलतान की विशेष कृपा होने के कारण उसे हरम की कुछ सुन्दरियों के साथ समागम करने की अनुमति दी गई थी तो नपुंसकता अयोग्यता थी। यदि इसका तात्पर्य यह है कि हरम में उसे देखभाल और निरीक्षण के कार्य के लिए नियुक्त किया गया तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि किसी भी पुरुष को औरतों से भरे हरम में ऐसे कार्य के लिए नियुक्त क्यों किया गया जबकि इस कार्य के लिए औरतें नियुक्त की जा सकती थीं। इससे यही सिद्ध होता है कि मुस्लिम सुलतान उन आदमियों को नपुंसक बना दिया करते थे, जिनका यह दुर्भाग्य होता था कि वे हरम में निरीक्षक के पद पर कार्य करने के लिए चुने जाते थे। इस सम्बन्ध में अकबर ने भी वही परम्परा अपनाई। विचारणीय है कि चाटुकार एवं धूर्त मुस्लिम इति-वृत्त लेखकों द्वारा उल्लिखित तथ्यों से परस्पर विरोधी बातें प्रकट होती हैं। उन चाटुकारों एवं धूर्तों ने अपने नीच और अधम मालिक के पक्ष में सत्य को दूषित रूप मे प्रस्तुत किया। इस प्रकार उन्होंने इतिहास का सर्वा-धिक अपकार किया है।

अकबर के दरबारियों की सूची में जयपुर के राजा भारमल के बेटे जगन्नाथ की गणना अबुल फ़ज़ल ने ६७वें दरबारी के रूप में की है। इस सन्दर्भ में अबुल फ़ज़ल ने (आइने अकबरी, पृष्ठ ४२१) लिखा है—'वह

शरफुद्दीन के पास वन्धक व्यक्ति था।' हम यह विवेचन कर चुके हैं कि अपने राजपूती अभिमान को खोकर, खून के घूंट पीते हुए भारमल ने अपनी बेटी का सतीत्व अकबर के हरम में बलिदान कर दिया था। तीन राजकुमारों को सांभर में सेनापति शरफुद्दीन ने बन्धक के रूप में कैद कर रखा था, उन्हें कठोर यातनाएँ दी जा रही थीं। भारमल से कहा गया था कि या तो वह अपनी पुत्री को शाही हरम में दे एवं राजकुमारों की मुक्ति के लिए अपार सम्पत्ति दे, अन्यथा उन तीनों को मौत के घाट उतार दिया जायेगा। राजकुमारों की जान बचाने के लिए भारमल ने अपनी कन्या अकबर की काम-वासना की भट्टी में झोंक दी। इस लज्जाजनक कार्य को सभी इतिहासकार साम्प्रदायिक एकता की दृष्टि से अकबर का महान् कार्य बतलाते हैं। हिन्दू कन्याओं के साथ अकबर के विवाहों के जितने उल्लेख प्राप्त होते हैं, वे सभी अपहरण की घटनाएँ थीं। हिन्दू कन्याओं के समान ही मुसलमान शाहज़ादियों के साथ भी उसके निकाह अपहरण मात्र थे।

ऊपर प्रस्तुत तथ्यों से पाठकों को आश्वस्त होना चाहिए कि अकबर संसार के इतिहास का सर्वाधिक स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश बादशाह था। उसका शासन अस्त-व्यस्त और भ्रष्टाचार से परिपूर्ण था।

: ११ :

अकबर की सेना

नागरिक प्रशासन की तरह अकबर की सेना भी बर्बर गुण्डों का एक असंगठित समूह थी। डंके की चोट पर ये सैनिक टिड्डी दल की तरह इकट्ठे कर लिये जाते और बिना सोचे-समझे खुले छोड़ दिये जाते थे। जब कभी किसी दुश्मन पर हमला करना होता, तब कमांडर अपने सैनिकों को उत्साह दे देकर पागल बना देते थे। सेना के जनरल और उनके सैनिक भयावह बर्बरतायें करते और अपने दुश्मनों के सिर काटकर अकबर को खुश करने के लिए उसके पास भेजते या फिर सिरों और धड़ों का ढेर लगाकर अपनी लूट पर खुशियाँ मनाते।

इस तरह अकबर के राजस्व अधिकारियों की तरह छुटपुट, नौकरी से अलग हुए और अल्पकालिक काम करने वाले सैनिकों तथा विद्रोहियों, ठगों, नीम फकीरों, धोखेबाज़ों और चोर-उचक्कों से मिलकर बनी हुई यह सेना अकबर के सम्पूर्ण शासन में लूट मचाती थी और जनता को परेशान करती थी। सैनिक मन्दिरों को भ्रष्ट करते, उनकी सम्पत्ति को लूटते तथा महिलाओं का अपहरण करके उन्हें इस्लाम धर्म में परिवर्तित कर देते थे।

विंसेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक--'अकबर : दी ग्रेट मुगल' (पृ० २६५-६६) में लिखा है कि "अकबर का सैनिक संगठन अन्दर से कमजोर था, हालांकि यह अपने मनमौजी पड़ोसियों के मुकाबले कहीं अधिक अच्छा था। यूरोप की सेनाओं के मुकाबले में उसकी सेना शायद एक मिनट भी न टिक सकती। जब कभी उसके अफसर पुर्तगाली बस्तियों पर हमला करने की हिम्मत करते तब उन्हें बुरी तरह मार खानी पड़ती। सिकन्दर महान् के सामने अकबर की वाहिनी एक मिनट भी न टिक पाती।...यदि अकबर को कहीं मराठों की घुड़सवार-सेना का मुकाबला करना पड़ जाता तो सम्भवतः उसका वही हाल होता जो उसके पौत्र का हुआ। अकबर के

सैनिक प्रशासन में ह्रास और विफलता के बीज विद्यमान थे।"

स्मिथ ने अकबर को यह कहते हुए लिखा है कि "एक बादशाह को हमेशा विजय के लिए तैयार रहना चाहिए।" (पृ० २४१) अकबर का यह नारा था, इसलिए इस बात में कोई आश्चर्य नहीं कि अकबर जिस किसी पर अपना सेना का जाल फेंकता, उसे किसी भी तरह अपनी अधीनता में लाने का प्रयत्न करता था।

अकबर की सेना का नारा था कि हिन्दू जहां भी मिले उसे खत्म कर दो, फिर चाहे वह अकबर की तरफ से लड़ रहा हो। इसका कारण यह था कि हर हिन्दू की मौत को इस्लाम के लिए हितकर माना जाता था। इतिहासकार बदायूंनी खुद अकबर की सेना में एक सैनिक था और उसने हल्दी घाटी में राणा प्रताप के विरुद्ध लड़ाई में हिस्सा लिया था। उसने अपनी पुस्तक (भाग २) में पृ० २३७ पर लिखा है कि "मैंने अपने कमांडर आसफ खाँ द्वितीय (यह व्यक्ति आसफ खाँ से भिन्न है जिसने रानी दुर्गावती के विरुद्ध लड़ाई की थी) से पूछा कि हमारी सेना के राजपूत सैनिक शत्रु सेना के राजपूतों से भिन्न नजर नहीं आ रहे हैं, इसलिए यह किस तरह जाना जाये कि कौन राजपूत हमारा मित्र है और कौन शत्रु सेना का सैनिक है, और इसके उत्तर में मुझे आश्वासन दिया गया कि मैं किसी भी राजपूत को मारूं, इसमें कोई गलती नहीं होगी क्योंकि हिन्दू जिस पक्ष का भी खत्म होगा उसमें इस्लाम का ही भला होगा।"

अपना उदाहरण देकर बदायूँनी ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि किस तरह अकबर की सेना का हर सैनिक हिन्दुओं के खून का प्यासा था। बदायूँनी ने अपनी उसी पुस्तक में पृष्ठ २३३-३४ पर लिखा है कि "६८४ हिजरी में बादशाह ने मानसिंह को हुक्म दिया कि वह कोकंडा और कमालमेर के विद्रोही जिलों पर हमला करे। (यह वह इलाका था जहाँ राणा कीका उर्फ राणा प्रताप राज्य किया करता था।) नास्तिक लोगों के खिलाफ युद्ध करने की मेरी बड़ी उत्कट इच्छा थी। मैंने नकीब खाँ को मार्फत बादशाह को अर्जी भेजी। पहले तो नकीब खाँ ने टाल-मटोल की और कहा कि यदि एक हिन्दू अर्थात् (मानसिंह) इस सेना का नेता न होता तो मैं सबसे पहले जाकर बादशाह से अपने लिए इजाजत माँगता। (बादशाह से भेंट के समय) मैंने कहा कि पवित्र युद्ध अर्थात हिन्दुओं के

कत्लेआम में हिस्सा लेने की मेरी बहुत उत्कट इच्छा है। मैं चाहता हूँ कि मैं हिन्दुओं के खून से अपनी मूछें काली करके बादशाह के प्रति अपनी निष्ठा का परिचय दूं।'''और जब मैंने बादशाह की कदमबोसी के लिए हाथ आगे बढ़ाया तो बादशाह पीछे हट गये; परन्तु जब मैं दीवान खाने से बाहर जा रहा था, तो उन्होंने मुझे वापस बुलाया और अपने दोनों हाथों में भरकर ५० अशर्फियाँ मुझे भेंट कीं और विदा किया'''।"

"युद्ध की घोषणा करने का कारण यह था कि राणा कीका ने अपना शाही हाथी अधीनता के तौर पर अकबर के दरबार में भेजने से इन्कार किया था।" (पृ० २३५)।

अकबर की यह अत्याचारपूर्ण माँग युद्ध का कारण बनी कि राणा प्रताप सिर्फ उसकी सनक को पूरा करने के लिए अपना शाही हाथी उसकी अधीनता में भेजे। यदि यह माँग पूरी कर दी जाती तो इसके बाद बहुत बड़ी राशि फिरौती के रूप में देने, दरबार में सिजदा करने और उसके तथा दरबारियों के परिवारों में से चुनकर सुन्दर औरतों को अकबर के हरम में भेजने की माँग अवश्य ही की जाती।

राणा प्रताप ने किस तरह मुसलमानों की सेना को नष्ट-भ्रष्ट किया, इसका उल्लेख करते हुए बदायूँनी ने लिखा है कि जब अकबर के सैनिकों को कायर की तरह पीठ फेरकर भागना पड़ता था तब वे पैगम्बर मुहम्मद की बात का सहारा लेते थे। बदायूँनी लिखता है—"जब काज़ी खाँ (अंगूठा कट जाने के बाद) युद्ध में खड़ा न रह सका तो उसने एक लाइन पढ़ी कि 'जब बड़ा दुश्मन सामने हो तब मुँह छिपाकर भागना पैगम्बर के रास्ते पर चलना है", और इतना कहते हुए वह अपने साथी सैनिकों के पीछे-पीछे वापस भाग निकला।

"मानसिंह ने इतनी दिलेरी का परिचय दिया जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उस दिन मानसिंह ने जिस तरह सेना का नेतृत्व किया, उससे मुल्ला शीरी की यह पंक्ति याद हो आती है कि 'इस्लाम की तलवार एक हिन्दू के हाथ में है'।"

बदायूँनी ने लिखा है कि (वही पृष्ठ २४३-४७) "जब मैं राणा प्रताप के हाथी को लेकर फतेहपुर सीकरी पहुँचा तब अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अशर्फियों के ढेर में हाथ डालकर मुझे ९३ अशर्फियाँ भेंट कीं।"

बदायूँनी के विवरण से इस बात का संकेत मिलता है कि अकबर के शासनकाल में सेना में भर्ती होने के लिए किसी प्रशिक्षण, अनुशासन अथवा ड्रिल की आवश्यकता नहीं होती थी। कोई भी मुसलमान, जो हिन्दुओं को कत्ल मुक्ति की कामना से करता था और कोई भी हिन्दू जो इस कत्ले-आम में सहायक होना चाहता था, खुशी से अपना तीर-कमान, भाले और तलवार, ढाल और बल्लम लेकर मैदान में उतर सकता था और वह उतनी आसानी से सेना में शामिल हो सकता था जितनी आसानी से लकड़हारा कुल्हाड़ी लेकर जंगल जाता है।

डॉ० श्रीवास्तव ने (अकबर: दी ग्रेट, भाग १, पृ० १४५) लिखा है कि "डूंगरपुर के सिसोदिया शासक आसकरण ने राणा प्रताप से अलग हो जाने से इन्कार किया जिसपर मुगल सेना ने डूंगरपुर के इलाके में लूट मचा दी।"

अकबर अपने प्रमुख और प्रभावशाली व्यक्तियों को विवश करता था कि वे उसकी सेना के लिए भर्ती करने वाले एजेण्ट और ठेकेदार के रूप में काम करें और नोटिस मिलते ही सेना तैयार कर सकें। डॉ० श्रीवास्तव ने (पृष्ठ १७७-१७८) लिखा है कि किसी तरह लोगों को विवश किया जाता था कि वे एक नियत संख्या में घोड़े, हाथी, ऊँट आदि रखें और निश्चित अवधि के बाद उन्हें निरीक्षण के लिए प्रस्तुत करें।

अकबर को दूसरों को पीड़ित करने में मजा आता था क्योंकि फरिश्ता के अनुसार अकबर को अपने पुत्र मुराद मिर्जा की मृत्यु पर दुःख हुआ जिसका ग़म-गलत करने के इरादे से अकबर ने दक्कन की विजय का कार्यक्रम बनाया। फरिश्ता ने कहा है कि "शाहजादा मुराद मिर्जा को (मई, १५९९ में) घातक रोग ने आ घेरा। उसे शापुर में दफनाया गया। बाद में उसकी लाश को आगरा में ले जाकर उसके दादा हुमायूँ की कब्र के पास दफना दिया गया। पुत्र की मृत्यु से दुःखी होकर अपना मन बहलाने के लिए बादशाह ने दक्कन की विजय की इच्छा की।" (फरिश्ता का विवरण, भाग २, पृष्ठ १७०-७१)।

ऊपर के उद्धरण से दो बातें स्पष्ट हैं। इससे हमें अकबर के क्रूर स्वभाव का पता लगता है कि किस तरह वह अपने बेटे की मौत का ग़म-ग़लत करने के लिए दक्कन के राजाओं और उनकी प्रजा का खून बहा देना

चाहता था।

दूसरे, इससे दिल्ली में हुमायूँ का तथाकथित मकबरा होने के झूठ का पता चलता है। यदि फरिश्ता के अनुसार हुमायूँ की लाश आगरा में दफन है और उसका पोता उसके पास ही दफन है तो फिर दिल्ली में उसका आकर्षक मक़बरा नक़ली है। जिसका उद्देश्य यह था कि हिन्दुओं के एक भव्य-भवन को उनके हाथों में पड़ने से रोका जाये क्योंकि हिन्दू किसी मकबरे को अपवित्र करने के मामले में बहुत डरते थे। उत्तर प्रदेश में बहराइच में ऐसी ही एक नकली कब्र का एक और उदाहरण सामने आया है। हिन्दी साप्ताहिक सार्वदेशिक (प्रकाशक : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली) के १४ अप्रैल, सन् १६६८ के अंक में "विजय तीर्थ के दर्शन" शीर्षक से एक लेख लिखते हुए श्री बिहारीलाल शास्त्री ने लिखा है कि बहराइच में मोहम्मद गज़नी के भतीजे सालार मसूद की जो आकर्षक कब्र मौजूद है वह बालादित्य नाम के एक हिन्दू मन्दिर को हड़प करके बनाई गई थी। राजा सुहेल देव के साथ हुए युद्ध में से वह भाग निकला और सुहेलदेव ने उसका पीछा किया। सालार छिपकर एक पेड़ पर चढ़ गया जहाँ उसे अचानक पकड़कर मार डाला गया। कुछ समय बाद जब यह इलाका मुसलमानों के कब्जे में आया, तब उन्होंने उस मन्दिर में कुछ मुस्लिम लाशें दफनाकर उसे अपवित्र किया और उसका नाम बदलकर बाला मियाँ का मक़बरा रख दिया।

ईसाई पादरी फादर मनसर्रेट ने, जो अकबर के दरबार में दो वर्ष तक रहा था, हिन्दू शासन पद्धति और मुस्लिम शासन पद्धति की तुलना इन शब्दों में की है : "ब्रह्मन (अर्थात् हिन्दू) एक सीनेट और जन-परिषद् के माध्यम से उदारता से शासन चलाते हैं जबकि मुसलमानों के यहाँ कोई परिषद् या सीनेट नहीं होती और हर बात बादशाह के द्वारा नियुक्त किये गये गवर्नर की इच्छा से होती है।" (पृष्ठ २१६ कमेण्ट्री)।

"सड़कों पर चारों तरफ चोर घूमते हैं। मुसलमानों को बहुत आसानी से इस बात के लिए उकसाया जा सकता है कि वे ईसाइयों को (तथा निश्चय ही हिन्दुओं को भी) मौत के घाट उतार दें।" (वही, पृष्ठ १८६)।

मनसर्रेट ने लिखा है कि किस तरह अकबर ने कुछ प्रमुख व्यक्तियों पर यह जिम्मेदारी डाली हुई थी कि जब कभी आवश्यकता पड़े तब वे उसे

सैनिक टुकड़ियाँ दिया कर। ये बड़े बा॰बा॰ अपनी यह जिम्मेदारी कुछ छोटे लोगों पर डाल देते थे और इस तरह बड़े और छोटे ठेकेदारों का एक सिलसिला बन गया था जिनपर यह जिम्मेदारी थी कि वे बादशाह के कहने पर तुरन्त वांछित संख्या में सेना उपलब्ध करें। जो व्यक्ति बादशाह के हुकम का पालन करने में कोताही करता था, उसे पीड़ा देकर मार दिया जाता था, उसके निकट सम्बन्धियों को गुलामों के रूप में बेच दिया जाता था या बन्धक रख लिया जाता था और उनकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली जाती थी। इस तरह हर व्यक्ति को अन्ततः इस बात के लिए विवश किया जाता था कि वह सेना में शामिल हो और अपने-आपको फौजी ड्यूटी के लिए प्रस्तुत करे। कई बार उसे सैनिक सज्जा अपने खर्चे पर खरीदनी पड़ती थी।

मनसरेंट ने अपनी पुस्तक में पृष्ठ ८९ पर लिखा है कि "५४,००० घुड़सवार सेना, ५,००० हाथी और कई हज़ार पैदल सेना ऐसी है जिसका वेतन सीधे शाही खज़ाने से दिया जाता है। इसके अलावा ऐसी सैनिक टुकड़ियाँ हैं जिनका प्रबन्ध अचल-सम्पत्ति की भाँति पिता से पुत्र को उत्तराधिकार में मिलता चला जाता है। इन टुकड़ियों में घुड़सवार, हाथी और पैदल लोग रहते हैं और इनका खर्च इनके कमांडिग अफसर उस राजस्व में से देते हैं जो उन्हें बादशाह द्वारा दिए गये प्रान्त से प्राप्त होता है।...ऐसे (विजित) प्रदेशों की सरकार इस शर्त पर सरदारों के हाथों में दे दी जाती थी कि वे एक निश्चित राशि सरकारी खज़ाने में जमा करेंगे। ये सरदार भी शहर, कस्बे और गाँव आगे बाँट देते थे। बादशाह प्रत्येक सरदार को इतना बड़ा इलाका दे देता है जिससे वह अपनी उचित शानो-शौकत बनाए रख सके और सेना में अपने भाग के उचित कर्तव्य का पालन कर सके।...राज्य के नगर और भूमि सब राजा की है और सारी सेना उसे अपना कमाण्डर-इन-चीफ मानती है हालाँकि अधिकांश फौजों के अपने जनरल और अफ़सर होते हैं जिनके साथ उनका परम्परागत अधीनता का सम्बन्ध होता है। यह बात निरन्तर चिन्ता का कारण बनती है और इससे षड्यन्त्र और धोखेबाज़ी का मौका मिलता है।"

अकबर की सेनाएँ जिस इलाके में से होकर गुज़रती थीं वहाँ अपने निर्वाह के लिए लूट मचाती थीं। यह लूट प्रतिदिन होती थी और लूट का

माल सस्ते दामों पर सैनिकों को बेच दिया जाता था। कमेंट्री में (पृ० ७७-८० पर) लिखा है कि "(मिर्जा हाकिम के विरुद्ध अभियान में) सेना ने ८ फरवरी, १५८१ को कूच किया। पहले तो कुछ दिन तक सेना की संख्या बहुत कम रही परन्तु जल्दी ही उसका आकार इतना अधिक बढ़ गया कि सारी धरती सैनिकों से ढँक गई। डेढ़ मील के इलाके में जंगलों और मैदान में यह सेना भीड़ की तरह लगती थी। इस बड़ी सेना में अनाज को खास-तौर से हाथियों की संख्या को देखते हुए, इतना सस्ता देखकर पादरी (मनसर्रेट) को आश्चर्य हुआ (क्योंकि उसे पता नहीं था कि वह अनाज जबरदस्ती लूट के ज़रिए वसूल करके अकबर की सेना को बेचा गया था) यह सब स्वयं बादशाह की चातुरी और बुद्धिमत्ता से सम्भव हो सका। राजा ने अपने चुने हुए एजेंटों को आसपास के नगरों और कस्बों में भेज दिया और यह हिदायत कर दी थी कि वे सभी तरफ से रसद का प्रबन्ध करके लाएँ। राजा ने व्यापारियों को (जिन्हें फौजी जबरदस्ती इकट्ठा करके ले आते थे) जो अनाज, मक्का, दालें और दूसरी रसद शिविरों को जाते थे, यह घोषणा की कि यदि वे अपनी सारी रसद सैनिकों को सस्ते भाव पर बेच देंगे तो उन्हें टैक्सों से माफ़ी कर दी जाएगी। यह बात इतनी सीधी-सादी नहीं है जितनी लगती है क्योंकि यह कड़ी धमकी थी। व्यापारी लोग जानते थे कि किस तरह अकबर टैक्स वसूल करने के लिए लोगों को कुचल देता था—उन्हें कोड़े लगाए जाते थे, तथा अपनी पत्नी और बच्चे बेच देने के लिए विवश कर दिया जाता था। अकबर जानता था कि यदि उन्होंने अपना सारा अनाज सस्ते दामों पर नहीं बेचा तो सभी तरह के कल्पित टैक्स वसूल करने के नाम पर किस तरह उन्हें पीड़ित और आतंकित किया जा सकता है। जब कभी अकबर अपने राज्य की सीमाओं से बाहर कदम रखता था (अथात् जब वह आक्रमण करता था) तब वह अपने कुछ व्यक्ति शत्रु के क्षेत्र में भेजकर उनसे कुछ घोषणाएँ करवाता था जिनसे उसकी बुद्धिमत्ता और चातुरी का पता चलता है। (यह घोषणाएँ इस तरह की जाती थीं कि शत्रु प्रदेश के लोग दूर-दूर तक उन्हें सुन सकें।) इन घोष-णाओं का आशय यह होता था कि जो व्यक्ति हथियार नहीं उठाएगा, उसे कोई नुकसान नहीं पहुँचाया जाएगा और यह कि जो लोग शिविरों में आकर रसद पहुँचाएँगे उनसे टैक्सों की वसूली नहीं की जाएगी, परन्तु वे

अपना माल जैसे चाहें वैसे बेच सकेंगे।......परन्तु यदि अकबर का हुक्म न माना गया तो उन्हें बहुत भारी सज़ा मिलेगी। अकबर की विशाल वाहिनी को देखकर लोग आतंकित रहते थे, इसलिए शत्रु प्रदेश में भी अकबर की सेना को ऊँचे भावों और रसद के अभाव का सामना नहीं करना पड़ता था।

मनसर्रेट के प्रमाण से स्पष्ट है कि किस तरह अकबर की सेना आतंक दिखाकर व्यापारियों को इकट्ठा करती थी और उन्हें अपना माल सस्ते दामों पर बेचने को विवश करती थी। यह कल्पना की जा सकती है कि ऐसी परिस्थितियों में माल को लूटा भी जा सकता था। जो थोड़ा-बहुत लेन-देन होता था वह अपवाद रूप में था। इस तरह जब अकबर की सेना किसी अभियान में लगी होती थी तब भी उसे अपने निर्वाह का खर्च स्वयं वहन करना पड़ता था। लोगों को धर्म-परिवर्तन करके या धमकियाँ देकर इस बात के लिए विवश किया जाता था कि वे सेना में शामिल हों, और शत्रु के प्रदेश पर हमला करें। जिन लोगों को इस तरह विवश किया जाता था, वे जिधर से होकर निकलते थे, उधर लूटमार करते हुए चलते थे क्योंकि अपने घर, परिवार, धर्म, मित्रों और अपनी संस्कृति से विलग हो जाने के बाद अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे ऐसा करने को विवश हो जाते थे। इस तरह कल तक जो व्यक्ति शांतिप्रिय, कानून को मानने वाला और धर्म-परायण नागरिक था, वह अगले दिन भयंकर अपराधी बन जाता था।

अकबर के शासनकाल के विवरणों में दो हज़ारी तथा पंच हज़ारी जैसे शब्द कई बार आते हैं। इन शब्दों का भी यह मतलब नहीं था कि उनकी कमान में इतने सैनिक थे। जिन व्यक्तियों को ये उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं उन्हें दरबार में जाने और अपनी उपाधि के अनुरूप किसी एक पंक्ति में खड़े होने जैसे कुछ अधिकार प्राप्त होते थे। इन पदों के साथ उन्हें उचित रूप में भूमि भी प्रदान की जाती थी और उन्हें अपने इलाके में प्रायः सार्वभौम अधिकार प्राप्त होते थे। ब्लोचमैन ने आईने-अकबरी के अपने अनुवाद में (पृ० २५१-५२) पाठक को सावधान किया है कि "पंच हज़ारी का मतलब आवश्यक रूप से यह नहीं है कि वह पाँच हज़ार सैनिकों का नेतृत्व करता था। सेना में मनसबदारों की संख्या अधिक थी और

इनकी टुकड़ियाँ समय-समय पर एकत्र कर ली जातीं और उनका खर्च बड़े अथवा स्थानीय ख़ज़ाने से दिया जाता था। अकबर को ऐसे सैनिकों के मामले में बहुत परेशानी उठानी पड़ती थी क्योंकि इनमें धोखेबाज़ी के व्यवहारों का प्रचलन था।"

अपने विवरण (भाग २, पृष्ठ १६०) में बदायूँनी ने ऐसे सैनिकों की भर्ती के मामले में व्याप्त अव्यवस्था और अत्याचार की चर्चा करते हुए लिखा है कि—"खालिस (राजा की) भूमियों को छोड़कर सम्पूर्ण देश की भूमि-जागीररूप में थी, ये लोग कुटिल विद्रोही थे और ज्यादा पैसा अपने ऐशोआराम पर खर्च कर देते थे और धन एकत्र करते चले जाते थे इसलिए उन्हें सेना की देखभाल करने या प्रजा की तरफ ध्यान देने की फुर्सत नहीं होती थी। आपात स्थिति होने पर वे खुद अपने कुछ दासों तथा मुगल सेवकों को साथ लेकर युद्धस्थल पर आ जाते थे, परन्तु उनमें वास्तव में उपयोगी सैनिक कोई नहीं होता था।···अमीर लोग अधिकांश में अपने सेवकों और घुड़सवार नौकरों को सैनिक वेश में रखते थे।···जब कभी कोई नया संकट आता तो ये लोग आवश्यकता के अनुसार 'भाड़े के' सैनिक इकट्ठे कर लेते थे।···इस तरह मनसबदारी की आय और उनके खर्चे तो ज्यों-के-ज्यों रहे परन्तु गरीब सैनिक की हालत बिगड़ती चली गई, यहाँ तक कि वह किसी भी काम के योग्य नहीं रहा।"

अकबर के शासनकाल में सामान्य जन की, चाहे वह सैनिक हो या नागरिक, दशा कितनी कष्टमय हो गई थी, इसका पता उपर्युक्त विवरण से लग जाता है।

जस्टिस जे० एम० शैलट ने अपनी पुस्तक 'अकबर' में पृष्ठ २३७ पर लिखा है कि "अकबर ने युद्ध में जो कई उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त कीं उनके बावजूद भी उसकी सेना को किसी भी तरह दक्ष नहीं कहा जा सकता।"

युद्ध में अकबर की और वास्तव में दूसरे मुसलमानों की सफलता का कारण यह था कि वे सम्पूर्ण युद्ध का तरीका बेरहमी के साथ अपनाते थे। हिन्दुओं में जब कोई राजा किसी दूसरे राज्य पर हमला करता था तब वह साधारण प्रजा को क्षति नहीं पहुँचाता था। दोनों तरफ की सेनाएँ खुले मैदान में आमने-सामने होकर लड़ती थीं और वहीं फैसला हो जाता था।

मुस्लिम सेनाएँ जिधर भी जाती थीं, शत्रु के गढ़ तक पहुँचते-पहुँचते वे तमाम घर जला डालतीं, सभी मंदिरों पर कब्जा करके उन्हें मस्जिद बना देतीं, पूरी बस्तियों को गुलाम बना देतीं और लोगों को विवश करतीं कि वे सेना के छोटे-मोटे काम पूरे करें तथा उन्हें रास्ता दिखाएँ एवं उनके लिए रसद का प्रबन्ध करें। मुस्लिम सैनिक बड़े पैमाने पर कत्ल करते, हजारों का धर्मपरिवर्तन करते और नया मुसलमान होने के नाते उन्हें अपने पुराने साथियों के विरोध में लड़ने को विवश करते। भर्ती के ऐसे जबरदस्त तथा बर्बर तरीकों से मुस्लिम आक्रमणकारियों की संख्या बढ़ती चली गई जबकि हिन्दू सैनिकों को रसद पहुँचाने वाला भी कोई न रहा। किले के अन्दर या शहर की दीवारों के पीछे जो हिन्दू सैनिक रहते थे, वे देखते थे कि बाहर के सम्पूर्ण इलाके में उनके अपने सगे-सम्बन्धियों को मुसलमान बना लिया गया, उनके घर-बार को आग लगा दी गई, सम्पत्ति लूट ली गई एवं उनकी महिलाओं और बच्चों का अपहरण कर लिया गया और उनके मंदिरों को मस्जिदों में बदल दिया गया। इसलिए जब तक किन्हीं सैनिकों को युद्ध के लिए बुलाया जाता तब तक लड़ने के लिए कुछ भी नहीं रह जाता था। इतना सब उत्पात होते देखकर भी यदि उसमें लड़ने का कोई हौसला बाकी रह जाता था तो उसे रसद पहुँचाने को कोई व्यक्ति न मिलता। इस तरह भूख से व्याकुल होकर उसे लड़ने-मरने पर विवश होना पड़ता। इधर मुसलमानों को जिस तरह सैनिक सेवा के लिए विवश किया जाता था, उससे शत्रु की सेना में सैनिकों की संख्या बहुत बढ़ जाती थी। इन बर्बर तरीकों से काम लेकर मुस्लिम आक्रमणकारियों ने हिन्दू धर्म पर प्रहार किए। भारतीय इतिहास के जो छात्र इस बात पर ध्यान नहीं देते वे कई बार सोचा करते हैं कि क्या कारण थे कि शक्तिशाली हिन्दू शासक और उनकी सभी सद्‌निष्ठ सेनाएँ विदेशी मुस्लिम शासकों की अनुशासनहीन सेनाओं के सामने झुक गईं। सम्पूर्ण युद्ध के जो तरीके इन आक्रान्ताओं ने अपनाये, उन्हें अपनाकर कोई भी आक्रमणकारी अपने शत्रु को परास्त कर सकता था। यदि हिन्दू भी इनके मुकाबले सम्पूर्ण युद्ध के वैसे ही तरीके अपनाते, नये मुसलमानों को वापस हिन्दू धर्म में स्वीकार कर लेते, मुसलमानों का धर्मपरिवर्तन करके हिन्दू बना लेते, बड़े पैमाने पर मार-काट करते, उनकी सम्पूर्ण धन-सम्पत्ति को जला देते तो कोई

कारण नहीं था कि वे मुस्लिम आक्रमणों को रोक न पाते। परन्तु हिन्दुओं ने न तो अपने प्रतिपक्षी से कभी कुछ सीखा और न अपनी पुरानी आदतों को छोड़ा। विदेशी आक्रमणकारियों का अपने धर्म में लाना तो दूर रहा, उन्होंने उन लोगों को भी अपने धर्म में वापस लेना स्वीकार नहीं किया जिन्हें जबरदस्ती मुस्लिम बना लिया गया था। इससे नये मुसलमानों में कटुता बढ़ी और वे अपने पुराने धर्मावलम्बियों से बदला लेने की कस्में खाने लगे। इन सब कारणों से मुसलमान हिन्दुस्तान पर कब्जा कर सके। इतने पर भी हिन्दुओं को इस बात का श्रेय देना होगा कि उन्होंने १००० वर्ष तक मुसलमानों के एक के बाद एक हमलों का मुकाबला किया। इतिहास में उनकी इस दिलेरी का मुकाबला नहीं है। अफ्रीका, इंडोनेशिया तक जिन-जिन देशों पर मुसलमानों ने आक्रमण किये, वहाँ उन्होंने उन देशों को सम्पूर्ण आत्म-समर्पण करने पर विवश किया जबकि एक हजार वर्ष तक प्रहार सहन करने के बाद भी हिन्दू धर्म राजपूत, मराठा और सिक्ख सेनाओं के रूप में जीवित रहा।

इतिहास से हमें यह शिक्षा मिलती है कि युद्ध के समय जो पक्ष प्रतिशोध की भावना से काम नहीं करता वह दासता में पड़ने से बच नहीं सकता।

: १२ :

कर-निर्धारण

ऐसा सोचना गलत होगा कि अकबर के समय में कर लगाने की कोई निश्चित पद्धति थी या किन्हीं खास अवसरों पर कोई खास टैक्स लगाये गये थे। यह बात भारत में मुस्लिम शासन की १००० वर्ष की सम्पूर्ण अवधि पर लागू होती है। इस काल में यदि टैक्सों जैसी कोई चीज़ थी तो वह उन बहुत-सी अतिरिक्त और निरंकुश धन वसूलियों में छिपकर रह गई थी जो सरकारी अधिकारियों और उनके नाम पर काम करने वाले लोगों ने धमकियाँ देकर लोगों से मनमाने ढंग से वसूल की। साधारण करों की राशि भी बहुधा सम्बन्धित अधिकारी की मर्ज़ी पर बढ़ा दी जाती थी। कभी-कभी ऐसा होता था कि मुसलमान लोग पक्षपाती अफसरों को रिश्वत देकर या उनकी मुस्लिम धर्म-भावना को अपील करके इन टैक्सों से पूरी तरह या अंशतः माफ़ी पा लेते थे, परन्तु कर-निर्धारण में यह कमी हिन्दुओं से और अधिक धन वसूल करके पूरी कर ली जाती थी। कभी-कभी कोई चालाक हिन्दू भी टैक्स वसूल करने वाले अधिकारियों को खुश करके टैक्सों की वसूली से पूरी तरह या अंशतः बच जाता था परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत दुर्लभ हैं और कभी-कभी सम्बन्धित हिन्दू को अपनी सम्पत्ति और प्रतिष्ठा की काफी हानि सहन करनी पड़ती थी क्योंकि कभी-कभी रिश्वत के रूप में उसे अभागी महिलायें उनके हरम के लिए भेजनी पड़ती थीं।

जब सेनाएँ मार्च करती थीं तब उनके द्वारा बलात् वसूल किये जाने वाले धन की कोई सीमा नहीं रहती थी। इन बलात् वसूलियों को कराधान का नाम दिया गया होगा परन्तु वास्तव में वे बड़े पैमाने पर लूट से किसी तरह कम नहीं थी। इस बात का भी प्रमाण है कि जब कभी अकबर आगरा के लालकिले की (जिसके बारे में यह मिथ्या धारणा प्रचलित है कि उसका निर्माण अकबर ने कराया था) अथवा आगरा की चारदीवारी की

अथवा फतेहपुर सीकरी की प्राचीन हिन्दू नगरी (इसका निर्माण भी अकबर ने नहीं कराया था) की मरम्मत कराना चाहता था तब प्रजा पर अतिरिक्त कर लगा दिये जाते थे। इस तरह गरीब प्रजा को एक ऐसे शासन का पोषण करना पड़ रहा था जिसमें उनकी महिलाओं का अपहरण होता, उन्हें दासों के रूप में बेचा जाता, उनके मन्दिरों पर कब्ज़ा किया जाता तथा दिन-रात उनकी सम्पत्ति को लूटा जाता था। बलात् वसूल किये जाने वाले धन की राशि किसी भी तरह मरम्मत के खर्च के अनुमान के अनुरूप नहीं होती थी। यह राशि हमेशा मरम्मत के अनुमान से कहीं अधिक होती थी और इसमें धन के गबन के लिए भी बहुत खुली गुंजाइश रख ली जाती थी।

अकबर की कराधान पद्धति का अध्ययन करते हुए इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रख लेना चाहिए। सबसे पहला और सर्वाधिक घृणित टैक्स जिज़िया था। मुसलमानों ने आठवीं शताब्दी में भारत की धरती पर कदम रखा था, उसी दिन से वे अपने कब्जे के इलाके में रहने वाले हिन्दुओं से यह भारी टैक्स वसूल करते आ रहे थे। यह टैक्स बहुत क्रूरता के साथ वसूल किया जाता था। यह टैक्स इस सिद्धान्त पर आधारित था कि क्योंकि बादशाह मुस्लिम है इसलिए उसका राज्य भी मुस्लिम है। राज्य में गैर-मुस्लिमों को रहने की इजाज़त तभी दी जाती थी जब वे जिज़िया के रूप में भारी टैक्स बादशाह के खर्च के लिए देने को सहमत हो जाते थे। यह टैक्स बहुत अत्याचारपूर्ण था क्योंकि यह एक विचित्र सिद्धान्त पर आधारित था। गैर-मुस्लिम लोग यह टैक्स उस 'रक्षा' के लिए देते थे जो मुस्लिम बादशाह उन्हें 'उदारता-पूर्वक' प्रदान करता था, वरना वह उन सबका क़त्ल कर देने के अपने धार्मिक अधिकार का उपयोग कर सकता था। परन्तु वास्तव में 'रक्षा' एक तरह से धोखा था। हिन्दुओं को निरन्तर अपमान, बलात् धन वसूली, कत्ल, उत्पीड़न, महिलाओं के अपहरण और घर-बार को जलाये जाने तथा बड़े पैमाने पर लूटपाट का सामना करना पड़ता था। उन्हें इस बात के लिए टैक्स देने को विवश होना पड़ता था कि वे कुचले जाने के समय तक जीवित बने रहें।

इस घृणित टैक्स के बारे में अकबर के काल के दोनों इतिहासकारों—बदायूँनी और अबुल फ़ज़ल ने लिखा है कि हिन्दुओं के प्रति अधिक सहिष्णु

होने के नाते अकबर ने इस टैक्स को समाप्त कर दिया था परन्तु यूरोप के लेखकों तथा दूसरे प्रमाणों से यह संकेत मिलता है कि अकबर जिज़िया की वसूली पारम्परिक सख्ती के साथ करता रहा।

हम पहले देख चुके हैं कि रणथम्भोर में बूंदी नरेश राय सुरजन को विशेष रियायत के रूप में जिज़िया से मुक्ति माँगने की आवश्यकता पड़ी। यदि जिज़िया समाप्त हो गया होता तो इसका उल्लेख करने की आवश्यकता न होती।

डॉ० श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक में अकबर के दरबार में जैन साधु हरिविजय सूरी के निवास के समय (४ जून, १५८३ से लेकर दो वर्ष तक) का वर्णन करते हुए पृष्ठ २६५ पर लिखा है कि "अकबर ने आदेश जारी करके गुजरात और काठियावाड़ में हिन्दू और जैन दोनों पर से जिज़िया हटा दिये जाने की पुष्टि की।······१५८७ में जब (एक और जैन साधु) शान्ति (अकबर के दरबार में) आया तब एक बार फिर अकबर ने उसे एक फरमान दिया जिसमें इस बात की एक बार फिर पुष्टि की गई थी कि जिज़िया हटा दिया गया है और पशु-वध पर पाबन्दी लगा दी गई है।"

ऊपर के अनुच्छेद का सूक्ष्मता से अध्ययन करने की आवश्यकता है। "आदेश जारी करके जिज़िया को समाप्त किये जाने की पुष्टि की" शब्दों का स्पष्ट अर्थ यह है कि यदि इससे पूर्व इस बारे में कोई आदेश जारी किये गये थे तो उनपर अमल नहीं हुआ और जिज़िया की वसूली जारी रही। यदि कोई आदेश वास्तव में जारी किया गया होता तो अकबर ऐसा व्यक्ति था कि वह उसपर अमल कराकर ही चैन लेता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अकबर ने ऐसा आदेश कभी नहीं किया कि जिज़िया बन्द कर दिया जाये। मुसलमानों के इतिहास-वृत्तों में इस विषय में जो बातें कही गई हैं उन्हें निरर्थक चापलूसी कहना होगा जो हिन्दुओं के प्रति अकबर की कल्पित उदारता का बखान करने के लिए की गई हैं। यदि अकबर ने वास्तव में वैसा फरमान जारी किया होता तो हरिविजय सूरी के लिए 'पुष्टि' का आदेश देने की आवश्यकता न पड़ती और जब कल्पित मूल आदेश का पालन नहीं हुआ तब यह समझा जा सकता है कि 'पुष्टि-कारी' आदेश देने के बाद भी जिज़िया की वसूली जारी रही होगी। फिर

दूसरे जैन साधु शान्तिविजय जब हरिविजय के चले जाने के दो वर्ष बाद १५८७ में अकबर के दरबार में गया तब उसे एक बार फिर एक और शाही आदेश पकड़ा दिया गया जिसमें "पुनः इस बात की पुष्टि की गई थी कि जिज़िया कर समाप्त कर दिया गया और पशु-वध पर पाबन्दी लगा दी गई।"

ऊपर के आदेशों का खोखलापन एकदम स्पष्ट हो जाना चाहिए। यदि अकबर ने ऐसे कोई आदेश जारी किये भी थे तो उनका यह आशय नहीं था कि उनपर अमल किया जाए। यह आदेश केवल एक दरबारी औपचारिकता के रूप में थे जिनका उद्देश्य यह था कि सीधे-सादे लोगों में विश्वास जमाया जाये और जो भी दर्शक दरबार से जाये वह बादशाह की 'उदारता' से प्रभावित होकर जाये और जब वह वापस अपने प्रान्त में पहुँच जाए तो अकबर के शासनतन्त्र में कोई भी व्यक्ति उसके आदेश पर गम्भीरता से अमल करने को तैयार न हो। जिज़िया वसूल करने वाले अधिकारियों पर इसका कोई भी प्रभाव नहीं होता था।

न्यायमूर्ति शैलट ने अपनी पुस्तक 'अकबर' में पृष्ठ १८३-८९ पर लिखा है कि "सिद्धान्त रूप से इस्लामी न्यायशास्त्र में गैर-मुस्लिम लोगों को राज्य का नागरिक नहीं माना जाता। इसलिए मुस्लिम न्याय-शास्त्री ऐसे प्रजा-जन को राज्य में रहने की इजाजत देने के लिए उनपर अनर्हतायें तथा जुर्माना करके उन्हें सापेक्ष दर्जा प्रदान करते हैं।······भारत में यह समस्या इस कारण से अधिक प्रबल हो गई थी कि देश में गैर-मुस्लिम प्रजा की संख्या बहुत अधिक थी। इतनी विशाल संख्या में प्रजाजन को पूर्ण रूप से नष्ट करना असम्भव था, इसलिए अपनी आत्मा को तसल्ली देने के लिए शासक वर्ग ने उनपर कई तरह के प्रतिबन्ध तथा अनर्हतायें लागू कीं।··· धर्म की निन्दा के सम्बन्ध में ऐसे कानून बनाये गये जिनके कारण गैर-मुस्लिम लोग मुल्लाओं की सनक पर निर्भर हो गये। मुल्ला लोग धर्म-निन्दा सम्बन्धी क़ानूनों को किस तरह लागू करते थे, इसका उदाहरण कैथन के ब्राह्मण बोधन के मामले से मिलता है। सिकन्दर लोदी के शासन काल में उसका सिर धड़ से सिर्फ़ इसलिए अलग कर दिया गया था कि उसने यह दावा किया था कि हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों धर्म सत्य हैं।······ जिज़िया बहुत भारी टैक्स था। इसके बाद तीर्थयात्री कर का स्थान है।

गाँव के मेलों तक पर भी यह टैक्स लगाया जाता था। इसलिए ऐसा लगता है कि यह टैक्स प्राय: सभी जगह पर लागू था। इन टैक्सों की अदायगी का उद्देश्य यह था कि गैर-मुस्लिम लोगों को अपने धर्म पर चलने की स्वाधीनता हो, परन्तु वास्तव में यह स्वाधीनता केवल घर के अन्दर पूजा तक सीमित रह गई थी।......हिन्दुओं को नये मन्दिर बनाने या पुराने मन्दिरों की मरम्मत कराने की अनुमति नहीं थी।......

जब कभी किसी नये इलाके को विजित किया जाता था तब हर बार मन्दिरों को नष्ट करने का एक क्रम चलता था। उदाहरण के लिए फिरोज़शाह तुगलक ने जगन्नाथपुरी के मन्दिर को नष्ट किया। शान्ति के समय में भी सिकन्दर लोदी जैसे शासक की जब धर्म-भावना ज़ोर मारती थी तब वह अपनी धर्मान्धता की तसल्ली के लिए मन्दिरों को अपवित्र करता था तथा उन्हें नष्ट करता था।......

बाबर ने स्टाम्प शुल्क को केवल हिन्दुओं तक सीमित रखा। उसके एक सरदार बेग ने सम्भल में एक हिन्दू मन्दिर को बदलकर वहाँ मस्जिद बनाई। उसके सैयद शेख ज़ई ने चदेरी में कई मन्दिरों को अपवित्र कराया। १५२८-२९ में मीर बागी के आदेश से अयोध्या के एक प्रसिद्ध मन्दिर को नष्ट किया और वहाँ एक मस्जिद बनवाई।" ('मुगल शासकों की धार्मिक नीतियाँ', लेखक श्रीराम शर्मा, पृष्ठ ९)।

शेरशाह ने जोधपुर के मालवदेव पर जो हमला किया, उसका कारण आंशिक रूप से यह इच्छा थी कि वहाँ के मन्दिरों को बदलकर मस्जिदें बनवा दी जायें। जोधपुर में शेरशाह ने जिन मन्दिरों को बदलकर मस्जिदें बनवाईं उनमें से एक शेरशाही मस्जिद के नाम से आज भी मौजूद है। पूरनमल के साथ उसने जो धोखेबाज़ी की उसका कारण यह बताया गया कि वह एक नास्तिक व्यक्ति को नष्ट करना चाहता था।......उसके उत्तराधिकारी शाह ने राज्य में मुल्लाओं का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर दिया।......(अकबर के) मुस्लिम सेनापति बाजिद ने बनारस के एक प्राचीन हिन्दू मन्दिर को मस्जिद में बदलवा दिया।

स्मिथ ने भी अपनी पुस्तक में पृष्ठ १२०-२१ पर एक पाद-टिप्पणी में जिज़िया की समाप्ति के ढकोसले का उल्लेख इन शब्दों में किया है—"सूरी और उसके शिष्यों के कहने पर जिज़िया और तीर्थयात्रा कर को

समाप्त करने का जो उल्लेख किया गया है, उससे यह सिद्ध होता है कि उसके शासनकाल में इन टैक्सों को समाप्त करने के बारे में जो सामान्य आदेश जारी किये गये थे, उनपर कभी पूरी तरह अमल नहीं किया गया था।"

स्मिथ ने जो कुछ कहा है, उसे हम अधिक स्पष्ट करना चाहेंगे। अकबर और उसके अफ़सरों के बीच यह तय हो गया था कि इन तथाकथित आदेशों पर अमल नहीं होगा और ये आदेश सिर्फ दिखावे के लिए जारी किये गये थे। दूसरे, स्मिथ का यह कहना गलत है कि "इन आदेशों पर भी पूरी तरह अमल नहीं किया गया।" इन आदेशों पर किसी भी समय अमल नहीं किया गया।

अन्य टैक्सों के बारे में स्मिथ ने पृष्ठ १३५-३६ पर लिखा है कि— "अबुल फ़ज़ल का विवरण कुछ अस्पष्ट है, क्योंकि वे शायद यह कहना चाहते हैं कि 'दस वर्ष की उपज का दसवाँ भाग वार्षिक कर योग्य आय के रूप में निर्धारित किया गया' और साथ ही यह भी कहा है कि जिस अवधि का उल्लेख ऊपर किया गया है, उसके अन्तिम पाँच वर्षों में प्रत्येक वर्ष की उत्कृष्ट फ़सलों को देखा जाता था और सबसे अच्छी फ़सल वाले वर्ष को स्वीकार कर लिया जाता था। यदि सबसे अच्छे वर्ष को मानक के रूप में स्वीकार किया जाता था, तो कर-निर्धारण वास्तव में बहुत उग्र रहा होगा।" इसलिए पाठक को मुस्लिम इतिहास-वृत्तों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। उन्होंने जो वर्णन किये हैं वे केवल बादशाह की चापलूसी के लिए किये हैं और उनपर विश्वास करने से पूर्व उनकी बहुत निकट से जाँच करनी होगी। सामान्यतः उनके अपने वक्तव्यों में परस्पर विरोधी अस्पष्टता और असंगतियाँ मौजूद हैं जिनमें उनके अपने दावे झूठे पड़ जाते हैं।

न्यायमूर्ति शैलाट ने अपनी पुस्तक में पृष्ठ ३१५-१७ पर लिखा है कि "ऊपरी स्तर पर प्रशासन का ढाँचा तुर्की फारस ढंग का था।" (इससे पता चलता है कि वह कितना विदेशी था।) किसान सामान्यतः कलक्टर के प्रति उदासीन थे कि उन्हें सरकार से कोई लाभ प्राप्त नहीं होता था। पुलिस का काम भी ग्रामीणों को स्वयं करना पड़ता था। उनका यह विचार भी था कि कर-निर्धारण की बटाई-पद्धति उनके लिए अधिक लाभकारी

थी क्योंकि इस पद्धति के अन्तर्गत वे अपेक्षित उपज का नहीं बल्कि वास्तविक उपज का एक भाग टैक्स के रूप में दे सकते थे। स्थानीय राजस्व अधिकारी पूर्ण रूप से लालची और भ्रष्ट थे। किसानों से सभी तरह के अनधिकृत टैक्स वसूल करते थे। उनके भ्रष्टाचार के मूल में एक घृणित प्रथा थी जिसके अन्तर्गत बादशाह से लेकर नीचे तक सभी अधिकारी अपने अधीनस्थ अफसरों से रिश्वत लेते थे और उन्हें रिश्वत दी जाती थी।……घूसखोरी बड़े पैमाने पर प्रचलित थी।"

डॉ० श्रीवास्तव लिखते हैं (पृ०३५४-५७) कि "१५८७ के आरम्भ में अकबर ने एक अध्यादेश जारी किया जिसके अनुसार जो भी व्यक्ति उसके दरबार में पेश किया जाता उसे अपनी परिस्थितियों के अनुसार अपनी आयु के हर वर्ष के बदले एक दाम अथवा रुपया या मोहर (सोने की) अकबर को भेंट करनी पड़ती थी।" यह एक और अत्याचारपूर्ण टैक्स था। इसके कारण किसी भी व्यक्ति को अत्याचार या उत्पीड़न की शिकायत लेकर अकबर के दरबार में उपस्थित होने की हिम्मत न होती थी क्योंकि अकबर के सामने पेश होने के लिए उसे एक और टैक्स देने को विवश होना पड़ता था। यह भेंट हो जाने पर भी प्रार्थी अधिक-से-अधिक इतनी ही आशा कर सकता था कि यदि अकबर प्रसन्न मुद्रा में हुआ तो उसे एक फरमान मिल जाएगा जिसमें विमुक्ति प्रदान की गई होगी परन्तु जिस पर कोई अधिकारी गम्भीरता से ध्यान नहीं देगा। इसलिए जब डॉ० श्रीवास्तव अबुल फ़ज़ल का हवाला देते हुए कहते हैं कि यह पैसा कुएं, तालाब, सराय, बाग और जन-हित के दूसरे कामों पर खर्च किया जाता था। हमें यह आश्चर्य होता है कि किस तरह उन जैसे लेखक ऐसी बातों पर विश्वास कर लेते हैं जो ऐतिहासिक तथ्य न होकर कल्पना मात्र हैं।

बदायूंनी के विवरण में पृष्ठ ८५ पर लिखा है कि "सुस्थापित प्रथा के अनुसार वर्ष में दो बार चांद्र पंचांग तथा सौर पंचांग के अनुसार अपने जन्म दिन पर अकबर को सोने-चाँदी और दूसरी कीमती चीज़ों से तोला जाता था और यह सब बाद में ब्राह्मणों तथा दूसरे लोगों को दान दिया जाता था।" यह इस बात का एक उदाहरण है कि किस तरह मुस्लिम इतिहासकार अपने आश्रयदाताओं के क्रूर शासनकाल का वर्णन करते हुए प्रबुद्ध हिन्दू शासनकाल की झलक पैदा कर देते थे। यह प्रथा हिन्दू राजाओं में

थी कि वे अपने वज़न के बराबर कीमती धातुएँ और दूसरी वस्तुएँ ब्राह्मणों और निर्धन लोगों को दान में देते थे। जो मुस्लिम बादशाह हिन्दुओं को जीवित रहने की इजाज़त देने के बदले उनसे जिज़िया वसूल करता था उससे कैसे यह आशा की जा सकती है कि वह उन्हें दान-दक्षिणा देने का पाप करेगा। इस प्रथा से एक बात यही स्पष्ट होती है कि यह धन वसूली का एक और तरीका था। हिन्दुओं को कुछ देने की बजाय अकबर उनसे यह आशा करता था कि कम-से-कम वर्ष में दो बार वे उसके अपने वज़न के बराबर ख़ज़ाना उसे भेंट करें। यह धन बाद में सरकारी ख़ज़ाने में चला जाता था। बदायूंनी के अस्पष्ट विवरण का एक और निष्कर्ष यह हो सकता है कि कम-से-कम वर्ष में दो बार अकबर अपना वज़न पहले सोने से फिर चाँदी से और फिर कीमती चीज़ों (हीरे आदि) से करवाता था। इससे यह समझा जा सकता है कि इस तरीके से वर्ष में कम-से-कम वह कितना धन कमा लेता था।

पृष्ठ ७४ पर बदायूँनी लिखता है, "९७२ हिज़री में आगरा का किला बनाने का विचार किया गया। तब यह किला ईंटों से बना था। बादशाह ने उसकी जगह पत्थर लगवाया और हुक्म दिया कि जिले में हर जरीब भूमि के पीछे तीन सेर अनाज कर के रूप में वसूल किया जाए।" स्पष्ट है कि सामान्य धन वसूली के अतिरिक्त ऐसे कामों के लिए अकबर विशेष टैक्स लगाया करता था। ऐसे बादशाह से किस तरह आशा की जा सकती है कि वह जन-हित पर पैसा खर्च करेगा। इस वक्तव्य से एक बात और स्पष्ट होती है कि आगरा के किले का निर्माण अकबर ने कराया था। बदायूँनी ने स्पष्ट लिखा है कि अकबर ने केवल इतना ही किया कि आगरा के किले तथा नगर के आस-पास की दीवार पर पत्थर की चिनवाई करवा दी। यह काम भी यदि हुआ हो तो उसकी कीमत जनता को देनी पड़ी। वैसे हमारे विचार में पत्थर लगवाने का दावा भी गलत है। अकबर ने किले और नगर में छोटी-मोटी मरम्मत कराने का बहाना लेकर जनता से एक और अत्याचारपूर्ण टैक्स वसूल किया।

बदायूँनी ने अपने विवरण में पृ० २१३ पर स्पष्ट रूप से लिखा है कि "इस समय (९८३ हिजरी) शेख अब्दुल नबी और मक़दम-उल-मुल्क को हुक्म दिया गया कि वे विचार करके तय करें कि हिन्दुओं पर कितना टैक्स

लगाया जाए, और तदनुसार सभी तरफ़ फ़रमान जारी कर दिए गये।" इससे यह दावा झूठा पड़ जाता है कि अकबर हिन्दुओं के प्रति कोई भेदभाव नहीं करता था।

इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि कोई विभेदात्मक टैक्स समाप्त करने की बजाय अकबर ने "सभी तरफ" आदेश जारी किए कि जो टैक्स केवल हिन्दुओं से वसूल किए जाते हैं उनके मामले में पूरी तरह सख़्ती से काम लिया जाये।

उसी पुस्तक में पृष्ठ ४०५ पर लिखा है कि "प्रजा के किसी व्यक्ति की शादी होने से पहले उन्हें पुलिस के मुख्य अधिकारी से भेंट करनी होती थी, उसके एजेण्ट लड़के तथा लड़की को देखते थे और दोनों की सही आयु की पड़ताल की जाती थी। इस तरह पुलिस अधिकारियों और दूसरे लोगों को काफ़ी पैसा लाभ के रूप में प्राप्त होने की गुंजाइश हो गई।"

यह विवाह पर टैक्स था। धन की दृष्टि से यह टैक्स जनता पर एक बड़ा भार था ही, अकबर जिस ढंग से इसकी वसूली करता था, उससे उसकी हिन्दू प्रजा को असीम अनादर, अपमान और अनैतिकता का सामना करना पड़ता था। विवाह में लड़की की आयु निर्धारित करने के लिए उसकी जाँच करने का अर्थ यह हो सकता था कि भ्रष्ट और घिनौनी वृत्ति के अधिकारी उन्हें नंगा करके उनकी जाँच करें। इससे सुन्दर लड़के और लड़कियों को अनैतिक कार्यों के लिए अपहरण किये जाने की गुंजाइश हो सकती थी। भ्रष्टाचारी अधिकारियों से विवाह के लिए अनुमति प्राप्त करने का मतलब यह हो सकता था कि उन्हें वेश्या-वृत्ति के लिए औरतें तथा धन आदि भेंट किया जाए।

अकबर की कराधान नीति की समीक्षा से स्पष्ट है कि उसमें कई तरीकों से प्रजाजन से बलात् धन वसूली की गुंजाइश थी। इन टैक्सों में किलों की मरम्मत कराने का टैक्स, जिज़िया, यात्रा-कर, दरबार में हाज़री का टैक्स, बादशाह को तोलने का टैक्स, विवाह-टैक्स, मृतक की सारी सम्पत्ति को ज़ब्त करना, सैनिक अभियान टैक्स और खुली लूट शामिल हैं। इनसे अकबर की महानता प्रकट नहीं होती, बल्कि इनसे इस बात की पुष्टि होती है कि अकबर विश्व-इतिहास में सर्वाधिक अत्याचारी बादशाह था।

: १३ :

धन-लिप्सा

अपनी विस्तीर्ण सल्तनत, स्वेच्छाचारितापूर्ण कर-वसूली, शोषण तथा लूट-खसोट के बावजूद भी अकबर की धन-लिप्सा इतनी तीव्र थी कि उसने धन एकत्रित करने के लिए अन्य अनेक जघन्य एवं घृणित तरीके अपनाये थे।

युद्ध अथवा हमले के बाद जिन व्यक्तियों को बन्दी बनाया जाता था, उन्हें दासों के रूप में बेचकर अकबर धनार्जन किया करता था। बदायूँनी ने ६८६ हिजरी के आस-पास की घटना का उल्लेख दरबारी इतिहास के पृष्ठ ३०८ पर इस प्रकार किया है—

"बादशाह ने शेखों के एक सम्प्रदाय को, जो अपने-आपको एक विशिष्ट मतावलम्बी मानते थे, बन्दी बनाया। बादशाह ने उनसे पूछा कि क्या वे अपने दम्भ के लिए पश्चात्ताप करने को तैयार हैं? उसके आदेश पर उन्हें भक्कर तथा कान्धार भेज दिया गया, जहाँ तुर्की टट्टुओं के बदले उन्हें व्यापारियों को दे दिया गया।"

जिन लोगों की मृत्यु हो जाया करती थी, अकबर उनकी धन-सम्पत्ति भी हड़प लिया करता था। बदायूँनी ने इस तथ्य के भी स्पष्ट संकेत दिए हैं। उसने उल्लेख किया है—"अहमदाबाद में मक़दम-उल-मुल्क की मृत्यु हुई। ६६० हिजरी में काज़ी अली को फतेहपुर से यह पता लगाने के लिए भेजा गया कि मृतक ने कितनी सम्पत्ति छोड़ी है? सोने की ईंटों से भरी कुछ पेटियाँ उसकी कब्र से प्राप्त की गईं, जिन्हें उसने अपने शव के साथ दफ़ना देने को कहा था। संसार के सामने जो पुष्कल धन-राशि आई, वह इतनी अधिक थी कि उसका मूल्यांकन 'असम्भव' था। सोने की ईंटों को शाही खजाने में जमा करा दिया गया। कुछ समय व्यतीत होने के बाद उसके बेटों को इतना कष्ट भोगना पड़ा कि अन्ततः वे निर्धनता की दयनीय स्थिति में पहुँच गये।" (वही, पृष्ठ ३२१)

अकबर ने "एक हुक्मनामा जारी किया कि उसको प्रजा के सभी वर्गों का प्रत्येक व्यक्ति उसके लिए नज़राना लाए।" (वही, पृ० २३२-३३)।

"हिज़री सन् ९९९ में शेख इब्राहिम चिश्ती (शेख सलीम चिश्ती का भाई) की मृत्यु हुई। हाथियों, घोड़ों एवं अन्य चल-सम्पत्ति के साथ २५ करोड़ की धन-राशि शाही खज़ाने में जमा की गई। शेष उनके विरोधियों, जो उसके बेटे तथा कारिन्दे ही थे, की सम्पत्ति हो गई। चूंकि वह अपनी लोलुपता तथा नीचता के लिए कुख्यात था, उसे 'स्वभाव से ही नीच और दुष्ट शेख' कहकर अभिशप्त किया गया।" (वही, पृ० ३८७)।

शाहबाज़ खाँ कम्बू ने तीन वर्ष कैद में रहने के पश्चात् अपनी मुक्ति के लिए सात लाख की राशि दी थी। मुक्त करके उसे मालवा के मामलों को निबटाने तथा मिर्ज़ा शाह रुख को सलाह देने के लिए नियुक्त किया गया। (वही, पृ० ४०१)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक कैदी रातों-रात राज्यपाल बना दिया गया। अकबर यह अच्छी तरह जानता था कि इस प्रकार के राज्यपाल जिस भी प्रान्त में नियुक्त किये जाएँगे, लूट-खसोट की अपरिमित धन-राशि भेजेंगे। वह यह सावधानी बरतता था कि अग्रिम रूप में उनसे अत्यधिक धन-राशि वसूल कर लेता था। इसके अतिरिक्त अकबर को यह आशा भी रहती थी कि ऐसे राज्यपाल उसे बहुमूल्य नज़राने तथा वार्षिक उपहार भी पेश करेंगे।

अकबर की धन-लिप्सा इतनी तीव्र थी कि उसने अपनी माता की सम्पत्ति को भी जब्त करने में शर्म महसूस नहीं की। विंसेंट स्मिथ ने (अकबर : दी ग्रेट मुगल, पृष्ठ २२८-२३०) उल्लेख किया है कि "अकबर की माता, जो उससे केवल पन्द्रह वर्ष बड़ी थी, २९ अगस्त, १६०४ को अथवा इसी समय के आस-पास मृत्यु को प्राप्त हुई। उसका शव दिल्ली पहुँचाया गया तथा उसके पति हुमायूँ, जिससे वह अड़तालीस वर्ष अधिक जीवित रही, की कब्र के पास दफना दिया गया। (इस तथ्योल्लेख से उस झूठी विचारधारा का रहस्योद्घाटन होता है कि अकबर तथा अन्य मुस्लिम बादशाहों ने सुन्दर राजमहलों तथा भव्य मकबरों का निर्माण करवाया। प्रायः सभी मुसलमान बादशाहों की मृत्यु अपहृत प्रासादों एवं मन्दिरों में हुई एवं उन्हें वहीं दफ़नाया गया।) मृतक ने अपने पीछे अपने निवास-

स्थान में एक बृहद् खज़ाना छोड़ा था। उसकी अन्तिम इच्छा यह थी कि उक्त खज़ाना उसके पुरुष-उत्तराधिकारियों में वितरित हो। अकबर बड़ा धन-लोलुप था। उसकी सम्पत्ति को अपने खज़ाने में जमा करने का लोभ वह संवरण नहीं कर पाया। मृतक की अन्तिम इच्छा की ओर ध्यान न देते हुए उसने उसकी सारी सम्पत्ति हड़प ली।"

मनसर्रेट का कथन है—"धन-सम्पत्ति के सम्बन्ध में वह बड़ा कंजूस और तुच्छ वृत्ति का था।"

यद्यपि अकबर के अधिकार में अनन्त खजाना था एवं सम्पत्ति एकत्र करने की शक्ति भी थी, तथापि "अकबर एक व्यापारी था तथा व्यावसायिक लाभ को प्राप्त करने की लोलुपता का वह संवरण नहीं कर पाता था।"

कुलीनों की उस सम्पत्ति पर वह भारी कर वसूल किया करता था, जो कि मृत्यु के बाद वैधानिक रूप से परम्परा के अनुसार उनके उत्तराधिकारियों को प्राप्त होती थी। इसके अतिरिक्त विजित राजाओं एवं सरदारों के खज़ाने अपहृत कर लिये जाते थे। कर की भारी वसूलियाँ की जाती थीं, सल्तनत के प्रत्येक हिस्से में नये विजित प्रदेशों के निवासियों से नज़राने लिये जाते थे। इन नज़रानों एवं वसूलियों का परिमाण इतना अधिक रहता था कि उससे प्रजा के कितने ही परिवार बरबाद हो जाते थे। वह स्वयं व्यापार भी करता था। इस प्रकार उसने अपरिमित मात्रा में धन संचित कर लिया था। लाभ के प्रत्येक माध्यम से वह शोषण किया करता था। अपनी सल्तनत में उसने धनिकों को अर्थ-विनिमय की अनुमति नहीं दी थी। (शाही खज़ानों से) किये गये बृहद् परिमाण में अर्थ-विनिमय के कार्य से बादशाह को सूद के रूप में पर्याप्त लाभ हुआ था। सरकारी अधिकारियों को उनके पद के अनुसार सोने, चाँदी अथवा ताँबे के सिक्कों में वेतन दिया जाता था। सिक्के बदलवाने पर भी बट्टा लिया जाता था। धन-वृद्धि के इस प्रकार के साधन नीचतापूर्ण समझे जा सकते हैं (किन्तु अकबर के लिए कोई कार्य नीचतापूर्ण नहीं था।) एक ऐसा कानून भी था कि कोई भी अपना घोड़ा बादशाह की अनुमति के बिना अथवा उसके 'एजेण्टों' के माध्यम के बिना नहीं बेच सकता था। जलालुद्दीन अकबर बड़ा कंजूस था तथा धन-संग्रह का उसे बड़ा शौक था। पूर्वदेशीय बादशाहों

में कम-से-कम दो सौ वर्षों में वह सबसे अधिक धनी बादशाह था। उसके पास धन बोरियों में भरा रहता था। इस धन को वह ऊँचे ढेरों में एकत्रित करता था। प्रत्येक बोरे में करीब चार हज़ार ताँबे के सिक्के होते थे। तृतीय मिशन के पादरियों ने उल्लेख किया है कि एक बार उन्होंने बादशाह को अनन्त संख्या में रखे सिक्कों को गिनते हुए देखा है। इन सिक्कों के मूल्य विभिन्न प्रकार के थे तथा बादशाह ने इन्हें टकसाल में भेजने का आदेश दिया था। बादशाह के पीछे १५० प्लेटों में सिक्के रखे थे। कई बोरे भी रखे हुए थे। प्रतिदिन अवकाश के समय सिक्के गिनने में अकबर बड़ा प्रसन्न होता था। सिक्के गिने जाने के बाद अकबर उन्हें बोरियों में बन्द करवाकर खज़ाने में रखवा देता था। उसके खज़ाने अपरिमित थे।" (कमेंट्री, पृ० २०७-२०९)।

समकालीन जेसुइट पादरी मनसरेंट के मतानुसार अकबर धन-लोलुपता के सम्बन्ध में राजा मिदास से भी अधिक बढ़ा-चढ़ा था। अँधेरे तहखानों में, जहाँ उसका खज़ाना रखा जाता था, बैठकर बार-बार सिक्के गिनने में उसे आनन्द आता था।

युद्ध में हजारों की संख्या में पकड़े गये बन्दियों को गुलामों की तरह बेचकर, ऋण देकर ब्याज से, जुआघर चलवाकर, प्रत्येक मृतक प्रजा की सम्पत्ति हड़पकर, दरबार में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से नज़राने की माँग द्वारा, साल में कम-से-कम दो बार अपने-आपको सोने-चाँदी की ईंटों, जवाहरात तथा रत्नों से तुलवाकर, विभिन्न यातनाएँ देकर एवं बर्बरता-पूर्वक मार-पीटकर जबरदस्ती कर आदि वसूल करके, लड़ाई के मैदान में घायल तथा मृत व्यक्तियों के शरीरों से बहुमूल्य वस्तुओं को लूटकर, विभिन्न प्रान्तों एवं नगरों में लूट-खसोट तथा डाकेज़नी द्वारा, समुन्नत एवं समृद्ध राज्यों को पददलित करके, भारी 'मुक्ति-धन' वसूल करके तथा कल्पनातीत अन्य क्रूर एवं अधम साधनों द्वारा अकबर ने अपार धन-सम्पत्ति अपने खजाने में एकत्रित की थी। ये क्रूर कर्म उसकी धन-लोलुपता के ही परिचायक हैं।

अपनी कृपण प्रकृति के कारण तथा दुष्टतापूर्ण शोषण द्वारा अकबर ने जो अपार खज़ाना जमा किया था, वह धन-सम्पत्ति के रूप में मानवता का खून था। "सन् १६०५ ई० में उसकी मृत्यु के समय आगरे के किले में जो खज़ाना पाया गया, उसमें दो करोड़ पौंड स्टर्लिंग धन-राशि थी। सन् १६०० में यह राशि डेढ़ करोड़ से कम नहीं थी।" (अकबर: दी ग्रेट मुगल, पृ० २१९)।

: १४ :

व्यक्तित्व और स्वभाव

अकबर देखने में बदसूरत और भद्दा था। उस समय के इतिहासकारों के अनुसार वह स्वभाव से क्रूर, विश्वासघाती, अनपढ़ और अत्याचार में आनन्द अनुभव करने वाला व्यक्ति था।

मनसर्रेट की कमेंट्री पुस्तक में सम्पादक महोदय ने लिखा है : 'भारतीय शासकों की लम्बी सूची में अशोक और अकबर (भय व आतंक के कारण) के महान् व्यक्तित्व दूसरे सभी शासकों के ऊपर है। दोनों की तुलना लाभकारी हो सकती है। अकबर में विजय करने और गौरव पाने की लालसा थी, और सत्यनिष्ठा का अभाव था जबकि इसकी तुलना में अशोक की विशेषता थी, उसका पितृवत् शासन, सच्चा आत्म-नियन्त्रण और आत्मिक महत्त्वाकांक्षा। अकबर की सभी लड़ाइयों में तैमूर का सच्चा वंशज होने की झलक मिलती है और उनमें वे सभी वीभत्सताएँ शामिल हैं जो तैमूर में थीं।

"आधुनिक खोजों से यह पुरानी धारणा निर्मूल हो गई है कि अकबर दार्शनिक शासक के बारे में प्लेटो द्वारा की गई कल्पना के बहुत निकट बैठता था। महत्त्वाकांक्षा और चालाकी से भरा उसका चरित्र अब सही रूप में हमारे सामने है। उसकी तुलना ठीक ही तालाब की उस मछली से की गई है जो दूसरी कमजोर मछलियों को अपना भोजन बनाती है। वह इतना घुन्ना और संकीर्ण था और उसकी कथनी और करनी में इतना अधिक अन्तर था—बल्कि कभी-कभी दोनों एक-दूसरे से इतने विपरीत होते थे—कि बहुत खोजने पर भी उसके विचारों की कोई थाह नहीं मिलती थी।

"अकबर एक से अधिक पत्नियाँ रखने की अपनी आदत को छोड़ नहीं सकता था, बल्कि उस समय की इस किंवदन्ती को कोई महत्त्व देने की

आवश्यकता नहीं है कि एक समय ऐसा आया था जब वह अपनी पत्नियों को अपने अमीर-उमरा में बाँट देना चाहता था।"

मनसरेंट ने लिखा है कि "कहीं उसके अमीर-उमरा उद्दण्ड न हो जाएँ, इसलिए बादशाह कई बार उन्हें अपने दरबार में बुलाकर डाँट-फटकार के साथ आदेश देता है, मानो वे उसके गुलाम हैं।" (पृ० ६०-६२)।

"जलालुद्दीन (अकबर) के कन्धे चौड़े हैं, टाँग थोड़ी टेढ़ी हैं जो घुड़-सवारी के लिए बहुत उपयुक्त हैं और उसके चेहरे का रंग हल्का भूरा है। उसका सिर थोड़ा दाएँ कन्धे की तरफ झुका रहता है। उसका माथा चौड़ा और खुला है और उसकी आँखें इस तरह चमकती हैं जैसे सूर्य की रोशनी में समुद्र झिलमिल करता हो। उसकी भौंहें बहुत लम्बी हैं और बहुत उभरी हुई नहीं हैं। उसकी नाक छोटी और सीधी है और उभरी हुई है। उसके नथुने चौड़े और खुले हुए हैं मानो उपहास कर रहे हों। उसके बाएँ नथुने और ऊपर के होंठ के बीच में एक तिल है। वह दाढ़ी बनाता है परन्तु अपनी मूछें जवान तुर्की छोकरों की तरह रखता है। वह बाल नहीं बनवाता।...वह पगड़ी पहनता है जिसमें अपने सब बालों को समेट लेता है। वह बाईं टाँग से लँगड़ाकर चलता है, हालांकि इस तरफ उसे कभी कोई चोट नहीं लगी। उसका शरीर न बहुत पतला है, न बहुत मजबूत। उसका स्वभाव थोड़ा रूखा है। उसमें विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि उसे अपने आस-पास और अपनी आँखों के सामने लोगों का जमघट लगाए रहना अच्छा लगता है। इस तरह उसके दरबार में हमेशा तरह-तरह के लोगों का जमघट लगा रहता है, इसमें विशेष रूप से अमीर-उमरा होते हैं जिन्हें बादशाह का हुक्म है कि वे हर वर्ष अपने-अपने सूबे से आकर कुछ समय दरबार में रहा करें। जब वह अपने महल से बाहर जाता है तब ये अमीर-उमरा और अंगरक्षकों की एक टोली उसके साथ चलती है। वे लोग पैदल चलते हैं और उसका इशारा पाकर ही घोड़ों पर सवार होते हैं।"

"उसके कपड़ों पर ज़री की बहुत बढ़िया कढ़ाई होती है। उसका सैनिक चोगा सिर्फ घुटनों तक लम्बा होता है और उसके बूट टखनों को पूरी तरह ढके रहते हैं। वह सोने के गहने, हीरे और जवाहरात पहनता है। वह यूरोप की बनी एक तलवार और कटार अपने साथ रखने का शौकीन है।

वह कभी भी निरस्त्र नहीं रहता और अन्तःपुर में भी लगभग २० अंग-रक्षक, जिनके पास भिन्न-भिन्न प्रकार के हथियार रहते हैं, उसके आसपास रहते हैं।

"उसका दस्तरखवान (खाने की मेज़) आमतौर से कीमती भोजनों से सजाया जाता है। इसमें ४० से अधिक किस्मों का भोजन बड़ी-बड़ी तश्तरियों में परोसा जाता है। भोजन कपड़े में लपेटकर खाने के कमरे में लाया जाता है। खानसामा इन तश्तरियों को कपड़े से अच्छी तरह बाँधकर सील बन्द करके देता है ताकि भोजन में विष मिला देने का डर न रहे। भोजन के थाल युवकों के द्वारा खाने के कमरे तक लाये जाते हैं, नौकर आगे-आगे चलते हैं और मुख्य परिचारक पीछे चलता है। दरवाजे पर हिजड़े इस भोजन को ले लेते हैं और अन्दर जाकर भोजन परोसने वाली बांदियों को दे देते हैं। सार्वजनिक भोजों को छोड़कर वह अधिकतर एकान्त में भोजन करता है। वह बहुत कम अवसरों पर शराब पीता है, परन्तु वह अपनी प्यास बुझाने के लिए पोस्त का पानी पीता है और जब वह पोस्त अधिक मात्रा में पी जाता है तब होश खोकर और काँपते हुए पीछे की ओर गिर पड़ता है। वह एक साधारण सोफे पर बैठकर अकेले भोजन करता है जिसपर रेशमी कालीन और किन्हीं विदेशी पौधों की मुलायम रुई से भरे हुए गद्दे लगे रहते हैं।" (पृ० १९९-२००)।

"जलालुद्दीन विदेशियों और अपरिचित व्यक्तियों का स्वागत अपने देशवासियों और अधीनस्थों के मुकाबले बिल्कुल भिन्न ढंग से करता है। विदेशियों के प्रति उसका व्यवहार बहुत विनम्र और कृपापूर्ण होता है। परन्तु वह अरेबिया फेलिक्स के, जिसकी राजधानी सना में है, तुर्की वाय-सराय के साथ इतनी अभद्रता से पेश आया कि उसका राजदूतावास धुएँ की तरह हवा में उड़ गया; उसके मुख्य राजदूत को जेल में डाल दिया गया और काफी लम्बे समय तक लाहौर में रखा गया जबकि उसके नौकर-चाकर चुपके-चुपके भाग निकले"'जलालुद्दीन अपने सरदारों के साथ, जो उसकी अधीनता में हैं, इतनी सख्ती के साथ पेश आता है कि उनमें से प्रत्येक अपने-आपको बहुत ही घृणित और निम्न श्रेणी का इन्सान मानता है। उदाहरण के लिए जब ये सरदार कोई गलती करते हैं तो उन्हें और लोगों की अपेक्षा अधिक सख्त सज़ा दी जाती है।" (वही, पृ० २०४-२०५)

'वह कुछ भी पढ़ना या लिखना नहीं जानता है।" (वही, पृ० २०१)

"जलालुद्दीन के पास लगभग २० हिन्दू सरदार मन्त्री और सलाहकार के रूप में रहते हैं। वे उसके प्रति निष्ठावान हैं और बहुत बुद्धिमान और विश्वासपात्र हैं। वे हमेशा उसके पास रहते हैं और उन्हें महल के आन्तरिक भागों तक जाने की भी अनुमति है, यह विशेषाधिकार मंगोल सरदारों को भी प्राप्त नहीं है।" (वही, पृ० २०३)।

अकबर केवल हिन्दू सरदारों को महल के आन्तरिक भागों में आने की अनुमति देता था, इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वह स्वभाव से किसी तरह उदार था। वह केवल अपनी, अपने खज़ाने और हरम की सुरक्षा की दृष्टि से ही ऐसा था। हिन्दुओं के प्रति उसका विश्वास उक्त समुदाय के प्रति उसकी फूहड़ प्रशंसा का भी संकेत देता है जो विश्वासघात और यन्त्रणा के माध्यम से किसी क्रूर व्यक्ति की अधीनता स्वीकार करने को विवश हो जाने पर भी अपने धर्म-भावी, विनम्र और शिष्ट स्वभाव के कारण और क्रूर तथा दुर्व्यवहारी शासक की निष्ठा के साथ सेवा करने की अपनी स्वभावगत मूर्खता के कारण विजेता के प्रति निष्ठावान बने रहे। अकबर मुस्लिमों से केवल तभी परामर्श करता था जब उसे हिन्दू बस्तियों पर हमला करके उन्हें लूटना होता था, इसका कारण यह है कि वह अपने हरम, शाही खज़ाने और अपने शरीर की सुरक्षा के मामले में उनपर विश्वास नहीं कर सकता था।

डॉ० श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक "अकबर : दी ग्रेट" (भाग १, पृ० ४९७) में लिखा है। "अकबर बचपन में पढ़ने-लिखने से दूर भागता था, इसलिए वह जीवनभर अनपढ़ रहा। अकबर ने स्वयं स्वीकार किया है कि किसी को अनपढ़ होने पर शर्म नहीं होनी चाहिए।' उसका कहना है कि "पैगम्बर सभी अनपढ़ थे। इसलिए उनपर इमान लाने वालों को चाहिए कि वे अपनी औलाद में से कम-से-कम एक लड़के को वैसी हालत में रखें।" यह टिप्पणी अकबर की निपट मूर्खता का संकेत देती है।

"अकबर में तर्क बुद्धि और अन्धविश्वास का विचित्र मिश्रण है।··· यह कहना अत्युक्ति होगा कि राजकाज और विरोधियों और शत्रुओं के साथ व्यवहार में अकबर हमेशा ईमानदारी से काम लेता था। जो भारतीय शासक उसे व्यक्तिगत नज़राना पेश करने से इन्कार करते थे या ऐसा

करने में देर करते थे, उनके साथ अपने सम्बन्धों में वह अपनी इज्जत का खास ध्यान रखता था।" (वही, पृ० ५०६-११)। डॉ० श्रीवास्तव में यह एक कमजोरी है कि निपट बुराई में भी वे अच्छाई देखने का प्रयत्न करते हैं, इसलिए वे अकबर के चरित्र के बारे में सभी प्रमाणों की उपेक्षा करके उनके बारे में केवल एक हल्की भर्त्सना का उल्लेख करते हैं।

बदायूंनी भी जोकि एक धर्मान्ध मुस्लिम और आज्ञाकारी दरबारी था, अकबर के स्वभाव से परेशान था। अपनी पुस्तक के दूसरे भाग (पृ० १६४-२००) में उसने कहा है—"यह सब दिन भर देखो, पर कहो कुछ नहीं। परन्तु इसके बावजूद शहंशाह की खुशकिस्मती उसके सभी शत्रुओं पर हावी हो जाती थी और इसलिए अधिक संख्या में सैनिक रखना जरूरी नहीं था।"

"वह अपने क्रोधी स्वभाव को वश में रखने का अभ्यस्त था और इसी तरह वह अपने विचारों और वास्तविक उद्देश्यों को भी छिपा लेने में सिद्ध-हस्त था।" बारतोली का कहना है कि "वह कभी भी किसी को सही रूप से यह जानने का अवसर नहीं देता था कि उसके दिल में क्या है; वह वास्तव में किस धर्म का अनुयायी है; अपने स्वार्थ के अनुसार उसे जैसा भी ठीक लगता, वह किसी एक या दूसरे पक्ष का पोषण करके उसे अपने पक्ष में कर लेने का प्रयत्न करता, वह दोनों पक्षों से मीठी भाषा में बोलता, बल्कि इस बात पर आग्रह करता कि सन्देह प्रकट करने में उसका एकमात्र उद्देश्य यही है कि उनके बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तरों से मार्ग-दर्शन पाकर वह सच्चाई की तह तक पहुँच सके। अकबर के सभी कार्यों की यह एक विशेषता थी, देखने में उसमें कोई रहस्य और छल-कपट नहीं था, परन्तु वास्तव में वह इतना संकीर्ण और धुन्ना था और उसकी कथनी और करनी में इतना अधिक अन्तर था—बल्कि कभी-कभी दोनों एक-दूसरे से इतने विपरीत होते थे—कि बहुत खोजने पर भी उसके विचारों की कोई थाह नहीं मिलती थी। बहुधा ऐसा होता था कि कोई व्यक्ति कल के अकबर की तुलना आज के अकबर से करता तो उसे दोनों में कोई समता न मिलती और ध्यान से देखने वाले व्यक्ति को भी लम्बे समय तक उसके पास रहने के बाद अन्तिम दिन तक उसके बारे में उतनी ही जानकारी होती जितनी उसे पहले दिन थी। अकबर के विचित्र मन के इस वर्णन से इतिहास का छात्र कुछ सीमा तक समझ सकता है कि अकबर के राजनीतिक क्रिया-कलाप में बहुत बार किस तरह क्रूर कूटनीति और छल-छन्द काम करते थे।" (अकबर : दी ग्रेट मुगल, पृ० २४८)।

विश्वासघात

अकबर के चरित्र के बारे में कुछ निष्पक्ष लेखकों का जो वास्तविक मूल्यांकन पिछले प्रकरण में दिया गया है, उसकी पूरी पुष्टि अकबर के द्वारा अपने सम्पूर्ण शासनकाल में किए गये कारनामों से हो जाती है। अकबर का शासन चालाकी से भरपूर था और उसने विश्वासघात के अस्त्र का प्रयोग किसी भी अन्य अस्त्र की तरह बहुधा किया।

स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'अकबर : दी ग्रेट मुगल' (पृ० १४५) में लिखा है कि "पुर्तगालियों के सम्बन्ध में अकबर की नीति टेढ़ी-मेढ़ी और छल-कपट से भरी थी। इधर जब पुर्तगाली वायसराय को भेजे गए मैत्रीपूर्ण आमंत्रण के उत्तर में ईसाई मिशनरी उसके दरबार में आ रहे थे, तभी दूसरी तरफ उसने यूरोपीय बन्दरगाहों पर कब्जा करने के लिए सेना संगठित कर ली थी क्योंकि पुर्तगाल वाले शाही जलयानों को पास लिये बिना मक्का नहीं जाने देते थे। १५७५ में गुलबदन बेगम को पास प्राप्त करने के लिए बलसर का गाँव पुर्तगालियों को देना पड़ा था। वापस आने पर उसने निर्देश दिया कि वह गाँव वापस ले लिया जाये। युवकों की एक टोली पर हमला किया गया और नौ पुर्तगालियों को कैद कर लिया गया। उन्हें सूरत में लाया गया और शाही आदेश को मानने से इन्कार करने के आरोप में कत्ल कर दिया गया। उनके साहसी नेता दुआर्ते पेरायरा द लेसरदा की प्रशंसा की जानी चाहिए। उनके सिर फतेहपुर सीकरी भेजे गए, परन्तु अकबर ने ऐसा बहाना बनाया कि उसने उन्हें नहीं देखा।"

इतिहास के छात्र को इस उद्धरण से कई शिक्षाएँ मिलती हैं। पहली बात यह पता चलती है कि मुगल महिलाओं में भी धर्मान्धता, शैतानी और विश्वासघात का वैसा ही मिश्रण था, जैसा मुगल पुरुषों में था। उनके आकर्षक नामों से उनके घृणित चरित्र के बारे में गलतफहमी नहीं होनी

चाहिए। दूसरे, यह ध्यान देने योग्य है कि अकबर किसी भी दूसरे मुस्लिम की तरह धर्मान्ध था और उसके शासनकाल में धर्म-परिवर्तन से इन्कार करने वालों को पीड़ित करने और उन्हें कत्ल किये जाने का सिलसिला लगातार चलता रहा। तीसरी बात यह ध्यान देने की है कि फतेहपुर-सीकरी, जिसके बारे में विश्वास किया जाता है कि वह १५८५ के आसपास बनकर तैयार हुई थी, १५८० के शुरू में भी मौजूद थी। उस समय कैथोलिक धर्म-प्रचारकों का पहला मिशन वहाँ आया था। इन मिशनरियों ने सीकरी की मीनारों और प्राचीर को दूर से देखा था। इससे अन्वेषण-कर्ताओं की समझ में आ जाना चाहिए कि फतेहपुर सीकरी एक प्राचीन हिन्दू नगरी है। अकबर ने सिर्फ इतना किया कि ये इमारतें शेख सलीम चिश्ती और उसकी टोली के फकीरों को देकर बेकार करने की अपेक्षा वह अपनी राजधानी वहाँ ले गया।

स्मिथ ने आगे (पृष्ठ १४६) कहा है, "अकबर की दोरंगी नीति के स्पष्ट प्रमाण से ईसाई पादरी नाराज़ थे। एक तरफ अकबर स्पेन के राजा की, जिसके अधीन पुर्तगाल उस समय था, दोस्ती का दम भरता था, परन्तु दूसरी ओर वह पुर्तगालियों के विरुद्ध शत्रुता भरे आदेश देता था। उनके कैथोलिक मुख्याधिकारियों ने इन मिशनरियों को वापस आने के आदेश दिये।···मिशनरी खुद भी वापस जाना चाहते थे क्योंकि युद्ध सम्बन्धी तथ्यों के प्रति अकबर की इन्कारी उन्हें किसी भी तरह मंजूर नहीं थी।"

उसी पुस्तक में (पृ० १९६-२०४ पर) स्मिथ ने कहा है कि (अब्दुल रहीम खानखाना के साथ मुगल सेना की अगवानी करते हुए) "शाहजादा (मुराद) जो एक बदमाश शराबी था, अत्यधिक घमंड और अहं से भर उठता था।" अपने चाटुकारी स्वभाव के अनुसार बदायूँनी ने लिखा है कि "इन दोषों के मामले में शाहज़ादा (मुराद) अपने यशस्वी पिता (अकबर) की नकल करता था।"

असीरगढ़ के मजबूत किले को अकबर ने धोखेबाजी से विजित किया। स्मिथ ने लिखा है कि "१६वीं शताब्दी में असीरगढ़ को विश्व की अद्भुत कृतियों में गिना जाता था। किले में पहाड़ी की चोटी पर लगभग ६० एकड़ भूमि में पानी की पर्याप्त व्यवस्था थी। (यह स्थान बुरहानपुर से लगभग १२ मील उत्तर में है)।

"अकबर अन्ततः किस तरह अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सफल हुआ, इस सम्बन्ध में दो अलग-अलग विवरण मिलते हैं जो परस्पर विरोधी हैं और जिनमें कोई संगति नहीं है। दरबारी इतिहासकारों का कथन है कि असीरगढ़ के विजित होने का कारण यह था कि वहाँ एक घातक महामारी फैल गई थी। ज़ेरोम ज़ेवियर के, जो उन दिनों अकबर के दरबार में था, अप्रकाशित पत्रों पर आधारित विवरण के अनुसार किले को विजित करने के लिए वहाँ के अधिकारियों को बड़े पैमाने पर रिश्वत दी गई और बादशाह मीरन बहादुर को फुसलाकर अकबर के कैम्प में लाया गया जहाँ उसे एक अपमानजनक जालसाजी से बन्दी बना लिया गया। घातक महामारी की बात···अधिकतर मनगढ़न्त लगती है। अकबर छल-कपट और विश्वासघात के हथियार को इस्तेमाल करने में कभी घबराता नहीं था।

अकबर ने बुरहानपुर के किले पर ३१ मार्च, १६०० को अधिकार किया, जहाँ उसका कोई विरोध नहीं हुआ। यहाँ उसने पूर्ववर्ती राजा के महल में रहना शुरू किया। (इससे इतिहासकारों को चौकन्ना हो जाना चाहिए कि फतेहपुर सीकरी, अजमेर और दूसरे स्थानों पर नए भवनों का निर्माण न करके अकबर पुराने शासकों के महलों पर ही अधिकार किया करता था।) ६ अप्रैल को वह असीरगढ़ की प्राचीर के नीचे पहुँचा। दो लाख व्यक्ति अकबर का मुकाबला करने के लिए तैयार खड़े थे। बादशाह ने छल और भुलावे का सहारा लेने का निश्चय किया जिसमें वह अत्यन्त निपुण था। उसने बादशाह मीरन बहादुर को भेंट के लिए बाहर आने को कहला भेजा और अपने सिर की कसम खाकर विश्वास दिलाया कि राजा मीरन को शान्तिपूर्वक वापिस जाने दिया जाएगा।···अतः बादशाह एक पटका पहने बाहर आ गया, पटका एक तरह से यह संकेत देता था कि वह सिर झुकाने को तैयार है। अकबर एक बुत की तरह स्थिर बैठा था। मीरन बहादुर ने तीन बार झुककर कोरनिश की और जैसे ही वह आगे बढ़ा,··· एक मुगल अधिकारी ने उसे सिर से पकड़कर आगे की तरफ धक्का दिया और पूरी तरह सिज़दा करने को विवश कर दिया।"

अकबर ने उसे कहा कि किले को मेरे हवाले कर देने के लिए लिखित आदेश भेजो। बादशाह के इन्कार करने पर उसे बलपूर्वक बन्दी बना लिया गया। बादशाह के अबीसीनियाई कमांडर ने जब यह समाचार सुना तो

उसने अपने लड़के मुकर्रब खान को अकबर के पास भेजा। अकबर ने लड़के से प्रश्न किया कि क्या तुम्हारा पिता (कमांडर) आत्म-समर्पण करने को तैयार है ? इसपर लड़के ने तुनुककर उत्तर दिया"'अकबर ने तुरन्त आज्ञा दी कि लड़के को छुरा मारकर हत्या कर दी जाए।'''तब अबीसीनियाई कमांडर ने यह कहते हुए कि मुझे ऐसे विश्वासघाती बादशाह का मुँह देखना नसीब न हो, किले वालों को अपनी रक्षा करने का आदेश देते हुए स्वयं आत्म-हत्या कर ली।

किले का घेरा चलता रहा। अकबर ने ज़ेवियर को कुछ पुर्तगाली जंगी गाड़ियों का प्रबन्ध करने के लिए कहा। ज़ेवियर ने इस काम को ईसाई मत के विरुद्ध बताते हुए ऐसा करने से इन्कार किया। इसका वास्तविक कारण यह था कि कुछ ही समय पहले पुर्तगालियों ने मीरन बहादुर के साथ एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे। कुछ पुर्तगाली अधिकारी किले में भी मौजूद थे और उन्होंने मीरन बहादुर को सलाह दी थी कि वह अकबर के वायदे पर विश्वास न करे।

स्मिथ ने लिखा है कि "ज़ेवियर की निर्भय वाणी से वह निर्दयी इतना अधिक नाराज हुआ कि गुस्से में लाल-पीला होकर उसने आदेश दिया कि चर्च के पादरियों को शाही महल से निकाल बाहर किया जाए और उन्हें फौरन गोवा भेज दिया जाए। इसलिए ज़ेवियर और उसके साथी वहाँ से हट गए। परन्तु कुछ मित्रों की सलाह पर उन्होंने उस नगरी को नहीं छोड़ा (और बाद में उन्हें मालूम हुआ कि अकबर का गुस्सा ठंडा हो गया है)"।

अकबर अब मुश्किल में पड़ गया था। वायदा भंग कर देने के बाद भी दुर्ग के हस्तगत होने का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता था। समय बहुत कम था क्योंकि उसका बड़ा पुत्र जहाँगीर उस समय विद्रोह किये हुए था और वह एक स्वतन्त्र बादशाह के रूप में इलाहाबाद में शासन कर रहा था। इस प्रकार उसे विवश होकर अपने एकमात्र उपाय—रिश्वत—का सहारा लेने को विवश होना पड़ा। किले की घेराबन्दी की तैयारियाँ शुरू होने के लगभग साढ़े १० महीने बाद १७ जनवरी, १६०१ को दुर्ग पर विजय प्राप्त कर ली गई।

जब असीरगढ़ के दरवाजे खुले तो ऐसा लगा कि अन्दर पूरा नगर बसा हुआ है और एक सप्ताह तक बाहर आने वाले लोगों का ताँता लगा

रहा। इनमें से कुछ की नजर कमज़ोर हो गई थी और कुछ को अर्धाङ्ग हो गया था।" "अबुल फ़ज़ल का यह दावा अब पूर्णतः झूठ लगता है कि महामारी में २५,००० व्यक्ति मारे गये थे। घातक महामारी की कहानी उस अशोभनीय तरीके पर पर्दा डालने के लिए गढ़ी गयी थी, जो अकबर ने भारत के इस दुर्भेद्य दुर्ग पर अधिकार करने के लिए अपनाया था। दरबारी इतिहासकारों ने जान-बूझकर सच्चाई को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया है। कमाण्डर के लड़के के कत्ल को आत्महत्या के रूप में पेश किया गया है और इसी तरह के सरासर झूठे विवरण दिये गये हैं जिनका विस्तृत विवेचन करना व्यर्थ है।"

कैदी बादशाह और उसके परिवार को बन्दी बनाकर ग्वालियर के किले में रखा गया।

यदि भारतीय इतिहास का विद्यार्थी यह मानकर चले कि मुगल इतिहास में जिन्हें आत्महत्या के मामले कहा जाता है; वे सब वास्तव में हत्या के मामले थे तो कोई गलती नहीं होगी। जहाँगीर की पत्नी की हत्या अकबर और जहाँगीर ने मिलकर की थी। हिन्दू चित्रकार दसवंध की मृत्यु भी रहस्यपूर्ण परिस्थितियों में हुई थी। जिन राजपूत दरबारियों की पत्नियों पर अकबर की निगाह पड़ जाती थी उन राजपूतों की हत्या कर दी जाती थी। बहराम खाँ को कत्ल किया गया था। ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं।

स्मिथ ने लिखा है कि "सन् १६०० में एक एशियाई देश में भी विश्वासघात को, जैसा अकबर किया करता था, अपयशकारी माना जाता था। अबुल फ़ज़ल और फैज़ी......सरहिन्दी अपने आश्रयदाता की धोखेबाजियों पर पर्दा डालने के मामले में एकमत हैं। कई मामलों में राजकाज में अकबर चालाकी और कपट से काम लेता था।"

डॉ० श्रीवास्तव ने भी, जो अकबर के उग्र प्रशंसक हैं, स्वीकार किया है कि कश्मीर को अपने अधीन करने के लिए अकबर ने विश्वासघात से काम लिया। अकबर ने भगवानदास के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए भेजी थी। २२ फ़रवरी, १५८६ को भगवानदास ने कश्मीर के यूसुफ खाँ के साथ सन्धि कर ली। शर्तें इस प्रकार थीं:
१. कश्मीर का शासक केशर की फ़सल एवं ऊनी-वस्त्रों पर लगने वाले शुल्क

का रुपया-पैसा शाही खज़ाने में जमा करायेगा और अकबर का आधिपत्य स्वीकार करेगा; और २. वह अपनी रियायत का अधिकारी बना रहेगा। ...सुरक्षा का वचन देकर भगवानदास यूसुफ खाँ को दरबार में ले आया। ये लोग २८ मार्च, १५८६ को दरबार में पहुँचे। परन्तु अकबर ने सन्धि की शर्तें मंजूर नहीं कीं और अपने ही सेनापतियों के विरुद्ध कार्यवाही की। भगवानदास को कुछ समय तक दरबार की सेवा से अलग रहने का हुक्म दिया गया और यूसुफ खाँ को नजरबन्द कर दिया। इसके बाद अकबर ने एक और सैनिक टुकड़ी भेजी। भगवानदास ने यूसुफ खाँ के जीवन की सुरक्षा का वचन दिया हुआ था। इस घटना से उसके मन में इतना क्षोभ हुआ कि उसने आत्महत्या कर ली। सैनिक टुकड़ी २८ जून, १५८६ को लाहौर से रवाना हुई। याक़ूब ने, जिसने अपने पिता को मरा हुआ समझ लिया था, शाह इस्माइल नाम से गद्दी सम्भाली और अपने देश की रक्षा की तैयारी करने लगा। "६ अक्तूबर के आसपास क़ासिम खाँ की सेनायें कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में घुसीं और उन्होंने अकबर के नाम से फरमान पढ़कर सुनाया। कासिम खाँ की दमन और बदले की नीति के कारण कश्मीर का विद्रोह कुछ वर्ष तक और चलता रहा और अपने छापामार तरीकों से काम लेकर याक़ूब मुगल सेनाओं में उथल-पुथल करने का प्रयत्न करता रहा। कासिम खाँ के बाद मिर्ज़ा यूसुफ खाँ आया। याक़ूब ने जुलाई, १५८९ में आत्म-समर्पण किया। उसे नज़रबन्द रखा गया और बाद में उसे बिहार में जागीर दे दी गई। कश्मीर का विलय हो जाने के बाद यूसुफ खाँ को मुक्त कर दिया। उसे ५०० का मनसबदार बनाया गया और बिहार में जागीर दी गई। मानसिंह के नेतृत्व में उसने उड़ीसा में (अकबर की ओर से) युद्ध किया।...कश्मीर की घटना अशोभनीय है और अकबर के चरित्र पर एक धब्बा है। अकबर ने अपने एक प्रिय जनरल के द्वारा दिये गये वचन का निरादर किया। यूसुफ खाँ को जो जागीर दी गई, वह एक सम्पन्न रियासत के सार्वभौम शासक के प्रति अपमानजनक थी।"

अकबर की धोखेबाज़ी का एक और उदाहरण भाटा (आधुनिक रीवां) के हिन्दू राज्य के सम्बन्ध में है। स्वर्गीय राजा रामचन्द्र के पौत्र विक्रमाजीत ने, जो अल्पायु का बालक था, अकबर के आधिपत्य को

ठुकरा दिया इसलिए राय त्रिपुरदास के नेतृत्व में उसके विरुद्ध सेना भेजी गई। यह अभियान दो वर्ष से अधिक समय तक चलता रहा (जब दुर्ग पर बलपूर्वक अधिकार न हो सका तब) यह निश्चित किया गया कि विक्रमाजीत को अकबर के दरबार तक आने की अनुमति इस शर्त पर दी जाये कि एक बड़ा अमीर बन्धु के किले में आये और उसके जीवन की रक्षा तथा राज्य वापस दिलाये जाने की गारण्टी दे तथा साथ ही बन्धु तक सुरक्षित वापस जाने की गारण्टी भी दे। दुर्ग वालों को यह आशा थी कि उन्हें दुर्ग पर अधिकार बनाये रखने की अनुमति दी जायेगी। परन्तु अकबर ने इस बात पर ज़िद की कि पहले दुर्ग को खाली कराया जाये और उसके बाद ही दुर्ग राजा को वापस दिया जायेगा। दुर्ग की सेना ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और घेराबन्दी चालू रही। मुगलों ने रसद बन्द कर दी जिससे किले में बन्द लोगों को कुछ कठिनाई हुई। फिर, ऐसा लगता है कि त्रिपुरदास दुर्ग के कुछ अधिकारियों को पथ-भ्रष्ट करने में सफल हो गया। दुर्ग की घेराबन्दी आठ महीने बीस दिन तक चली। रसद न होने के कारण दुर्ग ८ जुलाई, १५९७ को अकबर के अधिकार में आ गया। दुर्ग को खाली कराया गया और पर्याप्त मात्रा में लूट का माल प्राप्त किया गया। दुर्ग राजा विक्रमाजीत को वापस नहीं दिया गया। अप्रैल, १६०१ में स्वयं रामचन्द्र के एक और पौत्र दुर्योधन को राजा स्वीकार किया गया और बन्धु दुर्ग उसे दे दिया गया। भारतीचन्द को राजा का संरक्षक नियुक्त किया गया। (अकबर : दी ग्रेट, पृ० ३८३-८६, भाग १)।

यह पुष्टि करना अत्युक्ति होगी कि शासन-कला में और अपने विरोधियों और शत्रुओं के साथ व्यवहार में अकबर पूरी तरह ईमानदार था। इसके अतिरिक्त जो भारतीय राजा उसे नज़राना पेश नहीं करते थे या ऐसा करने में देर करते थे, उनके साथ व्यवहार में अकबर अपने सम्मान का विशेष ध्यान रखता था। इसी कारण वह राणा प्रताप को अपने पक्ष में करने में विफल रहा और भाटा के राजा रामचन्द्र तथा कश्मीर के यूसुफ खाँ के प्रति उसने जो निष्ठुर व्यवहार किया, उसके लिए भी उसका यही स्वभाव उत्तरदायी था। उसके सुदीर्घ शासनकाल में युद्ध अभियान निरन्तर चलते रहे। शान्ति का समय बहुत कम रहा।······किस तरह उसने राजस्थान के राजाओं को एक-दूसरे-से लड़ाकर उनका सहयोग और समर्थन प्राप्त किया, इसका वर्णन एक अलग पुस्तक में करना समीचीन होगा। (वही, पृ० ५११-१४)।

पाखण्ड

अबुल फ़ज़ल जैसे कुछ चापलूस इतिहासकारों ने अकबर के जो काल्पनिक और पाखण्डपूर्ण वृत्तान्त दिये हैं, उनके होते हुए भी इतना तो स्पष्ट है कि अकबर के जो कार्य-व्यवहार देखने में साधारण लगते थे, वे वास्तव में हमेशा पाखण्डपूर्ण होते थे।

विंसेंट स्मिथ ने लिखा है कि "अकबर कभी भी पारसी बनने की सीमा तक नहीं पहुँच सका। हिन्दू, जैन और ईसाई धर्म को अपनाने में भी उसका यही हाल था। यह प्रत्येक धर्म को अपनाने में केवल वहीं तक आगे बढ़ता था जहाँ तक लोगों में यह विश्वास करने का उचित आधार बन जाये कि वह पारसी, हिन्दू, जैनी या ईसाई है।" (पृ० ११८, अकबर : दी ग्रेट मुगल)।

"इस समय (१५८० ई०) तक अपने धर्म सम्बन्धी विचारों के विरोध में फैले व्यापक रोष के कारण अकबर ने जानबूझकर पाखण्डपूर्ण नीति अपनाई। अजमेर से वापस आते हुए वह अपने साथ एक ऊँचा तम्बू मस्जिद के रूप में लाया जिसमें वह विशुद्ध मुसलमानों की भाँति दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ता था। कुछ समय बाद उसने इस पाखण्ड को और आगे बढ़ाया। मीर आबू तुरब नाम का एक व्यक्ति मक्का से लौटते समय अपने साथ एक पत्थर लाया था, जिसके बारे में ऐसा कहा जाता है कि उसपर पैगम्बर के पैर के निशान बने हैं। अकबर भली प्रकार जानता था कि इसमें सच्चाई नहीं हो सकती, फिर भी वह उस पत्थर का स्वागत करने के लिए गया।" (वही, पृष्ठ १३०)

स्मिथ ने लिखा है कि "पाठक अकबर द्वारा जारी किये गये दूसरे व तीसरे फरमानों की विसंगति को समझ सकते हैं। (२) केवल धर्म के कारण किसी व्यक्ति के कार्य में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए और प्रत्येक

व्यक्ति को अपनी इच्छा का धर्म अपनाने की छूट होगी, (३) यदि कोई हिन्दू-स्त्री किसी मुसलमान पर आसक्त हो जाये और मुस्लिम धर्म को स्वीकार करले तो उसे बलपूर्वक उसके पति से अलग किया जाये और उसे उसके परिवार वालों को लौटा दिया जाये।" (वही, पृष्ठ १८६)।

स्मिथ ने अकबर के द्वारा जारी किये गये फरमानों की तुलना करके उनकी विसंगतियाँ बताई हैं, परन्तु हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि अकबर ने कभी भी ऐसा फरमान जारी नहीं किया। ये सब पाखण्डपूर्ण फरमान अबुल फ़ज़ल जैसे चापलूस लोगों ने बनाये और लिखे और इनके माध्यम से उन्होंने अपना सुखमय जीवन व्यतीत किया, जनता को पथ-भ्रष्ट किया और चापलूसी से बादशाह को खुश करके उससे अवांछित लाभ प्राप्त किये। यदि वास्तव में अकबर ने ही ये सब फरमान जारी किए होते तो सबसे पहले वह स्वयं, उसके पुत्र और दरबारी उन हिन्दू औरतों से वंचित कर दिए जाते जिन्हें रोज़ बन्दी बनाकर हरम में लाया जा रहा था। अकबर के हरम में असंख्य हिन्दू सुन्दरियाँ थीं, इतने पर भी उसकी ललचाई हुई निगाह रानी दुर्गावती पर थी। दुर्गावती ने युद्ध में प्राण त्याग दिए, इसलिए अकबर को दुर्गावती की बहन और पुत्र-वधू को ही हस्तगत करके सन्तोष करना पड़ा। उन्हें तत्काल घसीटकर हरम में लाया गया। किसी स्त्री को उसके पति के पास वापस भेजने की बजाय अकबर औरतों को उनके घर और पतियों से छीन लिया करता था। शरफुद्दीन, आसफ़ खाँ, अधम खाँ जैसे उसके जनरल और उसके मुस्लिम सैनिक हिन्दू-स्त्रियों को हज़ारों की संख्या में उठाकर ले जाते थे। इसलिए अकबर द्वारा जारी किये गये तथाकथित पवित्र फरमानों के खोखलेपन के बारे में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए।

अपने आश्रयदाताओं के क्रूर शासनकाल के वीभत्स विवरण देते हुए बीच-बीच में उनकी काल्पनिक पवित्र वक्तृताओं का उल्लेख करना और उनकी उदारता का गुणगान करना मुस्लिम इतिहासकारों की पुरानी पद्धति है। इसीलिए बड़े पैमाने पर नृशंस हत्याएँ करने वाले और सभी तरह के घृणास्पद अत्याचार और बलात्कार के कारनामे करने वाले तैमूर लंग, फिरोज़शाह तुगलक, सिकन्दर लोदी, शेरशाह, जहाँगीर और दूसरे बादशाहों के बारे में इन इतिहासकारों ने लिखा है कि धर्म-भावना से प्रेरित

होकर उन्होंने पथिकों की सुख-सुविधा के लिए तालाब, सराय, आराम घर, दरिद्रालय, सड़कों पर छायादार वृक्ष, प्याऊ और इसी प्रकार की अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराईं। समय आ गया है जब इतिहास का प्रत्येक पाठक और विद्वान् इस बात को समझे। इतने अधिक अभिशप्त प्रमाण होने पर भी ऐसे पाखण्डपूर्ण दम्भ पर विश्वास करना बचकानापन और खेदपूर्ण होगा।

स्मिथ ने ज़ेवियर का—यह ईसाई पादरी अकबर के दरबार में था—हवाला देते हुए लिखा है कि अकबर अपने आपको पैगम्बर के रूप में मानत था "और वह चाहता था कि लोग यह समझें कि जिस पानी से वह पै धोता है, उससे वह रोगी व्यक्ति को ठीक करके चमत्कार किया करता है। (पाद-टिप्पणी, बदायूँनी ने लिखा है कि "यदि हिन्दुओं के अलावा कोई दूसरा व्यक्ति किसी कुरबानी के समय उसके पास आकर उसका शिष्य बनने की इच्छा व्यक्त करता तो बादशाह सलामत उसे फटकार देते थे या फिर सजा देते थे।" वही, पृष्ठ १८०)। ईसाई पादरी और एक मुस्लिम के इस प्रमाण से यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि अकबर हिन्दुओं पर जो जुल्म किया करता था. उनमें एक यह भी था कि जिस पानी से वह अपने पाँव धोता था, वह पानी बाद में हिन्दुओं के मुँह में उँडेला जाता था। बदायूँनी के अनुसार यह गन्दा और अपमानकारी विशेषाधिकार अकबर ने विशेष रूप से हिन्दुओं को ही दिया हुआ था। जब अकबर जैसा अनपढ़ व्यक्ति इतना नीच हो सकता है तब यह समझा जा सकता है कि उसने अपनी असहाय प्रजा पर इससे भी अधिक अपमानकारी जुल्म किए होंगे।

अकबर ने ईसाई पादरियों को अपने दरबार में सम्मान देकर उनके साथ जो पक्षपात किया, उसमें उसकी बौद्धिक उत्सुकता या धर्म-भावना ही एकमात्र प्रधान कारण नहीं थी। वह बहुत धूर्त और अत्याचारी राजनीतिज्ञ था। वह सदैव पुर्तगालियों के उपनिवेश को समाप्त कर देना चाहता था, (परन्तु) उसके सबसे बड़े लड़के के विद्रोह और छोटे शाहजादों की मृत्यु के कारण उसकी सभी महत्त्वाकांक्षाएँ समाप्त हो गईं।...अपने निकटस्थ व्यक्तियों को वह अपना इरादा खुले रूप में बताया करता था। (वही, पृष्ठ १६०)।

अकबर की एक बात जो उसके इतिहासकारों ने लिखी है, इस प्रकार है—"यदि जीवन-निर्वाह करने की कठिनाई न होती तो मैं इन्सानों को मांस खाने से रोक देता। मैंने खुद मांस पूरी तरह नहीं छोड़ा है, जिसका कारण यह है कि यदि मैंने ऐसा किया तो और बहुत से लोग ऐसा ही करेंगे और इस तरह उन्हें परेशानी होगी।" (पृष्ठ २४३)।

ऊपर के निरर्थक प्रलाप का पाखण्ड अपने आप में स्पष्ट है।

"कभी-कभी अकबर के कार्यों से ऐसा सोचने का पर्याप्त आधार मिलता है कि वह धरती पर खुदा का रूप माने जाने से इन्कार नहीं करता (पाद-टिप्पणी, ब्लोचमैन के अनुवाद के अनुसार उसके चापलूस फैज़ी ने लिखा है—"पुराने तरीकों से सिजदा करने से तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा; अकबर को देखो और तुम्हें खुदा का रूप दिखाई देगा।" (आईन, भाग १ पृष्ठ ५६१) (वही, पृष्ठ २५५)।

बदायूँनी ने कहा है—"कुछ समय के बाद 'तू एक है, तू एक ही है, और तू ही सम्पूर्ण मनुष्य है', जैसी प्रशस्तियाँ बादशाह के लिए प्रयुक्त की जाने लगीं।" (बदायूँनी का विवरण, पृष्ठ २६६)।

धर्मान्ध मुस्लिम बदायूँनी को इस बात का पछतावा है कि उसने अपने नवजात शिशु को काज़ियों और मुल्लाओं की बजाय अकबर से आशीर्वाद दिलाया (उसकी कृपादृष्टि के लिए) मगर वह लड़का छः महीने बाद ही मर गया।

अकबर ने हमेशा अपने-आपको पैगम्बर, सम्पूर्ण मानव और स्वयं परमात्मा के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। "२६ जून, १५७९, शुक्रवार को उसने फतेहपुर सीकरी की जामिया मस्जिद में खुद चबूतरे पर खड़े होकर खुतुबा पढ़ा।···बदायूँनी के अनुसार खुतुबा पढ़ते हुए अकबर की जबान लड़खड़ाई और वह काँप उठा और उसे चबूतरे से नीचे उतारने के लिए सहारा देना पड़ा।···कुछ लोगों को ऐसा विश्वास था कि अकबर का इरादा यह था कि वह अपनी असहाय प्रजा के लिए बादशाह, पैगम्बर और परमात्मा सभी का मिला-जुला रूप बन जाए।" (अकबर : दी ग्रेट, पृष्ठ २४०)।

"८ सितम्बर, १५७९ को अकबर अजमेर शरीफ की जियारत (यात्रा) पर निकला। ख्वाजा की दरगाह की यह उसकी आखिरी ज़ियारत थी।

यह जियारत उसका अमोघत्व सम्बन्धी तथाकथित फरमान जारी होने के एक सप्ताह के अन्दर हुई।'''उसका विश्वास समाप्त हो गया था। फिर भी उसने यह जियारत प्रजा की भावनाओं को शान्त करने के लिए की।''' अजमेर में उसने अब्दुन नबी और मकदूम-उल-मुल्क को मक्का चले जाने का हुक्म दिया। वापसी यात्रा के दौरान साँभर में उसने शाहबाज़ खाँ को राणा प्रताप के खिलाफ चढ़ाई करने का हुक्म दिया।" (वही, पृ० २४५)।

डॉ० श्रीवास्तव ने स्वीकार किया है कि अजमेर की आखिरी जियारत उसने अपनी मुस्लिम प्रजा को चकमा देने के लिए की थी। यह बात भी पूरी तरह सच नहीं है। यदि अकबर अपनी धर्मान्ध मुस्लिम प्रजा को यही विश्वास दिलाना चाहता था कि वह स्वयं धर्मनिष्ठ मुस्लिम है तो उसे इतनी दूर अजमेर जाने की आवश्यकता नहीं थी। अपनी राजधानी में ही वह किसी और दरगाह को चला जाता या फिर दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ता। उसका वास्तविक उद्देश्य कभी भी अजमेर में चिश्ती की मज़ार की ज़ियारत करना नहीं था। उसे किसी पर कोई विश्वास नहीं था और न वह किसी का आदर करता था। अजमेर की उसकी यात्राओं का उद्देश्य यह था कि राजस्थान के वीर हिन्दू राजाओं के, जो राणा प्रताप के प्रेरणादायी नेतृत्व में संगठित थे, विरुद्ध शक्तिशाली युद्ध संगठित किए जाएँ। जिस दिन अकबर ने राजस्थान पर अत्याचारी, सर्वनाशक आक्रमण करना बन्द किया, उसी दिन से उसने अजमेर जाना बन्द कर दिया। जिसे सामान्यतः शिकार-अभियान या ज़ियारत का नाम दिया गया है। वह वास्तव में मुसलमानों को हिन्दू क्षेत्रों पर अघोषित आक्रमण करने का अवसर देने का प्रपंच मात्र होता था। आक्रमण एवं युद्ध के लिए सदा ही ऐसे प्रपंच रचे जाते थे। इसलिए पाठक को अकबर या दूसरे मुसलमान शासकों के धार्मिक आडम्बरों के प्रति विश्वास नहीं रह जाना चाहिए।

डॉ० श्रीवास्तव ने भी, जिन्होंने इससे पूर्व कहा था कि १५७९ में ही अकबर को मुस्लिम रीतियों पर विश्वास नहीं रह गया था, कहा है; "८ अक्तूबर, १५८३ को अकबर ने एक सार्वजनिक भोज का आयोजन करके ईद-उल-फितर मनाई। पोलो के एक मैच में बीरबल अपने घोड़े से गिर

गया। तब अकबर खुद राजा के पास गया और उसके मुंह में अपनी साँस फूँककर उसे राहत दी।" (अकबर : दी ग्रेट, पृ० ३२३)

ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि अकबर हमेशा धर्मान्ध मुसलमान बना रहा। दूसरे पैगम्बर होने और आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न होने के उसके दावे भी प्रजा पर उसके घिनौने अत्याचारों का आधार थे। हम देख चुके हैं कि किस प्रकार वह हिन्दुओं को अपने पाँव की धोवन पीने को विवश करता था। इसी तरह वह शराब और अफीम की दुर्गन्ध से भरी अपनी गन्दी साँस लोगों के पीने के पानी पर या उनके मुंह पर छोड़ता था। वह गरीब विरोध नहीं कर सकता था क्योंकि उसे भय होता था कि उसे जेल में डाल दिया जाएगा और उसके परिवार की स्त्रियों को तंग किया जाएगा इसलिए वह चुपचाप अकबर के घिनौने तौर-तरीकों को सहन करता और उससे लाभ प्राप्त होने का बहाना करता। इससे अकबर के अहं की संतुष्टि होती थी। अपनी असहाय प्रजा के प्रति ऐसे व्यवहार में अकबर सभी मुस्लिम शासकों से आगे था। बेचारे बीरबल को चोट तो लगी ही थी, ऊपर से उसे अकबर की गन्दी साँस भी सहन करनी पड़ी। यह जले पर नमक छिड़कने वाली बात थी।

"अकबर अपने सरदारों और अमीरों के साथ बहुत कठोरता का व्यवहार करता था, यहाँ तक कि उनमें से कोई भी अपना सिर ऊँचा उठाने की हिम्मत नहीं करता था। वह उनसे नजराने प्राप्त करके प्रसन्न होता था। हालाँकि बहुधा वह इन नजरानों की तरफ निगाह न करने का स्वाँग करता था।" (अकबर : दी ग्रेट, पृष्ठ, ५०३)।

"१५७९ ई० तक अकबर हर वर्ष कम-से-कम एक बार और कभी-कभी दो बार भी अजमेर में शेख मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की जियारत करने जाया करता था। तब वह युद्ध के समय ख्वाजा के नाम पर "या मोइन" का नारा लगाकर आवाहन किया करता था। जब किसी दरगाह का नाम लेकर युद्ध की ललकार की जाती है तब उसका मतलब स्पष्ट होता है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि अकबर केवल राजपूतों के विरुद्ध युद्ध करने के उद्देश्य से ही अजमेर जाया करता था। उसका उद्देश्य जियारत करके आत्मिक शान्ति पाना नहीं था बल्कि हिन्दुओं को मृत्यु और विनाश का उपहार देना था। इस घातक खेल में मोइनुद्दीन चिश्ती का नाम राजधानी

से बाहर निकलने के अपने असली उद्देश्य को छिपाने के लिए लिया जाता था।" (वही, पृष्ठ ५०४)

कहा जाता है कि "कभी-कभी धार्मिक विश्वास सम्बन्धी मामलों में अकबर का आचरण राजनीतिक सामयिकता से मार्ग-दर्शित होता था।" (अकबर : दी ग्रेट, पृ० ५०६)। अकबर के पाखण्ड का यह स्पष्ट प्रमाण है। हम चाहते हैं कि अकबर के बारे में यह बात करते हुए या उसके बारे में लिखते हुए इस बात को 'कभी कभी' नहीं बल्कि हमेशा ध्यान में रखा जाए।

"वह बच्चों के चेहरों को देखकर या फूंक मारा हुआ पानी देकर उन्हें स्वस्थ कर दिया करता था। लोगों को यह विश्वास दिलाना चाहता था कि वह चमत्कारी काम कर सकता है और अपने पाँव की धोवन पिलाकर बीमार लोगों को ठीक कर देता है। बहुत-सी युवतियाँ अपने बच्चों के रोग दूर करवाने के लिए या सन्तति की आशा से उसके पास आकर मिन्नत करती हैं और यदि उनकी आशा पूरी हो जाए तो वे फकीरों की तरह उसे चढ़ावे पेश करती हैं जिनका कोई विशेष मूल्य नहीं होता, फिर भी अकबर उन्हें खुश होकर स्वीकार करता है और उनका आदर करता है।" (पृष्ठ ६१, अकबर एण्ड दी जेसुइट्स, अकबर : दी ग्रेट, भाग १, पृ०, ५११ पर उद्धृत)।

जो यूरोपीय पर्यटक अकबर के दरबार में गए, उन्होंने बहुधा अकबर के कार्य-व्यवहारों को गलत समझा है और उन्हें गलत रूप में प्रस्तुत किया है। उनके वृत्तान्तों का सही आशय समझने के लिए हमें तत्कालीन वातावरण को समझना होगा। पश्चिम के इन सभी पर्यटकों को दरबार में प्रयुक्त होने वाली भाषा का प्राय: कोई ज्ञान नहीं था और इसलिए उन्हें चाटुकार मुस्लिम दरबारियों की मन-गढ़न्त और बढ़ा-घटाकर कही गई बातों पर निर्भर रहना पड़ता था। हम अपने अनुभव से जानते हैं कि जो विदेशी पर्यटक केवल मंत्रिपरिषद के क्षेत्रों तक ही सीमित होकर रह जाता है, वह वापस जाकर हमेशा अपने शाही मेजवानों के गुणगान करता है। जिन्हें आम लोगों से मिलकर उनकी कठिनाइयाँ जानने का मौका मिलता है, वे भिन्न चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस तरह अकबर के दरबार में जो यूरोपीय पर्यटक आते थे, उन्हें भाषा और सम्पर्क दोनों की बाधाओं का

सामना करना पड़ता था। इसलिए उनके द्वारा लिखे गए वृत्तांतों को पढ़ने वालों को उनके लेखों को ठीक से समझने के लिए अधिक सावधानी से काम लेना होगा।

अकबर को अपने चारों ओर पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का जमघट लगाए रखने का शौक था। परन्तु यह कहना गलत है कि वे उसके पास अपने या अपने बच्चों के लिए आत्मिक शान्ति पाने के लिए या सन्तति की आशा लेकर आते थे।

अन्त में, जिन लोगों का उल्लेख किया गया है, वे अकबर के पास तमाशा देखने या आत्मिक शान्ति पाने के लिए नहीं आते थे बल्कि वे अकबर के अत्याचारपूर्ण और सनक-भरे आदेशों और उसके अधिकारियों के उत्पीड़न से भौतिक मुक्ति पाने के लिए आया करते थे। भारत में, जहाँ एक हजार वर्ष से विदेशी लोग शासन करते आए हैं, विवाहित महिलाओं के लिए यह एक सामान्य प्रथा थी कि वे शासक के दिल को नर्म करने के लिए अपने बच्चों को उसके पाँवों में डाल देती थीं ताकि वह दया करते हुए अपने बर्बर, लालची और लम्पट जत्थे के अत्याचारों को रोक देने का आदेश दे। जो लोग बलात्कार, लूट और हत्या के चक्कर से बच निकलते थे वे अकबर के दरबार में जाकर मुक्ति पाने का प्रयत्न करते थे।

जब ईसाई धर्म-प्रचारक बड़ी संख्या में लोगों को चिल्लाते, कराहते, रोते और प्रार्थनाएँ करते हुए दिन-रात बादशाह के दरबार में पड़ा देखते थे और जब वे उन्हें अपने बच्चों को शासक के पाँवों में डालकर उससे दया की याचना करते हुए देखते तो हिन्दी अथवा फारसी भाषा की जानकारी न होने के कारण वे समझते थे कि ये लोग अकबर से आत्मिक-शान्ति पाने के लिए आते हैं।

अकबर ऐसे दृश्य को देखकर बहुत खुश होता था। इससे उसके अहं की तुष्टि होती थी। उसे यह सोचकर खुशी होती थी कि उसे इतने विशाल जनसमुदाय की किस्मत बनाने या बिगाड़ने का निरंकुश अधिकार प्राप्त है। जब वह इतनी बड़ी संख्या में प्रजा को अपने पास आकर दया की भीख माँगते देखता तो अपने आपको उनका एकमात्र परित्राता और भाग्य-विधाता समझकर उसे बहुत सन्तोष होता। तब महा-क्रूर अकबर अपने

पाँवों की धोवन या फूंक मारा हुआ पानी पिलाकर उन्हें 'दिलासा देने' का ढोंग करता था।

अकबर या जहाँगीर जिस तरह शाम के समय अपने महल की खिड़की में बैठकर लोगों की भीड़ को दर्शन देते थे और उनकी अनुनय-विनय सुनते थे, उसके वर्णन को इसी दृष्टि से समझना होगा। यूरोप के पर्यटकों ने ऐसे दृश्यों के जो विवरण दिए हैं उनसे अकबर के चरित्र और उसके कारनामों की जो जानकारी हमें प्राप्त होती है, उसको पृष्ठभूमि में रखकर ठीक से समझना होगा। अकबर को घेरे रहने वाले जन-समुदाय के इस पक्ष को समझने में पूर्ववर्ती सभी इतिहासकार असमर्थ रहे हैं।

: १७ :

दुर्भिक्ष

भारत में मुसलमानों का शासन १००० वर्ष तक रहा। इस अवधि की मुख्य विशेषताएँ विद्रोह, प्रतिशोध, अग्निकांड, अपहरण, बलात्कार, डाकाजनी, लूट-खसोट, कत्लेआम आदि थीं। इस अवधि में नागरिक जीवन अस्तव्यस्त हो गया था, लोगों के घर बरबाद हो गए और उनका पारिवारिक जीवन नष्टप्राय: हो गया था। लोगों को हमेशा अपना जीवन बचाने की चिन्ता बनी रहती थी। जो लोग कत्ल से बच जाते थे, उन्हें जंगलों और पहाड़ों में छिपकर जीना पड़ता था। इस उथल-पुथल के कारण देश में बार-बार दुर्भिक्ष होते थे। अकबर के शासनकाल में भी यही हुआ। उसके शासनकाल में भी मानव इतिहास के कुछ सर्वाधिक भयावने अकाल पड़े, जिसके कारण यह दावा झूठा पड़ जाता है कि अकबर का शासनकाल उदारता से भरपूर स्वर्णकाल था। उसका शासन किसी भी दूसरे बादशाह या सुलतान के शासनकाल की तरह अत्याचारपूर्ण था, और इस कारण बार-बार दुर्भिक्ष पड़ना स्वाभाविक ही था।

अपनी पुस्तक अकबर दी ग्रेट मुगल में (पृष्ठ २८८-९० पर) विंसेंट स्मिथ ने लिखा है कि "१५५५-५६ के दुर्भिक्ष में राजधानी (दिल्ली) तबाह हो गई और मरने वालों की संख्या बहुत अधिक थी। इतिहासकार बदायूँनी ने स्वयं अपनी आँखों से देखा कि इन्सान इन्सान को खाकर जीता था, और भूख से पीड़ित लोगों की शक्ल इतनी वीभत्स थी कि उनकी तरफ देखा नहीं जा सकता था।···सम्पूर्ण देश एक मरुस्थल की तरह लगता था और कोई भी किसान खेती करने के लिए नहीं बचा था।"

गुजरात में भी, जोकि भारत का सबसे अधिक सम्पन्न प्रदेश माना जाता है और जो सामान्यत: दुर्भिक्ष की विभीषिका से मुक्त माना जाता है,

१५७३-७४ में लगभग छः मास तक दुर्भिक्ष रहा। भुखमरी के बाद सामान्यतः महामारी फैली जिसके फलस्वरूप धनी और निर्धन सब देश को छोड़कर विदेश चले गए।

अबुल फ़ज़ल ने अपने विशेष अस्पष्ट ढंग से लिखा है कि "१५८३-८४ में सूखा पड़ने के कारण चीजों के दाम अधिक हो गए और लोगों के जीवन-निर्वाह का कोई सरल साधन न रहा।" (अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ६२५) उसने कोई ब्यौरा नहीं दिया है और यह भी नहीं बताया है कि किन प्रदेशों पर इसका प्रभाव पड़ा। जिस लापरवाही के साथ उसने १५९५-९८ की भयंकर विपत्ति के बारे में लिखा है, उसके आधार पर विचार करें तो हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि १५८३-८४ का दुर्भिक्ष गम्भीर था। दूसरे इतिहासकारों ने इसका स्वल्प भी उल्लेख नहीं किया है।

"१५९५ का दुर्भिक्ष तीन या चार वर्ष तक चलकर १५९८ में समाप्त हुआ। वीभत्सता और विभीषिका की दृष्टि से यह दुर्भिक्ष अकबर के गद्दी पर बैठने के वर्ष के दुर्भिक्ष के बराबर था और अवधि की दृष्टि से वह उससे बढ़-चढ़कर था। जैसा पहिले कहा जा चुका है, अबुल फ़ज़ल अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग करके इस आपदा पर मिट्टी डालना चाहता है और शाही सम्मान को बचाना चाहता है। (पाद-टिप्पणी : उसने गद्दी-नशीन होने के समय के दुर्भिक्ष का ब्यौरा दिया है जिससे यह दिखाया जा सके कि अकबर के गद्दी पर बैठने के बाद स्थिति सुधर गई थी।)

अकबर के शासनकाल में कभी-कभी महामारी और बाढ़ का प्रकोप हो जाता था...।

बादशाह बाबर ने अपनी जीवनी में लिखा है कि "परगनों के चारों ओर जंगल थे और परगनों के निवासी लगान से बचने के लिए बहुधा इन जंगलों में भाग जाया करते थे।"

इससे भली प्रकार कल्पना की जा सकती है कि मुस्लिम शासनकाल में नागरिकों से लगान वसूल करने का ढंग कितना भयावह एवं आतंकपूर्ण था। लोग इन्सानी दरिन्दों के हाथों टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाने की बजाय जंगल के हिंसक पशुओं द्वारा मारा जाना अधिक पसन्द करते थे।

ब्लोचमैन ने आईने-अकबरी के अपने अनुवाद, बिब्लियोथिका माला, में बदायूंनी के इतिहास के पृ० ३९१ से उद्धरण देते हुए लिखा है कि

"दुर्भिक्ष के समय माँ-बाप को इस बात की छूट थी कि वे अपने बच्चों को बेच दें।"

बदायूँनी का जो कथन ऊपर दिया गया है, उसमें व्यंग्योक्ति की झलक है। ऐसा लगता है कि एक तरफ अकबर दुर्भिक्ष के समय अपनी प्रजा को अपने बच्चे बेच देने की छूट देता था जबकि दूसरी ओर उन दिनों में जो अव्यवस्था फैलती थी, उनमें बच्चों के अपहरण की घटनाएँ प्रायः प्रतिदिन होती रहती थीं। नागरिकों को इस बात पर भी विवश किया जाता था कि वे अकबर का लगान चुकाने के लिए अपने बच्चे बेच दें या उन्हें समर्पित कर दें। ऐसे बच्चों को बहुत नीचतापूर्ण गुलामी का जीवन बिताने के लिए विवश किया जाता था और उन्हें लौंडेबाजी का भी शिकार होना पड़ता था। धर्म-परिवर्तन करके उन्हें मुसलमान बना दिया जाता था। इस तरह वे स्वतः हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान से अलग पड़ जाते थे और अपने-आपको अर्द्ध-अरबी या अर्द्ध-तुर्की समझने लगते थे।

इस तरह दुर्भिक्ष हो या न हो, भारत में बच्चों को किसी भी दूसरी चलसम्पत्ति की तरह बिक्री योग्य माल समझा जाता था जिसके माध्यम से अनाज खरीद सकते थे या सरकारी लगान का भुगतान कर सकते थे।

बदायूँनी ने लिखा है कि "इस वर्ष (९८१ हिजरी) में गुजरात में महामारी फैली और अनाज के भाव इस हद तक बढ़ गए कि एक मन ज्वार का मूल्य १२० टंके तक हो गया, और असंख्य लोगों की मृत्यु हुई।" (बदायूँनी का इतिहास, पृष्ठ १८६)।

मुस्लिम इतिहास-ग्रन्थों के पाठक को यह बात याद रखनी होगी कि इन ग्रन्थों में दुर्भिक्ष, महामारी अथवा अत्याचार और उत्पीड़न का उल्लेख तभी किया जाता है जब उससे मुसलमानों के एक बड़े वर्ग पर प्रभाव पड़ा हो। उदाहरण के लिए बदायूँनी ने अकबर के जनरल पीर मुहम्मद की भर्त्सना की है क्योंकि वह हिन्दुओं पर नहीं बल्कि सैयदों और उलेमाओं पर अत्याचार करता था और कुरान को उनके सिर पर रक्षा कवच अथवा शिरस्त्राण के रूप में रखवाता था। मुस्लिम इतिहासकार हिन्दू पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को धर्मान्धता को बढ़ावा देने के लिए स्वाभाविक चारा मानते थे, इसलिए उन्होंने हमेशा हिन्दू महिलाओं के लिए 'नर्तकियाँ' और 'वेश्याएँ' आदि शब्दों का प्रयोग किया है और हिन्दू पुरुषों के लिए

'गुलाम, काफिर, चोर, डाकू, लुटेरे और धर्मद्रोही' शब्दों का प्रयोग किया है। मुस्लिम इतिहासकारों को इस हिन्दू-बहुल देश में लगभग १००० वर्ष के अविच्छिन्न शासनकाल का इतिहास लिखने का मौका मिला, परन्तु इतना होने पर भी वे हिन्दू शब्द से अपरिचित दिखाई देते हैं और हिन्दुओं का उल्लेख करते हुए वे धर्मान्धता के साथ अप्रिय-से-अप्रिय शब्दों का प्रयोग करते हैं।

गौड़ (बंगाल की राजधानी) की एक और भयावह महामारी का वर्णन करते हुए बदायूँनी ने लिखा है कि "अमीरों के शरीर पर कई तरह के रोगों का प्रकोप हुआ और हर रोज़ बहुत से लोग एक-दूसरे को अलविदा कहते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते थे और जितने हज़ार व्यक्ति उस देश को छोड़कर भागे, उनमें से कितने सौ व्यक्ति वापस आए, यह नहीं कहा जा सकता। हालत यह हो गई थी कि जो लोग बच गए थे वे मृत लोगों को दफनाने में असमर्थ थे और शवों को नदी में फेंक देते थे। हर घण्टे और हर मिनट खानखाना को अमीरों की मौत के समाचार मिलते रहते थे" परन्तु वह सुनता नहीं था।

ऊपर (मुसलमानों के) दफन किए जाने का उल्लेख किया गया है, हिन्दुओं को जलाए जाने का नहीं। इसीसे हमारे इस कथन की पुष्टि हो जाती है कि मुस्लिम इतिहासकार विपदाओं और अत्याचारों का उल्लेख तभी करते हैं जब पर्याप्त संख्या में मुस्लिम प्रजा पर उसका प्रभाव पड़ा हो। उनके लिए बहुसंख्यक हिन्दुओं का कोई महत्त्व नहीं था क्योंकि मुस्लिम शासनकाल में हिन्दुओं को समाप्त कर दिए जाने योग्य वस्तु समझा जाता था। जिजिया टैक्स का अर्थ यही था कि यदि हिन्दू जीवित रहें तो जीवन भर कष्ट उठाते रहें और मुसलमानों के गुलाम बनकर उनके लिए परिश्रम करते रहें।

जैसाकि ऊपर कहा गया है, अकबर के शासनकाल में बंगाल से लेकर गुजरात तक का उसका सारा प्रदेश घातक महामारियों और भयावह दुर्भिक्षों का शिकार रहा।

गुजरात के दुर्भिक्ष का वर्णन करते हुए डॉ० श्रीवास्तव ने कहा है कि जब (बिहार) में सैनिक अभियान सफलतापूर्वक चल रहा था तभी पश्चिम में गुजरात में १५७४-७५ में एक ऐसा दुर्भिक्ष पड़ा और महामारी

फैली जैसा कभी देखा और सुना नहीं गया। दोनों आपदाएं पाँच या छः महीने तक चलीं। दुर्भिक्ष का कारण अनावृष्टि नहीं था। बड़े पैमाने पर युद्ध, विद्रोह, सैनिक अभियान, कत्ले-आम आदि के फलस्वरूप जो विनाश हुआ और प्रशासन व्यवस्था और अर्थतन्त्र में जो अव्यवस्था फैली, उसके कारण यह दुर्भिक्ष फैला। इतिहासकार मुहम्मद हनीफ़ कंधारी ने ठीक ही लिखा है कि प्लेग और दुर्भिक्ष फैलने का कारण सिर्फ यह नहीं था कि पानी और हवा दूषित हो गए थे बल्कि अफगानों, अबीसीनियनों और मिर्जा लोगों द्वारा किया गया कुप्रबन्ध और दमन भी इसका कारण था। महामारी, शायद प्लेग थी, दुर्भिक्ष से पहले फैली। यह विकट संकट सारे गुजरात में व्याप्त था और बहुत-से निवासी प्रान्त छोड़कर भाग गए थे। मरने वालों की संख्या इतनी अधिक थी कि केवल अहमदाबाद नगर से प्रतिदिन लगभग १०० गाड़ी मुर्दे दफन के लिए बाहर ले जाए जाते थे और उनके लिए कब्र या कफ़न का कपड़ा तक मिलना कठिन हो गया था। उस महामारी का प्रभाव भड़ौच, पाटन और बड़ौदा जिलों और वास्तव में सारे गुजरात पर पड़ा। ज्वार का भाव बढ़कर छः रुपए प्रति मन हो गया। घोड़ों और दूसरे पशुओं को पेड़ों की छाल खिलानी पड़ी। ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि बादशाह ने पीड़ितों के लिए कुछ किया। दरबार का इतिवृत्त-लेखक अबुल फ़ज़ल इस आपदा के बारे में चुप है। यदि अकबर ने किसी तरह के सहायता-कार्य का आदेश दिया होता तो वह अपने बादशाह की प्रशंसा के मौके को हाथ से न जाने देता।" (अकबर : दी ग्रेट, पृष्ठ १६९-१७२)।

डॉ० श्रीवास्तव ने यह कहकर सही स्थिति बता दी है कि दुर्भिक्ष प्राकृतिक कारण से नहीं फैला बल्कि मुसलमानों की दुर्व्यवस्था और कुशासन के कारण फैला। परन्तु हम इतना और कह देना चाहेंगे कि दुर्भिक्ष के लिए जो कारण बताया गया है वह भारत में मुस्लिम शासन के १००० वर्षों में फैले सभी दुर्भिक्षों पर लागू होता है।

मुहम्मद हनीफ़ कंधारी ने केवल अफगानों, अबीसीनियनों और मिर्जा लोगों के कृत्यों को इस दुर्भिक्ष के लिए दोष देने में गलती की है। ऐसा करते हुए वह पक्षपात करता है। मुहम्मद बिन कासिम और उसके पश्चात् जो भी मुसलमान इस देश में शासक बनकर आए, चाहे वे किसी भी वंश के

रहे हों, चाहे वे तुर्की हों या अरब या ईरानी या अफगान या अबीसीनियाई या मंगोल, सभी समान रूप से अत्याचारी और विनाशकर्ता निकले। कुछ को अधिक अच्छा या अधिक बुरा मानने का कोई आधार नहीं है। इन सभी को हिन्दुओं और हिन्दू सभ्यता से घृणा थी और उन सबका यह विश्वास था कि जन्नत प्राप्त करने का सर्वाधिक सुनिश्चित रास्ता यह है कि हिन्दुत्व को नष्ट किया जाए और हर एक को इस्लाम धर्म कबूल करने को विवश किया जाए।

गुजरात के जिस दुर्भिक्ष का उल्लेख ऊपर किया गया है उसके विवरण में बल देने योग्य एक बात यह है कि यदि केवल मुसलमानों की लाशें ढोने के लिए प्रतिदिन १०० गाड़ियों की आवश्यकता हो तो मरने वाले हिन्दुओं की संख्या अवश्य ही सौ गुना रही होगी क्योंकि मुसलमानों की संख्या कुल जनसंख्या का केवल एक प्रतिशत होगी। फिर शासक मुस्लिम थे। उनके अपने मरने वालों की संख्या सौ गाड़ी प्रतिदिन थी तब पद-दलित और घृणित हिन्दू समुदाय के मृतकों की संख्या का भली प्रकार अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। स्पष्ट है कि सौ गाड़ी प्रतिदिन की लाशें केवल मुसलमानों की ही रही होंगी क्योंकि विवरण में लिखा है कि उन्हें जलाने के लिए नहीं बल्कि दफनाने के लिए ले जाते थे।

अकबर के शासन काल में पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक भारत के सभी भागों में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था, यह बात इस रिपोर्ट से स्पष्ट है कि "जब बादशाह कश्मीर में प्रवास कर रहे थे तब उस घाटी में (मई से नवम्बर १५९७ तक) भयंकर अकाल पड़ा। सभी वस्तुएँ बहुत महँगी हो गईं और लोग अपने घर एवं परिवारों को छोड़कर अन्यत्र चले गए। ज़ेरोम जेवियर ने लिखा कि माताएँ अपने बच्चों को सड़कों पर फेंक देती थीं कि वे मर जाएँ। ईसाई मिशनरी उन्हें उठाकर ले आते थे। (मैक्लागन, पृष्ठ ५६; ड्यू ज़ारिक, पृष्ठ ७७-७८)" (अकबर : दी ग्रेट, पृ० ४०८)।

गुजरात के अकाल के बारे में विंसेंट स्मिथ ने लिखा है कि "गुजरात में (जहाँ भारत के दूसरे अधिकांश भागों की अपेक्षा अकाल कम पड़ते हैं) अकाल तथा महामारी (१५७४-७५) के कारण बहुत हानि हुई।...दोनों का प्रकोप लगभग छः महीने तक रहा।...चीज़ों के भाव बहुत अधिक बढ़

गए ''घोड़ों और गायों को पेड़ों की छाल पर जीवित रखना पड़ा। (तबकात-ए-अकबरी, इलियट एण्ड डाउसन, पाँचवाँ भाग, पृ० ३८४)

स्मिथ ने लिखा है : "१५९६ के आस-पास सम्पूर्ण उत्तर भारत में भयंकर दुष्काल का प्रकोप रहा, यह १५९५-९६ से शुरू होकर तीन-चार वर्ष तक चला।" एक समकालीन इतिहास-लेखक ने लिखा है कि "एक तरह के प्लेग ने भी इस अवधि की भयावह स्थिति को बढ़ाने में सहायता की, छोटे गाँवों और बसेरों की कौन कहे, पूरे परिवार और नगर वीरान हो गए। अनाज की कमी और भूख की परेशानी के कारण मनुष्य ने मनुष्य को अपना भोजन बनाया। सड़कें और गलियाँ लाशों से भर गईं। उन्हें हटाने के लिए कोई सहायता नहीं दी जाती थी (पाद-टिप्पणी : नूरुल हक, पृष्ठ १९३)। अबुल फ़ज़ल ने इस आपदा का वर्णन ऐसी विशिष्ट भाषा में किया है जिससे स्थिति की गम्भीरता के बारे में कुछ भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अबुल फ़ज़ल ने लिखा है कि "शाही आदेशों के अधीन सभी लोगों को दैनिक जीवन की पूरी आवश्यकताएँ प्राप्त हो जाती थीं और हर वर्ग के निर्धन व्यक्तियों की देखभाल के लिए ऐसे लोगों को सौंपा जाता था, जो उनकी देखभाल कर सकते थे। (इलियट एण्ड डाउसन, भाग ६, पृ० ९४)। यह वक्तव्य समग्र रूप में झूठ है। लाखों व्यक्तियों की पीड़ा के बजाय अबुल फ़ज़ल को यह अधिक अच्छा लगता है कि वह अपने पालन-कर्ता को प्रशंसा की मदिरा की एक और घूंट पिलाए।''' मरने वालों की संख्या अवश्य ही भयावह रही होगी। फरिश्ता ने, जिसकी प्रसिद्ध पुस्तक फारसी में भारतीय इतिहास का सर्वोत्तम निष्कर्ष प्रस्तुत करती है, इस दुर्भिक्ष का उल्लेख तक नहीं किया है और इसीलिए एल्फिस्टन ने उसकी उपेक्षा कर दी है। जिस छोटे इतिहास-लेखक का उद्धरण ऊपर दिया गया है, यदि उसने कुछ पंक्तियाँ न लिखी होतीं तो शायद यह तथ्य भी प्रकाश में न आता कि ऐसी कोई आपदा आई थी।··· १५९७ की ईसाई मिशनों की रिपोर्टों में कहा गया है कि उस वर्ष लाहौर में एक बड़ी महामारी का प्रकोप हुआ जिससे पादरियों को ऐसे बहुत से बच्चों का बपतिस्मा करने का मौका मिला जिन्हें उनके माता-पिता ने त्याग दिया था।" (पाद-टिप्पणी : मैक्लागन, पृ० ७१) (वही, पृ० १९२-९४)।

मुस्लिम इतिहासकारों की अति-अविश्वसनीयता के बारे में स्मिथ ने ऊपर जो कुछ कहा है उसका पूर्ण समर्थन करते हुए हम इतना और कह देना चाहेंगे कि जब अबुल फ़ज़ल लिखता है कि निर्धन लोगों को···सौंप दिया गया, तब इसका अर्थ अधिक गम्भीर है। यह सम्भव है कि कुछ निर्धन मुसलमानों की देखभाल या उन्हें खिलाने-पिलाने की जिम्मेदारी किन्हीं सम्पन्न दरबारियों पर डाल दी गई हो जिन्हें अकबर सजा देना चाहता था या गरीब बना देना चाहता था। हिन्दू यदि लाखों की संख्या में मर जाएँ तो इससे अकबर को कोई चिन्ता नहीं हो सकती थी। मुस्लिम इतिहासकारों ने जो विवरण दिए हैं, उनके स्पष्ट और अन्तर्निहित अर्थों को समझने के लिए बहुत सजग और सतर्क बुद्धि की आवश्यकता है।

: १८ :

धर्मान्धता

अकबर जन्म से मुसलमान था, जीवन भर कट्टर मुसलमान रहा और मरते समय भी वह मुसलमान ही था—बल्कि वह धर्मान्ध मुसलमान था। साधारण श्रेणी के इतिहास-ग्रन्थों में उसे धर्मनिष्ठ हिन्दू से लेकर अज्ञेयवादी उदार अथवा सभी धर्मों का समन्वय करने वाला उदारवादी तक बताया जाता है। अन्य तथ्यों की भाँति अकबर की मुस्लिम धर्मान्धता पर भी सफेदी पोत दी गई है। मुस्लिम शासनकाल में जान-बूझकर अकबर का ऐसा चित्रण किया गया है कि लगातार और कष्टदायी अत्याचारों के लगभग १००० वर्ष लम्बे मुस्लिम शासनकाल में कम-से-कम एक मुस्लिम बादशाह को आने वाली सन्तति के सामने आदर्श रूप में प्रस्तुत किया जा सके। अकबर के बाद भी मुसलमानों का शासन २५२ वर्ष चलता रहा, इसलिए मनोयोगपूर्वक प्रस्तुत किया गया अकबर का कपटपूर्ण चित्रण जन-मानस को प्रभावित कर सका और अकबर को निर्विवाद रूप से ऐसा उदार शासक मान लिया गया जो अपने शासन के सभी दूसरे मामलों की तरह धर्म के मामले में भी बहुत उदार और सहिष्णु था। कुछ लोग सन्देह करते थे कि यह चित्रण जालसाज़ी है, परन्तु उन्होंने अपने विचार प्रकट करने का साहस नहीं किया क्योंकि उनका विश्वास था कि यदि ऐसी झूठी बातों को बना रहने दिया गया तो इससे साम्प्रदायिक सौमनस्य बनेगा या फिर उनकी कमज़ोर आवाज़ सुनी ही नहीं जाएगी या वह अकबर की महानता के कोलाहल में दबकर रह जाएगी। हमारे पास इस बात के बहुत-से प्रमाण हैं कि अकबर भारत में शासन करने वाले किसी भी अन्य मुस्लिम की अपेक्षा कम धर्मान्ध नहीं था। इनमें कम या अधिक का चुनाव करने वाली कोई बात नहीं है। वे सभी पूर्ण रूप से धर्मान्ध थे।

हम पहले सिद्ध कर चुके हैं कि अबुल फ़ज़ल अथवा बदायूंनी जैसे

चापलूसों का अकबर के बारे में यह कथन तथ्यों से सिद्ध नहीं होता कि अकबर ने जिज़िया समाप्त कर दिया था। (यह टैक्स विभेद करते हुए केवल हिन्दुओं से इसलिए लिया जाता था कि मुस्लिम शासक उन्हें पीड़ित रहकर जीवित रहने को विवश कर सकें।) जैन साधु हीरविजय सूरि तथा सुरजन सिंह जैसे लोगों को अपने-अपने लिए इस टैक्स से विमुक्ति के लिए प्रार्थना करनी पड़ी थी। और यह विमुक्ति दे दिए जाने के बाद भी उस-पर गम्भीरता से अमल नहीं होता था।

गोवध पर पाबन्दी लगाये जाने की बात भी ऐसी ही है। अकबर के शासनकाल में गोवध उसी तरह लगातार जारी रहा जिस तरह वह सम्पूर्ण मुस्लिम शासन-काल में जारी रहा था। सर एच० एम० इलियट और विंसेंट स्मिथ जैसे कई इतिहासकारों ने बार-बार कहा है कि अकबर-नामा और जहाँगीरनामा जैसे इतिहास-ग्रन्थों में अपने आपको ठीक मान-कर चलने वाले जो दावे किये हैं, उन्हें गम्भीरता से नहीं लिया जाना चाहिए। जो लोग यह दावा करते हैं कि उनके पास इस आशय का लिखित फरमान है कि अकबर ने गो-वध को बन्द किया था, उन्हें चाहिए कि वे पहले यह देखें कि जो अभिलेख उनके पास है वह सच्चा है या जाली है। दूसरे वे यह भी पायेंगे कि अकबर के विश्वासोत्पादक आदेश एक तरह का धोखा थे। हीरविजय सूरि या सुरजन सिंह को जिज़िये में दी गई छूट की तरह ये आदेश महत्त्वहीन आदेश थे।

विंसेंट स्मिथ ने लिखा है कि ईसाई पादरियों ने अकबर के दरबार में आकर उसे जो बाइबल भेंट किया था वह "बहुत देर बाद उन्हें लौटा दिया गया।" जब अकबर ने यह अनुभव किया कि उसका उपयोग नहीं रहा या उदार होने या ईसाई मत के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का दिखावा करते रहना आवश्यक नहीं रहा।

स्मिथ ने एक समकालीन अंग्रेज सर टामस रो का, जिन्होंने भारत का पर्यटन किया था, उद्धरण देते हुए लिखा है कि "अकबर की मृत्यु उसके औपचारिक धर्म में रहते हुए हुई।" (फोस्टर, पृष्ठ १३२)। फादर बोएल्हो ने भी दावा किया है कि अकबर "अन्त में मुस्लिम के रूप में मरा, जिस रूप में कि उसका जन्म हुआ था।"

"अबुल फ़ज़ल की कृतियों में तथा अकबर के कथनों में सामान्य

सहनशीलता के बारे में जो श्रेष्ठ बातें कही गई हैं, उनके बावजूद भी असहनशीलता के कई भयंकर कार्य किए गये।" (वही, पृष्ठ १५६)।

"एक्वाविवा द्वारा गोवा के रेक्टर के नाम लिखे गये १० दिसम्बर, १५८० के एक पत्र में कहा गया है—'एक मोहम्मद के घृणित नाम के सिवाय हमें कुछ भी सुनाई नहीं देता···एक शब्द में यहाँ मोहम्मद ही सबकुछ है—एक क्राइस्ट विरोधी व्यक्ति का शासन है।" (वही, पृष्ठ ११५)।

"अकबर निश्चय ही पारसी न बन सका। हिन्दू, जैन और ईसाई धर्म के प्रति भी उसका व्यवहार ऐसा ही रहा। वह प्रत्येक धर्म में केवल इतना ही आगे बढ़ा कि विभिन्न धर्मों के लोगों को यह विश्वास करने का पर्याप्त आधार मिल जाये कि वह पारसी, हिन्दू, जैन या ईसाई है।" (वही, पृष्ठ ११८)।

हम पिछले एक अध्याय में इतिहासकार बदायूंनी का यह उद्धरण दे आए हैं कि राणा प्रताप के विरुद्ध हल्दी घाटी की लड़ाई में बदायूंनी और अकबर के सेनापति इस बात पर एकमत थे कि वे अकबर की अपनी ही सेना में हिन्दुओं को मौत के घाट उतारते चले जायें क्योंकि उनका विचार था कि हिन्दू किसी पक्ष का मरे उससे इस्लाम को ही लाभ होगा। जो हिन्दू अकबर साम्राज्य का विस्तार करने लिए अपने जीवन को होम कर रहे थे, उन्हीं को कत्ल करना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि अकबर भयंकर रूप में धर्मान्ध मुस्लिम था। यदि वह इतना ही उदार होता जितना उसे बताया जाता है तो उसके सैनिक और सेनापति कम-से-कम अपने मित्र और सहायक हिन्दुओं को न मारते।

"धर्म-चर्चा सुनने और उसमें भाग लेने के लिए जो लोग आमन्त्रित किये जाते थे, उनमें चार वर्गों के मुस्लिम थे, शेख, सैयद, उलेमा और अमीर···उपासना-गृह केवल मुस्लिमों के उपयोग के लिए बनाया गया था।" (वही, पृष्ठ ६४-६५)।

"उसकी माता हमीदा बानो बेगम और बुआ गुलबदन बेगम बहुत सद्‌निष्ठ मुस्लिम थीं और वे धर्म में किसी भी परिवर्तन का विरोध करती थीं। सलीमा सुलताना बेगम (बहराम खाँ की विधवा और अकबर की पत्नी) के साथ वह अक्तूबर १५७५ में मक्का की जियारत पर निकली। पुर्तगालियों ने उसे सूरत में लगभग एक वर्ष तक रोके रखा। अन्ततः वह

सुरक्षापूर्वक यात्रा पर गई और यात्रा करने के बाद भारत में १५८२ के आरम्भ में वापस लौटी। गुलबदन बेगम ने अपने काफी रोचक संस्मरण लिखे हैं जो एक अपूर्ण पांडुलिपि के रूप में सुरक्षित हैं, परन्तु तीर्थयात्रा के सम्बन्ध में उसने अपना कोई लिखित संस्मरण नहीं छोड़ा है।" (वही, पृष्ठ ६६)।

"पुरुष हाजियों का एक बड़ा जत्था भी एक व्यक्ति (मीर हाजी) के नेतृत्व में भेजा गया था। यह नई और महँगी व्यवस्था पाँच या छः वर्ष तक चली और अकबर स्वयं भी ज़ियारत पर जाना चाहता था (परन्तु जोखिमों को देखते हुए अपने मन्त्रियों की सलाह पर वह नहीं गया।) बादशाह ने एक सार्वजनिक आदेश जारी किया···कि कोई भी व्यक्ति सरकारी खर्च पर मक्का की ज़ियारत पर जा सकता है।"

हिन्दुस्तान का जो बादशाह खुद मक्का की ज़ियारत पर जाने को तरसता है और ऐसा आदेश जारी करता है कि कोई भी व्यक्ति हिन्दुओं से विभेदात्मक आधार पर उगाहे गए टैक्सों से सम्पन्न ख़ज़ाने के खर्च पर मुस्लिम तीर्थों की यात्रा पर जा सकता है वह धर्मान्ध मुसलमान नहीं है तो क्या है ?

हम पहले यह उद्धरण दे चुके हैं कि अकबर ने अब्दुन नबी को मक्का के हज के लिए सात हज़ार रुपये दिए थे। अकबर ने जिस तरह थानेसर में हिन्दू पुजारियों के दो वर्गों—कूरों और पुरियों में लड़ाई कराई और कमज़ोर पक्ष की मदद करता रहा; ताकि दोनों वर्ग एक-दूसरे को नष्ट कर दें, और इस भयानक युद्ध में उसने अपने मुस्लिम फौजी भी झोंक दिए ताकि उन पक्षों में से कोई भी जीवित न बचे। इस सबसे पता चलता है कि अकबर कितना धर्मान्ध मुस्लिम था।

हम यह उद्धरण दे चुके हैं कि अकबर वर्ष में एक या दो बार अजमेर में मुस्लिम फकीर शेख मोइनुद्दीन चिश्ती के मज़ार पर जाता था या एक और मुस्लिम शेख सलीम चिश्ती को संरक्षण प्रदान करता था। यदि अकबर का आकर्षण दूसरे किसी धर्म की ओर होता तो वह अपनी निष्ठा केवल कुछ मुस्लिम फकीरों तक सीमित न रखता।

अकबर के शासनकाल में मन्दिरों को गिराने अथवा उन्हें मस्जिदों के रूप में परिवर्तित किए जाने और वहाँ गायों की हत्या किए जाने (जैसा

नगरकोट में हुआ) का क्रम ठीक वैसे ही जारी रहा जैसे किसी भी दूसरे मुस्लिम शासक के समय में जारी रहा था।

ईसाई पादरियों को अकबर के साथ बैठकर धर्म-चर्चा करने अथवा उसे ईसाई-मत के पक्ष में प्रभावित करने का बहुत कम अवसर मिला। पादरियों का धैर्य धीरे-धीरे टूटने लगा।...अकबर ने ज़ेवियर को यह कहकर चुप कर दिया कि "तुम्हें अपने धर्म का प्रचार करने की जो स्वाधीनता दी गई है, वह अपने-आप में बहुत बड़ी सेवा है।" (ज़ेवियर का पत्र, दिनांक १ अगस्त, १५९९, मैक्लागन, पृष्ठ ५७, ड्यू जारिक में भी पृष्ठ ९०-९१) (अकबर : दी ग्रेट, डॉ० श्रीवास्तव, पृष्ठ ४०९-१०)।

अकबर हिन्दू धर्म का इतना कट्टर दुश्मन था कि वह ईसाई पादरियों पर कृपा करने के लिए अपहृत हिन्दू मन्दिर उन्हें चर्च के रूप में काम में लाने के लिए दे दिया करता था। इस तरह आगरा के सभी पुराने गिरजा-घर पहले हिन्दू भवन थे। डॉ० श्रीवास्तव ने (पृष्ठ ४०७) लिखा है कि "एक प्रतिष्ठित हिन्दू परिवार ने कुछ ऐसे मकानों को, जो पादरियों को दे दिए गए थे, ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले विवाहित लोगों को बसाने के लिए वापस दिये जाने की माँग की। ज़ेवियर आगरा से अकबर के आदेश प्राप्त करने में सफल हो गया और ये मकान लाहौर मिशन के अधिकार में बने रहे। विरोध करने वाले हिन्दू परिवारों को यातनाएँ सहनी पडीं जिससे पिनहेरो महाशय को बहुत सन्तोष हुआ (मैक्लागन, पृष्ठ ६१-६४)। ज़ेवियर ने ६ सितम्बर, १६०४ के अपने पत्र में लिखा है कि "चर्च इतना बड़ा और सुन्दर है कि उसमें सभी काम भली प्रकार किए जा सकते हैं।"

पाठक इस बात पर ध्यान दें कि हिन्दुस्तान के एक मुस्लिम शासक के लिए यह कितनी अत्याचारपूर्ण बात थी कि उसने एक सम्पन्न हिन्दू परिवार को उसकी सम्पत्ति से वंचित किया और उसे पुर्तगालियों को सौंप दिया ताकि उनसे शस्त्रास्त्र प्राप्त होते रहें जिनसे वह हिन्दुओं को कत्ल कर सके।

नगरकोट के अभियान के सम्बन्ध में शैलट ने लिखा है—"एक सन्धि हुई। मुगल सेनापति ने राजा के महल के मुख्य द्वार के ऊपर एक मस्जिद बनवा दी।" (पृष्ठ ११८, अकबर)।

यहाँ और अन्यत्र भी सभी जगह मुस्लिम इतिहास-ग्रन्थों में "बनवा

दी" का अर्थ है किसी हिन्दू भवन को मुस्लिमों के लिए उपयोग किया जाने लगा। यह सर्वविदित है कि हिन्दू राजाओं के महलों के मुख्य द्वार के ऊपर गायकों के बैठने के लिए स्थान रखा जाता था। इसलिए नगरकोट के महल के द्वार के ऊपर जो मस्जिद बनवाई गई वह वास्तव में उसके एक भाग पर क्रूरतापूर्ण अधिकार था। यह प्रचलित प्रथा थी। यही कारण है कि एक हज़ार वर्ष के मुस्लिम शासनकाल में प्रायः कोई भी हिन्दू मन्दिर ऐसा नहीं रह गया था जिसे पूर्णतः या अंशतः मकबरे अथवा मस्जिद में न बदल दिया गया हो। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण हिन्दू मन्दिरों में एक मुस्लिम मकबरा मौजूद है, उदाहरण के लिए काशी विश्वनाथ, भगवान् कृष्ण के जन्म-स्थान, उनके परलोक-वास के स्थान, राम मन्दिर, पालिताना और गिरनार की पहाड़ियाँ, सोमनाथ और अहमदाबाद की कई मस्जिदों और मकबरों को देखा जा सकता है।

आगरे के चर्च के उदाहरण से स्पष्ट है कि मध्यकाल के सभी गिरजाघर भी पहले हिन्दू भवन थे या फिर मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं को अपमानित करते हुए ईसाई पादरियों को खुश करने के लिए हिन्दुओं की भूमि उनसे छीन कर ईसाइयों को दे दी।

अकबर के समय में गुजरात पर दूसरे मुसलमानों का शासन था। इसके बारे में श्री शैलट ने लिखा है कि "महमूद ने चम्पानेर पर चढ़ाई कर दी और उसे फत्तू से छीन लिया और साथ ही दरया खाँ का ख़ज़ाना और लगभग ५००० महिलाएँ भी उसके हाथ लगीं। महमूद बहादुर था, मगर उसकी आदतें बहुत अच्छी नहीं थीं और वह कुत्सित वासनाओं में आनन्द लेता था। अहमदाबाद वापस आने पर एक बार फिर उसे भद्रा के किले में बन्दी बना दिया था।...अन्ततः अपने धोखेबाज़ अमीरों की तानाशाही से मुक्ति पाकर महमूद ने अगले नौ वर्ष तक स्वयं राज-काज सँभाला। वह हिन्दू प्रजा को सताकर अपना धार्मिक उत्साह दिखाने लगा। किसी भी हिन्दू को किसी भी नगर में घोड़े पर सवार होने की अनुमति नहीं थी और उसे बाज़ार में जाते समय ऐसी कमीज़ पहननी पड़ती थी जिसकी पीठ पर सफेद कपड़े के ऊपर लाल या लाल कपड़े के ऊपर सफेद रंग का टुकड़ा लगा हो। उसे किसी एक रंग के वस्त्र पहनने की मनाही थी। हिन्दुओं के त्यौहार होली और दीवाली पर पाबन्दी लगा दी गई और मन्दिर में घण्टी बजाने

पर भी रोक लगा दी गई। जो लोग घर में बैठकर पूजा करते थे वे भी भयभीत रहते थे। किसी भी राजपूत अथवा कोली को तभी बाहर जाने की अनुमति होती थी जबकि उसकी बाँह पर एक खास निशान बना हो। जिसकी बाँह पर यह निशान नहीं मिलता था, उसे फौरन मार दिया जाता था (बेयले, गुजरात, पृष्ठ ४२७)।

गुजरात में हिन्दुओं को इस तरह अपमानजनक नियन्त्रण में रहने को विवश किया जाता था। यदि अकबर इन नियन्त्रणों को समाप्त कर देता तो इसे इतिहास में उसकी उदारता, निष्पक्षता और न्यायप्रियता कहकर उसकी प्रशंसा की जाती। परन्तु अकबर द्वारा गुजरात विजित किए जाने के बाद भी वहाँ के हिन्दुओं की दशा में कोई सुधार होने का उल्लेख नहीं मिलता, इससे स्पष्ट है कि अकबर के शासन से उनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया। महमूद ने १६वीं शताब्दी में हिन्दुओं के साथ जिस तरह का व्यवहार किया, उसने प्रकट होता है कि ८वीं शताब्दी के आरम्भ में मुहम्मद बिन कासिम से लेकर १८५८ में मुस्लिम शासन की समाप्ति तक जितने भी मुस्लिम शासकों ने भारत में राज्य किया, चाहे वे किसी भी वंश, परिवार अथवा राष्ट्रीयता के थे, और चाहे उनकी आयु कुछ भी रही हो, उन सबका शासनकाल हिन्दुओं के लिए आतंक, उत्पीड़न, गुलामी, अपमान और भीषण अत्याचारों का समय रहा।

"२२ अक्तूबर, १५७३ को अकबर ने तीनों शाहजादों के खतने की रस्म बड़ी धूमधाम से मनाई।...दूरस्थ मेवाड़ में (१५७४ में) मोहन और रामपुरा नाम के दो ज़िलों का नाम बदलकर इस्लामपुर रख दिया गया। अकबर ने दूसरे जिलों में भी मुस्लिम बस्तियाँ बसाने का प्रयत्न किया और इस तरह बुधनौर, रुहलिया बवेबरा, पुर और भीमरावर में बड़े-बड़े क्षेत्र मुसलमानों को सौंप दिये गए।" (श्रीराम शर्मा लिखित 'महाराणा प्रताप', पृष्ठ ३३-३६)।

"सितम्बर १५७७ में अकबर ने हज यात्रियों का एक जत्था भेजा जिसके साथ हिजाज के निवासियों में वितरण के लिए पाँच लाख रुपए नकद और सोलह हज़ार खिलतें भी भेजीं।" (अकबरनामा, अनुवाद, भाग तीन, पृ० ३०५-०६)। बदायूँनी ने भी स्वीकार किया है कि बादशाह ने बहुत से लोगों को सोना और सामान और कीमती उपहार देकर काफ़ी

राजकीय खर्च पर मक्का भेजा। इस प्रमाण के आधार पर बदायूंनी और कुछ दूसरे लोगों के इस आरोप पर विश्वास करना असम्भव है कि अकबर ने अपने धर्म का परित्याग कर दिया था।

बदायूंनी एक असन्तुष्ट दरबारी और धर्मान्ध मुस्लिम था। इसलिए वह अकबर द्वारा कभी-कभी की जाने वाली मनमानी को सहन नहीं कर सकता था और अकबर जैसे तानाशाह पर अपनी प्रतिक्रिया दर्शाने का मात्र एक ही साधन था कि उसे हिन्दू बताया जाए। यह सबसे बड़ी गाली थी जो बदायूँनी जैसा छोटा और गुलाम धर्मान्ध मुस्लिम दरबारी अकबर जैसे शक्तिशाली तानाशाह को दे सकता था और फिर भी बच सकता था।

अकबर इतना धर्मान्ध मुस्लिम था कि वह केवल पुरुषों को ही नहीं बल्कि जिलों, नगरों, मन्दिरों और हाथियों तक को मुसलमान बना दिया करता था।

बदायूँनी ने लिखा है कि रामप्रसाद नाम का राणा प्रताप का जो हाथी हल्दी-घाटी के युद्ध के बाद अकबर को भेंट किया गया था, उसका नाम उसने बदलकर पीर प्रसाद रख दिया। (बदायूंनी का इतिहास, भाग २, पृ० २४३)।

९८९ हिजरी के आस-पास "अकबर ने शेखों के एक वर्ग को पकड़ा जो अपने-आपको 'शिष्य' कहते थे परन्तु जिन्हें सामान्यतः इलाही कहकर पुकारा जाता था। इस्लाम की हिदायतों और व्यवस्थाओं तथा रोज़ों के लिए भी उन्होंने इसी तरह के नाम रख लिये थे। बादशाह सलामत ने उनसे पूछा कि क्या तुम्हें अपनी अहमन्यताओं पर पश्चात्ताप है ? उसके आदेश पर उन्हें भक्कर और कंधार भेज दिया गया जहाँ उन्हें तुर्की बछेड़ों के बदले में व्यापारियों के हवाले कर दिया गया।" (वही, पृ० ३०८) इस उदाहरण से स्पष्ट है कि अकबर इतना अधिक धर्मान्ध मुस्लिम था कि वह अर्द्ध-मुस्लिम समुदाय के अस्तित्व को भी सहन नहीं कर सकता था।

जब शाह आबू तुरब और ऐतिमादखाँ गुजराती अपने साथ मक्का से पत्थर का एक टुकड़ा लाए जिसपर उनके दावे के अनुसार मोहम्मद के पैरों के निशान बने थे, तब "अकबर ने आठ मील तक आगे जाकर उसका स्वागत किया और अपने दरबारियों को आदेश दिया कि उसे बारी-बारी कुछ कदम तक लेकर चलें। इस तरह पत्थर का वह टुकड़ा नगर तक लाया

गया।" (वही, पृ० ३२०)।

"हिजरी सन् का एक हजारवाँ वर्ष पूरा हो जाने पर अकबर ने इस्लाम के सभी बादशाहों का इतिहास लिखे जाने का आदेश दिया।" (वही, पृ० ३२७) हिन्दुस्तान के एक बादशाह अकबर ने हिजरी सन् के एक हजारवें वर्ष की यादगार मनाई और केवल मुस्लिम शासकों का इतिहास लिखे जाने का आदेश दिया, यह इस बात का संकेतक है कि अकबर किस हद तक धर्मान्ध मुसलमान था।

किसी भी दूसरे मुस्लिम शासक की तरह अकबर हिन्दुओं के खून का प्यासा था। बदायूँनी ने लिखा है कि "मैंने अकबर के पास जाकर निवेदन किया कि धर्म-युद्ध (अर्थात् हिन्दुओं के कत्ल) में भाग लेने की मेरी बड़ी उत्कट इच्छा है। मैं चाहता हूँ कि मैं अपनी यह काली दाढ़ी और मूंछे (राणा प्रताप की लड़ाई में हिन्दुओं के) खून से रंग लूं और इस तरह बादशाह सलामत के प्रति अपनी निष्ठा का परिचय दूं। इतना कहकर मैंने अपना हाथ सोफे की तरफ बढ़ाया कि मैं बादशाह के चरणों को स्पर्श कर सकूँ। परन्तु बादशाह ने अपने पैर खींच लिये, परन्तु मैं दीवान खाने से बाहर निकालने ही वाला था कि उन्होंने मुझे वापस बुलाया और दोनों हाथों में भरकर ५० अशर्फियाँ देकर मुझे विदा किया।" (वही, पृष्ठ २३४)।

बदायूँनी के इस कथन से कि हिन्दुओं के खून से अपनी दाढ़ी-मूंछ रंग लेने की इच्छा प्रकट करने पर अकबर ने क्रोध करने की बजाय उसे सोने की मुद्राएँ भेंट कीं, यह पता लगता है कि अकबर हिन्दुओं के कत्ल को कितना महत्त्व देता था। इससे यह दावा झूठ सिद्ध हो जाना चाहिए कि हिन्दुओं के साथ अकबर का व्यवहार अच्छा था। किसी मध्यकालीन शासक और दरबारी की तरह अकबर हिन्दुओं से घृणा करता था।

अकबर के शासनकाल में हिन्दुओं के उत्पीड़न में कोई कमी नहीं आई। उन्हें नीच कोटि का नागरिक समझकर उनके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। इसका प्रमाण आईने-अकबरी से मिल जाता है। अबुल फ़ज़ल ने लिखा है: "दूसरे वर्ष (अकबर के शासन के दूसरे वर्ष) में मानकोट की विजय के पश्चात् अकबर ने हुसैन खाँ को लाहौर का गवर्नर बना दिया। गवर्नर-काल की चार महीने और चार दिन की अवधि में

उसने अपने आपको एक उत्साही सुन्नी मुसलमान के रूप में सिद्ध करके दिखाया, जिस तरह ईसाइयों ने यहूदियों के साथ किया था। उसने हिन्दुओं को विवश किया कि वह अपने कन्धे पर एक टुकड़ा पहनें, और इस तरह उसका नाम टुकड़िया पड़ गया।" (आईने-अकबरी, पृ० ४०३)।

उस टुकड़े का स्पष्ट मतलब यह था कि हिन्दू लोग अलग पहचाने जा सकें और भूलकर भी उन्हें मानवीय व्यवहार न मिल सके। भेदभाव की इस नीति के अधीन केवल हिन्दू को कुत्ते या सूअर से भी बदतर समझा जाता था और सम्पूर्ण मुस्लिम शासनकाल में यही स्थिति बनी रही।

भारतीय इतिहास के बहुत से छात्रों, अध्यापकों और विद्वानों को, जिन्हें अकबर के काल्पनिक उदार शासन के बारे में मनगढ़न्त कहानियाँ पढ़ने और सुनने का अवसर मिलता रहा है, परम्परा से चली आ रही शिक्षा के सही होने में ज़रा भी सन्देह नहीं होता।

परन्तु जो लोग अकबर के निष्पक्ष और मानवीय शासन के दावे की सत्यता पर सन्देह करते हैं, उन्हें भी यह विश्वास है कि हालाँकि अन्दर से अकबर हिन्दुओं के प्रति घृणा करता था, परन्तु ऊपर से वह बहुत मिलनसार दिखाई देता था।

यह मत मानना गलती होगी। अकबर ने हिन्दुओं के प्रति अपनी घृणा को कभी छिपाया नहीं और कम भी नहीं किया, यह ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है।

किसी भी दूसरे मुस्लिम शासक की तरह अकबर के शासनकाल में हिन्दुओं से खुले रूप में घृणा की जाती थी, उनका तिरस्कार और अपमान किया जाता था और उनपर अत्याचार किए जाते थे। इसमें कहीं रत्ती भर भी कमी नहीं आई। अकबर भारत में मुस्लिम शासन की कई कड़ियों में से एक था जिन्होंने मिलकर भारत को जकड़ रखा था।

: १६ :

दुराचारपूर्ण प्रथाएँ

दुर्भिक्षों, विद्रोहों, युद्धों, भ्रष्टाचार और नृशंस अत्याचारों से पूर्ण अकबर का शासनकाल अत्यधिक क्रूर कुछ दुराचारपूर्ण प्रथाओं पर आधारित था। ये प्रथाएँ बहुत पुराने समय से, भारत में मुस्लिम शासन के प्रारम्भ से चली आ रही थीं और दिल्ली में मुगल शासन के अन्तिम समय तक चलती रहीं। इन प्रथाओं को बनाए रखने के लिए अकबर को दोष नहीं दिया जाना चाहिए। परन्तु क्योंकि उसे एक आदर्श, उदात्त, उदार, दयालु और सहनशील बादशाह के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता रहा है, इसलिए हम यह कह देना चाहते हैं कि मुस्लिम शासनकाल में जितने भी दुराचार प्रचलित थे, वे सब अकबर के शासनकाल में अपने हीनतम रूप में चलते रहे। अकबर ने इन दुराचारों को न तो समाप्त किया, न उनकी उग्रता को कम किया।

ऐसे दुराचारों में एक यह था कि उसके राज्य के सभी घोड़ों पर, वे चाहे किसी के भी हों, आवश्यक रूप से मोहर लगाई जाती थी। इसी तरह राज्य के सभी घोड़ों का बलात् अपहरण तो होता ही था, उनके स्वामी भी स्वतः बादशाह के गुलाम बन जाते थे। राज-चिह्न से अंकित घोड़े का स्वामी राजा का नौकर बन जाता था और उससे सेना में या अन्यत्र सेवा ली जा सकती थी और बदले में उसे एक पाई भी प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। जब कभी अकबर किसी नए प्रदेश पर अधिकार करता, तब उसके शासन में प्रचलित सभी अत्याचारपूर्ण प्रथाओं को उस प्रदेश पर लागू कर दिया जाता था। गुजरात की विजय के परिणामों से यह बात स्पष्ट हो जाती है। विंसेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक "अकबर : दी ग्रेट मुगल" में (पृष्ठ ६६) लिखा है कि "गुजरात विजय अन्तिम थी, फिर भी उत्पात चलते रहे··· (१५७३-७४) बादशाह ने राजा टोडरमल से सलाह करते

हुए मोहर अंकित करने के विनियम को परिचालित किया...यह घोड़ों पर मोहर अंकित करने की एक नियमित व्यवस्था थी...जो अलाउद्दीन खिलजी और शेरशाह की व्यवस्था पर आधारित थी ।''

स्वयं अकबर के रिश्तेदारों और धनी दरबारियों ने मोहर अंकित करने की प्रथा का विरोध किया। उसी पुस्तक में विंसेंट स्मिथ ने पृष्ठ ६८ पर लिखा है कि "विशेष रूप से अकबर के प्रिय सहपालित भाई मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका ने (घोड़ों पर मोहर अंकित करने की) इस प्रथा का इतना विरोध किया कि अकबर ने मजबूर होकर उसे आगरा में अपने महल में ही बन्दी बना दिया ।''

टोडरमल, जोकि हिन्दू था, इसलिए अकबर का सबसे अधिक प्रिय बन गया था कि उसने अकबर को अपनी सभी अत्याचारपूर्ण प्रथाएँ बनाए रखने में उसका समर्थन किया। अकबर की इन हीन प्रथाओं को लागू करने का काम एक हिन्दू के हाथ में था, इसीलिए बहुसंख्यक हिन्दू अपने-आपको एक ओर कुआँ और दूसरी ओर खाई वाली स्थिति में पाते थे।

उसी पुस्तक में पृष्ठ २६५ पर कहा गया है कि "१५८० का बंगाल का बड़ा विद्रोह होने का एक गौण कारण यह था कि अकबर जागीरों को वापस ले लेने, विवरणियाँ तैयार करने और घोड़ों पर नियमित रूप से शाही मोहर लगाने का आग्रह करता था जिसके कारण जनता में रोष था।''

बदायूँनी ने अपनी पुस्तक में पृष्ठ १९३-९९ पर लिखा है कि शाही मोहर लगाने की प्रथा और नियम को मीर बक्श ने प्रारम्भ किया, यह नियम सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में और उसके बाद शेरशाह के काल में भी प्रचलित था। यह निश्चित कर दिया गया कि हर अमीर को शुरू में घोड़े रखने को कहा जाए और हुक्म के मुताबिक पहरा देने, सन्देश लाने ले-जाने आदि के लिए तैयार रहे और जब वह अपने घुड़सवारों सहित बीस घोड़े दरबार में मोहर अंकित कराने के लिए हाज़िर कर दे तब उसे १००.या उससे अधिक घोड़ों का कमाण्डर बना दिया जाए। इसी नियम के अनुसार उन्हें उपयुक्त अनुपात में हाथी और ऊँट भी रखने होते थे। जब वे अपनी नई कुमुक में पूरी संख्या में घोड़े, हाथी इकट्ठे कर लेते थे, तब उनके गुणों के अनुसार उनका दर्जा बढ़ाकर १०००, २०००

या ५००० घोड़ों का कमाण्डर कर दिया जाता था। ५ हजार घोड़ों के कमाण्डर का पद सबसे बड़ा था। भर्ती करने के काम में उनकी प्रगति अच्छी न होने पर उनका पद घटा दिया जाता था।···सैनिकों की स्थिति और भी ख़राब हो गई क्योंकि अमीर लोग अपने अधिकांश नौकरों और घुड़सवार नौकरों को सैनिक वर्दी पहनाकर बादशाह की हाज़री में खड़ा कर देते थे परन्तु जब उन्हें जागीर मिल जाती थी तब वे अपने घुड़सवार नौकरों को छुट्टी दे देते और कोई नया संकट आने पर वे आवश्यकता के अनुसार बाहर से सैनिक 'उधार माँग कर' काम पूरा कर देते और काम पूरा हो जाने पर पुन: उनकी छुट्टी कर देते। इस तरह मनसबदारों की आमदनी और खर्च तो एक ही स्तर पर बने रहे, परन्तु बेचारे सैनिकों की हालत बिगड़ती चली गई, यहाँ तक कि वे किसी भी काम के योग्य न रह गए। सभी ओर से नीचे व्यवसायों के लोग —बुनकर, धोबी, कालीन साफ करने वाले और सब्जी बेचने वाले आते—इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों होते—उधार माँगे हुए घोड़े अपने साथ लाते और उनपर शाही मोहर लगवाकर कमाण्डरों के नाम लिखवा लेते या करोड़ी या किसी के दखली बना दिए जाते, और कुछ दिन बाद जब उन घोड़ों या उनकी काल्पनिक काठियों का कोई निशान बाकी नहीं रह जाता तब उन्हें पैदल ही अपना काम पूरा करना पड़ता था। कई बार स्वयं बादशाह के सामने दीवान-ए-खास में हाज़री के समय ऐसा होता था कि उनके हाथ-पाँव बाँधकर कपड़ों समेत उनका वजन किया जाता, तो वह ढाई से तीन मन के करीब निकलता परन्तु जांच पड़ताल करने पर मालूम होता कि वे किराए पर लाए गए हैं और काठी इत्यादि सब उधार माँगे हुए हैं···यह सब होता, मगर कोई सवाल नहीं कर सकता था।"

ऊपर जिस दुराचारपूर्ण प्रथा का सन्दर्भ प्रस्तुत किया गया है, उसमें भयावह आतंक की कल्पना की जा सकती है। हर आदमी गुलाम बनकर रह गया था। और हर एक के लिए सैनिक-सेवा आवश्यक हो गई थी। फिर उसे घोड़े, हाथी और दूसरे जानवरों का प्रबन्ध स्वयं करना पड़ता था। हर एक से यह आशा की जाती थी कि वह अधिक-से-अधिक लोगों को गुलाम बनाकर रखेगा ताकि उनसे सैनिकों का काम लिया जा सके। जो व्यक्ति स्वयं को और अपने नौकरों को मुस्लिम बादशाह के लिए

हिन्दुस्तान में लूट-पाट करने के लिए सेना में नहीं भेजता था, उसे कोड़े लगाए जाते थे, तंग किया जाता और मार भी दिया जाता था। भारत में इस्लाम इसी प्रकार के उपायों में फैला।

क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के सामने यह मजबूरी थी कि वह लोगों को गुलाम बनाकर और पशु एकत्र करके बादशाह की सेवा में प्रस्तुत करे, इसलिए अकबर से जमीन और पद पाने की आकांक्षा करने वाले लोग पशु लूटकर ले जाने लगे और अरक्षित लोगों का अपहरण करने लगे जिससे उन्हें अकबर के सामने पेश किया जा सके। इससे रिश्वत, चोरी, हत्या और उत्पीड़न जैसे दूसरे दुराचारों को भी पनपने का अवसर मिला। इससे सिद्ध हो जाता है कि दयालु और उदार न होकर, अकबर इतिहास के सबसे अधिक निष्ठुर और अत्याचारी बादशाहों में से एक था।

इस तरह अकबर ने एक ऐसी दुराचारपूर्ण व्यवस्था का नेतृत्व किया जिसके अन्तर्गत छोटे और बड़े आततायी व्यक्ति सामान्य जनता का खून चूसते थे।

अकबर के शासन के २३वें वर्ष में अमुल के शरीफ ने भारत का दौरा किया। अपनी पुस्तक में (पृष्ठ २५२-५३ पर) बदायूँनी ने लिखा है कि "पर्यटन करते-करते वह दक्कन गया जहाँ अपने आप पर काबू न होने के कारण उसने अपनी ओछी आदतों को प्रकट किया। दक्कन के शासक उसे कत्ल कर देना चाहते थे परन्तु उसे सिर्फ गधे पर बिठाकर नगर में घुमाया गया, परन्तु हिन्दुस्तान एक बहुत बड़ा देश है जहाँ सभी तरह की बेहूदगी और अनाचारों के लिए खुली जगह है और कोई भी दूसरे के काम में हस्त-क्षेप नहीं करता जिससे कोई भी व्यक्ति जो कुछ चाहे कर सकता है।" इस तरह स्वयं बदायूँनी के अनुसार मुस्लिम शासनकाल में भारत, चाहे वह दक्षिण भारत हो या उत्तरी भारत, एक ऐसा खुला स्थान बनकर रह गया था, जहाँ प्रत्येक मुस्लिम स्वेच्छाचारी था।

भारत में मुस्लिम शासन के दौरान एक प्रथा यह थी कि हर अभियान में पकड़े गए लोगों को गुलाम बनाकर रखा जाता था या उनकी हत्या कर दी जाती थी। अकबर के शासनकाल में भी यह प्रथा यथावत् प्रचलित रही। हम पहले ही देख चुके हैं कि किस तरह लोगों को उनके भारवाही पशुओं सहित गुलाम बना लिया जाता था और उनसे सैनिक-सेवा ली जाती थी।

राल्फ फिश ने, जिसने अकबर के समय में आगरा और फतेहपुर सीकरी का दौरा किया, अपने विवरण में लिखा है कि "मैंने जौहरी विलियम लीड्स को फतेहपुर में बादशाह जलालुद्दीन अकबर के पास रखा जिसने उसका भली-भाँति सत्कार किया और रहने को उसे एक मकान और सेवा के लिए पाँच गुलाम दिये।" कभी-कभी ऐसा होता था कि किसी विद्रोह को दबाने के बाद जो मुसलमान पकड़े जाते थे, उनके साथ भी गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता था, परन्तु भारत में मुस्लिम शासनकाल में और अकबर के शासनकाल में भी अधिकांश गुलाम हिन्दू ही थे। इन मनुष्यों को पशुओं की तरह बादशाह या उसके दरबारियों की इच्छा पर किसी भी छोटे-मोटे हीन काम पर लगा दिया जाता था।

अकबर विभिन्न विषयों पर अपने दरबारियों के साथ जो चर्चाएँ करता था, उनका उल्लेख करते हुए बदायूँनी ने अपनी पुस्तक (पृष्ठ २११) में लिखा है कि "इन दिनों (हिजरी ९८३) अकबर ने जो प्रश्न पूछे उनमें से पहला प्रश्न यह था कि कानून के अनुसार एक व्यक्ति कितनी आजाद पैदा हुई महिलाओं (अर्थात् मुस्लिम) से निकाह कर सकता है। धार्मिकों ने उत्तर दिया कि पैगम्बर ने चार की सीमा निर्धारित की है। इसपर बादशाह ने कहा कि अपनी जवानी के दिनों में मैंने कितनी ही आजाद पैदा हुई (अर्थात् मुस्लिम) और गुलाम (अर्थात् हिन्दू) लड़कियों से शादी की थीं।" इससे सिद्ध होता है कि अकबर बहुत से हिन्दू पुरुषों और महिलाओं को गुलाम के रूप में रखता था जिन्हें वह अपनी इच्छानुसार अनैतिक काम के लिए या छोटी-मोटी सेवा के लिए अपने दरबारियों को दे देता था।

उसी पुस्तक में पृ० ३०८ पर लिखा गया है कि "बहुत बड़ी संख्या में शेखों और फकीरों को दूसरे स्थानों पर, अधिकतर कंधार को भिजवा दिया गया, जहाँ उन्हें घोड़ों के बदले में दे दिया गया।...बादशाह ने शेखों के एक वर्ग को बन्दी बनाया।...अकबर की आज्ञा के अनुसार उन्हें भक्कर और कंधार भेज दिया गया जहाँ उन्हें तुर्की बछेड़ों के बदले में व्यापारियों को दे दिया गया।"

एक और अनर्थकारी प्रथा यह थी कि अकबर आग्रह करता था कि उसका पराजित शत्रु अपने परिवार और परिचारिका वर्ग में से चुनी हुई महिलाएँ अकबर के हरम में भेजे।

अकबर पराजित शत्रु के एक या एक से अधिक सम्बन्धियों को अपने पास बन्धक के रूप में रख लेता था। जब कभी उन लोगों को अकबर के शाही दरबार में लाया जाता तब हर बार उन्हें साष्टाँग सिजदा करना पड़ता था। इनमें से अधिकांश प्रथाएँ मुस्लिम आक्रमणकारियों के समय से चली आ रही थीं। मुस्लिम शासनकाल के वर्षों में इन्हें पूर्णता प्रदान की गई और इन्हें अधिक तीखे रूप में और अधिक बलपूर्वक लागू किया गया। अकबर के समय में उन दुराचारों की सख्ती और अधिक घृणास्पद हो गई थी। अकबर निश्चय ही इन कुप्रथाओं को निश्चित स्वरूप देने वालों में सबसे अधिक महान् था।

विद्रोहों की भरमार

अकबर के चरित्र की हर बात इतनी घृणित थी कि उसके प्रायः सभी पुरुष सम्बन्धियों ने, यहाँ तक कि उसके बेटे जहाँगीर उर्फ सलीम ने भी उसके विरुद्ध विद्रोह किया। उसके सम्पूर्ण शासनकाल में विद्रोहों का एक सिलसिला बना रहा और बीच-बीच में लम्बे युद्ध भी हुए।

विंसेंट स्मिथ ने (अकबर, दी ग्रेट मुगल, पृष्ठ २७६) लिखा है कि "अकबर के शासन में कहीं-न-कहीं विद्रोह चलता ही रहता था, और प्रांतों में ऐसे उत्पातों की संख्या अगणित रही होगी जिन्हें वहाँ के फौजदारों ने तत्काल दबा दिया और जिनका कोई लिखित उल्लेख नहीं मिलता।"

डॉ० श्रीवास्तव ने (अकबर : दी ग्रेट, पृष्ठ १८१) लिखा है कि "इतना बड़ा राज्य शायद ही कभी किसी तरह की अव्यवस्था या विद्रोह से मुक्त रहा हो। कोई-न-कोई मुखिया शासन की सतर्कता के अभाव ... या किसी दैवी आपदा का लाभ उठाकर विद्रोह का झंडा खड़ा कर देता था। नागरिकों में विक्षोभ की जो घटनाएँ हुईं, उनका विवरण उबा देने वाला होगा। एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण पर्याप्त होगा। फरवरी, १५६० में एक बार अकबर एक हथिनी पर सवार होकर जा रहा था। रास्ते में एक क्रुद्ध हाथी ने हथिनी पर हमला कर दिया। अकबर भूमि पर जा गिरा और उसे चेहरे पर गम्भीर चोटें आईं और वह बेहोश हो गया। उसकी गम्भीर चोटों और सम्भावित मृत्यु के बारे में अफवाहें फैल गईं और देश के दूरस्थ प्रदेशों में विद्रोह फूट पड़े और कई परगनों में उत्पादी लोगों ने लूट मचा दी। कुछ शेखावत राजपूतों ने अलवर जिले में बैरात का परगना लूट लिया और कुछ लोगों ने गुड़गाँव जिले में रिवाड़ी को लूटा। बरात का कलक्टर शाहबाज़ खाँ अपने-आपको असहाय पाकर कोइल (अलीगढ़) की तरफ भाग निकला। दियाल (दिवायल) के नेतृत्व में कुछ लोगों ने मेरठ नगर

के आसपास के क्षेत्र में गाँवों को लूट लिया।"

यदि अकबर इतना ही उदारचेता, न्यायप्रिय और दयालु शासक था जितना उसके बारे में कहा जाता है तो उसके जीवन-काल में उसके राज्य में शान्ति और सन्तोष व्याप्त रहता और उसकी मृत्यु होने पर प्रजा-जन उसकी सन्तान को प्रेम, निष्ठा, आशा और आदर की दृष्टि से देखते। उसके बदले अकबर की मृत्यु की अफवाह सुनते ही लोगों में दबा हुआ असन्तोष भड़क उठा था। अकबर के क्रूर और निष्ठुरतापूर्ण कृत्यों के कारण शाहज़ादों से लेकर गरीब आदमी तक सभी घबराते थे और इसी कारण से वे अकबर का तख्ता उलटने में समर्थ नहीं हो पाते थे। वे सभी चाहते थे कि अकबर मर जाए या किसी के हाथों कत्ल हो जाए।

अकबर के सम्पूर्ण शासनकाल में जो विद्रोह लगातार चलते रहे उनकी गम्भीरता दर्शाने के लिए हम यहाँ कुछ ऐसे इतिहासकारों की पुस्तकों में से उद्धरण दे रहे हैं जिन्होंने अकबर के बारे में लिखा है।

विंसेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक में पृष्ठ ४८ पर लिखा है—"अकबर का रिश्ते का मामू ख्वाजा मुअज्ज़म बहुत उग्र स्वभाव का था और उसने बहुत से कत्ल और दूसरे अपराध किए।···अकबर ने शिकार के बहाने यमुना नदी पार की।···ख्वाजा मुअज्ज़म पर आक्रमण किया और उसे गिरफ्तार करके नदी में फेंक दिया गया। वह डूबा नहीं। बाद में उसे ग्वालियर के किले में बन्द कर दिया गया जहाँ वह पागल होकर मर गया।"

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि सम्पूर्ण मुस्लिम इतिहास में 'शिकार' का अर्थ 'पशुओं का शिकार' नहीं है बल्कि हिन्दुओं और कभी-कभी मुस्लिम विद्रोहियों का शिकार है।

"जुलाई, १५६४ में पीर मुहम्मद (गवर्नर) के उत्तराधिकारी अब्दुल्ला खाँ उजबेक ने मालवा में विद्रोह कर दिया और अकबर को उसके विरुद्ध एक अभियान संगठित करना पड़ा। अकबर ने मांडू को पराजित किया और अब्दुल्ला को गुजरात की तरफ भगा दिया।" (वही, पृ० ५३)

"नगरचैन की आरामगाह में जब बादशाह आराम कर रहा था तभी समाचार मिला कि काबुल के शाहज़ादा मोहम्मद हाकिम ने पंजाब पर आक्रमण कर दिया है। खान ज़मान ने उसका अन्त कर दिया। फरवरी (१५६७) के अन्त में अकबर लाहौर पहुँचा परन्तु तबतक उसका भाई

सिंध पार कर चुका था।...इसी बीच गुप्त सूचना मिली कि मिर्जा लोगों ने...जो अकबर के दूर के रिश्तेदार थे...विद्रोह कर दिया है...इसलिए यह आवश्यक हो गया कि अकबर पंजाब को छोड़कर आगरा की तरफ जाए।" (पृष्ठ ५६)

"खान ज़मान के विद्रोह को पूरी तरह कुचलने के लिए अकबर मई, १५६७ में आगरा से चला। विद्रोही मुखिया शराब और विलास में निमग्न थे और उन्होंने रक्षक नियुक्त नहीं कर रखे थे। अकबर की सेना से जो युद्ध हुआ उसमें खान ज़मान मारा गया और उसके भाई बहादुर को बन्दी बनाकर उसका सिर काट दिया गया।...कई मुखियाओं को हाथी के पाँव के नीचे कुचलवा दिया गया। (युद्ध इलाहाबाद जिले के एक गाँव में हुआ था।) एक आदेश जारी किया गया कि जो कोई व्यक्ति किसी विद्रोही मुगल का सिर काटकर लाएगा उसे सोने की मुहर दी जाएगी और जो कोई व्यक्ति किसी हिन्दुस्तानी का सिर काटकर लाएगा उसे एक रुपया दिया जाएगा" (पृष्ठ ५७)। इससे स्पष्ट है कि किस तरह भारत के रहने वालों के सिर की कीमत भी विदेशी मुगलों के मुकाबले कम आँकी जाती थी। इसका कारण यह था कि हिन्दुस्तानियों को हर रोज किसी-न-किसी बहाने से हजारों की संख्या में कत्ल किया जा रहा था।

"लगभग इसी समय (१५७२ के अन्त में) सूचना मिली कि इब्राहिम मिर्जा ने रुस्तम खाँ नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति का कत्ल कर दिया है और वह और भी बहुत-कुछ करने की सोच रहा है। मिर्जा लोगों का गढ़ सूरत में था। अकबर उस समय बड़ौदा के निकट था। उसने शत्रु के विरुद्ध सेना बढ़ाने का निश्चय किया। जब वह माही के निकट पहुँचा तो पता चला कि शत्रु सेना ने थासरा के पूर्व पाँच मील दूर सरनाल नामक एक छोटे नगर पर अधिकार कर रखा है। भगवानदास के भाई भूपत को कत्ल कर दिया गया। विजयी अकबर २४ दिसम्बर को अपने कैम्प में लौट आया।" (वही, पृष्ठ ७९-८०)।

"अकबर के गुजरात से लौटने के कुछ ही समय बाद वहाँ दुर्दमनीय मिर्जा मुहम्मद हुसैन और अख्तियार-उल-मुल्क नामक मुखिया के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। अकबर की सेना उस समय असंगठित थी और उसमें सैनिकों की कमी हो गई थी तथा साज-सामान भी घिस-पिट चुका था। इसलिए यह

आवश्यक हो गया था कि नए अभियान के लिए शाही खजाने की मदद से साज-सामान जुटाया जाए। २३ अगस्त, १५७३ को उसने तैयारी पूरी करके प्रस्थान किया। ११ दिन में वह ६०० मील पहुँचा। अहमदाबाद में २ सितम्बर, १५७३ को यद्ध हुआ। मुहम्मद हुसैन मिर्जा को कैद कर लिया गया। अख्तियार-उल-मुल्क को कत्ल कर दिया गया। मिर्जा की सभी पदवियाँ छीन ली गईं। उस समय की घृणित प्रथा के अनुसार २००० से ज्यादा विद्रोही लोगों के सिरों को एक मीनार के रूप में सजाया गया। शाह मिर्जा को घर से निकालकर खाना-बदोश बना दिया गया।" (पृष्ठ, १८५)।

बिहार और बंगाल में फैले असन्तोष का वर्णन करते हुए स्मिथ ने (पृष्ठ १३२-३५) लिखा है—"कुछ लोगों के साथ क्रूरता का व्यवहार किये जाने के कारण जनता में दुर्भावना बढ़ी और कहा जाता है कि अधिकारी वर्ग की धन-लिप्सा के कारण यह भावना अधिक तीव्र हो गई। बंगाल के प्रभावशाली मुखियाओं ने जनवरी, १५८० में विद्रोह कर दिया। अप्रैल, १५८० में टांडा के मुजफ्फर खाँ को यातनाएँ देकर मार डाला गया। अकबर इन दंगों को दबाने के लिए स्वयं जाने का साहस नहीं कर सका था……१५८४ तक विद्रोह को सामान्यतः दबा दिया गया था। विद्रोही नेताओं को विभिन्न प्रकार के दण्ड दिये गए।……जिन विरोधी लोगों को खुले आम कत्ल नहीं किया जा सकता था, उन्हें गुप्त रूप से कत्ल किये जाने का आदेश देने में अकबर को संकोच नहीं होता था।"

उसी पुस्तक में पृष्ठ १३७ पर लिखा गया है कि "दरबार के षड्यन्त्र का नेता वित्त-मंत्री शाह मंसूर था। उसने (अकबर के सौतेले भाई) मुहम्मद हाकिम को जो काबुल में शासन करता था) जो पत्र लिखे, वे बीच में ही पकड़े गए। अकबर ने धोखेबाजी और बल दोनों से इस षड्यन्त्र को कुचलने का निश्चय किया। अन्ततः शाह मंसूर को बन्दी बना लिया गया और आंशिक रूप से जाली प्रमाणों के आधार पर उसे फाँसी दे दी गई। ८ फरवरी, १५८१ को अकबर ने फतेहपुर सीकरी से कूच किया। शाह मंसूर को अम्बाला और थानेसर के बीच शाहबाद नामक स्थान पर काट कछवाहा के निकट एक पेड़ पर लटका कर फाँसी दी गई।"

"अकबर अपना एक दूत यूरोप भेजना चाहता था, उसने, सैयद

मुजफ्फर फ़ादर मनसर्रेट के साथ रवाना किया। दरबार से अलग होते ही मुजफ्फर पादरी मनसर्रेट का साथ छोड़कर दक्कन में जा छिपा।" (पृष्ठ १४७)।

"१५९१-९२ तक मुजफ्फर काठियावाड़ और कच्छ के जंगलों में उत्पात मचाता रहा। अन्त में १५९१-९२ में उसे पकड़ा गया। कहते हैं कि उसने आत्महत्या कर ली।" (पृष्ठ १४८-४९)

"अगस्त, १५९२ में अकबर ने दूसरी बार कश्मीर की तरफ कूच किया।......उसे सूचना मिली थी कि कश्मीर में उसके गवर्नर के एक भतीजे ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया है और खुद सुलतान बन बैठा है।......परन्तु इसके कुछ ही समय बाद उस विद्रोही का सिर अकबर के पास लाया गया।" (वही, पृष्ठ १७८)।

"असीरगढ़ के युद्ध के बाद से अकबर के प्रभुत्व में कमी होने लगी। वह प्रायः ४५ वर्ष से लगातार युद्ध करता आ रहा था। उसके जीवन के बाकी वर्ष दुर्दशा में बीते। जहाँगीर के विद्रोह के कारण अकबर असीरगढ़ से शायद मई, १६०१ के आरम्भ में आगरा लौट आया। शाहजादा सलीम के लगातार विद्रोह, शाहजादा दानियाल की मृत्यु और कुछ अन्य घटनाओं के कारण अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में अकबर का मन खिन्न हो गया था। विद्रोह के दिनों में सलीम ने अपने पिता के विरुद्ध पुर्तगालियों से सैनिक और गोला-बारूद की सहायता माँगी और उसने हर प्रकार से उन्हें आश्वासन दिया कि वह सच्चे दिल से ईसाई मत को मानता है। उसने अपने दूत को गोआ भेजकर कहलाया कि इलाहाबाद में उसके अपने दरबार में पादरी भेजे जायें। वह अपने पत्रों पर क्रास की मोहर लगाता और गले में ईसा और मेरी के चित्रों से युक्त सोने की चेन पहनता था। १६०२ में सलीम इलाहाबाद में दरबार लगाता रहा और जिन प्रांतों पर उसका अधिकार था, उनमें उसका शाही वैभव बना रहा। उसने सोने और ताँबे के अपने सिक्के भी ढलवाये जिनका नमूना उसने अपने पिता के पास भी भेजा। अपने मित्र दोस्त मुहम्मद (काबुल) को अपना दूत बनाकर अपने पिता के पास बातचीत के लिए भेजा। दोस्त मुहम्मद छः मास तक आगरा में रहा। उसकी शर्त यह थी कि सलीम को ७०,००० सैनिकों को साथ लेकर अकबर से मिलने की इजाज़त हो और सलीम ने अपने अफसरों को

जो पारितोषिक दिये हैं, उनकी पुष्टि की जाये तथा उसके साथियों को विद्रोही न माना जाये ……१२ अगस्त, १६०२ को प्रातः अबुल फजल कूच करने ही वाला था कि ओरछा के बुन्देला सरादर वीरसिंह देव ने, जिसे सलीम ने भेजा था, उसपर हमला कर दिया। अबुल फ़जल को भाले की नोक से छेद दिया गया और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया। उसका सिर इलाहाबाद भेजा गया जहाँ सलीम ने उसका स्वागत किया और उसका अनादर किया। (अबुल फ़जल को नरवर से १० या १२ मील दूर सराय बरार के निकट कत्ल किया गया था।)।" (वही पृष्ठ २०७-२२२)।

"यह निश्चित है कि सलीम की उत्कट इच्छा थी कि उसका पिता मृत्यु को प्राप्त हो जाये।" (वही, पृष्ठ २३४)।

"यदि जहाँगीर का विद्रोह सफल था तो अवश्य ही वह उसके माता-पिता की मृत्यु का कारण बना।" (वही, पृष्ठ २३७)।

अकबर के शासनकाल के अगणित विद्रोहों का उल्लेख करते हुए डॉ० श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'अकबर : दी ग्रेट' में (पृष्ठ १०१ पर) लिखा है कि "खान ज़मान ने बहादुर और सिकन्दर को फैजाबाद के निकट सुरहरपुर के परगनों में लूट-पाट के लिए भेजा।" (अकबर का एक सेनापति खान ज़मान उस समय विद्रोही था।)

इसी विद्रोह के दौरान मुसलमानों ने अयोध्या में कुछ और पवित्र हिन्दू मन्दिरों को अपवित्र किया और उन्हें मस्जिदों में बदल दिया।

उसी पुस्तक में पृष्ठ १०१ पर कहा गया है कि "उजबेक के विद्रोह के दौरान ही शेर मोहम्मद दीवाना ने गड़बड़ का लाभ उठाकर विद्रोह कर दिया।"

आगे पृष्ठ १०६ पर उल्लेख है कि "विद्रोही मिर्जा लोगों ने दिल्ली के निकट धावा बोला और वहाँ लूट-खसोट की।"

"मोहम्मद अमीन दीवान ने, फौजदार पर तीर चलाया, इसलिए आदेश दिया गया कि उसे मौत के घाट उतार दिया जाये। कुछ दरबारियों के अनुनय-विनय पर उसे मारने का आदेश वापस ले लिया गया, परन्तु पिटाई का आदेश होने पर वह भाग निकला।" (वही, पृष्ठ १०७)

उसी पृष्ठ पर आगे उल्लेख है कि "जुनैद करानी, जिसे हिंदौन भेजा

गया था, गुजरात की तरफ भाग निकला। जब खान ज़मान ने यह खबर सुनी कि मिर्ज़ा हाकिम ने लाहौर की तरफ कूच कर दिया है, तो उसने फिर विद्रोह कर दिया।"

"३० अगस्त, १५६७ को अकबर शिकार पर निकला, जिसका उद्देश्य मालवा में मिर्जा लोगों के विद्रोह का दमन करना और चित्तौड़ की विजय करना था।" (वही, पृष्ठ ११३)।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि किस तरह इतिहासकार मुस्लिम इतिवृत्त-लेखकों के विवरणों को समझने में असमर्थ रहे हैं। पहले डॉ० श्रीवास्तव ने दावे के साथ कहा है कि अकबर शिकार पर निकला और बाद में दो ऐसे उद्देश्य बताये हैं जिनका शिकार से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए हम मुस्लिम शासनकाल के सभी पाठकों को सावधान कर देना चाहते हैं कि 'शिकार' शब्द से 'युद्ध अभियान' अर्थ लिया जाना चाहिए।

मुस्लिम इतिवृत्त लेखकों के ग्रंथ जालसाज़ी, हठधर्मिता और धूर्तता से भरे हैं, इसीलिए उनके शब्दों के सीधे-सादे अर्थ लेना ठीक नहीं होगा। उनके कुछ शब्दों के विशेष अर्थ समझ लेने चाहिए। उदाहरण के लिए 'मन्दिरों को नष्ट किया और मस्जिदें बनवाईं' शब्दों का केवल यह अर्थ है कि हिन्दुओं को उनके मंदिरों और भवनों से निकाल दिया गया और उन्हीं भवनों को मस्जिदों और मकबरों के रूप में उपयोग में लाया गया। यही कारण है कि भारत में मध्यकाल की सभी मस्जिदों एवं मकबरों की बनावट हिन्दू मन्दिरों और भवनों जैसी लगती है। इसी तरह हिन्दू महिला से मुसलमान की शादी से यह अर्थ समझ लिया जाना चाहिए कि उस महिला का अपहरण किया गया था और 'दहेज' से मतलब 'फिरोंती की रकम' समझा जाना चाहिए जैसा हम भारमल के सम्बन्ध में लिख चुके हैं।

डॉ० श्रीवास्तव की अपनी पुस्तक में (पृष्ठ १३७-४१ पर) लिखा है कि गुजरात की विजय के बाद "अकबर ने मिर्जा लोगों को समाप्त करने का निश्चय किया जिन्होंने गुजरात के काफी बड़े भाग पर अधिकार कर लिया था। जब सूरत का घिराव चालू था तब इब्राहिम हुसैन मिर्जा ने अचानक आगरा पर आक्रमण कर देने का प्रयत्न किया। मिर्जा शरफ़ुद्दीन हुसैन को, जो पहले नागौर और अज़मेर का गवर्नर था (और जिसने अकबर को जयपुर के राजा भारमल की कन्या का अपहरण करके उसे

शाही हरम में लाने में अकबर की सहायता की थी) और जो १५६२ में दरबार से भागकर विद्रोही मिर्जा लोगों से जा मिला था, बन्दी बना लिया गया और ४ मार्च, १५७३ को सूरत में दरबार में पेश किया गया। उसे हाथी से कुचलवाने के लिए फेंक दिया गया परन्तु बाद में उसे जीवन-दान देकर जेल में रखा गया। पीर ख्वाज़ा अब्दुल शाहिद ने भी मिर्जा को रिहा कर देने की अपील की परन्तु वह स्वीकार नहीं की गई।"

स्पष्ट है कि किस तरह अकबर के अपने ही पिट्ठुओं को, जिन्होंने हिन्दू प्रदेशों पर आक्रमण करके अकबर के हरम के लिए हिन्दू स्त्रियों का अपहरण किया, अकबर के घृणित व्यवहार से निराशा हुई और उन्होंने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। इससे यह भी स्पष्ट है कि पीर-फकीर लोग गुंडों और लूट-पाट करने वाले लोगों के लिए भी दया की अपील किया करते थे। एक और संगत तथ्य यह है कि शरफुद्दीन का विद्रोह निरन्तर ग्यारह वर्ष तक चलता रहा और तब कहीं उसे बन्दी बनाया जा सका।

इसी पुस्तक में पृष्ठ १४३ पर लिखा है, "इब्राहिम हुसैन मिर्ज़ा ने संभल और पंजाब को वापस लौटते हुए सारे प्रदेश को नष्ट-भ्रष्ट किया।"

पृष्ठ १४५-५० पर लिखा गया है कि "अब अकबर अहमदाबाद से (अप्रैल, १५७३ में) चला तब गुजरात में स्थिति पूरी तरह काबू में नहीं थी। इख्तियार उल-मुल्क ने गुप्त रूप से विद्रोह किया था और उसे इन्दौर के राजा नारायण दास (राणा प्रताप के श्वसुर) और शेर खाँ फौलादी के पुत्रों का समर्थन प्राप्त था। अकबर के पीठ फेरते ही मोहम्मद हुसैन मिर्जा, जो दौलताबाद से लौटा था, विद्रोहियों से जा मिला।"

वहीं पृष्ठ १५२ पर उल्लेख है कि "अन्य बातों के अतिरिक्त मुजफ्फर खाँ घोड़ों पर शाही मोहर लगाये जाने के विरुद्ध था। उसे प्रधान-मन्त्री पद से हटा दिया गया।"

पृष्ठ १८८ के उल्लेख के अनुसार "मिर्जा अजीज कोका वांछित संख्या में घोड़े आदि नहीं रख सका और उनपर मोहर अंकित कराने के लिए दरबार में प्रस्तुत नहीं कर सका था इसलिए अकबर ने उसे बन्दी बनवाया और उसका पद कम कर देने का आदेश दिया। सुधारों के बारे में उसने अनुचित बातें कहीं। अज़ीज़ कोका, अकबर का सह-पालित भाई था। क्षमा माँगने पर उसे १५७८ में मुक्त कर दिया गया।"

इसी ग्रंथ के पृष्ठ २२० पर लिखा गया है कि "शाहबाज़ को, जिसे राणा प्रताप के विरुद्ध अभियान पर भेजा गया, वापस बुलाकर १५८० में बिहार और बंगाल को रवाना किया गया। वहाँ मुगल अफसरों ने विद्रोह कर रखा था।" "बीरसिंह देव बुन्देले के बड़े भाई ओरछा के राजा मधुकर ने विद्रोह कर दिया था। अकबर ने सादिक खाँ को विद्रोह दबाने के लिए भेजा। साहसपूर्ण युद्ध के पश्चात् (मई, १५७७ में) उसने आत्म-समर्पण किया परन्तु कुछ समय पश्चात् उसने फिर विद्रोह किया और १५९२ में अपनी मृत्यु तक वह उत्पात करता रहा।" (वही, पृष्ठ २३०)

पृष्ठ २३१-३२ पर लिखा गया है कि "शेख अब्दुन नबी, जो दस वर्ष से अधिक समय तक अकबर का बहुत प्रिय बना रहा था, जनवरी, १५७८ के अन्त में उसकी नज़रों से गिर गया। अतः उसे नौकरी से निकाल दिया गया। उसकी जगह सुलतान ख्वाजा को मुख्य सरदार बनाया गया। ख्वाजा तब मक्का से लौट आया था। १५७९ के अन्त में अब्दुन नबी को देश-निकाला देकर उसकी इच्छा के विरुद्ध पुनः मक्का भेज दिया गया। १५८३ में वापस भारत आने पर सन्देहास्पद परिस्थितियों में उसकी मृत्यु हो गई।" स्पष्ट है कि अकबर के कहने पर उसे कत्ल कर दिया गया था।

"१५८० के आरम्भ में अकबर को बिहार तथा बंगाल में अपने अफसरों के एक बड़े विद्रोह का सामना करना पड़ा। दोनों प्रांतों में यह विद्रोह प्रायः एक साथ भड़का।··· (जब) पूर्वी प्रांतों में विद्रोह की स्थिति चल रही थी तब फतेहपुर सीकरी के कुछ सक्रिय दरबारियों ने, जो विद्रोहियों के साथ मिले हुए थे, एक षड्यन्त्र रचा जिसका उद्देश्य यह था कि अकबर को कत्ल किया जाये, मिर्जा हाकिम को शासक घोषित किया जाये और बंगाल की ओर प्रस्थान करके विद्रोहियों के साथ मिला जाये। अकबर को इस षड्यन्त्र की सूचना मिल गई। षड्यन्त्रकारियों को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया और उनके नेता मीरकी को मौत के घाट उतार दिया गया।" (वही, पृ० २६८-७३)।

"बंगाल में विजयी विद्रोहियों ने मिर्जा हाकिम को अपना शासक घोषित कर दिया और उसके नाम से खुतबा पढ़ा। मिर्जा शरफुद्दीन, जो पहले नागौर और अजमेर का गवर्नर था और जिसे टाँडा के किले में बन्दी बनाकर रखा गया था और जिसने १९ अप्रैल, १५८२ को अपने-आपको

मुक्त करा लिया था, इन विद्रोहियों का नेता चुना गया। परन्तु उनके असली नेता मासूम खाँ काबली और बाबा खाँ काकशाल थे।" (वही, पृष्ठ २७४)।

"मुल्ला मोहम्मद याज्दी तथा मीर मुअज्जुल मुल्क को, जो बादशाह के प्रति धार्मिक अविश्वास की भावना को भड़का रहे थे, पकड़कर शाही दरबार में हाजिर करने का काम आजाद खाँ तुर्कोमन को सौंपा गया। इस आदेश का अतिशीघ्र पालन हुआ और जिस नौका में उन्हें लाया जा रहा था, उसे इटावा के पास यमुना में डुबो दिया गया, और दोनों विद्रोही नेता डूबकर मर गए।" (वही, पृष्ठ २७६-७८)।

"मिर्जा हाकिम द्वारा भारत पर आक्रमण किए जाने की खबर पाकर मासूम फरांखुदी ने, जो कुछ समय से गुप्त रूप से विद्रोह करने की सोच रहा था, जौनपुर में खुलेआम विद्रोह कर दिया। उसके विरुद्ध अभियान हुआ जिसके कारण उसे विवश होकर अपने परिवार और खजाने को अयोध्या के क़िले में छोड़ जाना पड़ा। शाहबाज खाँ ने अगले दिन क़िले और नगर पर अधिकार किया। अकबर ने दया करते हुए अपने कमांडर शाहबाज खाँ को आदेश दिया कि विद्रोही के परिवार तथा उसके आश्रितों को परेशान न किया जाए।"

अयोध्या का क़िला भगवान् राम का महल था और हिन्दू उसे पवित्र मानते थे। अकबर के समय में एक बार फ़िर मुस्लिम आक्रमणकारियों ने उसे अपवित्र किया। अयोध्या के सभी मध्ययुगीन मस्जिदें प्राचीनकाल के मन्दिर हैं जिनसे भगवान् राम की पावन स्मृति बँधी है।

अकबर ने विशेष आदेश जारी किए थे कि शत्रु की महिलाओं पर अत्याचार न किये जाएँ। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि दूसरे सभी अभियानों में अकबर के सैनिकों को इस बात की खुली छूट थी, बल्कि उन्हें इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता था, कि वे शत्रु की महिलाओं के साथ बलात्कार करें। अपवाद के रूप में उक्त आदेश से यह संकेत मिलता है कि कुछ महिलाओं को अकबर अपने हरम में रखना चाहता था।

"जब अकबर मिर्जा हाकिम के विरुद्ध युद्ध में व्यस्त था तभी कटेहर (वर्तमान रुहेलखंड) में विद्रोह हुआ।" (वही, पृष्ठ २८५)।

"मासूम खाँ फराखुदी ने अकबर की माँ से शरण माँगी (मार्च, १५८२)

परन्तु एक रात को जब वह महल से जा रहा था, उसे कत्ल कर दिया गया।" (वही, पृष्ठ २६०)।

"बहादुर (सैयद खाँ बदाक्सी के पुत्र) ने राजा की पदवी धारण की और तिरहुत को अपनी राजधानी बनाया। उसे सन्धि के लिए प्रार्थना करने को विवश किया गया और अकबर के आदेश पर उसे मौत के घाट उतार दिया गया।" (वही पृष्ठ २६१)।

"शाहबाज खाँ को, जो कुछ वर्ष तक मुख्य बख्शी (सेना मन्त्री) के उच्च पद पर रहा था और जिसने विशिष्ट सैनिक सेवा की थी, अभद्र व्यवहार के आरोप में बन्दी बना लिया गया और जेल में रखा गया।"

"बंगाल के विद्रोहियों के विरुद्ध अपनी सफलता के बाद खान-ए-आज़म ने प्रार्थना की कि मुझे उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया जाए। १५८०-८३ के विद्रोह से अकबर और मुगल राज्य को बड़ा खतरा हो गया था। यह विद्रोह व्यापक था। यह केवल बिहार तक सीमित नहीं था, जैसाकि सामान्यत: विश्वास किया जाता है। इन दो प्रान्तों के अतिरिक्त यह उड़ीसा के अधिकांश भाग, गाजीपुर तथा बनारस के जिलों और इलाहाबाद तथा अवध प्रान्त में तथा आधुनिक रुहेलखण्ड में भी फैला था। कुछ मन्त्री और ऊँचे दरबारी इस विद्रोह में शामिल थे।" (वही, पृष्ठ २६३-६४)।

"गुजराती अमीर ऐतिमाद खाँ ने गुजरात के विद्रोहियों का साथ दिया इसलिए उसे बन्दी बना लिया गया। गुजरात में १५८३ में एक बार फिर विद्रोह हुआ।" (वही, पृष्ठ ३१८-२०)।

"जलाल १५६२ में ट्रांसोक्सेनिया से लौटा और एक बार फिर उसने तिराह, आफरीदी और उर्कजई कबीलों को अपने विद्रोही झंडे के नीचे एकत्र किया। ११ मार्च को अकबर को विवश होकर काबुल और सीमांत की सेनाओं को, जो क्रमश: कासिम खाँ और आसफ खाँ के नेतृत्व में थीं, रौशनिया के विद्रोह को दबाने के लिए भेजना पड़ा। और काकियानी और महमूद जई के कबीले भी इस विद्रोह में शामिल हो गए थे। विद्रोह को दबा दिया गया। परन्तु जलाल का एक रिश्तेदार बहादत अली कनसाली के किले में बना रहा। कबाइलियों का विद्रोह १६०० ई० के बाद तक चलता रहा।" (वही, पृष्ठ ३४७-४६)।

"१६ नवम्बर, १५८६ को मऊ उर्फ नूरपुर के राजा बासु ने आकर खिराज़ दिया। उसने बहुत पहले ही अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, फिर भी जब सीमांत प्रदेश में अकबर की सेना को मुँह की खानी पड़ी तब उसे भी विद्रोह करने की सूझी। इसलिए एक सैनिक टुकड़ी को उसके विरुद्ध भेजा गया।" (वही, पृष्ठ ३५८)।

डॉ० श्रीवास्तव और दूसरे इतिहासकारों का यह कहना गलत है कि "भारमल ने स्वयं आत्म-समर्पण किया, राजा रामचन्द्र ने स्वयं आत्म-समर्पण किया, राजा बासु ने आत्म-समर्पण किया, आदि।" इससे पाठक को यह भ्रम होता है कि शायद अकबर में कुछ अद्भुत आकर्षण या आभा थी जिसके प्रभाव से एक के बाद एक हिन्दू राजा स्वत: अकबर की ओर इस प्रकार आकृष्ट होते थे जिस प्रकार पतंगे प्रकाश की ओर झपटते हैं। वास्तव में स्थिति इसके विपरीत थी। सभी लोग उसे घृणा और अनिच्छा की दृष्टि से देखते थे। इसलिए जिसे स्वत: आत्म-समर्पण कहा जाता है, उसके पीछे क्रूर लूट, कत्ल, बलात्कार, आगजनी और मन्दिरों को अपवित्र करने का वीभत्स और निरंकुश आन्दोलन था। जिन राजपूतों ने एक हज़ार वर्ष तक मुसलमानों का वीरता से मुकाबला किया और अन्तत: उन्हें असहाय बना दिया, उनके सम्बन्ध में ऐसा आरोप लगाना कि उन्होंने प्रेम या मस्ती में अकबर को आत्म-समर्पण किया, उनका अपमान करना है। सबसे बड़ा उदाहरण हमारे सामने जयपुर के राजा भारमल का है। उसने अकबर पर लगातार आक्रमण करके उसे जिस प्रकार आतंकित किया था, उसके कारण उसे अपमानजनक स्थिति में आकर अकबर के सामने समर्पण करने को विवश होना पड़ा और अपनी निरपराध कन्या के साथ बहुत-सा धन अकबर को देना पड़ा था। परन्तु अधिकांश इतिहास-ग्रंथों में उसे भारमल पर अकबर की महती कृपा कहकर उसका यशोगान किया गया है।

"जिन दिनों मानसिंह आगरा में था उन दिनों बंगाल में फिर एक विद्रोह हुआ। मानसिंह ने १५९९ में वापस आकर एक लम्बा अभियान आरम्भ किया। फरवरी, १६०१ में उसने अफगानों का दमन किया, तब तक बंगाल का विद्रोह प्राय: समाप्त हो चुका था।" (वही, पृ० ३७६-७७)

"एक और विद्रोह भाटा या बघेलखण्ड में हुआ। सुदीर्घ अवधि तक

अकबर के राजधानी से दूर रहने के कारण भाटा (आधुनिक रीवां) के शासक ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी।" (वही, पृष्ठ ३८१)।

"जिन दिनों १६००-१६०१ में अकबर दक्कन में लगा हुआ था, उन दिनों पंजाब में बारी दो-आब में मऊ के राजा बासु, जम्मू के राजा और पश्चिमोत्तर प्रदेश के कुछ सरदारों ने विद्रोह कर दिया और सेना की बड़ी-बड़ी टुकड़ियां उन्हें दबाने के लिए भेजनी पड़ीं। लखनऊ, जसरोटा, मानकोट, रामगढ़ और पंजाब के पहाड़ी प्रदेश में कोहबस्त के मुखियाओं ने भी १६०२ में विद्रोह किया। उन्हें शक्तिशाली सेनाएँ भेजकर दबाना पड़ा।" (वही पृ० ३८३-८७)।

"२२ जुलाई, १५९२ को अकबर ने दूसरी बार कश्मीर की तरफ कूच किया। उस समय कश्मीर में एक स्थानीय विद्रोह के कारण अशांति थी और सम्भवतः अकबर विद्रोह को अपने आतंक से दबाना चाहता था।" (वही, पृष्ठ ३८७-९५)।

कश्मीर की अपनी यात्राओं में ही अकबर ने झेलम नदी के उद्गम स्थल पर वेरीनाग का प्रसिद्ध और भव्य मन्दिर नष्ट किया और उस प्रदेश के कई दूसरे हिन्दू मन्दिरों को नष्ट किया। यह एक क्रूर विडम्बना है कि कश्मीर के पुरातत्त्व विभाग ने अकबर को उन्हीं भवनों का निर्माणकर्ता बताया है जिन्हें उसने पूर्ण रूप से नष्ट करके खण्डहर बना दिया था।

"अकबर के सहपालित भाई मिर्जा अज़ीज कोका ने, जो अकबर को पसंद नहीं करता था, गुप्त रूप से हिजाज़ की ओर प्रस्थान करने की तैयारी की और ड्यू द्वीप को पुर्तगालियों के अधिकार से निकालने के बहाने वह (२५ मार्च, १५९२) उधर चला गया। अपनी पत्नियों, छः पुत्रों और छः लड़कियों के साथ वह जलयान पर सवार हुआ। मक्का में काबा के पुजारी लोगों ने उसे बुरी तरह लूट लिया। जीवन को दूभर पाकर वह कुएँ और खाई वाली स्थिति में भारत आया।" (वही, पृष्ठ ३९४-९५)।

"अहमदनगर के लोग इतने क्रुद्ध थे कि जब २० मार्च (१५९६ ई०) को मुगल सेना वापस जाने लगी तो उन्होंने मुगलों का कुछ सामान भी लूट लिया।" (वही, पृ० ४३२)।

अकबर को जीवन के अन्तिम वर्षों में अपने पुत्रों के विद्रोहों के कारण बड़ी मानसिक वेदना सहन करनी पडी। उसके सबसे बड़े लड़के सलीम ने

(जो बाद में बादशाह जहाँगीर बना) इलाहाबाद में अपने-आपको बादशाह घोषित कर दिया था। इससे पहले उसने अकबर को ज़हर देकर मार डालने का प्रयत्न भी किया। इस प्रकार अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में अकबर के प्राय: सभी दरबारी, जनरल, अमीर और यहाँ तक कि उसके अपने पुत्र उसे जनता का सबसे बड़ा दुश्मन मानते थे। जब इतने पुष्ट प्रमाण उपलब्ध हों, तब भी अकबर को 'महान्' बताना अपराध है। अकबर का यशोगान करना उन लाखों आत्माओं का अपमान करना है जिन्हें अकबर ने पीड़ित किया था।

भवन-निर्माण

अकबर के बारे में कहा जाता है कि उसने कई क़िले और महल बनबनवाए और कई नगरों की स्थापना की। यह मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा संसार को दिया गया एक बड़ा धोखा है और यह उसी तरह का बड़ा धोखा है जैसा क्रूर और धर्मान्ध अकबर को एक उदार और उदात्त शासक के रूप में प्रस्तुत करने की जालसाज़ी है। इस प्रकरण में हम यह सिद्ध करेंगे कि वे सभी महल, क़िले और नगर प्राचीन हिन्दू काल के थे। वे अकबर के जन्म से भी शताब्दियों पहले विद्यमान थे और उसने भारत में बाबर के उत्तराधिकारी के रूप में केवल उनपर अधिकारमात्र किया था।

फतेहपुर सीकरी

आगरा के तेईस मील दक्षिण-पश्चिम में एक छोटी नगरी फतेहपुर सीकरी नाम से है। मुसलमानों ने जब प्राचीन हिन्दू राजधानी सीकरी पर अधिकार किया तो उन्होंने उसका नया नाम फतेहपुर रखा जिसका अर्थ होता है 'जीता हुआ नगर'; इसलिए नगर का पूरा नाम 'फतेहपुर सीकरी' पड़ गया। इसके चारों ओर एक बड़ी रक्षात्मक प्राचीर है। इस प्राचीर के अन्दर एक बहुत बड़ा क्षेत्र और एक पहाड़ी है। पहाड़ी पर लाल पत्थर के विशाल द्वार और कई भव्य महल बने हुए हैं। ये सब पूर्ण रूप से हिन्दू, राजपूत शैली में निर्मित हैं।

इन्हीं सुन्दर शाही भवनों तथा उनके विशाल द्वारों को तीसरी पीढ़ी के मुगल शासक अकबर के निर्माण रूप से प्रस्तुत किया गया है।

मुस्लिम इतिवृत्त ग्रंथों में भी अकबर से सैकड़ों वर्ष पहले फतेहपुर सीकरी नगर के विद्यमान होने का उल्लेख मिलता है। इतना ही नहीं, फतेहपुर सीकरी को अकबर से पूर्व के कई हिन्दू तथा मुस्लिम शासकों की राजधानी के रूप में उल्लिखित किया गया है।

आरम्भ में हम यह कह दें कि जिन इतिहास-विवरणों में से हम उद्धरण प्रस्तुत कर रहे है, उनमें फतेहपुर सीकरी का उल्लेख कभी-कभी फतहपुर या केवल सीकरी के नाम से किया गया है। सीकरी, फतेहपुर या फतहपुर सीकरी ये तीनों नाम उसी नगरी के लिए प्रयुक्त किए गये हैं जिसमें पहाड़ी और उसपर बने सुन्दर हिन्दू प्रासाद तथा लाल पत्थर के विशाल द्वार मुख्य विशेषता और प्रमुख आकर्षण हैं।

ये तीनों नाम एक ही नगरी के लिए प्रयुक्त किए गये हैं, इसका स्पष्ट संकेत मुस्लिम इतिहासकार याह्या बिन अहमद ने अपनी पुस्तक तारीख-ए-मुबारिकशाही में दिया है। इस पुस्तक में भाग ४, पृष्ठ ६२ (इलियट एण्ड डाउसन) पर लिखा है कि "सुलतान की आज्ञा से (बयाना के शासक औहद खाँ, जिसने बयाना का किला समर्पित किया था, के लड़के) मुहम्मद खाँ के परिवार और उसके आश्रितों को क़िले से बाहर लाया गया और उन्हें (१२ नवम्बर, १४२६ को अर्थात् अकबर के गद्दी पर बैठने से १३० वर्ष पहले) दिल्ली भेज दिया गया। बयाना मुकुल खाँ को दिया गया। सीकरी को, जो अब फतेहपुर के नाम से जानी जाती है, मलिक खैरुद्दीन तुहफा को सौंप दिया गया।"

मुसलमानों के अधिकार में आने से पहले सीकरी कभी स्वतन्त्र रियासत और कभी प्रांत की राजधानी रही थी। परन्तु उसके लाल पत्थर के प्रासादों तथा द्वारों के निर्माण का समय बहुत प्राचीन हिन्दू काल में है। इसका प्रमाण देते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल जेम्स टाड ने अपनी पुस्तक "एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान" (पृष्ठ २४०, भाग १) में लिखा है कि "राणा संग्रामसिंह १५०९ में मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। अस्सी हज़ार घोड़े, उच्चतम पदवी वाले सात राजा, नौ राव और १०४ मुखिया, जिन्हें रावल और रावत की पदवी प्राप्त थी, पाँच सौ हाथियों के साथ उसके पीछे चलते हुए (मुगल आक्रमणकारी बाबर का प्रतिरोध करने के लिए) मैदान में उतरे। मारवाड़ तथा अम्बर के नरेश उनके आगे झुकते थे और ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, कालपी, चन्देरी, बूंदी, गगरौव, रामपुरा और आबू के राव उन्हें नज़राना भेंट किया करते थे...।"

ऊपर के अनुच्छेद से स्पष्ट है कि अकबर के दादा बाबार के समय में सीकरी पर एक राव (राजपूत मुखिया) का आधिपत्य था और वह मेवाड़

के राणा संग्रामसिंह की अधीनता स्वीकार करता था। लाल पत्थर के जिन भवनों को अकबर की कृति कहकर आज के दर्शकों को भुलावा दिया जाता है, वे वास्तव में अकबर से सैकड़ों वर्ष पूर्व एक राव का राज-प्रासाद थे।

सीकरवाल जाति के राजपूतों के मूल-स्थान की चर्चा करते हुए कर्नल टाड ने अपनी पुस्तक में पृष्ठ २४० (भाग १) पर लिखा है कि "उनका नाम सीकरी फतेहपुर नगरी के नाम से चलता है जो पहले एक स्वतन्त्र रियासत थी।" सीकरवाल राजपूतों के उद्‌गम का इतिहास बहुत प्राचीन है। उनका उद्‌गम अकबर के युग के बाद नहीं हुआ क्योंकि सीकरी के राव ने अकबर के दादा बाबर से युद्ध किया था। अत: यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि सीकरवाल राजपूत अकबर से कई शताब्दी पहले लाल पत्थर के बने भवनों में रहते थे।

फतेहपुर सीकरी का एक और उल्लेख अकबर के गद्दी पर बैठने के १५२ वर्ष पूर्व जुलाई, १४०५ का है। कर्नल टाड के इतिहास में भाग ४, पृष्ठ ४० पर कहा गया है कि "पहले आक्रमण में इकबाल खाँ को पराजय हुई और वह भाग निकला। उसका पीछा किया गया। उसका घोड़ा उसके ऊपर गिर पड़ा जिससे वह घायल हो गया और बचकर निकल न सका। उसे जान से मार दिया गया और उसका सिर फतेहपुर भेजा गया।" यह बात सुल्तान महमूद के समय की है। ऐसे कत्ल किए गये सिर विशाल द्वारों पर लटका दिये जाते थे जिससे सम्भावित विद्रोहियों को आतंकित किया जा सके। इससे यह संकेत मिलता है कि फतेहपुर सीकरी का जो विशाल द्वार बुलन्द दरवाज़े के नाम से विख्यात है वह अकबर से १५१ वर्ष पूर्व विद्यमान था। कत्ल किये हुए व्यक्ति के सिर को फतेहपुर सीकरी भेजे जाने का कारण यह था कि यह अकबर के समय से कई पीढ़ियाँ पूर्व राजकीय निवास स्थान था और मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इसे राजपूतों से विजित करके अपने अधिकार में किया था।

इसी प्रकार पृष्ठ ४४ पर कहा गया है कि "ख़िज्र खाँ (सैयद वंश का संस्थापक) फतेहपुर में रहा और वह दिल्ली नहीं गया।" ख़िज्र खाँ सैयद मई, १४१४ में गद्दी पर बैठा। फतेहपुर सीकरी का यह उल्लेख अकबर के गद्दी पर बैठने से १४२ वर्ष पूर्व का है। ख़िज्र खाँ जल्दी ही सुलतान बन

गया था, इससे स्पष्ट है कि अकबर से कई पीढ़ियाँ पूर्व भी सीकरी में भव्य भवन थे।

अकबर के दादा बाबर ने फतेहपुर सीकरी के प्रासादों का यह प्रमाण अकबर के गद्दी पर बैठने के लगभग २४ वर्ष और उसके जन्म से १३ वर्ष पूर्व दिया है। तुज़के-बाबरी (इलियट एण्ड डाउसन, भाग ४, पृष्ठ २२३) में लिखा है कि "अकेले आगरा में मैंने वहीं के रहने वाले ६८० व्यक्तियों को महलों के लिए पत्थर तरासने पर लगाया। और इसी तरह आगरा, सीकरी, बयाना, धौलपुर, ग्वालियर और कोइल में १४९१ व्यक्तियों को इस काम पर लगाया गया।"

बाबर ने स्वयं स्वीकार किया है कि आगरा, सीकरी, बयाना, धौलपुर ग्वालियर और कोइल (जिसे अब अलीगढ़ कहते हैं) में कई महल थे और सभी उतने ही भव्य थे। इससे स्पष्ट है कि फतेहपुर सीकरी में जो लाल पत्थर के भवन हैं वे पुराने हिन्दू भवन हैं जिनपर मुसलमान आक्रमणकारियों ने अधिकार कर लिया था।

बाबर ने फतेहपुर सीकरी के आसपास के मैदानों में राणा साँगा की हिन्दू सेना को पराजित करने के बाद फतेहपुर सीकरी पर अधिकार किया था। इतिहासकारों को यह भ्रम है कि यह निर्णायक युद्ध १० मील दूर कन्वाहा ,र्फ कनुआ में हुआ था। कन्वाहा में जो मुठभेड़ हुई थी वह राणा-साँगा और बाबर की अग्रिम टुकड़ियों के बीच हुई थी। फतेहपुर सीकरी के हाथी दरवाज़े के बाहर कई मील के घेरे वाली एक बड़ी झील थी। सीकरी नगरी के लिए मुसलमानों से पहले के राजपूत नरेशों द्वारा रखे जाने वाले हाथियों के लिए पानी इसी झील से आता था। उसी पुस्तक में पृष्ठ २६८ पर बाबर ने लिखा है कि "हमारे बाएँ ओर एक बड़ी झील थी, इसलिए पानी की सुविधा देखकर मैंने वहीं डेरा डाला...।" पृष्ठ २६८ पर लिखा है—"और सभी जगहों के मुकाबले सीकरी में पानी बहुत था, इसलिए सेना के शिविर के लिए इसे सबसे अधिक उपयुक्त स्थान समझा गया।"

"जब अब्दुल अजीज़ की बारी आयी तो वह कोई भी सावधानी बरते बिना कन्वाहा तक बढ़ता चला गया जोकि सीकरी से पाँच कोस पर है। काफिरों की (राणा सांगा की) सेना आगे बढ़ रही थी। जब उन्हें पता

चला कि वह आगे बढ़ आया है तो उनके ४-५ हजार सैनिक एकदम उसकी सेना पर टूट पड़े। पहले ही हल्ले में अब्दुल अजीज़ के कई व्यक्ति बन्दी बनाकर ले जाये गए। तब मैंने मुहम्मद जंग को हुक्म दिया कि वह अब्दुल अजीज़ की वापसी में उसकी मदद करे। अजीज़ के सैनिकों को काफी नुकसान उठाना पड़ा।" (वही, पृष्ठ २६७)।

ऊपर के अनुच्छेद से स्पष्ट है कि कन्वाहा या कनुआ में जो मुठभेड़ हुई थी वः बाबर और राणा साँगा की मुख्य सेना के बीच नहीं प्रत्युत उनकी छोटी टुकड़ियों के बीच हुई थी और उसमें बाबर की टुकड़ी को मुँह की खानी पड़ी थी। इस तरह इतिहास-ग्रन्थों में यह कहकर पाठकों को भ्रम में डाला गया है कि कन्वाहा में राणा साँगा की पराजय हुई थी।

सामान्य धारणा यह है कि युद्ध खुले मैदानों में होते थे। मध्यकालीन इतिहास को समझने में यह एक बड़ी गलती है। यह ग़लती इसलिए हुई है कि शायद इन पुस्तकों के लेखक केवल सैद्धान्तिक लोग थे जिन्हें युद्ध का वास्तविक अनुभव नहीं था।

मध्यकाल में जो युद्ध हुए वे सदैव बड़ी दीवारों और क़िलों के पीछे से छिपकर हुए। आधुनिक युद्ध भी मोर्चाबंदी करके ही लड़े जाते हैं। सेना के शिविर के चारों ओर बन्द मोर्चे मिट्टी के ढेर, दमदमे आदि लगाकर उसकी 'रक्षा' की जाती है। १५२६, १५५६ तथा १७६१ में पानीपत में जो तीन निर्णायक युद्ध हुए उनके वहाँ होने का कारण यह था कि हर बार प्रतिरोध करने वाली सेना ने पानीपत के नगर, महल और क़िले में बड़ी भारी मोर्चा-बन्दी कर ली थी। इन तीन लड़ाइयों में जो विनाश हुआ उसका प्रमाण वहाँ के विशाल द्वार, दुर्ग और उनके अवशेषों में देखा जा सकता है।

कन्वाहा का युद्ध कोई अपवाद नहीं था। सीकरी की ओर बढ़ते हुए कन्वाहा में शिविर लगाने का कारण यह था कि वहाँ एक महल और एक क़िला विद्यमान था। राजपूतों के शासनकाल में ऐसे भवन और प्रासाद स्थान-स्थान पर बने हुए थे। मुसलमानों द्वारा एक हजार वर्ष तक किये गए विनाश के पश्चात् भी ऐसे क़िलों के अवशेष कन्वाहा, फतेहपुर सीकरी, भरतपुर, बयाना, धौलपुर, आगरा, ग्वालियर आदि में देखे जा सकते हैं और ये सब एक-दूसरे से कुछ ही मील की दूरी पर स्थित हैं।

कन्वाहा में एक महल के होने का प्रमाण देते हुए कर्नल टाड ने अपनी

पुस्तक में पृष्ठ १४६-५६ पर लिखा है कि "राणा साँगा का कद मध्यम था ···वह अपने उद्यमपूर्ण साहस के लिए प्रसिद्ध था। मालवा के राजा मुज़फ्फर को उसने उसी की राजधानी में जाकर पकड़ लिया था···उसने कनुआ में एक छोटा महल बनाया।"

कनुआ के युद्ध में राणा साँगा की सेना क़िले की ऊँची दीवारों के पीछे मोर्चा लगाए हुए थी। इसी तरह बाबर के साथ अन्तिम निर्णायक युद्ध के समय राणा साँगा फतेहपुर सीकरी की पहाड़ी पर दीवारों के पीछे और महल के अन्दर मोर्चा लगाए हुए था।

अभी हमने देखा कि बाबर का शिविर सीकरी और झील के निकट था। उसी पुस्तक में २७२ पर लिखा है कि "युद्ध के समय एक छोटी पहाड़ी हमारे शिविर के निकट थी। मैंने हुक्म दिया कि इस पहाड़ी पर काफ़िरों के सिरों का एक मीनार बनवाया जाए।"

पृष्ठ ४८३ पर लिखा है, "जब आदिल खाँ और ख़वास खाँ फ़तेहपुर सीकरी पहुँचे तब वे उस समय के एक सन्त शेख सलीम से मिलने गये।" यह उल्लेख भी उस समय का है जब अकबर पैदा नहीं हुआ था।

याह्या बिन अब्दुल लतीफ ने लिखा है कि "मीर की मृत्यु ६७१ हिजरी (१५३३ ई०) में सीकरी में हुई।" यह उल्लेख उस समय का है जब बाबर को गद्दी पर बैठे सिर्फ सात वर्ष हुए थे और जब कपटपूर्ण परम्परागत विवरणों के अनुसार सीकरी की स्थापना करने की बात सोची भी नहीं गई थी।

पृष्ठ ३३६ पर कहा गया है, "इसके बाद सुलतान सिकन्दर के बेटे सुलतान महमूद ने, जिसे हसन खाँ मेवाती और राणा साँगा ने बादशाह की गद्दी पर बिठाया था, दूसरे जमशेद को सीकरी के निकट युद्ध में ललकारा···" फतेहपुर सीकरी का यह उल्लेख अकबर से दो पीढ़ी पहले का है जबकि सामान्य धारणा यह है कि अकबर ने फतेहपुर सीकरी की स्थापना की थी।

पृष्ठ ४०४ के उल्लेख के अनुसार, "जब शेरशाह अपनी राजधानी आगरा से चला और फतेहपुर सीकरी पहुँचा तब उसने आदेश दिया कि सेना का प्रत्येक भाग युद्ध के अनुशासन के अनुसार मार्च करे।" शेरशाह ने १५४० से १५४५ ई० तक राज्य किया, इस तरह उसका शासन अकबर के जन्म से दो वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ और अकबर के जन्म के तीन वर्ष बाद

समाप्त हो गया। अकबर उस समय अफगानिस्तान में था और फतेहपुर सीकरी भारत की धरती पर विद्यमान थी।

पृष्ठ ४८१ पर लिखा गया है कि "आदिल खाँ अपने अमीरों को साथ लेकर भाई (शेरशाह के बेटे इस्लाम शाह) के पास गया। जब वह फतेहपुर सीकरी पहुँचा तो इस्लाम शाह सिंगारपुर गाँव में आकर उससे मिला।" फतेहपुर सीकरी का यह उल्लेख उस समय का है जब अकबर का पिता हुमायूँ भी निर्वासन के बाद भारत नहीं आया था।

फतेहपुर सीकरी के ऐसे अनेक उल्लेख हैं जो अकबर से सैकड़ों वर्ष पहले के हैं।

अकबर ने आगरा को छोड़कर फतेहपुर सीकरी में रहने का जो निश्चय किया, उसका कारण यह था कि उसे भय हो गया था कि यदि मैं आगरा में रहा तो मुझे कत्ल कर दिया जायेगा। इसीलिए उसने अपनी राजधानी फतेहपुर सीकरी बनाने का निश्चय किया। क्योंकि वहाँ राजपूतों के बनाए हुए प्रासाद भारत में मुसलमानों के आगमन के पहले से विद्यमान थे। शेख सलीम चिश्ती और उसके साथी इन भवनों में रहते थे। जब अकबर ने सीकरी को राजधानी बनाने का निश्चय किया तब शेख सलीम चिश्ती को बहुत अनिच्छापूर्वक इन भवनों से निकल जाना पड़ा।

अकबर के आगरा छोड़ने का कारण बताते हुए इतिवृत्तकार फरिश्ता ने लिखा है (पृष्ठ १२१) कि "अकबर को इतना गुस्सा आया कि उसने उसे (अर्थात् बहराम खाँ को) अपनी सेवा से हटा दिया। कुछ लेखकों ने लिखा है कि उसकी परिचारिका (माहम अंगा) ने उसे बताया था कि उसकी मोहरों पर अधिकार करने का प्रयत्न किया जाने वाला है, जबकि कुछ दूसरे लेखकों ने लिखा है कि बहराम खाँ उसे गिरफ्तार कर लेना चाहता था और माहम अंगा ने वह बात बहराम और विधवा बेगम को आपस में बातचीत करते हुए सुनी। कहते हैं, कि इसी कारण से अकबर ने आगरा से निकल जाने का निर्णय किया।"

इस प्रकार फरिश्ता ने इस बात का स्पष्ट और संगत कारण बताया है कि किन कारणों से अकबर को अपना दरबार आगरा से फतेहपुर सीकरी ले जाना पड़ा। आगरा पुरानी राजधानी थी अतः वहाँ वरिष्ठ और शक्तिशाली अमीरों की संख्या बहुत थी और ये लोग बहराम खाँ से

मिले हुए थे। उस समय तक अकबर कम उम्र का था। अपने संरक्षक बहराम खाँ से उसकी अनबन हो गई थी। उसे भय था कि बहराम खाँ उसे समाप्त कर देगा। इसलिए वह आगरा से फतेहपुर सीकरी आ गया ताकि उसे निश्चय हो सके कि कौन-कौन लोग उसके वास्तविक पक्षपाती हैं। जैसाकि साधारण विवरणों में कहा गया है, अकबर ने एक नयी फतेहपुर सीकरी का 'निर्माण' करने का जो निर्णय अचानक किया, वह अकारण नहीं था और इसी तरह उसका सीकरी को एकाएक छोड़ देना भी अकारण नहीं था।

फतेहपुर सीकरी जाने के बाद १५६२ से १५८५ तक की अवधि में अकबर के सभी अभियान फतेहपुर सीकरी से आरम्भ हुए और वहीं समाप्त हुए। यही वह समय है जिसमें कहा जाता है कि अकबर ने फतेहपुर सीकरी का निर्माण किया।

अकबर के संगी-साथियों में हजारों महिलाओं का हरम, हजारों पशुओं का अस्तबल और हजारों की संख्या में अमीर, सेनापति और अन्य अधिकारी शामिल थे। इन सबके लिए सम्भव नहीं था कि वे सूचना मिलते ही तुरन्त एक ऐसी राजधानी में चले जायें जिसकी अभी नींव भी नहीं खोदी गई थी।

श्री शेलट ने अपनी पुस्तक कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ १०२ पर लिखा है कि "अकबर की सबसे पहली हिंदू पत्नी, अंबर के भारमल की कन्या, गर्भवती थी और उसे प्रसव के लिए सीकरी भेजा गया। ३० अगस्त, १५६९ को उसने एक पुत्र को जन्म दिया। नवम्बर, १५६९ में एक लड़की खानम सुलतान पैदा हुई और जुलाई, १५७० में सलीमा बेगम ने शाहज़ादा मुराद को जन्म दिया। एक तीसरे लड़के दानियाल का जन्म १० सितम्बर, १५७२ को हुआ…।" इसी प्रकार अकबर शीर्षक पुस्तक में पृष्ठ ११६ पर उन्होंने लिखा है कि "२३ सितम्बर, १५७० को अकबर पुनः अजमेर गया और रास्ते में सीकरी में वह १२ दिन तक ठहरा।" इससे स्पष्ट है कि अकबर १५७० से पहले सीकरी में रह चुका था। परम्परागत विवरणों के अनुसार १५६९ तक अकबर ने फतेहपुर सीकरी, का निर्माण करने की कल्पना भी नहीं की थी। जबतक वहाँ कोई शाही महल न हों तबतक क्या अकबर और उसकी पत्नियाँ वहाँ जा सकती थीं ?

अकबर के चापलूस दरबारी इतिवृत्तकारों ने अकबर को फतेहपुर सीकरी के निर्माण का श्रेय देने के लिए इस बात का भी उल्लेख किया है कि उसने अपनी पत्नियों को प्रसव के लिए सलीम चिश्ती के पास फतेहपुर सीकरी भेजा था। इस झूठे उल्लेख का खण्डन थोड़े-से तर्क-वितर्क से किया जा सकता है। पहला तर्क यह है कि अकबर की पत्नियाँ पर्दे में रहती थीं और उन्हें प्रसव के लिए एक पुरुष (फ़क़ीर सलीम चिश्ती) के पास नहीं भेजा जा सकता था। दूसरे, अपने को फ़क़ीर कहने वाला कोई भी व्यक्ति दूसरों की पत्नियों का प्रसव कराने का दायित्व नहीं लेगा। तीसरे, यह बात निश्चित है कि शेख सलीम चिश्ती ने कोई प्रसव चिकित्सालय नहीं खोल रखा था। वह स्त्रीरोगों का विशेषज्ञ भी नहीं बताया गया है। चौथे, यदि वह किसी टूटी-फूटी झोंपड़ी में रहता होता तो अकबर की पत्नियों को प्रसव के लिए वहाँ न भेजा जाता। पाँचवें, हम पहले ही मनसर्रेट और बदायूँनी के उद्धरण देकर स्पष्ट कर चुके हैं कि सलीम चिश्ती का चरित्र बहुत भ्रष्ट था। अकबर स्वयं बहुत चालाक, धूर्त और अनैतिक आचरण का व्यक्ति था, इसलिए वह अपनी पत्नियों को प्रसव के लिए एक ऐसे व्यक्ति के पास भेजने का साहस नहीं कर सकता था जिसका नैतिक चरित्र संदिग्ध था।

श्री शेलट ने लिखा है कि बीकानेर के राय कल्याणमल के एक सम्बन्धी से तथा रावल हरराय सिंह की पुत्री से विवाह करने के बाद "अकबर पुनः सीकरी गया।" यदि फतेहपुर सीकरी में सुखद राजप्रासाद और भव्य भवन न होते तो अकबर अपनी हर पत्नी के साथ सुहागरात मनाने के लिए बार-बार फतेहपुर सीकरी न जाता।

"४ जुलाई, १५७२ को अकबर फतेहपुर सीकरी से चला। (पहले अजमेर गया और बाद में गुजरात पर हमला किया।)" (अकबर, पृष्ठ १२९)। इसका तात्पर्य यह है कि अकबर ने फतेहपुर सीकरी में अपनी राजधानी १५७२ ई० से पहले ही बना ली थी और उसके बाद १५८५ तक अपना सारा शाही कार्य-कलाप फतेहपुर सीकरी से करता रहा। १५७२ से १५८५ तक की अवधि में या उससे पहले भी उसकी सेनाएँ फतेहपुर सीकरी से निकलती थीं और वहीं वापस आती थीं। यदि राजधानी बन रही थी तो ऐसा कैसे हुआ कि ठीक उसी अवधि में अकबर वहाँ रहता भी था? एक

और बेतुकी बात यह है कि १५८५ में अकबर ने फतेहतुर सीकरी हमेशा के लिए छोड़ दी। उसके बाद वह वहाँ केवल एक बार बहुत थोड़े समय के लिए सन् १६०१ में गया था। अकबर जैसा समझदार, चालाक और आराम पसन्द व्यक्ति फतेहपुर सीकरी में जहाँ नयी राजधानी के लिए नीवें खुदी हों, खुले मैदान में जाकर नहीं रहेगा और वह इतना मूर्ख भी नहीं था कि जिस नयी राजधानी को उसने बनाया हो उसे वह बनाकर पूरा करने के वर्ष में ही हमेशा के लिए छोड़ दे।

इसी पृष्ठ पर श्री शेलट ने लिखा है कि "३ जून, १५७३ को अकबर एक बड़े विजय-अभियान के बाद फतेहपुर के दरवाज़े पर पहुँचा। शेख सलीम चिश्ती और दूसरे लोगों ने उसका स्वागत किया।"

यदि ३ जून, १५७३ को फतेहपुर में दरवाज़े विद्यमान थे तो अवश्य ही वहाँ भवन भी होंगे जिनके वे दरवाज़े थे। दरवाज़े हवा में खड़े नहीं किये जाते। इस प्रकार यदि दरवाज़े और महल जून, १५७३ से पहले मौजूद थे तो इस झूठ के पाँव उखड़ जाते हैं कि अकबर ने फतेहपुर सीकरी का निर्माण १५७० और १५८५ के बीच किया।

'अकबर' के पृष्ठ १३८-४० पर लिखा हुआ है कि "२३ अगस्त, १५७३ को वह (अकबर) तैयार ३००० सैनिकों के साथ फतेहपुर सीकरी से चला।"

जून, १५७३ में फतेहपुर सीकरी में पहुँचकर दो महीने बाद ही वह एक बड़ी सेना के साथ वहाँ से तभी मार्च कर सकता था जब वहाँ हजारों सैनिकों, सैकड़ों सेनापतियों, अंग-रक्षकों, हरम की हजारों महिलाओं और हजारों पशुओं—हाथी, घोड़े और ऊँटों के लिए रहने का स्थान बना हो।

शेलट ने निज़ामुद्दीन के तबकात-ए-अकबरी (इलियट तथा डाउसन) में से उद्धरण देते हुए लिखा है कि मुहम्मद हुसैन और अख्तियार के सिर आगरा और फतेहपुर के दरवाज़ों पर लटकाए जाने के लिए भेजे गये। तैमूर की परम्परा पर चलते हुए युद्ध-अभियान के कत्ल किये गये विद्रोहियों के सिरों की मीनार चिनवा दी गई थी।

१५७३ में आगरा और फतेहपुर में दरवाज़े होने के उल्लेख से स्पष्ट है कि फतेहपुर सीकरी के दरवाज़े उतने ही पुराने थे जितने आगरा के थे।

यदि वे नये बनाये गये होते या बन रहे होते तो आगरा के दरवाज़ों के साथ उनका उल्लेख न किया जाता।

'अकबर' पुस्तक में पृष्ठ १६० पर लिखा है कि "बदायूँनी हल्दीघाटी में राणा प्रताप पर विजय का समाचार लेकर फतेहपुर सीकरी रवाना हुआ और वह २५ जून, १५६७ को वहाँ पहुँचा।" यहाँ निर्माण-कार्य चालू होने का कोई उल्लेख नहीं है। यदि फतेहपुर सीकरी का निर्माण हो रहा होता तो सेना और घुड़सवार-सेना की बड़ी-बड़ी टुकड़ियाँ वहाँ से जा और आ न सकतीं।

अपनी पुस्तक में डॉ० श्रीवास्तव ने झूठी अप्रामाणिक बातों को आधार बनाते हुए लिखा है कि फतेहपुर सीकरी की नींव नवम्बर, १५७१ में रखी गई थी।

साथ ही उन्होंने लिखा है कि "निर्माण-कार्य का संक्षिप्त विवरण पादरी ऐंथनी मनसरेंट ने दिया है कि वे उस समय वहाँ उपस्थित थे। पत्थर के टुकड़ों को तराश कर ठीक किया जाता था और यथास्थान लगा दिया जाता था। नगरी का निर्माण इतनी तेज़ी से हुआ, मानो सब जादू मे हो गया हो।"

मनसरेंट ने जो कुछ कहा है यह उसके विवरण को गलत समझने का एक उदाहरण है। उसने कहीं भी नहीं कहा कि वह वहाँ उपस्थित था।

डॉ० श्रीवास्तव के विवेचन पर निर्भर रहने की बजाय हम मनसरेंट के लेख का स्वयं सिंहावलोकन करेंगे।

अकबर पुर्तगालियों और उनके धर्म की प्रशंसा करके उन्हें झाँसा देना चाहता था, इसलिए वह गोआ में पुर्तगाली शासकों पर दबाव डालता रहता था कि वे अपने प्रतिनिधियों को फतेहपुर सीकरी में उसके दरबार में भेजें।

मनसरेंट की कमेंट्री के सम्पादक ने प्राक्कथन में लिखा है कि तदनुसार "पहला ईसाई मिशन गोआ से १७ नवम्बर, १५७९ को रवाना हुआ। उसी वर्ष १३ दिसम्बर को वे दमण से सूरत रवाना हुए और २८ फरवरी, १५८० को फादर एक्वाविवा और एनरिक फतेहपुर सीकरी पहुँचे। मनसरेंट नरवर में बीमार हो गया था, इसलिए वह एक सप्ताह बाद ४ मार्च को मुगल राजधानी में पहुँचा। दरबार में उनका भव्य-स्वागत

हुआ। अबुल फ़जल और हाकिम अली गिलानी को उनके स्वागत-सत्कार पर लगाया गया।" यहाँ ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि जब ईसाई पादरी पहुँचे तब फतेहपुर सीकरी में निर्माण-कार्य हो रहा था। यदि निर्माण हो रहा होता तो उन्हें पत्थर, मिट्टी और चूने के ढेरों के बीच तम्बुओं में रहना पड़ता और हज़ारों मज़दूर उनके आस-पास काम करते होते। कोई भी बादशाह ऐसे वातावरण में न तो खुद रहता है और न राजदूतों को आमन्त्रित करता है। यह उल्लेख कि उन्हें पूरी सुख-सुविधा उपलब्ध कराई, इस बात का संकेत करता है कि उनके आने से पहले फतेहपुर में आलीशान इमारतें और महल मौजूद थे।

फादर मनसरेंट प्रतिदिन रात को सोने से पहले डायरी लिखता था और उसकी यही डायरी "कमेंटेरियस (कमेंट्री)" नाम से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में पृष्ठ २००-२०१ पर लिखा है कि—"जलालुद्दीन (अकबर) ने राज्य के विभिन्न भागों में जो भवन बनवाये······उनका निर्माण असाधारण गति से हुआ है। उदाहरण के लिए उसने खम्भों का एक बड़ा परिस्तम्भ, जो २०० फुट वर्ग में फैला था, तीन महीने में तैयार कराया था और ३०० फुट घेरे के कुछ स्नानागार, जिनमें कपड़े बदलने के कमरे, निजी कमरे और कई जलमार्ग थे, छः महीने में तैयार करा दिये गये। यहाँ वह स्वयं स्नान करता है। पत्थर तराशने वालों और लकड़ी को काटकर ठीक आकार देने वाले कारीगरों के औज़ारों के शोर से बचने के लिए उसने ऐसी व्यवस्था की थी कि भवन का प्रत्येक भाग नक्शे के अनुसार सही नाप में किसी और स्थान पर बनाया जाता था और तब उसे लाकर यथास्थान स्थापित कर दिया जाता था। इन पादरियों ने इस सब बात पर ध्यान दिया और उन्हें यरुशलम में मन्दिर के निर्माण की बात याद हो आई जहाँ कारीगरों के औज़ारों की आवाज़ सुनाई नहीं पड़ती थी। उन्होंने सोचा कि जादू के सिवा और किसी ढंग से ऐसा नहीं हो सकता।"

फतेहपुर सीकरी की स्थापना के सम्बन्ध में कमेंट्री में केवल इतना ही कहा गया है। ध्यानपूर्वक देखने से इस अनुच्छेद से बहुत-सी बातें स्पष्ट हो जाती हैं, यद्यपि सामान्यतः यह भ्रामक है।

ध्यान देने योग्य पहली बात यह है कि मनसरेंट प्रतिदिन डायरी

लिखता था, परन्तु उसने कहीं भी निर्माण-कार्य होने का उल्लेख नहीं किया है। उसने अकबर के राज्य में ऐसे भवनों का उल्लेख किया है, जिनके बारे में मुस्लिम दरबारियों और चापलूसों ने उसे बताया था कि ये सब अकबर ने बनाये हैं।

कल्पना कीजिये कि मानसरेंट १५८० ई० के आरम्भ में फतेहपुर सीकरी पहुँचा। लाल पत्थर के बढ़िया ढंग से बने प्रासादों और उनकी आभ्यन्तर सज्जा और विशाल द्वारों को देखकर वह प्रसन्न और चकित हो जाता है और दरबारियों से पूछता है कि ये सब किसने बनाये ? मुसलमानी दरबार की उर्दू और फारसी की परम्परा के अनुसार हर चीज़ का श्रेय, जिसमें अपना स्वयं का अस्तित्व भी सन्निहित है, बादशाह को दिया जाता है। यदि बादशाह किसी दरबारी के घर जाये और पूछे कि ये बच्चे किसके हैं, तो दरबारी व्यक्ति ठेठ मुसलमानी परम्परा के अनुसार बिना शर्म और हिचक के कह देगा "हुजूर, आप ही के हैं।" वह अपने आश्रयदाता या बादशाह के सामने कभी भी उन्हें अपनी सन्तान नहीं मानेगा। जो व्यक्ति चापलूसी में इतना गिर सकता है कि अपनी सन्तान को अपना नहीं कहता, स्वाभाविक है कि वह अपहृत हिन्दू भवनों को भी बादशाह द्वारा निर्मित बतायेगा।

अकबर १४ वर्ष की आयु में १५५६ ई० में गद्दी पर बैठा था और मनसरेंट जब २४ वर्ष बाद फतेहपुर सीकरी पहुँचा और उसे बताया गया कि नगरी का निर्माण हाल ही में हुआ है तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहाँ मलबे, मचान या कारीगरों का कोई नाम-निशान तक नहीं था। इस बात के स्पष्टीकरण में उसे एक और झाँसा दिया गया कि अकबर धूल और शोर को पसन्द नहीं करता था, इसलिए अपेक्षित आकार-प्रकार के पत्थर दूर खदानों में ही तराशे जाते थे और उन्हें ठीक स्थान पर लाकर मात्र एक-दूसरे के ऊपर जोड़ दिया जाता था।

तब भी उसे आश्चर्य था कि यह सब मान भी लिया जाये तो पत्थर को इतनी ऊँचाई पर ले जाने के लिए पुली और मचान आदि कहाँ गये। अन्ततः मनसरेंट इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह सब जादू की तरह से हुआ होगा जैसा यरुशलम के मुख्य मन्दिर के निर्माण के बारे में भी विश्वास किया जाता है।

इससे यह स्पष्ट है कि अकबर के दरबार के चापलूस मुस्लिम दरबारियों ने मनसर्रेट को पूर्णतः भ्रम में डाल दिया था।

यदि अकबर को फतेहपुर सीकरी का संस्थापक एवं निर्माता मान भी लिया जाये तो कई और असंगतियाँ सामने आ जाती हैं।

इस स्थान का चुनाव और सर्वेक्षण करने वाला कौन था ? इसमें कितना समय लगा ? नगरी का रेखा-चित्र किसने बनाया ? भवनों के रेखांकन किसने किये ? भवनों को बनकर तैयार होने में कितना समय लगा ? अमीर लोगों के रहने के हज़ारों मकान किसने और कब बनाये ? जो अकबर अपने ही संरक्षक बहराम खाँ और असंख्य राजपूत नरेशों, विद्रोही दरबारियों, मुस्लिम शासकों आदि से मुठभेड़ें करता रहता था, क्या उसके पास इतना धन और समय था कि वह इतना सब निर्माण-कार्य करवा सके ? और इस सबके बाद भी फतेहपुर सीकरी पूरी तरह हिन्दू ढंग की नगरी कैसे रह गई ? ऐसे प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल पाता।

फतेहपुर सीकरी का निर्माण अबकर ने कराया, इस ढकोसले के खोखलेपन को स्पष्ट करने के लिए इतने अधिक प्रमाण उपलब्ध हैं कि उनका विस्तृत उल्लेख करने के लिए अलग पुस्तक लिखने की आवश्यकता होगी।

यहाँ हम इस झूठ का भण्डाफोड़ करने के लिए कुछ प्रमुख बातें संक्षेप से कहेंगे—

१. नगरी तथा उसके भव्य भवनों का रेखांकन करने वालों के नाम या काम करने वालों के नाम या उनके निरीक्षण कर्ताओं का कोई अभिलेख कहीं नहीं मिलता।

२. यदि फतेहपुर सीकरी का निर्माण अकबर ने कराया होता तो इस नाम का उल्लेख अकबर से पहले के इतिहासों में कैसे मिलता ?

३. अकबर के दरबारी बदायूँनी ने स्पष्ट किया है कि अकबर के दादा बाबर से निर्णायक युद्ध होने से पहले राणा साँगा फतेहपुर पहुँच गया था।

४. पहाड़ी और उसपर क़त्ल किये गये हिन्दुओं के सिरों की मीनार बनाये जाने के जो उल्लेख मिलते हैं उनसे स्पष्ट है कि हिन्दुओं ने अन्तिम साँस तक वहाँ युद्ध किया।

५. बुलन्द दरवाज़े के अन्दर के आँगन में जो सैकड़ों कब्रें हैं वे उन

मुसलमानों की हैं जो अकबर से दो पीढ़ी पहले महल के अन्दर अन्तिम युद्ध में मारे गये थे।

६. फतेहपुर सीकरी में एक दरवाज़ा है जिसपर दोनों ओर पत्थर के दो हाथी बने हुए हैं और उनकी सूंड़ दरवाज़े की मेहराब के रूप में बनी हुई हैं। यह पूर्णतः हिन्दू शिल्पकला पर आधारित है। लक्ष्मी के चित्रों में ऐसा ही रूप देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त दरवाजों पर और महलों के अन्दर हाथी की मूर्तियां सामान्य हिन्दू पद्धति की हैं। हाथियों की ऐसी मूर्तियाँ ग्वालियर के किले में ग्वालियर दरवाज़े पर, उदयपुर में महाराजा के प्रासाद के अन्दर और कोटा में नगर प्रासाद के तोरण द्वार पर देखी जा सकती हैं। दिल्ली के लाल क़िले में भी हाथी की मूर्तियाँ शाही दरवाज़े के दोनों ओर बनी थीं। इसी तरह इस बात का प्रमाण यह भी है कि आगरे के लाल क़िले में भी शाही दरवाज़े के दोनों ओर हाथी की मूर्तियाँ बनी थीं। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इन्हें हटा दिया। हम अपनी पुस्तक 'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें' में सिद्ध कर चुके हैं कि दिल्ली और आगरा के लाल क़िलों के निर्माण का मूल समय मुसलमानों से पहले हिन्दू काल का है।

७. हाथी दरवाज़े के बाहर एक विशाल दीप-स्तम्भ है जिसपर दीपक रखने के लिए ब्रैकेट बनें हैं। ऐसे दीप-स्तम्भ आज भी देवी-देवताओं के मन्दिरों के बाहर भारत भर में देखे जा सकते हैं। फतेहपुर सीकरी के इस दीप-स्तम्भ के सम्बन्ध में यह कहकर भुलावा देने का प्रयत्न किया जाता है कि किसी प्रिय हिरन या हाथी की स्मृति में इसका निर्माण अकबर ने कराया था। कभी-कभी सोचना पड़ता है कि क्या ऐसे हाथी या हिरन ने मरते समय अकबर के कान में ऐसी अन्तिम इच्छा व्यक्त की थी कि उसकी यादगार में हिन्दू शैली का दीप-स्पम्भ बनाया जाये। और यदि इस बात पर विचार किया जाये कि अकबर के पास हज़ारों पशुओं का समूह था, तब अकबर द्वारा तथाकथित निर्मित लकड़बग्घे, रीछ, भेड़िये, चीते, शेर, कुत्ते, गधे, हाथी, ऊँट और सूअरों के ऐसे ही स्मृति-स्तम्भ बने होने चाहिए। फिर, हमें ध्यान रखना चाहिए कि मुसलमान मूर्तिभंजक होते हैं, मूर्ति बनाने वाले नहीं, और अकबर किसी भी दूसरे मुस्लिम शासक से अधिक धर्मान्ध था।

८. फतेहपुर सीकरी में लाल पत्थर से बने आवासी कक्षों के अन्दर हिन्दुओं की पौराणिक आकृतियाँ—स्वास्तिक, मोर और ताड़वृक्ष—बनाई गई हैं। मुसलमानों ने तो इन सब आकृतियों को विकृत किया है।

९. फतेहपुर सीकरी में अभी भी ऐसे ताल विद्यमान हैं जिनका पुराना हिन्दू संस्कृत नाम चला आ रहा है; उदाहरण के लिए अनूप ताल और कर्पूरताल। कर्पूर हिन्दुओं में पूजा के लिए एक पवित्र चीज है।

१०. यदि फतेहपुर सीकरी का निर्माण अकबर ने कराया होता तो वह बुलन्द दरवाजे के अन्दर के क्षेत्र में मुसलमानों की कब्रें न बनने देता। ये कब्रें वहाँ इसलिए बनी हैं कि यह अकबर से दो पीढ़ी पहले बाबर और राणा साँगा के बीच अन्तिम युद्ध में इसी भवन समूह में लड़ते हुए मारे गए मुसलमानों की हैं।

११. यदि फतेहपुर सीकरी का निर्माण-कार्य १५७५ से १५८५ तक की अवधि में हुआ तो ठीक इसी अवधि में अकबर वहाँ कैसे रहा ?

१२. यदि फतेहपुर सीकरी १५८५ में बनकर तैयार हुई तो ठीक उसी वर्ष में अकबर ने उसे कैसे छोड़ दिया ? क्या वह मूर्ख था कि जबतक नगर का निर्माण होता रहा तबतक वहाँ रहा और जैसे ही निर्माण पूरा हुआ, वैसे ही वह वहाँ से चला आया ?

१३. अकबर को फतेहपुर सीकरी को अन्तिम रूप से छोड़ देने का निर्णय इसलिए करना पड़ा कि जिस बड़े जलाशय से नगर के लिए पानी आता था, वह अक्तूबर, १५८३ में फट गया और सूख गया। अकबर से दो पीढ़ी पहले बाबर के संस्मरणों में इसी जलाशय का उल्लेख किया गया है। यदि यह जलाशय अकबर के आदेश से बनाया गया होता तो उसमें दरार पड़ने की नौबत न आती और यदि दरार पड़ जाती तो अकबर उसके निर्माण के लिए उत्तरदायी सभी लोगों की हत्या करवा देता। वास्तव में, जलाशय में दरार पड़ने का समुचित कारण यह था कि अधिकार करने वाले मुसलमानों को यह जानकारी नहीं थी कि इस जलाशय का अनुरक्षण कैसे किया जाए। बाबर के आक्रमण के समय और बाद की मुठभेड़ों में इस जलाशय को क्षति हुई और उचित अनुरक्षण न होने के कारण वह फट गया। तथापि यह १५२६ से १५८३ तक मुस्लिम आक्रमणकारियों

की सेवा करता रहा, यह हिन्दुओं की यान्त्रिक क्षमता के लिए श्रेय की बात है।

१४. अकबर के बारे में यह मनगढ़न्त विवरण कि उसने एक मस्जिद बनवाई और पूजा-घर बनवाया और अन्य भव्य भवन बनवाए, विसंगतिपूर्ण और परस्पर विरोधी हैं।

१५. फ्रांसिस ज़ेवियर जैसे पर्यटकों ने लिखा है कि अकबर के जीवनकाल में भी फतेहपुर सीकरी जीर्ण-शीर्ण दशा में थी। यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रमाण है, क्योंकि इससे सिद्ध होता है कि अकबर उस फतेहपुर सीकरी में रहता था जिसपर उसके दादा बाबर ने आक्रमण करके अधिकार किया था।

१६. श्री जे० एम० शेलट की पुस्तक 'अकबर' में पृष्ठ ८२ पर एक रंगचित्र का चित्र छपा है जिसके परिचय में लिखा है कि इसमें हुमायूँ को अपने दरबारियों के साथ फतेहपुर में बैठे हुए दिखाया गया है। हुमायूँ अकबर का पिता था, इसलिए इस रंग-चित्र से, जो अकबर के जन्म से पहले का है, स्पष्टतः सिद्ध हो जाता है कि फतेहपुर सीकरी का भवन-समूह, अकबर के जन्म से पूर्व विद्यमान था।

१७. विभिन्न विवरणों के अनुसार फतेहपुर सीकरी का निर्माण-कार्य १५६४ और १५७१ ई० के बीच किसी समय प्रारम्भ हुआ था। यदि फतेहपुर सीकरी का निर्माण वास्तव में अकबर ने कराया होता तो यह विसंगति न होती। कम-से-कम तीन इतिवृत्तलेखक बदायूँनी, अबुल फ़ज़ल और निजामुद्दीन, अकबर के समकालीन और दरबारी थे। यदि यह जालसाजी और धोखा न होता तो उनके विवरण अलग-अलग नहीं होने चाहिए थे। उदाहरण के लिए विंसेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक में पृष्ठ ७५ पर लिखा है कि "अबुल फ़ज़ल के जिस अनुच्छेद का उद्धरण दिया गया है, उसका अर्थ यह हो सकता है कि अकबर ने फतेहपुर सीकरी में अपना विस्तृत निर्माण-कार्य १५७१ से प्रारम्भ किया था, परन्तु यह सच नहीं है, वहाँ भवनों का निर्माण १५६९ में प्रारम्भ हो गया था।"

ऊपर की टिप्पणी से स्पष्ट है कि फतेहपुर सीकरी के बारे में अबुल फ़ज़ल ने अस्पष्ट भाषा का प्रयोग किया है और स्मिथ जैसे इतिहासकारों

को उसका अर्थ लगाने में बड़ी कठिनाई हुई है। इसलिए उन्होंने विभिन्न प्रकार के अनुमान लगाए जो एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं।

१८. शेख सलीम चिश्ती के भाई का नाम इब्राहिम फतेहपुरी था। यह नाम उसे तभी मिल सकता है जब उसका परिवार पीढ़ियों से फतेहपुर सीकरी में रहा हो।

१६. स्मिथ ने कहा है कि "अगस्त, १५७१ में अकबर फतेहपुर सीकरी आया और वह शेख के डेरे पर ठहरा।" इसका एक गहरा अर्थ है। जब बाबर फतेहपुर सीकरी को ध्वस्त करके चला गया तो शेख सलीम चिश्ती और दूसरे मुस्लिम फकीरों ने लाल पत्थरों के भवनों पर अधिकार कर लिया। हुमायूं ने किसी भी समय फतेहपुर सीकरी के साथ कोई स्थायी सम्बन्ध नहीं रखा। बाबर के दो पीढ़ी बाद जब अकबर ने सुरक्षा की दृष्टि से फतेहपुर सीकरी में जाकर बसने का निश्चय किया तो यह इसलिए सम्भव हो सका कि फतेहपुर सीकरी में भव्य प्रासाद और बड़ी रक्षात्मक प्राचीर पहले ही विद्यमान थी। शेख सलीम चिश्ती वहाँ बस गया था और वह हिन्दुओं को पुनः उस भवन पर अधिकार करने से रोके हुए था, इसीलिए कहा गया है कि अकबर आकर चिश्ती के भवन में ठहरा। परन्तु यह स्मरणीय है कि इससे पहले भी अकबर की पत्नियाँ प्रसव के लिए फतेहपुर सीकरी के महलों में आ चुकी थीं।

२०. फतेहपुर सीकरी के भवन-समूह में पंचमहल के सामने पत्थर लगे आँगन में ज्योतिषी का स्थान बना हुआ है। इसकी सीट के ऊपर सजावटी पत्थर की जो वन्दनवार बनी है, उसपर हिन्दुओं की पौराणिक आकृतियाँ बनी हैं। हिन्दुओं के राजघरानों में राज ज्योतिषी को प्रमुख स्थान प्राप्त होता था।

२१. ज्योतिषी की सीट के सामने आँगन के दूसरे छोर पर पत्थर का एक कुण्ड बना है जिसे 'घटी-पात्र' या घड़ी कहते हैं। यह वह उपकरण है जिसके माध्यम से हिन्दू लोग पूजा या समारोह के लिए शुभ मुहूर्त निकालते थे।

२२. फतेहपुर सीकरी में एक नक्कारखाना है जो सभी हिन्दू प्रासादों और मन्दिरों का एक आवश्यक अंग होता था। मुसलमान लोगों को तो संगीत से चिढ़ थी।

२३. फतेहपुर सीकरी में अश्वशाला, गजशाला और उष्ट्रशाला (घोड़े, हाथी और ऊँटों के अस्तबल) बने हैं। किसी भी मुस्लिम महल में यह सब नहीं था। ये सब हिन्दू प्रासादों के आवश्यक अंग होते थे।

२४. पंच-महल के सामने के आँगन में फर्श पर चौपड़ बनी हुई है जो मध्यकाल में हिन्दुओं का बहुत लोकप्रिय खेल था। मुस्लिम कभी भी इस खेल को नहीं खेलते थे और अब भी नहीं खेलते।

२५. चौपड़ का रेखांकन फतेहपूर सीकरी के विन्यास को भी सूचित करता है। हिन्दू वास्तुकारों में यह एक प्रथा थी कि किसी भी भवन को बनाते समय वे उसका आधारभूत रेखांकन भवन के किसी भाग में बना लेते थे। ताजमहल के आँगन में गुम्बद के त्रिशूल-कलश का पूरा नमूना नीचे फर्श पर बना दिया गया है जो उसके निर्माण में सहायक हुआ होगा। फतेहपुर सीकरी नगरी के विन्यास का रेखांकन चौपड़ के उस फर्श पर इसी उद्देश्य से बना दिया गया है।

फतेहपुर सीकरी के मूलतः हिन्दू नगरी होने तथा राणा साँगा के हाथों पतन होने से पहले उसके हिन्दू राजधानी होने का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण भगवान् राम और राम-भक्त हनुमान की आकृतियों में है जो वहाँ मिली हैं।

पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के एक प्रकाशन (जो आरक्योलाजिकल रिमेंस, मानूमेंट्स एण्ड म्यूज़ियम्स नाम से १९६४ में प्रकाशित हुई थी) भाग २, पृष्ठ ३१० पर कहा गया है कि "मरियम के महल में, जिसे सुनहरा मकान भी कहते हैं, एक लम्बा कक्ष है और उसके साथ तीन छोटे कक्ष बने हुए हैं जिन के तीनों ओर बरामदे बने हैं। बरामदे के एक स्तम्भ पर भगवान् राम और हनुमान की आकृतियाँ बनी हैं और भित्ति-चित्र बने हुए हैं।"

अन्ततः, फतेहपुर सीकरी का निर्माण अकबर के द्वारा कराए जाने की कपोल-कल्पना का भण्डाफोड़ हर प्रकार से किया जा सकता है। विस्तृत चर्चा के लिए अकेले फतहपुर सीकरी पर अलग से एक पुस्तक की आवश्यकता होगी। इसलिए इसे हम यहीं छोड़ते हैं और दूसरी विभिन्न नगरियों और भवनों का निर्माण अकबर द्वारा कराए जाने के दावों का निरीक्षण करते हैं।

आगरे का लाल क़िला

कीन की पुस्तक "हैंडबुक फार विज़िटर्स टु आगरा एण्ड इट्स नेबर-हुड" में आगरे के लालक़िले का दो हज़ार वर्ष का इतिहास दिया गया है और इसके बाद अकबर के समय में प्रचलित एक किंवदन्ती का उल्लेख किया गया है कि १५६५ में अकबर ने बिना किसी कारण इस क़िले को गिराकर उसकी जगह नया क़िला बनवाया। १५६६ में अधम ख़ाँ को, जिसने एतमाद खाँ का कत्ल किया था, सज़ा देने के लिए उसे क़िले के अन्दर शाही निवास की दूसरी मंजिल से नीचे फेंक दिया गया था। कीन ने बड़ा संगत सन्देह व्यक्त किया है कि यदि किले को १५६५ में गिरा दिया गया था तो फिर ऐसा कैसे हुआ कि अकबर वहाँ १५६६ में रहने लगा और एक व्यक्ति को उठाकर वहाँ दूसरी मंजिल से नीचे फेंक दिया गया। कीन का कहना है कि इतने बड़े लाल क़िले की नींव पूरी करने में भी तीन साल का समय लग जाना चाहिए। ऐसी परिस्थितियों में एक ही वर्ष की अवधि में अकबर का लाल क़िले से निकल जाना, लाल क़िले को गिराया जाना, उसके मलबे को हटाया जाना, पुरानी नींव को हटाना और नयी योजना के अनुसार नयी नींवें भरना, उसके लिए आवश्यक लाल पत्थर आदि मँगवाकर चिनाई कराना, फिर सारे ढाँचे का प्लस्तर और उसके अन्दर और बाहर की सजावट करवा देना ऐसा लगता है जैसे सब स्वप्न में हो गया हो। दुर्भाग्य से भारत के इतिहास को ऐसी मनगढ़न्त कथाओं से भर दिया गया है और किसी को उसपर सन्देह नहीं हुआ।

अजमेर

अजमेर अकबर से शताब्दियों पहले हिन्दू राजाओं की प्राचीन राजधानी था। यह नाम संस्कृत के शब्द अजय मेरु का अपभ्रंश रूप है। अजमेर का यह नाम तारागढ़ क़िले के कारण पड़ा जो एक पहाड़ी के ऊपर बना हुआ है। अजमेर नगर इस पहाड़ी की तलहटी में बसा हुआ है। नगर में एक प्राचीन प्रासाद है जिसमें इस समय सरकारी कार्यालय हैं। इस महल, क़िले और मोइनुद्दीन चिश्ती के मकबरे के आसपास बने दूसरे भवनों को बनवाने का श्रेय अकबर को दिया जाता है। परन्तु अकबर राजपूत नरेशों के विरुद्ध अपने अभियानों का संचालन करने के उद्देश्य से १९ वर्ष की आयु

से ही अजमेर जाता रहता था। यदि वहाँ पहले से कोई महल मौजूद न होता तो वह वहाँ जाकर रह नहीं सकता था। मुसलमानों के आगमन से पहले भी अजमेर दीर्घकाल तक शक्तिशाली हिन्दू नरेशों की राजधानी रहा था। वहाँ जो महल, मकबरे, क़िला, दरवाज़े और दूसरे भग्नावशेष हैं वे प्राचीन हिन्दू निर्माण-कृतियाँ हैं जिनपर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया था। अजमेर नगर में आकर अकबर उस महल में रहता था जिसमें पहले विग्रहराज विशालदेव और पृथ्वीराज जैसे हिन्दू राजा रह चुके थे। यही कारण है, कि मुस्लिम विवरणों में यह दावा किया गया है कि अकबर ने नगरों, क़िलों और महलों का निर्माण जादू की तरह किया। यह सब जादू इसी बात में है कि अकबर के चापलूस दरबारियों के उल्लेखों ने पहले के सभी हिन्दू भवनों के निर्माण का श्रेय अकबर को दिया। अलाउद्दीन खिलजी को भी इसी तरह जादुई गति से निर्माण-कार्य करने वाला बताया गया है।

मोइनुद्दीन चिश्ती का मकबरा

अजमेर में तारागढ़ के दुर्ग के समीप एक दरगाह है जहाँ मुसलमान हर वर्ष शेख मोइनुद्दीन चिश्ती के उर्स के लिए एकत्रित होते हैं। शेख मोइनुद्दीन को वास्तव में वहीं दफनाया गया था या नहीं, इस तथ्य की जाँच करने की आवश्यकता है, क्योंकि नाम-मात्र के मकबरों के बहुत-से उदाहरण देखने में आए हैं। दरगाह का क्षेत्र स्पष्ट ही किसी क़िले की बाहरी रक्षात्मक संरचना का एक भाग दिखाई देता है। पत्थर के बने एक बड़े दरवाज़े में से होकर दरगाह में जाते हैं। यह एक हिन्दू दुर्ग का भाग था जिसपर मुस्लिम आक्रमणकारियों ने अधिकार कर लिया था। अधिकार करने के पश्चात् मोइनुद्दीन चिश्ती जैसे फकीर उसके खण्डहरों में रहने लगे। उनका देहावसान होने पर उन्हें उनके डेरे में ही दफ़न कर दिया गया। यह बात भारत में मध्यकाल के सभी मकबरों पर लागू होती है। ये सब हिन्दू मन्दिर हैं जिनका मुस्लिम मकबरों के रूप में दुरुपयोग किया गया।

इलाहाबाद का क़िला

इलाहाबाद में गंगा और यमुना के संगम पर जो किला बना हुआ है, उसके निर्माण का श्रेय अकबर को दिया जाता है।

उदाहरण के लिए विंसेंट स्मिथ ने पृष्ठ १६१ पर लिखा है कि "हिन्दुओं के सर्वाधिक पवित्र धार्मिक स्थान प्रयाग की रक्षा की व्यवस्था नहीं की गई थी। अक्तूबर, १५८३ में अकबर आगरा से नदी के रास्ते संगम तक गया। वहाँ उसने नवम्बर में क़िले का निर्माण प्रारम्भ कराया और यह काम बहुत कम समय में पूरा हो गया। इस क़िले के आसपास इलाहाबाद का वर्तमान आधुनिक नगर बस गया।"

इस वक्तव्य में कई त्रुटियाँ खटकती हैं और इससे पता लगता है कि भारतीय इतिहास लेखक किस तरह झूठी बातों पर विश्वास कर लेते हैं। पहली बात यह है कि यह वक्तव्य बहुत बचकाना है कि अकबर से पहले "इलाहाबाद की रक्षा की व्यवस्था नहीं थी।" मध्यकालीन भारत में प्रत्येक नगर और गाँव की रक्षा की व्यवस्था की जाती थी।

इलाहाबाद का क़िला बहुत प्राचीन समय का है और हर प्रकार से हिन्दू शैली पर बना है। उसके अन्दर के शाही निवास-स्थानों की सजावट हिन्दू महलों की शैली पर है। क़िले के अन्दर पातालेश्वर मन्दिर जैसे मन्दिर तथा पवित्र अक्षयवट विद्यमान हैं।

क़िले के अन्दर पत्थर का बना हुआ एक अशोक-स्तम्भ है जिससे पता लगता है कि यह क़िला महाराज अशोक से पूर्व विद्यमान था या अशोक के समय में बना था।

दूसरे, इलाहाबाद हिन्दुओं का एक पवित्र तीर्थ-स्थान है, इसलिए उसे अरक्षित नहीं रहने दिया गया होगा। क़िले के सामने गंगा के उस पार झूसी नाम से एक प्राचीन नगरी है जिसका उल्लेख रामायण में आता है। इसी तरह इलाहाबाद या प्रयाग आधुनिक काल का नगर नहीं है प्रत्युत भारत का प्राचीनतम नगर है जिसका इतिहास लाखों वर्षों का है। गंगा और यमुना के संगम पर क़िला बनाए जाने का कारण यह है कि क़िले के दोनों ओर पानी की धारा से किले को कम-से-कम दो ओर से प्राकृतिक सुरक्षा प्राप्त हो सकती थी।

इलाहाबाद में केवल एक प्राचीन किला ही नहीं था बल्कि वहाँ ऊँचे-ऊँचे घाट भी बने हुए थे जिनपर पत्थर से बनी सीढ़ियों के साथ-साथ मन्दिर बने थे, जैसा बनारस में आज भी देखा जा सकता है। जब अकबर ने इलाहाबाद को लूटा तब उसने इन सबको उखाड़ डाला। यदि इलाहाबाद

का अस्तित्व नहीं था तो अकबर ने किस नगरी को लूटा ? क्योंकि अकबर ने इलाहाबाद नगर को लूटा, इसलिए स्पष्ट है कि उसने किसी नगरी की स्थापना नहीं की। लूट मचाने वाला राजा उन्हीं लोगों के लिए, जिन्हें वह लूटता है, नगर बसाया नहीं करता। दोनों बातों में विसंगति है।

इस तरह इलाहाबाद नगरी या क़िले का निर्माण करने के विपरीत अकबर ने उनपर आक्रमण किया और वहाँ बने असंख्य मन्दिरों और विशाल घाटों को नष्ट कर दिया।

भवनों के निर्माणकर्ता होने के दावों का ध्यान से परीक्षण न करके इतिहासकारों ने गलती की है। यदि उन्होंने यह जानने का प्रयत्न किया होता कि भवन का रेखांकन करने वाला कौन था, वे रेखांकन कहाँ हैं, निर्माण कब प्रारम्भ हुआ और कब समाप्त हुआ, खर्च कितना आया, क़िले में हिन्दू मन्दिर और हिन्दू स्तम्भ क्यों विद्यमान हैं, उसके शाही निवास-स्थान हिन्दू शैली में क्यों बने हैं, तब अकबर का इन भवनों का निर्माता होने का दावा स्वीकार हो पाता। उनका यह एक अस्पष्ट वक्तव्य है कि अकबर के सभी भवन बहुत ही कम समय में बनकर तैयार हो गये थे, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस बारे में प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। भारत में मुस्लिम शासनकाल के ऐसे झूठे दावों की भरमार है जिन्हें ध्यान में रखते हुए सर एच० एम० इलियट को अपनी पुस्तक के प्राक्कथन में कहना पड़ा कि "मध्यकालीन भारतीय इतिहास जालसाज़ी और मनोरंजक धोखा है।"

नगरचैन

अन्य भवनों के ढकोसलों की तरह नगरचैन नामक नगरी की स्थापना भी अकबर ने की, ऐसा दावा किया गया है। यदि कोई दर्शक कहता है कि मुझे वह जादूई नगर दिखाओ जिसकी स्थापना अकबर ने की थी, तो इतिहासकार का उत्तर होता है कि वह नगर इस तरह नष्ट हुआ है कि कोई भी ध्वंसावशेष नहीं है।

भारत में मुस्लिम शासनकाल के इतिवृत्तों में ऐसी जालसाज़ियों की भरमार है। उदाहरणार्थ हुमायूँ के बारे में कहा जाता है कि उसने अपनी दिल्ली बसाई। यदि आप पूछें कि वह दिल्ली कहाँ है ? तो उत्तर मिलता

है कि अपने पांच वर्ष के शासनकाल में शेरशाह ने अपने प्रतिद्वन्द्वी की दिल्ली को पूरी तरह नष्ट कर दिया था। उसने दिल्ली को गिराने का काम इतनी तत्परता से कराया कि हुमायूं की दिल्ली का कोई अवशेष नहीं है। साथ ही हमें यह भी बताया जाता है कि इस अवधि में शेरशाह ने हुमायूं की दिल्ली को पूरी तरह नष्ट किया और अपनी एक और दिल्ली बसाई। यह विचित्र बात है। क्योंकि शेरशाह का पूरा शासनकाल अपने विरोधियों के साथ संघर्ष में बीता था।

नगरचैन के बारे में स्मिथ ने अपनी पुस्तक (पृष्ठ ५४-५५) में लिखा है कि "१५६४ के अन्त में मांडू से लौटने पर अकबर ने आगरा से सात मील दक्षिण में ककरौली में एक महल अथवा शिकारगाह का निर्माण कराया, जिसे उसने नगरचैन या अमीनाबाद का नाम दिया। वहां लुभावने बाग लगाये गये। महलों के आसपास एक नगर बस गया। कभी-कभी अकबर विदेशी राजदूतों से वहीं भेंट करता था। विचित्र बात यह है कि अकबर के शासनकाल के उत्तरार्द्ध में जब बदायूंनी अपना विवरण लिख रहा था, तब इन महलों, बागों और नगरों के सभी निशान मिट चुके थे। कोई नहीं जानता कि किसने कब और क्यों इन्हें गिराया...।"

यहां भी हमारे सामने वही बात आती है कि सम्पूर्ण नगरी का निर्माण इतनी तेजी के साथ हुआ कि किसी को पता ही नहीं है कि वह कब प्रारम्भ हुआ या कब समाप्त हुआ, उसपर कितनी धन-राशि व्यय हुई अथवा उस नगरी का विन्यास किसने किया। इसी तरह किसी को भी यह पता नहीं है कि कैसे उसका नामो-निशान मिट गया। हमें यह भी पता लगता है कि अकबर के समकालीन इतिवृत्तकारों, जैसे बदायूंनी, का कहना है कि हमें उस नगरी के बारे में जानकारी नहीं है। अत: यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि नगरचैन को, जो शुद्ध संस्कृत नाम है, अकबर ने नहीं बनाया था। इलाहाबाद की स्थापना अकबर ने नहीं की थी। फतेहपुर सीकरी का निर्माण अकबर ने नहीं किया था। उसने उसकी हिन्दू शैली की सज्जा को नष्ट किया था। इससे हम इस महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अकबर और दूसरे मुस्लिम शासकों ने भारत में कुछ बनाया नहीं, यहां के भव्य हिन्दू प्रासादों, मन्दिरों, भवनों, दुर्गों, नहरों, पुलों और सड़कों को, जिन-

जिनके लिए प्राचीन भारत प्रसिद्ध था, नष्ट किया, क्षतिग्रस्त किया, उनका दुरुपयोग किया या उन्हें नष्ट-भ्रष्ट और विकृत किया।

बदायूंनी ने नगरचैन के निर्माण के सम्बन्ध में अकबर के झूठे दावे का शायद अनिच्छापूर्वक भंडाफोड़ कर दिया है। उसकी पुस्तक के दूसरे भाग में पृष्ठ ६६८-७० पर लिखा है कि "इस वर्ष (९७२ हिजरी) नगरचैन नामक नगरी का निर्माण प्रारम्भ हुआ। इस विषय में अकबरनामा के लिखे जाते समय एक अमीर ने मुझे आदेश दिया कि मैं कुछ लाइनें बनाऊं जिन्हें मैं यहाँ बिना फेर-बदल अंकित कर रहा हूँ। यह विश्व की एक विचित्र बात है कि अब उस नगरी और उसके भवनों का कोई नामो-निशान बाकी नहीं रहा और नगरी का स्थल एकदम मैदान बन गया है।"

यह बहुत महत्त्वपूर्ण वक्तव्य है और भारत में मुस्लिम इतिहास को ठीक ढंग से समझने की दृष्टि से इसका बहुत दूरवर्ती महत्त्व है। उसने अपनी बात बहुत ईमानदारी से और सच-सच कह दी है और शायद गुस्से के किसी ऐसे क्षण में उसने लिखा है जब दरबार के किसी आदेश के कारण उनके मन को आघात हुआ होगा।

अनजाने में बदायूंनी ने हमें यह भी बता दिया है कि किस तरह अकबरनामा एक झूठा और बनावटी विवरण है जो समय-समय पर दरबार से मिलने वाले आदेशों के अनुसार कल्पित रूप में लिखा गया था। इससे इतिहास में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों और विद्वानों को यह बात समझ लेनी चाहिए कि सभी मुस्लिम इतिवृत्त विदेशी बादशाहों के अहं की सन्तुष्टि के लिए और उनके सन्तोष के लिए, उनके आदेशों के अनुसार लिखे गये हैं।

जहाँ तक नगरचैन का सम्बन्ध है, स्वयं बदायूंनी ने स्वीकार कर लिया है कि उसे उस नगरी का कोई निशान देखने को नहीं मिला जिसके बारे में उसे यह लिखने को कहा गया कि उसकी स्थापना अकबर ने की थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्मिथ यह लिखने में धोखे में आ गये कि नगर-चैन की स्थापना अकबर ने की।

यहाँ हम जहाँगीरनामे पर सर इलियट के समीक्षात्मक अध्ययन का स्मरण दिलाना चाहते हैं जिसमें एक पाद-टिप्पणी में कहा गया है कि

मुस्लिम इतिवृत्तकार अपने विवरणों में झूठे दावे प्रस्तुत करते समय ऐसे विस्तृत विवरण देते थे जिनसे सत्य का आभास हो।

मनोहरपुर

डॉ० श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'अकबर, दी ग्रेट' के पृष्ठ २२९ पर लिखा है कि "जब अकबर अम्बर (पुराना जयपुर) में था तब उसने एक पुराने और वीरान नगर को फिर से बसाने का निश्चय किया और ९ नवम्बर, १५७७ को उसने अपने हाथों से उसकी नींव रखी। उसने अपने रेखांकनकारों और वास्तुकलाविदों को आदेश दिया कि वहाँ एक किला और अन्य भवन बनाये जायें और उसने नये नगर का नाम राय लोनकरण के पुत्र मनोहरदास के नाम पर मनोहरपुर रखा। मनोहरपुर नगर जयपुर के २८ मील उत्तर पूर्व में है और उसे मनोहरपुर कहा जाता है।"

यह उद्धरण इस बात का प्रमाण है कि इतिहास की पाठ्य-पुस्तकें लिखने वाले लोग और विश्वविद्यालयों के इतिहास विभागों के अध्यक्ष किस तरह झूठी बातों एवं मनगढ़न्त दावों पर बिना जाँच-पड़ताल किये विश्वास कर लेते हैं, उससे आश्चर्य होता है।

मनोहरपुर की स्थापना का जो विवरण ऊपर दिया है, उसकी सामान्य परीक्षा करने पर ही स्पष्ट हो जाता है कि यह कहानी आद्योपांत मनगढ़न्त है।

विचार करने योग्य पहला प्रश्न यह है कि जब अकबर के शासनकाल में मुस्लिम अत्याचारों से तंग आकर हज़ारों की संख्या में नगर वीरान हो रहे थे और सैकड़ों नगर उजड़े पड़े थे तब अकबर को क्या सूझी थी कि उसने जयपुर के निकट वाले एक नगर को ही फिर से बसाने का निश्चय किया। दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि अकबर के पास किस तरह के रेखांकनकार और शिल्पज्ञ थे? हमारा दावा यह है कि उसके पास कोई ऐसे सेवक नहीं थे। उसके पास बड़ी संख्या में संगतराश थे जो अकबर के आदेश पर या उसके दरबारियों के कहने पर पहले से बने हिन्दू भवनों पर मुस्लिम चिह्न अंकित करने को तत्पर रहते थे। तीसरा प्रश्न यह है कि इस नगर को फिर से आबाद करने पर जो विशाल धन-राशि व्यय हुई होगी वह किसने दी? यदि अकबर ने वह धन खर्च किया तो उसे इसके प्रति क्या

आकर्षण था और उसे इससे क्या मिला ? नगर को फिर से बनाने में कितना समय लगा ? महल, क़िला और आवास योग्य मकान उन लोगों को मुफ्त दिये गये या किश्तों पर दिये गये । यदि पहला नगर उजड़ा हुआ था तो नये भवनों में किन लोगों को बसने को कहा गया ? यदि अन्य स्थानों पर रहने वाले लोगों को इस नये नगर में बसने का आदेश दिया गया तो उन्हें क्या प्रोत्साहन दिये गये ? क्या किसी दूसरे नगर से जनसंख्या के स्थानान्तरण का कोई प्रमाण उपलब्ध है, जिन्होंने नये नगर को आबाद किया ? यदि अकबर ने इसे मनोहरपुर का नाम दिया तो फिर उसे मनोहर नगर क्यों कहते हैं ? यदि अकबर ने इस नगर को नया नाम दिया तो उसका पुराना नाम क्या था ? यदि अकबर ने इसे नया नाम दिया तो क्या कारण है कि उसने कोई फारसी या अरबी नाम देने की बजाय संस्कृत नाम दिया जबकि उसने एक हाथी का नाम हिन्दू से बदलकर मुस्लिम कर दिया था ? अकबर ने किस कारण से इसका नाम एक हिन्दू शासक के पुत्र के नाम पर रखा ? किसी और की राजधानी के निकट एक हिन्दू नगरी को फिर से बसाने में अकबर को क्या रुचि थी ? क्या दिल्ली, आगरा और फतेहपुर सीकरी के आस-पास ऐसे उजड़े हुए नगर नहीं थे जिनमें अकबर गया हो ? स्पष्ट निष्कर्ष यही है कि मनोहरपुर उर्फ़ मनोहर नगर एक प्राचीन नगरी है । यह दावा एक ढकोसला मात्र है कि उसकी स्थापना अकबर ने की थी । वह राजस्थान पर अपने आक्रमणों के समय कभी यहाँ से गुज़रा होगा जिससे उसके चापलूस इतिवृत्तकारों को यह दावा करने का अवसर मिल गया कि अकबर ने उस नगरी की स्थापना की थी ।

हज़ारों रखैलों के लिए कक्ष

आईने-अकबरी में अबुल फ़ज़ल ने अपने अन्नदाता की गौरव-गाथा का गान इन शब्दों में किया है—"बादशाह सलामत ने एक बहुत बड़े अहाते में सुन्दर भवन बनवाए हैं जहाँ वह विश्राम करता है । औरतों की संख्या हज़ारों है, परन्तु उसने आवास के लिए सबको कक्ष दिए हुए हैं । उसने उन्हें वर्गों में बाँट रखा है ।" हमें आश्चर्य है कि हज़ारों कक्षों वाला वह बड़ा भवन कहाँ है । यदि ऐसा कोई विशाल भवन समूह होता तो मकानों की कमी के इस समय में हमारी सरकार या कोई मिल मालिक उसे अपने

कर्मचारियों के आवास के रूप में काम में लाता। हमने अकबर के तत्-कालीन साम्राज्य को छान डाला है, परन्तु हमें हज़ारों कक्षों वाला कोई भवन-समूह देखने को नहीं मिला। अबुल फ़ज़ल ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में जो सफ़ेद झूठ लिखे हैं, उनके प्रति इतिहास के छात्रों को सावधान हो जाना चाहिए। हम इतना अवश्य मान सकते हैं कि सूअरों के बाड़े जैसा कोई बाडा रहा होगा जहाँ हजारों अभागी अपहृत महिलाओं को बादशाह की काम-वासना की पूर्ति के लिए रखा गया होगा।

यदि मुसलमानों के दावों की सावधानी से परीक्षा की जाये तो उनका खोखलापन स्पष्ट हो जायेगा। इतिहास-लेखन के इन सिद्धान्तों की जान-कारी रखने वाले लोगों ने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि मुस्लिम इतिवृत्त ग्रन्थों में, विशेष रूप से मध्यकाल के मुस्लिम इतिवृत्त ग्रन्थों में उल्लिखित विवरणों को यथा-तथ्य रूप में स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए, जासूसों की तरह उनकी छानबीन की जानी चाहिए और हर विषय पर विधिवक्ताओं की भाँति स्पष्टत: तर्क-वितर्क करना चाहिए। भारतीय इति-हास की पाठ्य-पुस्तकें तैयार करते समय स्वस्थ सिद्धान्तों की पूर्णत: उपेक्षा की गई है। बहुत से तथ्य इस प्रकार प्रस्तुत किये गये हैं कि उनका विलो-मार्थ ही सत्य होता है। हमने इसका दृष्टान्त पहले ही दे दिया है जब यह कहा जाये कि बादशाह ने या उसके किसी दरबारी ने कोई भवन बनवाया या कोई नगर बसाया तो उससे यह समझना चाहिए कि वास्तव में उसने उस नगर को लूटा और नष्ट किया। जिस प्रकार अकबर ने नगरचैन में किया था।

जहाँ मुस्लिम इतिहास-ग्रन्थों में कहा जाए कि मन्दिरों को नष्ट किया गया और मस्जिदों का निर्माण किया गया, वहाँ यह समझना चाहिए कि हिन्दू मन्दिरों पर अधिकार करके उन्हें मस्जिदों (और मकबरों) के रूप में परिवर्तित किया गया।

जब मुस्लिम इतिवृत्त ग्रन्थों में कहा गया हो कि अकबर ने या फिरोज-शाह ने किसी महल या क़िले का निर्माण कराया तो मात्र इतना ही स्वीकार किया जा सकता है कि उसने किसी हिन्दू भवन की, जो युद्ध के समय क्षतिग्रस्त हो गया था, मरम्मत पर कुछ धन-राशि व्यय की होगी। प्राय: हर स्थिति में यह धन भी गरीब प्रजा पर टैक्स लगाकर वसूल किया जाता

था। फतेहपुर सीकरी और आगरे के लाल क़िले की मरम्मत के समय ऐसे टैक्स लगाए जाने के प्रमाण उपलब्ध हैं, यद्यपि उनके सम्बन्ध में कहा गया है कि वे नया क़िला, नई फतेहपुर सीकरी नगरी के निर्माण के लिए वसूल किये गये थे। (लेखक की अन्य पुस्तकों—'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें' तथा 'ताजमहल हिन्दू राज-भवन था'—में इसी विषय का विस्तार-पूर्वक विवेचन किया गया है।) कम-से-कम भारत में अकबर ने या और किसी मुस्लिम शासक ने एक ईंट भी खड़ी नहीं की। उन्होंने केवल हिन्दू भवनों पर अधिकार किया और उनका दुरुपयोग किया।

इस बात का प्रमाण देते हुए ईसाई पादरी मनसर्रेट ने, जिसने मध्य-काल में मुस्लिम जीवन और रीति-रिवाजों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया था, इस बारे में अपनी कमेंट्री में पृष्ठ १६ पर लिखा है—"मुसलमानों ने, जिनका स्वभाव बर्बर लोगों जैसा है, कभी भी ऐसी बातों (अर्थात् विशाल भव्य-भवन और नगर बसाने) में रुचि नहीं ली। इतिवृत्त अविश्व-सनीय और मन गढ़न्त होने के कारण···।

"तथापि मुझे बताया गया कि इस (माँडू उर्फ मांडवगढ़, मालवा, मध्य भारत) के निर्माता मंगोल थे, परन्तु ये मंगोल उन लोगों से भिन्न हैं जो हमारे समय में प्रसिद्ध हो गये हैं। इसका कारण यह है कि ऐसा कहा गया है कि २०० वर्ष पहले मंगोलों ने एक नये देश की खोज में अपने परम्परा-गत शिविरों को छोड़ा, भारत पर आक्रमण किया और वे मांडू में बस गये।" इससे स्पष्ट है कि किस तरह मुसलमान लोग यूरोप से भारत का पर्यटन करने आने वाले लोगों को धोखे में रखते रहे हैं। १५७९ में, जब पहले मुगल आक्रमणकारी बाबर को भारत में बसे केवल ५३ वर्ष बीते थे, अकबर के दरबार के चापलूस लोगों को यह हिम्मत हो गई थी कि वे मन-सर्रेट को बतायें कि २०० साल पहले एक और मंगोल जाति ने भारत पर हमला करके मांडव गढ़ में भव्य हिन्दू मन्दिर और भवनों का निर्माण किया। इसलिए जाँच-पड़ताल किये बिना यूरोपीय विद्वानों के कथनों पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए क्योंकि उनपर मध्यकाल के मुस्लिमों की जालसाज़ी का प्रभाव है।

मनसर्रेट ने अपनी कमेंट्री के पृष्ठ २७ पर लिखा है कि "मुसलमानों के धार्मिक उत्साह के कारण असंख्य देव-मन्दिर नष्ट हो गये हैं। हिन्दू

मन्दिरों की जगह असंख्य निकम्मे मुसलमान लोगों के मकबरे और दरगाहें बना दी गई हैं। अन्ध-विश्वास के कारण इन लोगों की पूजा होती है मानो ये लोग सन्त थे। (पाद-टिप्पणी—विनाश करने वाले ऐसे लोगों में अलाउद्दीन खिलजी, मलिक नायब काफ़ूर, सिकन्दर लोधी और बाबर के नाम प्रमुख हैं।)"

इस तथ्योल्लेख पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि मुस्लिम आक्रमणकारियों ने जिन हिन्दू मूर्तियों को नष्ट किया और हिन्दू भवनों, प्रासादों, मन्दिरों आदि का, मस्जिदों, मकबरों और निवास-स्थानों आदि के रूप में दुरुपयोग किया, उन्हें बार-बार दावा करके उन्हीं भवनों आदि का निर्माता होने का श्रेय दिया गया। समय आ गया है जब इतिहास के विद्वान् भारत में ऐतिहासिक भवनों के बारे में कपोल-कल्पनाओं और मन-गढ़न्त बातों पर विश्वास न करके उनके वास्तविक इतिहास को खोज निकालने का प्रयत्न करें। इन वर्षों में भारत के मध्यकाल के इतिहास को बुरी तरह तोड़ा-मरोड़ा, बिगाड़ा, और बदला गया है। इतिहास को ठीक से समझने के लिए ऊपर वर्णित निर्देश-नियम सहायक हो सकते हैं।

: २२ :

दीन-ए-इलाही

दीन-ए-इलाही शब्द का अर्थ है परमात्मा का अपना धर्म या व्यवस्था। भारतीय इतिहास की अधिकांश पुस्तकों में इसे श्रेष्ठ धर्म के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिनका ताना-बाना अकबर ने अपनी प्रजा की धर्म-भावना की तुष्टि के लिए और उसकी प्रसन्नता के लिए बुना। कहते हैं कि अकबर को जितने धर्मों की जानकारी थी उन सबको मिलाकर उसने यह धर्म तैयार किया। यदि इस काल्पनिक धर्म-व्यवस्था की अपार प्रशंसा को ध्यान से देखें तो ज्ञात होगा कि सब प्रशंसा अनर्गल-प्रलाप है।

दीन-ए-इलाही धर्म का प्रादुर्भाव अतिशय अहंमन्य अकबर और अत्य-धिक धर्मान्ध मुस्लिम मुल्लाओं, जिनमें काज़ी, मौलवी और मौलाना लोग शामिल थे, निरन्तर कटु संघर्ष के फलस्वरूप हुआ। यह मुल्ला वर्ग परम्परागत विचारों में पला हुआ था। सर्वशक्तिमान तानाशाह के रूप में अकबर अपने किसी भी निरंकुश कार्य पर कोई अंकुश या प्रतिबन्ध जगाये जाने या उसपर कोई आपत्ति किये जाने की बात सहन नहीं कर सकता था। दूसरी ओर मुस्लिम मुल्ला वर्ग इस बात से परेशान था कि अकबर उनके निजी विवाहित जीवन पर प्रहार करता था, उनकी पत्नियों और बहनों को मादक द्रव्य, अफीम आदि खिलाकर और उनका अपहरण करके उन्हें अपने हरम में ले जाता था और उनकी सम्पत्ति को लूट लेता था या ज़ब्त कर लेता था।

उसके निरंकुश और तानाशाही आचरण से तंग आकर वे उसके विरुद्ध धार्मिक आपत्तियाँ उठाते और प्रतिबन्ध लगाते। अकबर उनका विरोध करता और यह दावा करता कि मुझपर तुम्हारे नियम लागू नहीं होते क्योंकि मैं अपने ही धर्म का पालन करता हूँ जोकि स्वयं परमात्मा का धर्म है।

इस प्रकार ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर पता चलेगा कि जिसे अकबर का आश्चर्यकारी धर्म कहा जाता है, वह वास्तव में धर्म की विपरीत दिशा है या उसके निरंकुश और तानाशाही व्यवहार पर लगाये गए सभी धार्मिक प्रतिबन्धों के प्रति विद्रोह मात्र है। अकबर के दरबार में रहकर अध्ययन करने वाले ईसाई पादरी मनसर्रेट ने ठीक यही बात लिखी है। मनसर्रेट को निराशा और क्षोभ हुआ था। अपनी कमेंट्री के पृ० १९२-१९६ पर वे लिखते हैं—"यह सन्देह करना उचित होगा कि जलालुद्दीन (अकबर) ने ईसाई पादरियों को जो आमन्त्रण दिया था, वह किसी धर्म-भावना से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि उसने उत्सुकतावश नई बातें सुनने की उत्कट इच्छा से प्रेरित होकर ऐसा किया था। सम्भवत: उसकी यह इच्छा थी कि मनुष्य की आत्मा का हनन किसी नये ढंग से किया जाये······रोडल्फिन (एक और ईसाई पादरी) ने यह आशा व्यक्त की थी कि जलालुद्दीन भ्रष्ट जीवन में से निकलकर परमात्मा की उपासना में लग जायेगा।······ परमात्मा ने उसे बर्बर और आततायी मुसलमानों के बीच में से, मृत्यु और विनाश की बहुत-सी धमकियों में से बिना हानि बचा लिया। १५ जुलाई, १५८३ को ३३ वर्ष की अवस्था में उसका कत्ल कर दिया गया।"

मनसर्रेट ठीक ही इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि दीन-ए-इलाही मनुष्यों की आत्माओं को कुण्ठित करने का एक दोमँहा ढंग था, उनके परित्राण का साधन नहीं था।

धर्म क्या है, उसकी जाँच के लिए कुछ निश्चित कसौटियाँ निर्धारित हैं। हर धर्म के अपने मन्दिर अथवा पूजा-स्थल होते हैं। दीन-ए-इलाही का ऐसा कोई उपासना-गृह नहीं था। हर धर्म में एक पुजारी वर्ग होता है, हर धर्म की कुछ प्रार्थनायें होती हैं, हर धर्म में संसार के अस्तित्व की अपनी व्याख्या होती है, परित्राण पाने का अपना ढंग बताया जाता है, परन्तु दीन-ए-इलाही में यह कुछ नहीं था। इसलिए कहना होगा कि किसी कसौटी पर परखे बिना दीन-ए-इलाही को धर्म कहकर इतिहासकारों ने एक बड़ी गलती की है।

पादरी मनसर्रेट ने अपनी कमेंट्री में एक पाद-टिप्पणी में कहा है कि दीन-ए-इलाही की एक मुख्य बात यह थी कि अकबर पर ईमान लाओ। यह बिल्कुल सही है। जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, अकबर अतिशय

अहंवादी व्यक्ति था और उसकी सदा यह इच्छा रहती थी कि लोग उसे बादशाह, सर्वशक्ति-सम्पन्न, पैगम्बर, परमात्मा सभी कुछ मानकर उसके आगे नत-मस्तक हों।

अकबर ने मुल्लाओं के आदेशों का जो उल्लंघन किया, उसे बहुधा इस बात के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है कि अकबर धर्मान्ध मुसलमान नहीं था। यह सच नहीं है। अकबर अहंवादी व्यक्ति था और वह चाहता था कि लोग उसे परमात्मा और पैगम्बर मानें। परन्तु हृदय से वह हमेशा धर्मान्ध मुस्लिम था और पूरी तरह धर्मान्ध मुस्लिम था। मनसर्रेट ने धर्म के सम्बन्ध में अकबर की धूर्तता को गलत न समझ लेने की चेतावनी दी है। उसने लिखा है, "वह (अकबर) उसी तरह व्यवहार करता रहा। उसने पोप की प्रशंसा की और पुर्तगाली पादरी से कहा कि जब वह अकबर का दूत बनकर यूरोप जाये तो वहाँ जाकर उसकी ओर से पोप के चरण-स्पर्श करे और उसके लिए पोप से कुछ लिखित सन्देश लाये। वह ऐसी बातें कहता था जो कोई पवित्र आत्मा राजा ही कह सकता है। उसने यहाँ तक घोषणा की कि मैं मुसलमान नहीं हूँ, मैं मुहम्मद के धर्म को नहीं मानता और मैं केवल परमात्मा को मानता हूँ जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं।"

अकबर क्योंकि मौलवियों का विरोध किया करता था और कहता था कि मैं मुसलमान नहीं हूँ इसलिए उनका धार्मिक अधिकार मुझपर नहीं चल सकता। परिणाम यह हुआ कि गरीब मौलवियों और बदायूँनी जैसे धर्मान्ध इतिवृत्तकारों ने अपनी सभी दैवी आपदाओं के लिए अकबर को दोष दिया। अत्याचारी अकबर की प्रजा होने के कारण उनके पास अकबर की भर्त्सना करने का एक ही हथियार था और वह यह कि वे उसे धर्म का परित्याग कर देने वाला कहें। उन दिनों के धार्मिक परम्परावादी मुल्ला लोग बादशाह के विरुद्ध धार्मिक प्रतिबन्ध लागू कर सकते थे। परन्तु अकबर तो मौलवियों से अधिक टेढ़ा था, इसलिए मौलवी लोग क्रुद्ध होने से अधिक कुछ भी नहीं कर सकते थे।

मनसर्रेट ने 'कमेंट्री' के पृष्ठ ६४-६५ पर लिखा है कि "मौलवियों को चुनौती देने के लिए अकबर मुहम्मद साहब द्वारा नियत समय पर नमाज़ अदा नहीं करता था और रमज़ान के दिनों में रोज़े भी नहीं रखता

था। कई बार वह मुहम्मद का उपहास करता था, विशेष रूप से इसलिए कि अधिक कामुक होने के कारण उसे जूते और पायजामे के बिना ही घर से बाहर निकाल दिया गया। इससे बहुत से मुसलमान नाराज़ हो गये जिनमें एक व्यक्ति ख्वाजा शाह मंसूर भी है।"

मनसर्रेट ने अकबर द्वारा पैगम्बर मुहम्मद का मज़ाक उड़ाये जाने की जो बात ऊपर कही है, उसे हम सही मानते हैं। परन्तु इसे उचित रूप में समझ लेना होगा। मुहम्मद का उपहास करने में अकबर का आशय यह था कि उसके सभी प्रजाजन उसे पैगम्बर और परमात्मा मानें। इसका यह आशय नहीं है कि अकबर ने अपनी निपट धर्मान्धता त्याग दी।

दूसरे धर्मों से प्रभावित होने का स्वाँग करके अकबर मौलवियों को सोच में डाले रखता था। इस तरह मौलवियों के मन में हमेशा यह भय बना रहता था कि कहीं अकबर इस्लाम का परित्याग न कर दे। वे जानते थे कि यदि बादशाह ने कोई दूसरा धर्म अपना लिया तो उनका क्या हाल होगा। या तो उन्हें धर्म-परिवर्तन करने को विवश किया जायेगा या तंग करके मार दिया जायेगा। मौलवियों के सामने इस भय को लगातार बनाये रखने की दृष्टि से अकबर बहुधा दूसरे धर्मों के प्रति अपने प्रेम का दिखावा करता रहा जिसका उद्देश्य यह था कि मौलवी लोग उसकी कामासक्ति पर आपत्ति न कर सकें। वह अन्य धर्मों के पुरोहितों को अपने आसपास बनाये रखता था। इसके दो लाभ थे। एक तो यह कि यह देखकर उसके अहं की तुष्टि होती थी कि सभी धर्मों के प्रमुख लोग उसके चारों ओर रहते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। दूसरे, इससे मुस्लिम मौलवी लोग उससे दूर ही बने रहते थे। मनसर्रेट ने अपनी कमेंट्री में पृष्ठ ४८ पर लिखा है कि "जब ईसाई पादरी लोग महल के क्षेत्र में जाकर बस गये तब अकबर (उनके आवासों पर) गया और उसने ईसा और मरियम के प्रति श्रद्धा के रूप में साष्टांग दण्डवत् किया।"

मनसर्रेट ने यह भी लिखा है कि किस तरह अकबर के शासनकाल में इस्लाम का पूर्णतः बोलबाला था। पृष्ठ २६ पर उसने लिखा है कि "दौला-पुरम् (धौलापुर) आगरा से, जोकि राज्य की राजधानी है, और फतेहपुर से, जहाँ यह महान् बादशाह रहता है, एक बराबर दूरी पर है।...... मुसलमानों के धार्मिक उत्साह के कारण असंख्य मन्दिर नष्ट हो गये हैं।

हिन्दू मन्दिरों की जगह पर अगणित संख्या में दुष्ट और पापाचारी मुसलमानों के मकबरे और दरगाहें बना दी हैं जहाँ उन लोगों की इस तरह पूजा की जाती है मानो वे सन्त हों।"

इससे भारत के इतिहासकारों को विश्वास हो जाना चाहिए कि भारत में मध्यकाल के जो मुस्लिम मकबरे और मस्जिदें मिलती हैं वे प्राचीन हिन्दू मन्दिर और राज-प्रासाद थे। इनसे इस भ्रान्त प्रचार का भी विश्वास नहीं कर लेना चाहिए कि मुसलमानों ने जो भवन बनाये उनमें वे मुस्लिम और हिन्दू शैलियों को मिलाना चाहते थे। इसलिए यह कहना ग़लत होगा कि हिन्दू शैली से प्रभावित होकर अकबर ने फतेहपुर सीकरी का निर्माण किया। पहली बात यह है कि अकबर को मध्यकाल के किसी भी मुस्लिम की तरह धर्मान्ध मुस्लिम सिद्ध किया जा चुका है। दूसरे, जैसा कि मनसर्रेट ने लिखा है, स्वयं अकबर के समय में भी हिन्दुओं की मूर्तियों और आकृतियों को बुरी तरह विद्रूप किया जाता था। इस पृष्ठभूमि में जब हमें मनसर्रेट की कमेंट्री में पृष्ठ २७ पर बताया जाता है कि जब १५८० में पहला ईसाई मिशन पहुँचा और "पादरियों ने दूर से फतेहपुरम् नगर को देखा······तो वे एकटक देखते रहे कि नगर कितना बड़ा और भव्य है।" तब इससे सिद्ध हो जाता है कि १५८० से पहले भी फतेहपुर सीकरी भली प्रकार बसा हुआ नगर था। ऐसी स्थिति में मुस्लिम इतिहासों में दिया गया यह विवरण मनगढ़न्त है कि फतेहपुर सीकरी का निर्माण १५८३-८५ में हुआ। पूरा हो जाने के बाद भी दो लाख लोगों को वहाँ जाकर आबाद होने में भी समय लग जाता है।

मनसर्रेट ने अपनी कमेंट्री के प्राक्कथन में लिखा है कि "मेरे विवरण में जो कुछ भी विषयान्तर करके लिखा गया है, वह मैंने मुख्यतः बादशाह जलालुद्दीन से जानकर लिखा है।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि मनसर्रेट फतेहपुर सीकरी को अकबर द्वारा निर्मित कराया हुआ क्यों कहता है। अहंवादी होने के कारण अकबर यह मानने को तैयार नहीं हो सकता था कि वह अपने दादा बाबर द्वारा विजित पुराने नगर में रहता था। उसने झूठ कहा कि नगर का निर्माण उसने कराया। मनसर्रेट को हैरानी हुई, क्यों उसमें हाल में निर्माण किये जाने के कोई चिह्न नहीं थे। उसी आधार

पर उसने लिखा है कि अवश्य ही यह नगर रातों-रात जादू की तरह बन गया होगा।

विसेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक में पृष्ठ १५६-६० पर लिखा है कि "अकबर द्वारा चलाये गये धर्म दीन-ए-इलाही को मानने वालों की संख्या कभी भी काफी नहीं रही। ब्लोचमैन ने अबुल फ़ज़ल और बदायूँनी से १८ प्रमुख नाम एकत्र किये हैं। इस सूची में बीरबल ही एकमात्र हिन्दू था।''' अबुल फ़ज़ल के कत्ल के बाद इस संस्था के जीवित रहने की आशा नहीं की जा सकती थी (क्योंकि बदायूँनी के अनुसार वह अकबर का सबसे बड़ा चापलूस था और वह लोगों से कहा करता था कि अपना सम्पूर्ण धार्मिक ईमान अकबर पर लाओ), वह इसका सबसे बड़ा समर्थक था और अकबर की मृत्यु के बाद तो इसका कोई अस्तित्व न रहा।''''''यह सारी योजना अकबर के अहं का परिणाम थी जो स्वयं निरंकुश तानाशाही शासन का परिणाम था। दीन-ए-इलाही अकबर की मूढ़ता का परिचायक था, उसकी बुद्धिमानी का नहीं।

स्मिथ ने दीन-ए-इलाही को निराधार धर्म कहकर ठीक ही किया है। सच्चाई यह है कि अकबर के इस 'धर्म' का उद्देश्य केवल यह था कि धार्मिक और सामाजिक सब चीजों पर उसका प्रभुत्व हो। (अमोघत्व के आदेश के माध्यम से वह इस्लाम धर्म का प्रमुख बन बैठा था।)

बारतोली ने अकबर के दरबार में गये मिशनरियों के हवाले से लिखा है कि अकबर ने अपनी सामान्य सभा का अधिवेशन बुलाया और "एक प्रतिष्ठित वृद्ध व्यक्ति को हुक्म दिया कि वह सब जगह जाकर मुगल साम्राज्य के नये कानून की घोषणा करे।''''''बादशाह के प्रति निष्ठा के चार रूप थे—सम्पत्ति, जीवन, सम्मान और धर्म को बलिदान कर देने की तत्परता।"

ऊपर जो चार बातें कही गई हैं उनसे हमें स्पष्ट हो जाता है कि अकबर का बहु-प्रचारित धर्म क्या था। वह चाहता था कि सब लोग अपने जीवन, सम्पत्ति, सम्मान और धर्म को अकबर के प्रति समर्पित कर दें। धर्म को अर्पण करने का आशय यह था कि मौलवियों और काज़ियों के अधिकार को न माना जाये। जीवन और सम्पत्ति को अर्पित कर देने का आशय यह था कि उसकी सम्पत्ति और उसके प्रभुत्व को बढ़ाया जाये।

अपने सम्मान को समर्पित कर देने का आशय यह था कि यदि अकबर सम्भोग के लिए या अपने दरबारियों या अपने अतिथियों के हरम के लिए औरतों को उठा ले जाये या कोई माँग करे तो इसपर आपत्ति न की जाये।

यह स्वाभाविक था कि अबुल फ़ज़ल और बीरबल जैसे कुछ निपट चापलूस लोग ही तानाशाह अकबर की अपमानकारी शर्तों को पूरा कर सकते थे। यह कोई धर्म नहीं था प्रत्युत व्यक्तिगत अहं की विजय का ताना-बाना था।

"अकबर दी ग्रेट मुगल" में पृष्ठ १२५-१२९ पर स्मिथ ने लिखा है कि इस्लामी मौलवियों को शक्तिहीन बनाने के उद्देश्य से "जून, १५७८ के अन्त में (अकबर ने) फतेहपुर सीकरी की प्रमुख मस्जिद से नियमित मुल्ला को हटा दिया। राष्ट्र का धार्मिक नेता होने के अपने दावे को स्थापित करने की दृष्टि से उसने कुछ तथाकथित परम्परागत प्रथाओं का सहारा लेते हुए निर्णय किया कि वह स्वयं खुतबा पढ़ेगा। द्वयर्थक शब्द 'अल्ला हू अकबर' का प्रयोग किये जाने के कारण बहुत अधिक आलोचना हुई······अबुल फ़ज़ल ने भी स्वीकार किया है कि इन शब्दों के प्रयोग के कारण लोगों में काफ़ी बेचैनी फैली······कभी-कभी वह कल्पना किया करता था कि वह इन्सान और परमात्मा के बीच की कड़ी बन गया है······उसके विद्वान् चालाक प्रशंसक, अबुल फ़ज़ल और फ़ैज़ी जैसे लोग, हमेशा उसके कानों में ऐसी बातें भरने को प्रस्तुत रहते थे और वह शासन-सत्ता के अहं के वशीभूत ऐसी चापलूसी को प्रसन्न होकर सुनता था।"

"अल्ला हू अकबर" का अर्थ है "अल्ला बड़ा है।" परन्तु इसका यह अर्थ भी है कि "अकबर स्वयं अल्ला है।" अकबर ने आदेश दिया कि एक-दूसरे को मिलने पर "सलाम बालेकुम" कहने की बजाय लोग "अल्ला हू अकबर" कहा करें। अप्रत्यक्ष रूप से लोगों को यह मन्त्र पढ़ाकर कि अकबर स्वयं अल्ला है, उन्हें मुहम्मद और अल्ला दोनों से हटा लेने की यह चाल थी।

अलाउद्दीन के भी, जो अकबर से कुछ पीढ़ी पूर्व दिल्ली का शासक था, मन में यह गुप्त इच्छा थी कि मुहम्मद और अल्ला की जगह उसकी पूजा की जाये। परन्तु अकबर और अलाउद्दीन दोनों आध्यात्मिक नेता

बनने में सफल न हो सके। वे क्रूर, निर्मम, अत्याचारी तथा तानाशाह ही बने रहे। उन्हें आत्मिक नेतृत्व न मिलने का कारण यह था कि उनमें आध्यात्मिकता नाम की कोई चीज़ नहीं थी। उनका सम्पूर्ण जीवन कपट-जाल, निरंकुश कामुकता और अत्याचार में व्यतीत हुआ था।

भारतीय इतिहास की पुस्तकें किस तरह काल्पनिक बातों और अपुष्ट किंवदन्तियों के आधार पर लिखी गई हैं, इसका उदाहरण डॉ० श्रीवास्तव की पुस्तक में पृष्ठ २३८-३९ पर दिये गये इस अनुच्छेद से मिलता है—"अकबर सभी धर्मों को मानने वाले धार्मिक व्यक्तियों की ओर समान ध्यान देता था और वह हिन्दू, जैन और पारसी विद्वानों, सन्तों और धार्मिक संस्थाओं को इसी तरह अनुदान दिया करता था जिस तरह वह मुसलमानों की संस्थाओं आदि को दिया करता था। इसका प्रमाण कई शाही आदेशों से मिलता है जो के० एम० ज़ावेरी की पुस्तक "शाही फ़रमान" में सुरक्षित हैं।......१५७६ के बाद हिन्दू विद्वानों और सन्तों को कई ऐसे अनुदान तथा देश के कई दूसरे भागों में मन्दिरों को कई ऐसे धर्मस्व अवश्य दिये गये होंगे। दुर्भाग्य से ऐसे अनुदानों के आदेश-पत्र जन-सामान्य द्वारा उपेक्षा और समय बीतने के साथ-साथ नष्ट हो गये हैं।"

यह धारणा ग़लत है कि अकबर सभी धर्मों के साथ बराबर का व्यवहार करता था। इस सम्पूर्ण पुस्तक में हमने कई समकालीन लेखकों और कई घटनाओं के उद्धरण देकर सिद्ध कर दिया है कि अकबर एक धर्मान्ध मुस्लिम और क्रूर अत्याचारी व्यक्ति था। यदि उसे सब धर्मों को बराबर मानने वाला कहने का आधार यह है कि उसके दरबार में सभी धर्मों के विद्वान् रहते थे, तो उसके उत्तर में हम बता चुके हैं कि अकबर दो मुख्य कारणों से ऐसा करता था। पहला कारण यह था कि जब वह विभिन्न धर्मों के लोगों को प्रश्रय और संरक्षण पाने के लिए अपने आसपास घूमते देखता था तो उसके अहं की सन्तुष्टि होती थी। दूसरे, उनके हमेशा उपस्थित रहने ने मुस्लिम मौलवियों को यह भय बना रहता था कि यदि कभी उन्होंने बादशाह पर अपना धार्मिक अधिकार जताने का साहस किया तो वह कोई और धर्म अपना लेगा और तब वह उनसे बदला लेगा। दूसरे धर्मों के आचार्यों से घिरे रहना अकबर की राजनीतिक चाल का एक अंग था।

हम यह बता चुके हैं कि अकबर के वे फरमान, जिनमें दूसरे धर्मों के आचार्यों अथवा पूजा-स्थलों आदि को उदारतापूर्वक अनुदान अथवा संरक्षण देने की बात कही गई है, झूठे और दिखावे के थे। उनका कभी यह आशय नहीं था कि उन्हें कार्यान्वित किया जाये। इसीलिए हम देखते हैं कि एक के बाद एक धार्मिक नेता अकबर के पास आकर जिज़िया कर से मुक्ति दिये जाने या मुसलमानों के अत्याचारों से परित्राण दिलाये जाने की याचना करता था। अपने महल की सीमा में रहते हुए अकबर को उदार, उदात्त, सहनशील और उदारचेता होने का दम भरने में कोई हिचक नहीं होती थी। जो भी याचक आता, उसे उसकी हर माँग पूरी करने का आश्वासन दिया जाता। परन्तु महल से बाहर आते ही वह प्रार्थी अपने-आपको सूदखोरों, लुटेरों और हत्यारों की दुनिया में पाता था। उन दिनों जब परिवहन के साधन अपर्याप्त होते थे, बादशाह से भेंट के लिए दूसरी बार राजधानी पहुँचना असम्भव था। यदि दूसरी बार राजधानी आना सम्भव हो भी जाता तो यह निश्चित नहीं था कि दरबार में जाने का अवसर मिल जायेगा या बादशाह का स्वास्थ्य ठीक होगा और वह राजधानी में ही होगा। अकबर बहुधा बाहर चला जाता था। यदि इन सब कठिनाइयों के बाद भी दूसरी बार भेंट करना सम्भव हो भी जाता था तो फिर वैसे ही आश्वासन मिलते थे। अकबर और उसके अधिकारियों के बीच यह बात प्रायः निश्चित हो गई थी कि उसकी न्यायप्रियता और उदारता का दम भरने वाले उसके आदेशों को क्रियान्वित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। याचकों को इन आदेशों के अनुसार काम न होने पर निराशा होती थी, फिर भी वे इन आदेशों को सँभालकर रखते और लोगों को दिखाते थे और मन्दिरों पर खुदवा देते थे कि सम्भवतः कोई भूला-भटका लुटेरा इन आदेशों को वास्तविक समझकर उन्हें लूटने के लोभ का संवरण कर पावे और इस तरह उनके जान-माल की रक्षा हो सके।

अकबर सब धर्मों को बराबर मानता था, ऐसा कहने के पश्चात् डॉ० श्रीवास्तव ने कहा है कि "हर वर्ष अकबर पैगम्बर मुहम्मद का जन्म-दिवस मनाया करता था।" (पृष्ठ २४४) इससे पता चल जाता है कि वह धर्मान्ध मुस्लिम ही था। यदि ऐसा न होता तो वह बहुसंख्यक हिन्दुओं के

पूज्य भगवान् राम और कृष्ण के जन्म-दिवस को भी उतनी ही श्रद्धा के साथ मनाता। इसके विपरीत अकबर के बारे में यह तो विदित ही है कि वह ईसा और मरियम के सामने नतमस्तक हुआ था परन्तु वह कभी भी हिन्दुओं या जैनियों की मूर्तियों के सामने नत-मस्तक नहीं हुआ। इसका कारण भी उस समय की राजनीतिक आवश्यकता थी। वह पुर्तगालियों को खुश रखना चाहता था क्योंकि वह अपने आक्रमणकारी आन्दोलनों के लिए उनसे बढ़िया शस्त्रास्त्र प्राप्त करते रहना चाहता था और साथ ही वह पश्चिमी तट की बन्दरगाहों में, जो पुर्तगालियों के अधिकार में थीं, विशेष रूप से मक्का की ज़ियारत के लिए आने-जाने की सुविधा चाहता था।

'अकबर, दी ग्रेट' पुस्तक में २४०-४४ पृष्ठ पर डॉ० श्रीवास्तव ने लिखा है कि "शुक्रवार, २६ जून, १५७९ को (अकबर) फतेहपुर सीकरी की जामिया मस्जिद में मंच पर चढ़ा और उसने वहाँ खुतबा पढ़ा। बदायूंनी का कहना है कि खुतबा पढ़ते समय अकबर काँपा और उसकी आवाज़ लड़खड़ाई और उसे सहारा देकर मंच से नीचे उतारा गया। उसने खातिब (मौलवी) से कहा कि बाकी खुतबा तुम पढ़ो।······ऐसा विश्वास किया जाता है कि बादशाह का इरादा कुछ और था······खुतबा पढ़ने के बाद दो महीने के अन्दर अकबर ने अपने-आपको शरीयत या मुस्लिम विधि का मुख्य व्याख्याता घोषित कर दिया। यह घोषणा नाममात्र के एक प्रलेख द्वारा की जिसपर उसने दरबार के प्रमुख उलेमाओं से हस्ताक्षर करवा लिये थे।······बदायूंनी ने ठीक ही लिखा है कि वह किसी के धार्मिक या सामाजिक अधिकार के सामने झुकने की बात सोच भी नहीं सकता था (उस आदेश के द्वारा अन्य बातों के अतिरिक्त अकबर को यह अधिकार दिया गया कि वह एक नया कानून इस शर्त पर लागू कर सकेगा कि वह कुरान की आयतों के अनुरूप हो।) ·····इस आदेश के द्वारा निःसन्देह अकबर को बहुत बड़ी शक्ति और विवेकाधिकार प्राप्त हो गया था परन्तु वास्तव में वह मुतज़ाहिद नहीं बन सका, मुस्लिम धर्म का प्रमुख बनने की बात तो बहुत दूर रही।······अबुल फ़ज़ल ने स्वीकार किया है कि इन दो बातों के कारण बहुत रोष और असन्तोष फैला।"

उपर्युक्त अनुच्छेद से स्पष्ट है कि हृदय से अकबर एक धर्मान्ध मुसल-मान ही था। वह केवल इतना ही चाहता था कि उसे लोगों के धार्मिक

जीवन पर पूरा अधिकार प्राप्त हो और वह बिना रोक-टोक और किसी आपत्ति के जो चाहे, कर सके। वह हमेशा केवल कुरान और मुस्लिम कानून की भाषा में सोचता था। इसलिए यह कहना कि वह सब धर्मों को मिलाना चाहता था या वह सब धर्मों का समान आदर करता था, गलत और स्वतः खण्डित है।

श्री शेलट की पुस्तक 'अकबर' में पृष्ठ २५५-५७ पर लिखा गया है कि "हिन्दुओं में से केवल बीरबल उसका अनुयायी बना। हैग जैसे गम्भीर इतिहासकार का कहना है कि रिश्वत और दबाव के कारण १८ अन्य प्रमुख व्यक्तियों को इस धर्म में सम्मिलित किया गया (कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ १३१)······मानसिंह ने कहा कि यदि अनुयायी बनने का अर्थ यह है कि मैं अपने जीवन का उत्सर्ग कर देने को प्रस्तुत रहूँ, वह तो मैं पहले ही हूँ। इस धर्म में प्रवेश के लिए प्रत्येक व्यक्ति को पगड़ी हाथ में लेकर बादशाह के सामने प्रस्तुत होना पड़ता और अपनी पगड़ी बादशाह के चरणों में भेंट कर देनी पड़ती थी। तब बादशाह उसे अपने हाथों से उठाता, उसकी पगड़ी उसके सिर पर रखता और उसे एक डंडा देता जिस पर अकबर का नाम और "अल्ला-हू-अकबर" शब्द अंकित होते थे। दीन-ए-इलाही कोई नया धर्म या नया मत नहीं था। यह एक ऐसा वर्ग था जिसका उद्देश्य शायद यह था कि उसके नेता की पूजा की जाये।"

हम विद्वान् लेखक के इस मत से पूरी तरह सहमत हैं। दीन-ए-इलाही में प्रवेश पाने के ढंग से ही सिद्ध हो जाता है कि इसमें अकबर के व्यक्तित्व के प्रति पूर्ण समर्पण की अपेक्षा की जाती थी, किन्हीं विशिष्ट आचरण या नियमों के प्रति निष्ठा की अपेक्षा नहीं की जाती थी। मानसिंह का कथन भी ध्यान देने योग्य है। उसे स्पष्ट था कि अकबर अपने प्रति पूर्ण समर्पण चाहता है, जिसमें धर्म, नैतिकता और धर्म-संकोच आदि की कोई आवश्यकता नहीं थी और उसके दरबारी, पिट्ठू और दूसरे लोग यह समर्पण उसे बिना माँगे देते थे क्योंकि उन्हें भय था कि यदि उन्होंने ऐसा न किया तो अकबर इसका बदला लेगा। अकबर उनसे यह भी कहता था कि शपथ लो और यदि तुम्हें मुस्लिम मुल्ला वर्ग द्वारा तुम्हारे किसी अनैतिक कर्म को गैर-कानूनी ठहराये जाने का भय हो तो इसे अपने मन में से

निकाल दो और अकबर का इस तरह आदर सम्मान करो मानो वह देवता है ।

जो व्यक्ति किसी वर्तमान धर्म का उल्लंघन करता है, यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी दूसरे धर्म का संस्थापक हो । मान लीजिये, कोई बेटा अपनी माता या दादी के रूढ़िवादी नियमों को नहीं मानता, उसका कहना यह है कि एक 'आधुनिक' व्यक्ति होने के नाते मैं धर्म के पुराने विचारों को नहीं मानता और मेरा अपना ही एक धर्म है । युवक के इस व्यवहार को देखकर हम कह सकते हैं कि उसने अपने धर्म की सुस्थापित परम्पराओं का उल्लंघन किया है परन्तु उसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि उसने किसी नये धर्म की स्थापना की है। इसी तरह कह सकते हैं कि अकबर ने मौलवियों के अधिकारों का तिरस्कार किया क्योंकि वे अकबर द्वारा अपनी महिलाओं के बलात् अपहरण का विरोध करते थे, परन्तु इससे यह भी सिद्ध नहीं हो जाता कि अकबर किसी नये धर्म का संस्थापक था । उसके आचरण से यही सिद्ध होता है कि वह शिष्टता के सभी नियमों की उपेक्षा करने वाला व्यक्ति था ।

यह याद रखना चाहिए कि स्वयं अकबर इस नये धर्म का अनुपालन-कर्ता नहीं था । यदि उसने किसी नये धर्म की स्थापना की होती तो वह सबसे पहले यह घोषणा करता कि मैं इस धर्म का अनुयायी हूँ और अब मुझे मुसलमान न माना जाये । ऐसी स्थिति में वह अपनी पत्नी और अपने बच्चों का नाम बदल देता । यदि नया धर्म बना होता तो वह मुस्लिम मौलवियों को भगा देता और उनके स्थान पर नये धर्म के मौलवियों को रखता । यदि अकबर ने वास्तव में एक नये धर्म की स्थापना की थी तो उसके पास इतना सैनिक बल था कि वह हजारों व्यक्तियों को नया धर्म स्वीकार करने पर विवश कर सकता था, जैसाकि सम्पूर्ण विश्व में मुसलमानों ने किया ।

ऊपर हमने जो कुछ कहा उसे ध्यान में रखते हुए हमें आशा है कि इतिहास के विद्वान् और छात्र दीन-ए-इलाही को धर्म मानने की बात को छोड़ देंगे और इसका असली रूप देखेंगे जो इस तरह है कि यह एक ऐसी व्यवस्था थी, जिसका (मनसरेंट के शब्दों में) उद्देश्य था मानव की आत्मा का हनन करना और लोगों को अपना जीवन, सम्पत्ति, धर्म व सम्मान पूर्णरूप से अकबर को समर्पित कर देना । इसे किसी भी दृष्टि से धर्म नहीं कहा जा सकता । इसकी किसी रूप में भी प्रशंसा नहीं की जा सकती । यह एक घृणास्पद व्यवस्था थी, जिसने चारों ओर घृणा-ही-घृणा फैलाई और जिसके कारण कई जगह विद्रोह हुए ।

निस्तेज नवरत्न

अकबर के शासनकाल के इतिहास-ग्रन्थों में अकबर को कलाकारों, साहित्यकारों और विद्वानों के महान् संरक्षक के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। हमें बताया जाता है कि उसके दरबार में अन्य योग्य व्यक्तियों के अतिरिक्त नौ व्यक्ति ऐसे थे जो विशिष्ट विषयों के धुरन्धर विद्वान् थे और अकबर के दरबार के देदीप्यमान रत्न कहे जाते थे।

लिखित प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि ये सब दलाल, पिट्ठू, चापलूस और अवसरवादी लोग थे जिनमें अकबर के निरंकुश शासन के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण के कारण कोई अहमन्यता या नैतिकता नहीं रह गई थी।

आरम्भ में हम अकबर के मन्त्रियों के सम्बन्ध में उनके अपने मूल्यांकन का विवेचन करना चाहते हैं। उसने कहा है, "अल्लाह की कुदरत कुछ ऐसी रही कि मुझे कोई भी योग्य मन्त्री नहीं मिला, वरना लोग यह सोचते कि मैंने जो भी काम किए, उनकी योजना उसने तैयार की थी।" (अकबर : दी ग्रेट मुगल, पृष्ठ २५८) अकबर के इन वचनों का उल्लेख स्वयं अबुल फ़ज़ल ने किया है। वह अकबर के मन्त्रियों में से एक था और उसे भी 'रत्न' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाना चाहिए कि ये सब कान्तिहीन रत्न थे जिनका वर्णन इतिहासकारों ने अयुक्तिपूर्ण किया है।

जिन नौ व्यक्तियों को अकबर के दरबार का विशेष रत्न कहा जाता है, उनके नाम हैं—अबुल फ़ज़ल, अबुल फैज़ी, टोडरमल, मानसिंह, मिर्ज़ा अज़ीज खाँ, अब्दुल रहीम खानखाना, (बीरबल) बीरबर, तानसेन और हकीम हुमाम।

ऊपर कहा जा चुका है कि अकबर के मन में इनमें से किसी के प्रति

भी सम्मान की भावना नहीं थी। अकबर ने इनमें से किसी भी व्यक्ति के सम्मान में कुछ नहीं बनवाया और किसी भी व्यक्ति को आने वाली पीढ़ियों ने याद नहीं किया।

अबुल फ़ज़ल

अबुल फ़ज़ल अल्लामी शेख मुबारक का पुत्र था। उसका जन्म आगरा के निकट १४ जनवरी, १५५१ को हुआ था और ९ अगस्त या १२ अगस्त, १६०२ को जब वह सराय बरकी गाँव से ६ मील दूर अन्तरी को जा रहा था, तब शाहजादा जहाँगीर के आदेश पर उसे घेरकर कत्ल कर दिया गया।

अबुल फ़ज़ल अरबी था। उसका पितामह शेख मस्त अरेबिया का रहने वाला था। नवीं शताब्दी में उसके पूर्वज कुछ मुस्लिम आक्रमणकारियों के साथ सिन्ध आए थे। वहाँ से अबुल फ़ज़ल का दादा शेख ख़िज्र, जो एक घुमक्कड फ़कीर था, अजमेर के निकट नागौर में आया। अबुल फ़ज़ल के पिता शेख मुबारक का जन्म यहीं हुआ था। इसके जन्म के थोड़े समय बाद ही शेख ख़िज्र और परिवार के दूसरे लोग एक दुर्भिक्ष में चल बसे। घूमते-फिरते शेख मुबारक अहमदाबाद पहुँचा जहाँ वह कई वर्ष तक रहा। बाद में वह आगरा के निकट एक सुन्नी फकीर की शरण में रहा, परन्तु बाद में शिया मत का अनुयायी हो गया। उसके चरित्रभ्रष्ट होने की सूचना अकबर को दी गई। शिया लोगों के प्रति घृणा के कारण उसने शेख मुबारक को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। शेख को जब विश्वास हो गया कि अकबर उसे मरवा डालेगा, तब वह अपने दो जवान लड़कों अबुल फ़ैजी और अबुल फ़ज़ल को आगरा में छोड़कर भाग निकला और स्वयं उसने सलीम चिश्ती की शरण ली। अबुल फ़ज़ल छोटा था। १५७४ में बड़े भाई फ़ैजी ने उसका परिचय अकबर से करवाया।

१५७४ ई० में पहली बार अबुल फ़ज़ल का अकबर से परिचय कराया गया, परन्तु अकबर पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। अबुल फ़ज़ल ने अपनी क़िस्मत को कोसा क्योंकि उसे विश्वास था कि एक बार अकबर से भेंट का मौका मिल जाए तो वह अकबर के दिल में जगह बना लेगा। अकबर ने जिस तरह उसे दुत्कारा, उससे अबुल फ़ज़ल को निराशा हुई और अकबर-

नामे में उसने लिखा है कि "किस्मत ने पहली बार मेरा साथ न दिया जिसके कारण मैं एकदम स्वार्थी और घमण्डी बन गया। विद्वत्ता के घमण्ड के कारण मेरा दिमाग सबसे अलग रहने के विचार से भर उठा। मेरे पिता बार-बार मुझे समझाते जिसके कारण मैं बेवकूफी में पड़ने से बच गया। मैं अपने देश के विद्वान् लोगों से तंग आ गया था।" (आईने-अकबरी की भूमिका, भाग ३, एच० ब्लोचमैन द्वारा अनूदित।) इससे प्रकट होता है कि अबुल फ़ज़ल दरबार में ऐशो-आराम और शाही संरक्षण का जीवन व्यतीत करना चाहता था।

"जिस समय अबुल फ़ज़ल को दरबार में अकबर के हुज़ूर में पेश किया गया, उस समय अकबर बिहार और बंगाल की विजय के लिए तैयारियाँ कर रहा था। बादशाह के फतेहपुर सीकरी लौटने पर तुरन्त अबुल फ़ज़ल दरबार में हाजिर हुआ, जहाँ अकबर ने उसे सबसे पहले जामिया मस्जिद में देखा।"

खुशामद करने में अबुल फ़ज़ल की चातुरी के बारे में, जिसके कारण उसे बादशाह अकबर का अनुग्रह प्राप्त हुआ, ब्लोचमैन ने आईने-अकबरी की भूमिका में लिखा है, "यूरोपीय लेखकों ने बहुत बार अबुल फ़ज़ल पर चापलूसी करने और यहाँ तक कि अपने आश्रयदाता की प्रसिद्धि पर आँच लाने वाले तथ्यों को जानबूझकर छिपाने का आरोप लगाया है।"

१५८९ ई० के अन्त में अबुल फ़ज़ल की माता का देहान्त हो गया।

इसी पुस्तक की भूमिका में आगे लिखा गया है—"दरबारी लोग और शाहज़ादा सलीम उर्फ जहाँगीर अबुल फ़ज़ल के विरुद्ध थे। एक बार जहाँगीर अचानक अबुल फ़ज़ल के घर चला गया जहाँ उसे अबुल फ़ज़ल पर दोरंगी चाल चलने का आरोप लगाने का अच्छा मौका मिल गया। मकान में प्रवेश करने पर उसने देखा कि ४० खुशनसीब लोग कुरान की टीकाओं की नकल करने में लगे हुए थे। वह उन्हें बादशाह के पास ले गया और उन प्रतियों को दिखाकर उसने कहा कि देखिए, अबुल फ़ज़ल मुझे जो कुछ सिखाता है वह घर पर उससे बिलकुल भिन्न व्यवहार करता है।"

इस घटना से शायद अकबर को यह विश्वास हो गया कि उसके दरबार में, जहाँ कपट-नीति की बहुत अधिक आवश्यकता थी, अबुल फ़ज़ल बिलकुल सही व्यक्ति रहेगा।

१५९२ ई० के अन्त में अकबर ने फ़ज़ल का दर्जा बढ़ाकर उसे दो हज़ारी बना दिया। अब उसे दरबार में बड़े अमीरों की श्रेणी में गिना जाने लगा।

उसके पिता का देहावसान लाहौर में रविवार, ४ सितम्बर, १५९३ को ८० वर्ष की आयु में हुआ।

दो वर्ष बाद फ़ज़ल के बड़े भाई फैजी का भी ५० वर्ष की अवस्था में ५ अक्तूबर, १५९५ को देहावसान हो गया।

अकबर के शासन के ४३वें वर्ष में फ़ज़ल को पहली बार सैनिक सेवा पर बाहर भेजा गया। शाहजादा मुराद दक्कन में विद्रोहियों का दमन नहीं कर पा रहा था। इसलिए फज़ल को वहाँ भेजा गया ताकि वह उसे अपने साथ लेकर वापिस आये क्योंकि मुराद की अत्यधिक शराबखोरी के कारण अकबर को बहुत चिन्ता थी। अबुल फ़ज़ल जिस दिन दौलताबाद से २० कोस दूर पुरना नदी के किनारे शिविर में पहुँचा, उसी दिन मुराद की मृत्यु हो गई। फ़ज़ल ने अपना अभियान चालू रखा। उसने अहमदनगर के निजामशाही राज्य की रीजेण्ट चाँद बीबी से, जो अपने आपमें रणचण्डी थी, समझौता किया।

अकबर के शासन के ४७वें वर्ष में अबुल फ़ज़ल को वापस बुलाया गया ताकि उसे शाहज़ादा सलीम उर्फ जहाँगीर के विरुद्ध भेजा जा सके जिसने इलाहाबाद में अपने-आपको शासक घोषित कर दिया था। जब जहाँगीर ने यह सुना कि अबुल फ़ज़ल उसके विद्रोह को दबाने के लिए दक्षिण में अपने शिविर से चल पड़ा है तो उसने बुन्देला के वीरसिंह देव को कहा कि जब अबुल फ़ज़ल बुन्देला के ओरछा नरेश के इलाके में से होकर निकले तब वह उसको घेर ले और कत्ल कर दे।

जब अबुल फ़ज़ल एक पेड़ के नीचे बैठा आराम कर रहा था तब उसे और उसके साथियों को चारों ओर से घेर लिया गया। फ़ज़ल को बारह घाव लगे और अन्त में उसे भाले से छेद दिया गया। उसका सिर धड़ से अलग करके इलाहाबाद में जहाँगीर के पास भेजा गया। जहाँगीर इतना खुश हुआ कि उसने उसे उठाकर गन्दगी के ढेर में फेंक दिया। जिस मुँह ने पतित अकबर की अवांच्छित प्रशंसा की थी और इतिहास को निर्लज्जतापूर्ण झूठी बातों से भर दिया था, शायद ऐसे मुँह के लिए यह सज़ा उचित थी।

जहाँगीर अबुल फ़ज़ल से बहुत डरता था। फ़ज़ल जानता था कि उसे अकबर का विश्वास प्राप्त है, इसलिए वह अकबर की उपस्थिति में भी एक अभिमानी बड़े-बूढ़े की तरह जहाँगीर को डाँट दिया करता था। अबुल फ़ज़ल के दम्भ और उसकी चालाकी को जानते हुए जहाँगीर के मन में उसके प्रति घृणा उत्पन्न हो गई थी। अपने संस्मरणों में उसने लिखा है कि जब अबुल फ़ज़ल बादशाह के पास होता था तब मैं अपने पिता अकबर के पास जाने का साहस नहीं करता था क्योंकि मुझे डर था कि अबुल फ़ज़ल कोई-न-कोई अपमानजनक बात कहकर अकबर को मुझसे नाराज़ कर देगा। इस तरह स्वयं अपने पिता से प्रायः अलग कर दिए जाने के कारण जहाँगीर ने अबुल फ़ज़ल को कत्ल करने की योजना बनाई।

अबुल फ़ज़ल में वे सब बुराइयाँ थीं जो किसी मुस्लिम दरबार में रहने वाले व्यक्ति में हो सकती हैं। वह अपने पेटूपन के लिए प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि पानी को छोड़कर वह प्रतिदिन लगभग २२ सेर खुराक खा जाता था। जब वह मुगल सेना के सेनापति के रूप में दक्कन में गया था तब खाने की मेज पर उसकी विलासिता बहुत बढ़ गई थी। एक बड़े तम्बू के नीचे उसकी खाने की मेज पर सैकड़ों प्रकार के बढ़िया भोजन प्रस्तुत किये जाते थे।

अबुल फ़ज़ल के दो सहपालित भाई थे और दो और भाई थे जो उसके पिता शेख मुबारक की रखैल औरतों से पैदा हुए थे। जहाँ तक ज्ञात है, उसकी कम-से-कम चार बहनें भी थीं।

अकबर अबुल फ़ज़ल को कोई महत्त्व नहीं देता था, इसका संकेत फ़ज़ल की मृत्यु से भी मिल जाता है। जहाँगीर द्वारा अबुल फ़ज़ल का कत्ल कर दिये जाने पर उसने अपने बेटे को एक शब्द भी बुरा-भला नहीं कहा क्योंकि उसके दरबार में बहुत से चापलूस हमेशा उसकी कृपा-दृष्टि पाने के लिए तैयार रहते थे और इसलिए इनमें से एक की कमी हो जाने से उसको कोई फर्क नहीं पड़ता था।

यूरोपीय लेखकों के अतिरिक्त अबुल फ़ज़ल के अपने समकालीन बदायूँनी ने, जो अकबर के दरबार में अबुल फ़ज़ल का साथी था और एक सहयोगी इतिहास-लेखक था, अपनी पुस्तक में पृष्ठ २०२, भाग २ में लिखा है कि अबुल फ़ज़ल "अनपेक्षित प्रशंसा करने वाला, अवसरवादी, सरासर

बेईमान, अकबर के सूक्ष्म संकेतों को समझने वाला और पूर्णरूपेण चापलूस था।"

यूरोप के अधिकांश इतिहासकार, जहाँगीर और बदायूँनी इस बात को प्रमाणित करने में एकमत हैं कि अबुल फज़ल एक बेशर्म चापलूस था।

इसी कारण से अकबर के शासनकाल के उसके इतिवृत्त आईने-अकबरी को पढ़ते हुए बहुत सावधानी बरतना आवश्यक हो जाता है। बहुत-सी बातें ऐसी हैं जिनकी अबुल फ़ज़ल ने उपेक्षा की है या गलत रूप में पेश किया है। उसका बड़ा भाई फैजी पद्य में अकबर की प्रशंसा के गीत गाया करता था, उसने यही काम गद्य में शुरू किया। अन्ततः वह अकबर के दरबार में होने वाली घटनाओं के बहुत ही काल्पनिक विवरण लिखने लगा। इन्हें वह अकबर को दिखाता। अकबर को इस बात पर सन्तोष होता कि उसे एक ऐसा चापलूस मिल गया है जो उसकी क्रूरता और धूर्तता के कारनामों को भी गौरव के कामों के रूप में पेश कर सकता है और आम जनता की आँखों में धूल झोंक सकता है, इसलिए उसने फ़ज़ल को ये काल्पनिक कथाएँ लिखते रहने को कहा। इस तरह अकबर और अबुल-फ़ज़ल ने मिलकर उसके शासनकाल का एक कपटपूर्ण इतिवृत्त पेश करने का जाल बुना जिसे हम आज अकबरनामा या आईने-अकबरी कहते हैं।

दरबार में यह सरल काम पाकर फ़ज़ल के लिए दरबार के सभी ऐशो-आराम प्राप्त करना बहुत सहज हो गया। इनमें उत्तम खाद्य-व्यंजनों से लेकर शाही दरबार के हरम का सान्निध्य तक सभी कुछ था। इस बहाने वह राजधानी से बाहर सैनिक अभियानों पर जाने से भी बच जाता था, जहाँ लगातार युद्धों, षड्यन्त्रों, कठिनाइयों और आपसी ईर्ष्याओं के कारण जीवन कठिन हो जाता था।

शाही दरबार में बादशाह के प्रशस्ति-गान लिखने का काम पाकर फ़ज़ल ने वहाँ अपने लिए एक ऐसा स्थान बना लिया था जहाँ से वह लोगों की किस्मत बना और बिगाड़ सकता था और साथ ही हमेशा बादशाह के निकट रहकर शाही संरक्षण की छत्र-छाया में जीवन व्यतीत कर सकता था।

इन विचारों ने फ़ज़ल को और भी पक्का चापलूस बना दिया। फ़ज़ल अपनी चापलूसी को अकबर की बदलती मनःस्थितियों, रुचियों, सनकों

और अपेक्षाओं के अनुसार ढालने में सिद्धहस्त हो गया। इस तरह जो अकबरनामा तैयार हुआ, उसमें वास्तव में अकबर के शासनकाल का सच्चा वर्णन न होकर काल्पनिक विवरण दिया गया है। जो लोग सच्चाई जानना पसन्द करते हैं और असत्य से घृणा करते हैं उन्हें अबुल फ़ज़ल का विवरण या किसी भी दूसरे मुस्लिम इतिहासकार का इतिवृत्त पढ़ते हुए इस बात को ध्यान में रखना चाहिए।

शाही दरबार में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए रखने के विचार से फ़ज़ल ने अपनी पुस्तक में बाजार के भाव, मण्डियों की गपशप, दरबार की अफवाहों, धार्मिक गोष्ठियों, अकबर के मनगढ़ंत फरमानों, दरबार में आने वाले सभी तरह के लोगों तथा सभी तरह की देखी, सुनी और कल्पित बातों का विवरण देते हुए उसे निरन्तर बढ़ाते रहना जारी रखा। मकड़ी के जाले की तरह वह अपने इस विवरण को तबतक लिखते रहना चाहता था जबतक या तो अकबर या वह स्वयं न मर जाये। इसलिए उसने कहीं भी किसी अधिकृत स्रूत्र से उद्धरण नहीं दिया। नाप-तौल, राजस्व और बाज़ार के भावों के बारे में उसके विवरण अस्पष्ट और परस्पर विरोधी हैं।

विंसेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक में (पृष्ठ २२३-२४) कहा है कि "मेरे विचार से यह (अबुल फ़ज़ल के बारे में बदायूँनी के विचार) सच्चाई से बहुत दूर नहीं। ब्लोचमैन के विचारों की उपेक्षा की जाय तो भी अकबर-नामा और आईने-अकबरी का लेखक पक्का और बेशर्म चापलूस था। उसने अकबर की प्रसिद्धि पर आँच लाने वाली बातों को दबाया, उनपर लीपा-पोती की या कभी-कभी झूठ बनाकर भी लिखा है। उसकी अपनी पुस्तक में एक-पक्षीय प्रशंसा-गान किया गया है।···औरतों के साथ अपने सम्बन्धों के मामले में अबुल फ़ज़ल ने धर्म द्वारा दी गई स्वाधीनता का पूरा लाभ उठाया। धर्मव्यवस्था के अनुसार उसकी कम-से-कम चार पत्नियाँ थीं। खाने के मामले में वह गुजरात के सुलतान महमूद बघर्रा को मात करता था। (पाद-टिप्पणी) उसने हिन्दू, ईरानी और कश्मीरी औरतों से शादी की और एक 'सम्मानित घराने' की औरत से भी शादी की। उसका कहना है कि अधिक पत्नियों से मुझे बहुत खुशी होती थी—(आईन, भाग ३, पृष्ठ ४४६)।···आईन के अन्तिम अनुच्छेदों के अनुसार उसे अपने पर काफ़ी अभिमान था।··· (भाग ३, पृष्ठ ४१७-४५१)।"

पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि जो अबुल पेटू था और जो "बेशर्म चापलूस" था, जिसे षड्यन्त्रों से भरपूर वातावरण में असीम शक्ति प्राप्त थी, और कई तरह की औरतों के साथ, जिनमें उसके अपने कथनानुसार कुछ वेश्याएँ भी थीं, व्यभिचारों का वर्णन करके बहुत प्रसन्न होता है, उसका अपना चरित्र कैसा रहा होगा। 'सम्मानित घराने' की महिला से अबुल फ़ज़ल का अभिप्राय मुस्लिम महिला से ही है। जिनके बारे में उसका यह संकेत है कि वे सम्मानित घरानों की नहीं थीं, वे मुस्लिम इतिवृत्त लेखकों की शब्दावली के अनुसार हिन्दू महिलाएँ थीं जिन्हें अपहरण करके लाया गया था।

अबुल फ़ज़ल के सम्बन्ध में विंसेंट स्मिथ के विचार

स्मिथ की पुस्तक में पृष्ठ ३३ पर कहा गया है कि "अबुल फ़ज़ल, अकबर के विरोधी बहराम खाँ को नीचा दिखाने में अकबर का पूरा पक्षपाती है और यहाँ तक कि वह पीर मुहम्मद पर, जो उस ज़माने में अकबर के सर्वाधिक अनिष्टकारी सलाहकारों में से एक था, अबाधित प्रशंसा की बौछारें करता है।"

आगे पृष्ठ ३८ पर कहा गया है कि "उसी अबुल फ़ज़ल ने, जिसने माहम अंगा के क्रूर कृत्य का उल्लेख किया है, (इस महिला ने दो अपहृत हिन्दू महिलाओं को, जिन्हें बाज बहादुर ने अकबर से छिपाकर अपने हरम के लिए रोक लिया था, कत्ल करवा दिया था ताकि बाज बहादुर को अकबर के साथ धोखेबाजी करने के आरोप से बचाया जा सके) उसी ने अपनी इस पुस्तक में इस दोषी महिला की 'बुद्धिमत्ता और कुशाग्रता' की प्रशंसा भी कर दी है।" अबुल फज़ल ने माहम अंगा और उसकी सखी जीज़ अंगा का कई बार उल्लेख किया है और उन्हें 'सदाचार की मूर्तियाँ' कहा है। उनकी इस तरह प्रशंसा किया जाना ठीक ही है क्योंकि अबुल फ़ज़ल में औरतों के साथ व्यभिचार की कमज़ोरी थी जिसके कारण यह स्वाभाविक ही था कि ये दोनों औरतें और अकबर के निरन्तर बदलते हरम की देख-भाल करने वाली दूसरी औरतें उसे हरम में से चुनकर औरतें उपलब्ध कराया करती थीं।

"अबुल फ़ज़ल ने पीर मोहम्मद के अपराधों को लांछित किया है और

उसे खेद है कि उस जैसे निष्ठ, योग्य और बहादुर आदमी को इस तरह (नदी में डुबा दिये जाने) की मौत मरना पड़ा।" (पृष्ठ ४२)।

"अबुल फ़ज़ल ने (मुहम्मद मीरम को, जिसे लकड़ी के शिकंजे में कसकर लगातार पाँच दिन तक यातना दी गई और जिसे शिकंजे समेत हाथी के हवाले कर दिया गया कि वह उसे उठाकर फेंकता फिरे) इस भयावह बर्बरता का वर्णन किया है, परन्तु भर्त्सना का एक शब्द भी प्रयुक्त नहीं किया।" (पृष्ठ ५८)।

"थानेसर और अम्बाला के बीच शाहबाद नामक स्थान पर शाह मंसूर (अकबर का वित्त मंत्री) को कोट कछवाहा के निकट एक पेड़ पर लटकाकर (धोखेबाज़ी के आरोप में) फाँसी दे दी गई। अबुल फ़ज़ल ने इस जानकारी को दबा दिया क्योंकि फाँसी देने का अप्रिय दायित्व उसे ही सौंपा गया था। यह बात हमें मनसरेंट से ही पता लगती है।" (पृष्ठ १३७-१४२) इससे अबुल फ़ज़ल की सर्वतोमुखी प्रतिभा को एक नया रूप और नई चमक मिलती है क्योंकि अबतक उसे व्यभिचारी, चापलूस और पेटू कहा गया है, परन्तु अब वह जल्लाद भी बन जाता है, सच्चे अर्थों में अकबर का मन्त्री था क्योंकि वह उसकी हर आवश्यकता की पूर्ति करता था। वह अकबर के आदेश पर कलम चलाने, छुरा चलाने और जल्लाद सभी का काम करने को तत्पर रहता था।

अबुल फ़ज़ल की मृत्यु ५३ वर्ष की अवस्था में हुई। उसीने अकबर को पहली बार यह विचार दिया था कि वह अपनी प्रजा का आध्यात्मिक और लौकिक दोनों प्रकार का नेतृत्व सँभाले। १५७४ में क़ुरान की टीका की सहायता से वह अकबर को यह बात समझाने में सफल हो गया। एक बार यह कार्य प्रारम्भ हो गया तो उसने उसकी प्रगति बनाये रखी। दरबार में उसे शाही अनुग्रह इतना अधिक मिला कि ईसाई पादरी उसका उल्लेख "बादशाह का जोनाथन" कहकर करते हैं। फिर इस बात से कि क़ुरान के गम्भीर अध्ययन के माध्यम से अबुल फ़ज़ल अकबर के दिल में स्थान पा सका, एक बार फिर यह बात प्रमाणित हो जाती है कि अकबर पूर्णतः मुस्लिम एवं धर्मान्ध था।

"अबुल फ़ज़ल की गद्य शैली, जैसी अकबरनामे का श्री बीवरिज का

अनुवाद पढ़ने से पता लगती है, मेरे लिए असह्य है। सीधे-सादे तथ्य निरर्थक शब्द जाल में लपेटकर रख दिये गये हैं।" (पृष्ठ ३०२)

भारतीय लेखकों ने मुस्लिम शासकों के बारे में कुछ कहते हुए यूरोपीय लेखकों की तरह स्पष्टवादिता से काम नहीं लिया और जिस तरह डॉ० श्रीवास्तव की पुस्तक "अकबर, दी ग्रेट" तीन बड़े भागों में सम्पूर्ण हुई है, उससे स्पष्ट है कि इस भारतीय लेखक के मन में अकबर के लिए **आदर** का स्थान है, परन्तु डॉ० श्रीवास्तव ने भी कहीं-कहीं अबुल फ़ज़ल की आलोचना की है।

अबुल फ़ज़ल के काल्पनिक अकबरनामे के लिए डॉ० श्रीवास्तव के मन में कितना आदर है यह उसकी पुस्तक की भूमिका से पता लग जाता है। विद्वान् लेखक ने लिखा है, "अबुल फ़ज़ल के अकबरनामे को अकबर के जीवन और समय के बारे में जानकारी के लिए (किसी भी अन्य सूत्र की अपेक्षा) सर्वाधिक महत्त्व का मुख्य सूत्र माना जाना चाहिए क्योंकि इसके लेखक को दरबारी अभिलेखों का उपयोग करने की सुविधा थी जिनमें अकबर जो कुछ कहता या करता, उसका शब्दश: विवरण दिया जाता था और ये विवरण इस प्रयोजन के लिए विशेष रूप से लगाए गये लेखकों द्वारा घटनास्थल पर ही लिखे जाते थे। दुर्भाग्य से ये अभिलेख अब नहीं मिलते परन्तु अबुल फज़ल की कृति हमें किसी भी काट-छाँट या संशोधन-परिवर्द्धन के बिना अपने मूल रूप में मिल जाती है। विंसेंट स्मिथ को अबुल फ़ज़ल पर बहुत अधिक अविश्वास है; उसने अनुचित रूप से यह आरोप लगाया है कि फ़ज़ल ने जानबूझकर तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा और जालसाज़ी भी की।"

डॉ० श्रीवास्तव का यह सोचना ग़लत है कि अकबर के ज़माने में उसके द्वारा की गई या कही गई हर बात का शब्दश: अभिलेख रखा जाता था। ऐसा कोई भी अभिलेख हमें नहीं मिला है, इसी बात से हमारी आँखें खुल जानी चाहिए। यह कहना कि ये अभिलेख नष्ट हो गये, ऊपर से देखने पर इतना ही आकर्षक लगता है जितना यह कहना कि अकबर ने नगरचैन नाम का एक बड़ा नगर बसाया था जो उसके अपने जीवनकाल में ही इतना टूट-फूट गया कि अब उसके स्थल का ज़रा-सा निशान भी नहीं मिलता। सिकन्दर लोदी ने जो आगरा बसाया और हुमायूँ और शेरशाह ने जो

दिल्ली बसाई, उनके बारे में भी यही बात लागू होती है। इसलिए भारतीय इतिहास के छात्रों को ऐसे झूठे दावों पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

क्योंकि कोई अभिलेख या स्मरण-पत्र तैयार ही नहीं किये जाते थे, इसलिए अबुल फ़ज़ल द्वारा उनका उपयोग किये जाने का प्रश्न नहीं उठता। फिर जो फ़ज़ल भोग-विलास में इतना तल्लीन रहता था और जो अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए जल्लाद का भी काम कर सकता था, और जो पीर मुहम्मद और माहम अंगा जैसे हत्यारों को संरक्षण प्रदान करता था, उसके बारे में समझा जा सकता है कि वह सत्य-कथन का विचार करते हुए दरबार के अभिलेखों को पढ़ने का कष्ट करेगा जबकि वह स्वयं अपने स्वामी की काल्पनिक गौरव गाथा को अपनी प्रतिभाशाली कल्पना-शक्ति के सहारे चार चाँद लगा सकता था।

इस तरह विंसेंट स्मिथ ने जो आकलन प्रस्तुत किया है वह अधिक सही है। विंसेंट स्मिथ को अबुल फ़ज़ल की इतिवृत्त रचना अकबरनामा पढ़कर जितनी विकलता हुई उसे व्यक्त करने के लिए सम्भवतः उसके पास उपयुक्त शब्द नहीं थे।

अबुल फ़ज़ल की इतिहास-पुस्तक के प्रति डॉ० श्रीवास्तव के मन में आदर होते हुए भी उसे यह कहना पड़ा है कि "अबुल फ़ज़ल की शैली कुछ जटिल है और उसके संरक्षक की अत्यधिक चापलूसी से दूषित है। अबुल फ़ज़ल अकबर को अतिमानव मानता था।" (पृष्ठ ४६८-६९)।

यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि जटिल शैली वही व्यक्ति लिख सकता है जिसका मस्तिष्क जटिल हो और जो तोड़-मरोड़कर सत्य को छद्मावरण में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता हो या फिर उसे भरपूर प्रशंसा के धुएँ में छिपा देना चाहता हो। अबुल फ़ज़ल के बारे में यह कहना अनुचित है कि वह अकबर को अतिमानव मानता था। अबुल फ़ज़ल इतना अधिक चालाक था कि वह कभी भी अकबर को अतिमानव नहीं मान सकता था। वह अकबर को प्रतिशोध लेने वाला तानाशाह मानता था और इसलिए वह इस बात का ध्यान रखता था कि वह उसका कृपा-पात्र बना रहे। अकबर के अधीन रहकर वह इसी तरह सरल, सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता था।

अकबर के पास चापलूसों की कमी नहीं थी, इसलिए फ़ज़ल को कत्ल

कर दिए जाने पर उसे उसका अभाव अनुभव नहीं हुआ। इसी बात मे सहमत होते हुए डॉ० श्रीवास्तव ने लिखा है कि : "अकबर उसे (अबुल फ़ज़ल को) अपरिहार्य नहीं मानता था और उसकी सलाह को अनिवार्य रूप से स्वीकार नहीं करता था; कई बार उसने दरबार से दूर रहने का आदेश सार्वजनिक रूप से देकर उसे दण्डित किया। उसके मरने पर उसकी कब्र पर एक साधारण-सा मकबरा बना दिया गया।" ईंट-चूने से बना वह तिकोना भवन भी अकबर ने नहीं बल्कि कुछ स्थानीय मुसलमानों ने बनवाया था। लगभग ४० वर्ष पहले पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों ने इतिहासों के अस्पष्ट विवरणों की सहायता से इस भवन का पता लगाने का प्रयत्न किया था। परन्तु उन्हें वहाँ चारों ओर बहुत से मकबरे मिले क्योंकि भारत में १००० वर्ष के हिन्दू-मुस्लिम युद्धों के दौरान देश के सभी भागों में स्थान-स्थान पर अनेक मकबरे बन गए थे। हारकर पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों ने मकबरों का एक ऐसा समूह निर्धारित कर दिया जिसमें उनके अनुसार अबुल फ़ज़ल का मकबरा होना चाहिए। उन्होंने इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया कि इन कब्रों में से एक कब्र दूसरी कब्रों से लगभग एक फुट ऊँची थी। बाद में कब्र को पुरातत्त्व विभाग के अभिलेखों में अबुल फ़ज़ल की कब्र मान लिया गया और उसके अनुरक्षण के उपाय किये गए। तभी उस कब्र पर एक छोटा-सा कमरा बना दिया गया। स्पष्ट है कि अबुल फ़ज़ल के उस मकबरे की भी उपेक्षा ही हुई है।

इस तरह हम देखते हैं कि जिस स्थान पर अकबर के प्रिय 'रत्न' का कत्ल हुआ था, उस स्थान की निशानी रखने की चिन्ता भी अकबर ने नहीं की, भव्य मकबरा बनाने की तो बात ही नहीं है, जिसके लिए मुसलमानों को उत्साही बताया जाता है। इससे इतिहासकारों को भी यह अनुभव हो जाना चाहिए कि जिन्हें हम भव्य मकबरे कहते हैं वे प्राचीन हिन्दू भवन तथा प्रासाद थे जिनका उपयोग मुस्लिम विजेताओं ने शव दफ़नाने के लिए किया। जहाँ कोई हिन्दू प्रासाद या मन्दिर सुलभ नहीं था वहाँ अबुल फ़ज़ल जैसे लोगों की भाँति शवों को साधारण कब्रों से ही सन्तोष करना पड़ता था। उन्हें अकबर, जहाँगीर, मुमताज बेगम या हुमायूँ की भाँति भव्य हिन्दू भवनों में दफ़न होने का सौभाग्य नहीं मिला।

जब जहाँगीर ने अबुल फ़ज़ल के पाखण्ड के बारे में अकबर को बताया

तब अकबर ने अबुल फ़ज़ल पर दिखावटी रूप में गुस्सा प्रकट किया। परन्तु डॉ० श्रीवास्तव का विचार है कि "शायद उसने सलीम को प्रसन्न करने के लिए ऐसा किया क्योंकि कुछ ही दिन बाद इसी इतिवृत्तकार के प्रति उसकी अनुकम्पा पुनः हो गई थी।" (अकबर, दी ग्रेट, पृष्ठ ४६१)। अकबर और अबुल फ़ज़ल के बीच साँठ-गाँठ होने का यह एक प्रमाण है। परन्तु डॉ० श्रीवास्तव का यह विश्वास गलत और अनुचित है कि अबुल फ़ज़ल इतिवृत्तकार था।

अबुल फ़ैज़ी

अबुल फ़ज़ल के बड़े भाई अबुल फ़ैज़ी को भी अकबर के रत्नों में गिना जाता है। कहा जाता है कि वह शायर था, यद्यपि किसी भी सम्मानित संग्रह में उसका उल्लेख या उद्धरण देखने को नहीं मिलता। फ़ैज़ी का जन्म आगरे में सितम्बर, १५४७ में हुआ था। उसे दिसम्बर, १५६८ में अकब॰ से मिलाया गया था, तब उसका पिता आगरे से भाग निकला था क्योंकि उसे पता लग गया था कि अकबर उसका कत्ल करवा देना चाहता था। कुछ समय तक फ़ैज़ी को शाहजादा मुराद को पढ़ाने का काम सौंपा गया। बाद में उसे आगरे का सदर नियुक्त किया गया। १५८८ में उसे राजकवि की उपाधि से सम्मानित किया गया। उसे और अमीर खुसरो को मध्य-कालीन भारत में फारसी के दो उल्लेखनीय कवि माना जाता है। कहा जाता है कि फ़ैज़ी ने लगभग १०१ पुस्तकें लिखीं। परन्तु हमें इन दावों को स्वीकार करने से पहले उनकी भली प्रकार और सावधानी से जाँच कर लेनी होगी। कभी-कभी फ़ैज़ी को राजदूत बनाकर भेजा जाता था। १५९२ में वह ऐसे ही एक मिशन पर दक्कन में गया। शनिवार, (४ या ५ अक्तूबर, १५९५) के दिन आगरे में उसकी मृत्यु हो गई।

विंसेंट स्मिथ को फ़ैज़ी के कवि-गुण के प्रति तनिक भी आदर नहीं है। अपनी पुस्तक में पृष्ठ ३९१-९२ पर उसने लिखा है कि "(अकबर के दरबार में) तुकबन्दी करने वालों या तथाकथित कवियों की संख्या बहुत थी।" अबुल फ़ज़ल ने लिखा है 'कि हालाँकि अकबर उनकी उपेक्षा करता है, फिर भी 'हज़ारों की संख्या में वे लोग दरबार में बने रहते हैं।' वास्तव में चाँदी के टुकड़ों पर तुकबन्दी करने वाले इन लोगों को समकालीन ईसाई

पादरियों ने भूल से इतिवृत्तकार समझ लिया है। इसलिए यदि भारत में मुस्लिम शासन का कोई उल्लेखनीय अभिलेख नहीं मिलता है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हमें जो कुछ देखने को नहीं मिलता है, वह गुण-कथन सम्बन्धी गाथाओं का समूह है जिसके नीचे पाशविक कृत्यों को छिपा दिया गया है। "जहाँ तक मैं समझता हूँ, अकबर के काल की भारतीय फारसी की कृतियों में साहित्यिक कला के नाम पर कुछ भी प्राप्त नहीं है। फारसी के अधिकांश शायरों के भद्देपन और घिनौनेपन की तुलना में एक महान् हिन्दू (रामचरित मानस के रचयिता तुलसीदास) के ओजस्वी, विशुद्ध काव्य को देखकर सन्तोष होता है। वह मध्यकाल के हिन्दू काव्य में सर्वाधिक श्रेष्ठ कृति है। उसका नाम आईने-अकबरी में या किसी और मुस्लिम इतिवृत्तकार की पुस्तक में नहीं मिलेगा [जो इस बात का एक और प्रमाण है कि मध्यकाल की मुस्लिम शासन व्यवस्था केवल मुसलमानों के लिए बनी थी; उसका नया नाम फारसी इतिवृत्तकारों के विवरणों पर आधारित यूरोपीय पुस्तकों में भी नहीं मिलेगा, (बल्कि कुछ भारतीय पुस्तकों में भी नहीं मिलता) परन्तु फिर भी वह हिन्दू भारत में अपने समय का महानतम व्यक्ति था क्योंकि जहाँ तक लाखों, करोड़ों नर-नारी के मन को जीतने का सम्बन्ध है, इस महान् कवि की सफलता निश्चय ही अकबर की सभी विजयों की तुलना में अधिक दीर्घकालीन और अधिक महत्त्व की थी और इस दृष्टि से वह अकबर से भी अधिक महान् था। ऐसा प्रतीत होता है कि बादशाह या अबुल फ़ज़ल का ध्यान इस कवि की ओर नहीं दिलाया गया। साधारण ब्राह्मण माता-पिता की सन्तान होने के नाते तुलसीदास को शिक्षा आदि की कोई विशेष सुविधा प्राप्त नहीं थी। अशुभ घड़ी में जन्म होने के कारण उसके माता-पिता ने जन्म होते ही उसे भाग्य के सहारे छोड़कर त्याग दिया था। परन्तु भाग्य का विधान ऐसा था कि उसे एक साधु ने उठा लिया और उसने उसका पालन-पोषण भी किया और पुरातन रामकथा की शिक्षा भी दी।···] अबुल फ़ज़ल ने ५९ कवियों की कृतियों से कई उद्धरण दिए हैं। मैंने इनके अंग्रेज़ी रूपान्तर को पढ़ा है और उनमें मुझे एक नाम भी उद्धृत करने योग्य नहीं लगा। यद्यपि इन उद्धरणों में जिन कवियों की कृतियों के सन्दर्भ हैं, उनमें उसका भाई अबुल फ़ैज़ी भी सम्मिलित है जिसे अबुल फ़ज़ल 'कवियों का बादशाह' मानता है

और जिसके विचारों को वह 'विचार-मणि' मानता है। अधिकांश लेखकों ने 'प्रेम' शब्द का दुरुपयोग अपवित्र वासना की पूर्ति के लिए किया है और फैजी इस पाप-कर्म में औरों की तरह ही बढ़ा-चढ़ा है। बहुत से व्यक्ति, जो कवि के सम्मानित पद का दावा करते थे, वास्तव में पत्र-पत्रिकाओं की तुक-बन्दी करने वाले लोगों से किसी तरह अधिक उत्तम नहीं थे। ये लोग अपनी उलट-प्रतिभा का उपयोग शब्दों को तोड़ने-मोड़ने आदि छोटे-मोटे कामों में करते रहते थे।...ब्लोचमैन का विचार था कि दिल्ली के अमीर खुसरो के बाद मुस्लिम भारत में फैजी से बड़ा कवि नहीं हुआ। ब्लोचमैन के निष्कर्ष को सही मानते हुए भी मुझे कहना होगा कि मुस्लिम भारत के दूसरे 'कवियों' की कोई कीमत नहीं रही होगी। ऐसा लगता है कि उन्होंने ऐसी कोई तथ्यपूर्ण बात नहीं लिखी जिसे अनुवाद किए जाने योग्य समझा जाए। प्रायः सभी कवि उस गन्दगी से दूषित हैं जिसका उल्लेख किया गया है।"

इस तरह विंसेंट स्मिथ ने केवल फैजी ही नहीं बल्कि शेष सभी मुस्लिम लेखकों के साहित्यिक योग्यता सम्बन्धी ऊटपटांग दावों का भण्डा-फोड़ भली प्रकार कर दिया। एक हजार वर्ष के मुस्लिम शासन के अधीन सामूहिक चाटुकारिता के वातावरण में जो वृत्तान्त, कविताएँ और हिन्दू कृतियों के जो अनुवाद लिखे गए उन्हें मुसलमानों की विद्वत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। स्मिथ ने इन दावों का प्रभावशाली खण्डन यह कह-कर किया है कि इन वृत्तान्तों में कहीं भी सच्चाई के दर्शन नहीं होते और कविताओं में कहीं भी उदात्त विचारों, कल्पना और काव्य-गुण के दर्शन नहीं होते। इसलिए जो पाठक वास्तविक इतिहास को खोज निकालना चाहते हैं उन्हें मध्यकालीन मुस्लिम प्रचार के प्रति सावधान हो जाना चाहिए। ऐसा हो सकता है कि अल बरूनी और बदायूँनी जैसे लेखकों के बारे में यह जो दावा किया जाता है कि उन्हें खगोल-विद्या और संस्कृत तथा ज्यामिति और भूगोल का विशेष ज्ञान प्राप्त था, वह निपट अशिक्षा के उस काल को देखते हुए एकदम अतिशयोक्तिपूर्ण हो।

टोडरमल

टोडरमल राजपूत क्षत्रिय था। पहले-पहल उसे अकबर की सेना का लेखा रखने के लिए एक छोटे पद पर नियुक्त किया गया था। एक विश्वस-

नीय पिट्ठू सिद्ध हो जाने पर उसे पदोन्नति का अवसर मिला। मानसिंह को तरह उसे भी इस काम पर लगाया गया था कि वह अभिमानी राजपूत मुखियाओं को इस बात के लिए सहमत करें कि वे अपनी पुत्रियाँ अकबर के हरम के लिए प्रस्तुत करें। कई बार मानसिंह और टोडरमल ने स्वयं बल प्रयोग करके ऐसी कन्याएँ अकबर के हरम के लिए प्रस्तुत कीं। १५६७ में टोडरमल को सिकन्दर शाह को दबाने के लिए भेजा गया जो उन दिनों अयोध्या के क्षेत्र में परेशानी का कारण बना हुआ था। टोडरमल को इस अभियान में और बाद में सौंपे गये अभियानों में सफलता मिली। अबुल फ़ज़ल की तरह टोडरमल भी कुशल सिद्ध हुआ। अकबर का कृपापात्र बनने का यह सबसे अच्छा ढंग था। १५७६ में जब अकबर ने गुजरात को विजित किया तब टोडरमल को यह काम सौंपा गया कि गुजरातियों से इतना धन वसूल किया जाये जिससे अभियान की पूर्ण क्षतिपूर्ति हो जाये, और इसके अतिरिक्त भी पर्याप्त सम्पत्ति शाही खजाने में जमा की जा सके। टोडरमल ने यह काम इतनी कुशलता से किया कि गुजरात प्रदेश में, जो पहले ही दरिद्र था, एक अभूतपूर्व दुर्भिक्ष का प्रकोप हुआ। अकबर के इतिवृत्त लेखकों के लिए यह आवश्यक था कि वे टोडरमल की वित्तीय प्रतिभा का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करते, क्योंकि वह गरीब, पददलित और निःसहाय प्रजा से पैसा वसूल करता था जिससे अकबर का शाही ख़ज़ाना भरता था और चाटुकार अमीरों का पालन-पोषण होता था, परन्तु ऐसा कोई कारण नहीं है कि आज के लेखक भी उनका अन्धानुकरण करते हुए उन्हीं की शैली में टोडरमल की "वित्तीय जादूगरी" की प्रशंसा करते चले जाएँ। स्वतन्त्र विचारक विंसेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक में (पृष्ठ २५२-५४ पर) उचित ही लिखा है कि "राज्य में विधिवत् कर-निर्धारण की जिस व्यवस्था के लिए अकबर और टोडरमल को इतना अधिक श्रेय दिया जाता है, उसका मुख्य उद्देश्य शाही राजस्व में वृद्धि करना था। अकबर बहुत लम्पट व्यवसायी था, वह उदार व दयालु व्यक्ति नहीं था। उसकी सम्पूर्ण नीति का मुख्य उद्देश्य यह था कि सत्ता और सम्पत्ति को बढ़ाया जाये। जागीरों के सम्बन्ध में सभी व्यवस्थाओं, (घोड़ों पर) मोहर लगाने की व्यवस्था आदि सबका एक ही उद्देश्य था कि बादशाह की सत्ता, गौरव-धन-सम्पत्ति में वृद्धि की जाये। उसके तथाकथित प्रशासनिक सुधारों का

सामान्य जनता के दैनिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा, इसकी कोई तथ्यात्मक जानकारी नहीं मिलती। हाँ, इतना अवश्य है कि इन सब उपायों को कार्यान्वित करने के बाद भी अकबर के शासन के अन्तिम भाग में, १५८५ से १५९८ तक भयंकर अकाल पड़ा जिसके कारण उत्तरी भारत वीरान हो गया।" टोडरमल द्वारा बनाई गई भूमि-कर की जिस व्यवस्था की सामान्य भारतीय इतिहासों में इतनी अधिक प्रशंसा की जाती है, उसके सम्बन्ध में बदायूँनी ने अपनी पुस्तक में (पृ० १९२, भाग २) लिखा है कि "गरीब जनता से करों की यह वसूली इतनी सख्ती के साथ की जाती थी कि लोगों को अपनी पत्नी और बच्चे बेच देने पड़ते थे। गुलाम बनाकर उन्हें विदेशों मे भेज दिया जाता था। राजा टोडरमल ने करोड़ियों को काबू में किया, उनपर विभिन्न प्रकार के जुल्म किये गए और उन्हें अत्याचारपूर्ण दण्ड दिये गए, जिससे कुछ करोड़ियों की मृत्यु तक हो गई। जिन करोड़ियों को बन्दी बनाया गया उनमें से कुछ की मृत्यु कारावास में ही हो गई। उनके लिए किसी जल्लाद की आवश्यकता नहीं पड़ी और किसी ने उनके लिए कफन जुटाने की भी परवाह नहीं की।...अकाल और आपदा के समय माता-पिता को इस बात की छूट थी कि वे लगान का भुगतान करने के लिए अपने बच्चों को बेच सकते थे।"

इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि (२८ जुलाई, १५८७ को रात के समय) खत्री परिवार के एक व्यक्ति ने वैयक्तिक दुश्मनी के कारण टोडरमल पर घातक प्रहार करके उसे घायल किया हो। उस व्यक्ति को कत्ल कर दिया गया।

अबुल फ़ज़ल ने टोडरमल का जो विवरण दिया है, उसपर टिप्पणी करते हुए ब्लोचमैन ने लिखा है कि "मुसलमानों का कृपापात्र बनने के लिए टोडरमल किस सीमा तक आगे बढ़ जाता था, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यद्यपि भारत में हिन्दुओं का भारी बहुमत था और पुराने समय में वह लेखा-जोखा देशी भाषाओं में रखा जाता था, परन्तु टोडरमल ने पहली बार आदेश दिया कि "सल्तनत का सब हिसाब-किताब अब से फारसी में लिखा जायेगा। इस तरह अपने स्वधर्मावलम्बी व्यक्तियों को अपने शासकों के दरबार की भाषा सीखने को विवश कर दिया।"

ब्लोचमैन ने बदायूँनी के हवाले से लिखा है कि अकबर ने ऐसे "आदेश

जारी किये थे कि सामान्य जनता अरबी भाषा न सीखे क्योंकि ऐसे लोग सामान्यत: काफी उत्पात का कारण बनते हैं।" यदि स्वयं अकबर ने यह अनुभव किया था कि अरबी भाषा का प्रसार झगड़े का कारण बनता है तो यही बात फारसी पर भी लागू होती है। अरबी भाषा को हटाये जाने को उचित बताते हुए डॉ० श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक में (पृष्ठ ३८७, भाग १) लिखा है कि "स्पष्ट है कि अरबी भारत की जनता की भाषा नहीं हो सकती थी।" परन्तु वे भूल जाते है कि फारसी भी भारत के लिए वैसी ही विदेशी भाषा है।

टोडरमल ने मुसलमानों के पक्ष में काम किया, परन्तु उसे इस बात का श्रेय देना होगा कि जीवन के अन्तिम क्षण तक वह कट्टर हिन्दू बना रहा। उसे मुस्लिम धर्म में लाने के लिए उसपर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से जो भी दबाव डाले गए, उनका उसने सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया। एक बार जब वह पंजाब में एक अभियान पर जाने वाला था, तब उसने देखा कि उसके घर के मन्दिर से सभी मूर्तियाँ और पूजा की सामग्री गायब थी। स्पष्टत: मुसलमानों ने इस परोक्ष विधि से उसे यह बताने का प्रयत्न किया था कि वह हिन्दू विधि से पूजा और प्रार्थना किये बिना रह सकता है। प्रार्थना करने के अवसर से वंचित हो जाने की व्यथा के कारण बेचारा गरीब टोडरमल तीन दिन तक जल व अन्न ग्रहण नहीं कर सका। अन्तत: उसे मूर्तियों की चोरी के मामले में मन को समझा लेना पड़ा।

अपमान, पीड़ा और निरादर से तंग आकर टोडरमल ने त्याग-पत्र दिया और वह बनारस और हरिद्वार में जाकर रहने लगा, परन्तु उसे पुन: नौकरी पर बुलाया गया। उसके बाद वह अधिक दिन जीवित नहीं रहा। ५४ वर्ष की अवस्था में १० नवम्बर, १५८९ को लाहौर में उसका देहान्त हो गया।

मानसिंह

मानसिंह जयपुर के महाराजा भारमल का पोता था। अपने पिता और दादा की तरह उसने भी अपनी पुरानी राजपूती परम्परा को भुलाकर 'इस्लाम की तलवार चलाई' और विदेशी मुस्लिम शासकों और अमीरों को इस बात की छूट दी कि वे जब चाहें, उसके परिवार में से औरतों को

उठा ले जाएँ। इसलिए राणा प्रताप उसके प्रति घृणा करता था। एक बार वह अकबर की ओर से बातचीत करने के लिए राणा प्रताप के निवासस्थान पर गया, तब देश-प्रेमी राणा ने मुसलमानों के पिट्ठू मानसिंह के साथ भोजन करने से इन्कार कर दिया। मानसिंह के चले जाने के बाद उसने उस जगह से, जहाँ दोनों की मुलाकात हुई थी, मिट्टी को खुदवा दिया, उसे पवित्र किया और सभी बर्तनों को पवित्र कराया एवं उन्हें दासता की कालिमा से मुक्त किया। मानसिंह की बहन का विवाह जहाँगीर से हुआ था, जबकि उसकी बुआ का विवाह अकबर से हुआ था।

मानसिंह का जन्म अम्बर में हुआ था। वह अकबर की सेवा में उस समय आया जब उसके दादा भारमल ने अपनी पुत्री अकबर के हरम में भेज दी। ९८४ हिजरी में उसे राणा प्रताप के विरुद्ध अभियान में भेजा गया और अगले वर्ष उस महान् राणा से उसका सामना हल्दी घाटी में हुआ। जब मानसिंह का चाचा भगवानदास पंजाब का गवर्नर नियुक्त किया गया तब मानसिंह को सिंध नदी के साथ लगने वाले ज़िलों का नियन्त्रण सौंपा गया। बाद में उसे शांति स्थापना के लिए काबुल भेजा गया। अबुल फ़ज़ल का कथन है कि शाही दरबार में धोखेबाजी, व्यभिचार और धर्मान्धता को देखकर उसका चाचा भगवानदास पागल हो गया था और बाद में उसने आत्महत्या कर ली थी। ९९८ हिजरी में उसकी मृत्यु के बाद उसे राजा का पद मिला। उसके अधीनस्थ मुसलमानों ने उसके विरुद्ध शिकायत की कि वह उनकी धर्मान्धता की तुष्टि नहीं होने देता, जिसपर उसे काबुल से वापस बुला लिया गया और बिहार का गवर्नर बनाकर वहाँ के पूरनमल और राजा संग्राम जैसे देशभक्त और वीर हिन्दू शासकों को दबाने के लिए भेजा गया। अकबर के शासन काल के ३५वें वर्ष में मानसिंह को उड़ीसा पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। वह जगन्नाथ पुरी पर अधिकार करने में सफल रहा। अफगानों ने कई बार जगन्नाथ पुरी पर आक्रमण करके उसे अपवित्र किया था। मानसिंह ने एक बार फिर उड़ीसा पर हमला किया और उसे अकबर के राज्य में मिला लिया। आगरे का प्रसिद्ध ताज-महल इसी मानसिंह की सम्पत्ति था। उसके पोते जयसिंह से यह महल अकबर के पोते शाहजहाँ ने हड़प लिया और बेगम को दफ़न किया। मान-सिंह अकबर के बाद भी जीवित रहा, जहाँगीर के शासनकाल के नौवें वर्ष

में उसकी मृत्यु हुई। जहाँगीर ने अपनी पत्नी मानबाई को, जो मानसिंह की बहन थी, कत्ल कर दिया था। मानसिंह ने एक षड्यन्त्र रचकर यह प्रयत्न किया कि जहाँगीर को गद्दी पर बैठने से रोका जाये। उसने जहाँगीर के बेटे खुसरू को अकबर की मृत्यु के पश्चात् बादशाह घोषित कर दिया।

मानसिंह ने अपना सारा जीवन अकबर के आदेश पर युद्ध करने में व्यतीत किया। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से वह इस्लाम के प्रसार में सहायता देने में लगा रहा। फिर भी अकबर उससे घृणा करता था। एक बार नशे की हालत में अकबर ने मानसिंह का गला घोंट देने का प्रयत्न किया था। कुछ अन्य उपस्थित दरबारियों ने उसे बचा लिया। १६०५ में अकबर ने जहर की गोलियाँ खिलाकर मानसिंह को मार डालने का प्रयत्न किया। परन्तु दुर्भाग्य से अकबर का यह कुचक्र उलटे उसपर ही चल गया। उसने एक जैसी दिखाई देने वाली दो तरह की गोलियाँ तैयार की थीं। एक में ज़हर था और दूसरी निरापद थी। गलती से ज़हर वाली गोलियाँ वह खुद खा गया और निरापद गोलियाँ उसने पूरे विश्वास के साथ मानसिंह को दे दीं, परिणाम यह हुआ कि अकबर की मृत्यु हो गई जबकि मानसिंह जीवित रहा। मुस्लिम दरबार में वासना और धोखेबाज़ी के वातावरण से दुःखी होकर मानसिंह के लड़के जगतसिंह और उसके साथियों ने अत्यधिक शराब पीकर आत्महत्या कर ली।

मिर्जा अजीज कोका

मिर्जा अजीज़ कोका रिश्ते में अकबर का भाई था। अकबर के तानाशाही व्यवहार के कारण उसने अकबर के प्रति विद्रोह किया। अजीज़ कोका ने अपने घोड़ों पर शाही मोहर लगवाने से इन्कार किया। अकबर की ओर से बदला लिये जाने का सन्देह होने पर वह ड्यू को पुर्तगालियों से छीन लेने के बहाने उस द्वीप में भाग गया। १५९३ में वह अपनी बहुत-सी पत्नियों और बच्चों के साथ मक्का की ओर चल दिया, जिससे उसे आत्मिक शान्ति प्राप्त हो सके। वहाँ भी उसे शान्ति नहीं मिली क्योंकि "मक्का में काबा के मुस्लिम मुल्लाओं ने उसे बेशर्मी के साथ लूटा।" इसलिए वह अनिच्छापूर्वक वापस अकबर के दरबार में यह सोचकर आ गया कि यह जगह मक्का की अपेक्षा अधिक अच्छी है। जीवन के शेष वर्ष वह

यहीं रहा, इस्लाम के प्रति उसका आकर्षण काफी ठंडा पड़ गया था। जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव देखने के बाद जहाँगीर के शासन के १६वें वर्ष में निराशा, असन्तोष और उन्माद की स्थिति में उसका देहावसान अहमदाबाद में हुआ।

अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना

अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना बहराम खाँ का पुत्र था। जब अब्दुल रहीम चार वर्ष का था तब अकबर के कहने पर उसके पिता का कत्ल कर दिया गया था, हालाँकि बहराम खाँ अकबर का सद्निष्ठ और उत्साही संरक्षक था। बहराम खाँ की हत्या के बाद बालक रहीम और उसकी माता सलीमा सुलतान को अकबर के दरबार में लाया गया जहाँ सलीमा को इच्छा न होने पर भी अकबर की पत्नी के रूप में रहना पड़ा। रहीम ने अपने पिता की हत्या और विधवा माँ के अपहरण की परवाह न की। दरबार के कपट-पूर्ण जीवन का वह अभ्यस्त हो गया था। उसने अपना शेष जीवन अकबर की ओर से युद्ध करने एवं कविताएँ सुनाकर उसका कष्ट दूर करने में बिताया। उसका जन्म लाहौर में ६६४ हिजरी में हुआ था। रहीम का आदर्श यह था कि "दुश्मन पर अपनी दोस्ती की आड़ में चोट करो।" सभी उसपर विद्वेषपूर्ण और विश्वासघाती होने का आरोप लगाते हैं। उसका शव हुमायूँ के तथाकथित मकबरे के पास एक पुराने हिन्दू भवन में, जहाँ वह रहा करता था, दफन पड़ा है। वह वही स्थान है जहाँ वह अपने जीवनकाल में रहता था। हिन्दू शैली के शक्ति चक्र (आपस में गुँथे हुए दो त्रिकोण) अभी भी इस भवन के चारों द्वारों पर देखे जा सकते हैं। उसके गुम्बज पर हिन्दू शैली के नीले टाइल लगे हैं (जैसे ग्वालियर के किले के हिन्दू महल में हैं) जिनके कारण मुसलमान इसे नीला बुर्ज कहा करते थे।

वीरबर (बीरबल)

वीरबर को सामान्य बातचीत में बहुधा बीरबल कहा जाता है। दोनों शब्द एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं। वीरबर शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ योद्धा और वीरबल शब्द का अर्थ है योद्धा की शक्ति। समकालीन मुस्लिम इतिवृत्तों में वीरबर शब्द का प्रयोग किया गया है। वीरबर का जन्म १५२८ में एक

निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उसका मूल नाम महेशदास था। छोटी आयु में वह अम्बर के राजा भगवानदास के सेवकों में सम्मिलित हो गया था। जब अकबर गद्दी पर बैठा तब भगवानदास ने वीरबर उसे भेंट में दिया। उस समय महेशदास अपने-आपको ब्रह्मकवि कहा करता था। अकबर के दरबार में वह एक बहुत छोटे पद से उन्नति करता हुआ इस बड़े पद पर पहुँच गया था क्योंकि अकबर ने वीरबर के रूप में ऐसे एक व्यक्ति को देखा जो उसके आदेश पर कोई भी काम कर सकता था। किसी को कत्ल भी कर सकता था और जो सब कलाओं में सिद्धहस्त था। अब्दुल रहीम की तरह महेशदास भी कविताएँ बनाकर अकबर का मन बहलाया करता था। १५७४ में उसे नगरकोट के वैध शासक जयचन्द के स्थान पर नगरकोट का शासक बनाने का प्रयत्न किया गया। अकबर के लिए यह एक साधारण नीति थी कि वह किसी हिन्दू राजा के राज्य को छीनकर उसपर अपनी किसी कठपुतली को राज्याधिकार दे देता था और मुस्लिम सत्ता के बल पर उसे शासक हिन्दू राजा के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में खड़ा कर देता था। इसी नीति के अनुसार वीरबर को उकसाया गया कि वह नगरकोट का राजा कहलाना चाहता हो तो उस राज्य के विरुद्ध युद्ध-अभियान करे। वीरबर ने इस अभियान का नेतृत्व किया, जिसमें नगरकोट के मुख्य मन्दिर की पवित्र हिन्दू मूर्ति और उसका छत्र मुसलमानों की लूट का शिकार हुए। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने २०० गायों को मारा और उनका खून अपने जूतों में भरकर उससे मन्दिर की दीवारों पर छाप लगाई। ऐसे अत्याचार करने के बाद भी वीरबर को नगरकोट का राजा न बनाया जा सका। सान्त्वना देने के लिए कुछ सोना और कालिंजर में एक जागीर देने का प्रस्ताव किया गया। परन्तु उसे इसका भी आनन्द लेने का अवसर नहीं दिया गया। १५८३ में उसे आदेश मिला कि उत्तर-पश्चिमी सीमांत पर यूसुफजई अफगानों के विद्रोह को दबाने के लिए प्रस्थान करो। इस अभियान के दौरान उसकी हत्या करा दी गई। अपने-आपको शाही दरबार का इतिवृत्त लेखक बनाने वाले बदायूंनी ने अपनी धर्मान्ध और घिनौनी इस्लामी शैली में लिखा है कि "अपने कई दुष्कर्मों के परिणामस्वरूप काफिर वीरबल दोज़ख में दूसरे काफिरों से जा मिला।" किसी हिन्दू की हत्या का उल्लेख करते ए बदायूंनी ऐसी ही असंयत और अपमानजनक भाषा का प्रयोग करता

है। उदाहरण के लिए नवम्बर, १५८९ में लाहौर में पाँच दिन के अन्तर से हुई राजा भगवानदास और टोडरमल की मृत्यु का उल्लेख करते हुए बदायूँनी ने लिखा है कि "दोनों ने यन्त्रणामय नरक को प्रस्थान किया। जहां वे सांपों और बिच्छुओं का खाद्य बने। परमात्मा उनकी आत्मा को विनष्ट करे।" बदायूँनी को सम्भवतः यह ज्ञात नहीं है कि जिन हिन्दुओं के बारे में उसने लिखा है कि वे नरक में गये, उनकी सूची प्रस्तुत करने का निहितार्थ क्या है। इन हिन्दुओं के बारे में इतना निश्चयपूर्वक लिख सकने की स्थिति में होने का स्पष्ट अर्थ है कि वह स्वयं सबसे पहले उस नरक में पहुँचा होगा ताकि उनकी अधिकृत सूची बना सके।

अकबर-बीरबल विनोद के बारे में जो कहानियाँ भारत में प्रचलित हैं, वे किसी चतुर लेखक द्वारा गढ़ी गई हैं और दूसरे लेखकों ने समय-समय पर उनकी संख्या में वृद्धि की है और उन्हें अकबर-बीरबल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देने का प्रयत्न किया है। असली बीरबल का जीवन हँसी और कविता से बहुत दूर जघन्य, खतरनाक और अत्यधिक घृणित था।

तानसेन

तानसेन का जन्म १५३१-३२ में किसी समय ग्वालियर से २७ मील दूर बेहत गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। संगीत की उसकी आरम्भिक शिक्षा ग्वालियर में हुई जिसकी उच्च श्रेणी के हिन्दू संगीत में अपनी परम्परा थी। गायक के रूप में तानसेन को अपार ख्याति मिली है। कहते हैं, वृन्दावन के एक साधु संगीतज्ञ हरिदास ने भी तानसेन को संगीत की शिक्षा दी थी। उसने भाटा (आधुनिक रीवां) के राजा रामचन्द्र के यहां दरबारी संगीतकार के रूप में सेवावृत्ति प्रारम्भ की। उच्च कोटि का गायक होने के कारण उसे यहीं तानसेन की उपाधि मिली। १५६२ में जब अकबर ने उस राज्य पर आक्रमण किया तब तानसेन को वहाँ से खींच लाया गया। बदायूँनी के विवरण के अनुसार (पृष्ठ ३४५), "तानसेन अपने हिन्दू आश्रयदाता को छोड़ना नहीं चाहता था। अन्त में, जलाल खाँ कुर्ची (एक जबरदस्त मुस्लिम सेनापति) ने आकर उसे अपना कर्तव्य समझने को विवश किया।" तानसेन को प्रायः इस बात के दृष्टान्त के रूप में पेश किया जाता है कि अकबर संगीत को कितना प्रोत्साहन देता था। परन्तु यह एक झूठा दावा है। अकबर के दरबार में लाए जाने से पहले भी तानसेन एक सफल संगीतकार था। वास्तव में संगीत में वैशिष्ठ्य ही उसे ले डूबा। अपने संगीत में सुधार करने की अपेक्षा तानसेन के संगीत का विशुद्ध हिन्दू स्वरूप समाप्त हो गया और उसमें दरबार की चरित्रहीनता आ गई, जहाँ संगीत का सम्बन्ध मद्यपान और वेश्यावृत्ति के साथ जोड़ा जाता है। अकबर

की आक्रामक सेनाओं से बचने के लिए रामचन्द्र को पुरुषों, महिलाओं, सोना, हीरे-जवाहर और घुड़सवार एवं पैदल सैनिकों सहित तानसेन को भी अकबर को समर्पित करना पड़ा, उस समय तानसेन फूट-फूट कर रोया। अकबर के दरबार में जाकर तानसेन बहुत दुःखी था। ऐसी कहानियाँ कि जब तानसेन गाना गाते समय मुँह खोलता था तब धर्मान्ध मुसलमान अपने मुँह का आधा चबाया हुआ पान उसके मुँह में ठूंस देते थे, सच हो सकती हैं। पुरातन पंथी हिन्दू तानसेन से अलग हटते थे और मुसलमान उसे मियाँ कहकर पुकारते थे। इस तरह इतिहास में तानसेन को मुसलमान के रूप में पेश किया गया है यद्यपि वह जीवन के अन्तिम क्षण तक हिन्दू रहा। एक विदेशी शासक के दरबार में विवश होकर छब्बीस वर्ष तक संगीत-सेवा करने के बाद उसकी मृत्यु १५८८ में हुई, उसका शव ग्वालियर क़िले के समीप मुहम्मद गौस के मजार के पास एक पूर्ववर्ती मन्दिर में दफ़न है। ये दोनों जहाँ दफन हैं, वहाँ आसपास का क्षेत्र एक बड़े मन्दिर के ध्वंसावशेषों से भरा पड़ा है। भारत और पश्चिम एशिया के मन्दिरों की तरह ग्वालियर के क़िले के पास बने मन्दिरों को भी कब्रिस्तान के रूप में काम लिया गया। ये मकबरे मूल रूप में मकबरे नहीं थे प्रत्युत मन्दिर थे।

हकीम हुमाम

अकबर का बावर्ची हकीम हुमाम भी अकबर के नवरत्नों में गिना जाता है। जिस दरबार में खाने और शराब पर अधिक जोर रहता हो, वहाँ उसे रत्नों में गिना जाना स्वाभाविक है। बावर्चीखाने के अधीक्षक के रूप में उसे बढ़िया पकवान तैयार कराने पड़ने थे अन्यथा उसे अपने जीवन का खतरा था। परन्तु बदायूँनी ने लिखा है कि अकबर को यह सन्देह रहता था कि हकीम हुमाम ने उसे ज़हर दिया है, इससे स्पष्ट हो जाता है कि सभी दूसरे व्यक्तियों की तरह हकीम हुमाम भी अकबर से घृणा करता था।

किसी प्रामाणिक इतिहास में हुमाम का कोई उल्लेख नहीं मिलता, इससे स्पष्ट है कि उसे कितना कम महत्त्व दिया जाता था। इस प्रकार नवरत्नों की कहानी चापलूस दरबारियों ने उनकी कृपा-दृष्टि प्राप्त करने के लिए गढ़ी थी।

इस तरह जिन्हें नव-रत्न कहा जाता है, वे निस्तेज रत्न एवं अवसरवादी थे जो आपस में एक-दूसरे की जड़ काटने में लगे रहते थे। उन सबका जीवन सरल और सहज नहीं था। हमने पहले अकबर का यह कथन उद्धृत किया है कि 'मैं किसी दरबारी को किसी रूप में भी योग्य नहीं समझता'। ये दरबारी अकबर से घृणा करते थे जिसका संकेत उनके व्यवहार से मिल जाता है। नवरत्नों सम्बन्धी विवरणों से अकबर का यश

: २४ :

इतिवृत्त लेखक

अकबर के सम्बन्ध में, और यह बात भारत के प्रत्येक मुस्लिम शासक पर लागू होती है, समकालीन अभिलेखों की खोज करते हुए दो परस्पर विरोधी बातें हमारे सामने आती हैं। प्रत्येक लेखक को आपत्ति है कि कोई महत्त्वपूर्ण अभिलेख उपलब्ध नहीं है और साथ ही विश्वासपूर्वक यह भी कहा जाता है कि अकबर के प्रत्येक कथन का पूर्ण अभिलेख प्रभूत परिमाण में तैयार किया गया था, परन्तु वह सब पूर्णतः विलुप्त हो गया है। ये दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं परन्तु यदि इन्हें समुचित सन्दर्भ में समझा जाये तो दोनों का औचित्य स्पष्ट हो जाता है। विंसेंट स्मिथ के अन्तिम असमंजस से यह सम्भ्रम प्रत्यक्ष हो जाता है।

अपनी पुस्तक 'अकबर : दी ग्रेट मुग़ल' की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि "सोलहवीं शताब्दी के किसी यूरोपीय शासक के जीवन, चरित्र और शासन के बारे में लिखने वाले इतिहासकार को विपुल सरकारी अभिलेख मिल जाते हैं कि परिश्रमी व्यक्ति यदि इन सबका पूरा अध्ययन करने लगे तो उसका पूरा जीवन इसमें लग जाये। अकबर का जीवन-चरित लिखने वाले व्यक्ति की स्थिति इससे बहुत भिन्न है। अकबर के सम्बन्ध में एक भी अभिलेख-कक्ष की सामग्री सुरक्षित नहीं है। जो अभिलेख बचे हैं, वे अपर्याप्त हैं और उनसे किसी अधिकृत सूची का संकलन नहीं किया जा सकता। (पाद-टिप्पणी : जारेट द्वारा आईने अकबरी का अनुवाद, भाग २, पृष्ठ ५ : परिष्कृत कूटनीतिज्ञ के रूप में उसने अनुशासनहीन सैनिक अधिकारियों और विद्रोही वायसरायों को जो पत्र लिखे हैं वे इस बात के निदर्शन हैं कि पूर्व के देशों में किस तरह दक्षतापूर्वक अनुनय-विनय की जाती थी। किस तरह प्रशंसा के साथ-साथ छिपे रूप में धमकियाँ दी जाती थीं और किस प्रकार कोई निश्चित आश्वासन दिये बिना इनाम और वचन दिये

जाते थे। इन कृतियों में, जिनके कारण उसे प्रसिद्धि मिली, सुदीर्घ और क्लिष्ट वाक्य भरे पड़े हैं जिनका अर्थ लगाना कठिन है।······मैंने इन कृतियों के कठिन मूलपाठ को पढ़ने का परिश्रम करना आवश्यक नहीं समझा।)

इस तरह अकबर के काल का जो कुछ अभिलेख उपलब्ध है, वह सब कूड़ा है। अशिक्षित बर्बर शासकों के शासन से आशा भी क्या की जा सकती है? इतिहासकारों ने यह सोचने में गलती की है कि पर्याप्त मात्रा में अभिलेख रखे जाते थे।

इसी पुस्तक में पृष्ठ २ पर कहा गया है कि "दरबारी पत्रों के उपलब्ध न होने का कारण यह नहीं है कि अकबर अपने कार्यों और कथनों का अभिलेख नहीं रख पाया। प्रतिदिन जब वह दरबार में बैठता था, तब मंच के नीचे खड़े हुए चतुर इतिवृत्त लेखक उसके द्वारा कहे गये हर शब्द को लिपिबद्ध करते थे और उन्होंने उसके हर साधारण-से-साधारण काम और कथन को अंकित किया।"

डाउसन ने अपनी पुस्तक में (भाग ६, पृष्ठ १४७) कहा है कि "ये पत्र किसी परिचित के साथ आपसी वार्तालाप जैसे हैं एवं उनमें जगह-जगह पद्य भरा पड़ा है। उनमें महत्त्व की कोई बात नहीं है और उनमें उस समय के राजनीतिक सम्बन्धों पर बहुत कम प्रकाश पड़ता है। लेफ्टिनेंट रिचर्ड ने इन सब पत्रों का अनुवाद सर एच० एम० इलियट के लिए किया और खेद इस बात का है कि जितना परिश्रम उनपर किया गया, उससे अधिक महत्त्व उनका नहीं था।"

स्पष्ट है कि मध्यकालीन इतिहास लिखने वाले ये आधुनिक लेखक अबुल फ़ज़ल जैसे दरबारी इतिवृत्त लेखकों और मनसर्रेट जैसे यूरोपीय पर्यटकों के उन वक्तव्यों से भ्रान्ति में पड़ गये हैं कि बहुत से मुस्लिम इतिवृत्त लेखक अकबर के चारों ओर जमघट लगाये रहते थे और वह जो कुछ भी कहता था, उसे वे तुरन्त लिख लेते थे। यदि इन तत्कालीन वक्तव्यों को उचित सन्दर्भ में ठीक से समझा जाये तो यह सच है कि आधुनिक लेखकों की यह आपत्ति भी ठीक है कि कोई महत्त्वपूर्ण अभिलेख उपलब्ध नहीं है।

तात्विक दृष्टि से यह कहना सच नहीं है कि अकबर के कथनों और

सभी महत्त्वपूर्ण कार्य-कलापों का यथातथ्य विवरण रखा जाता था। ऐसे अभिलेख रखने की सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि बहुत लोग पढ़े-लिखे हों, नियमित प्रशासन की व्यवस्था हो एवं संसार की समस्त सुविधायें उपलब्ध हों। बीसवीं सदी में सभी क्षेत्रों में सर्वव्यापी प्रगति करने वाला अमरीका जैसा देश आज भी यह दावा नहीं कर सकता कि उसका राष्ट्रपति जो कुछ कहता है उसके प्रत्येक शब्द का समुचित अभिलेख रखा जाता है। ऐसी स्थिति में हम यह कैसे मान सकते हैं कि उस काल में जब ९९ प्रतिशत जनता अशिक्षित थी, लेखन-सामग्री दुर्लभ थी, स्याही सुखाने के लिए रेत की आवश्यकता होती थी, तानाशाही राज्य किन्हीं अभिलेखों के बिना काम कर सकता था और आशुलिपि को लोग जानते नहीं थे, तब इतने विस्तृत अभिलेख रखे जाते होंगे। यह विश्वास करना भी हास्यास्पद है कि दरबार के सम्पूर्ण अभिलेखों में से सुदीर्घ संश्लिष्ट भाषा में लिखे गये और कम महत्त्वपूर्ण पत्र तो बचे रह गये हैं परन्तु शेष सब रहस्यमय ढंग से लुप्त हो गये हैं। वास्तव में तथ्य यह है कि जो कुछ लिखित रूप में रखा गया था, वह सब ये पत्र ही हैं जो हमें उपलब्ध हैं। शेष काम मौखिक रूप से ही चलता था। मुस्लिम शासक के दरबार में जैसा कार्य-व्यवहार चलता था, उसके कारण भी यह आवश्यक था कि अधिकांश व्यवहार मौखिक ही हो। दरबारी वातावरण में षड्यन्त्र, काम-वासना, धोखेबाज़ी, विश्वास-हीनता, रिश्वत, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, चापलूसी यही सबकुछ तो था! जहाँ ऐसा वातावरण हो, वहाँ सुव्यवस्थित प्रशासन कैसे सम्भव है? इसलिए जो कुछ पत्र हमें मिल सके हैं वे राजधानी से बहुत दूर रहने वाले विद्रोही सेनापतियों या गवर्नरों को समझाने-मनाने या धमकी देने और नियन्त्रित करने के लिए लिखे गये थे। इसलिए आज के इतिहासकार निश्चयपूर्वक यह मानकर चल सकते हैं कि जो कुछ अभिलेख रखा जाता था, यह सब उन्हें उपलब्ध है। जो कुछ उपलब्ध है उससे अधिक लिखा नहीं गया था और इसलिए उनके नष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

तब प्रश्न यह है कि अबुल फ़ज़ल और मनसरेंट जैसे लेखकों ने यह जो बात दावे के साथ कही है कि दरबार में जो कुछ भी होता था उसका सही-सही अभिलेख रखा जाता था, उससे क्या समझा जाये? समकालीन मुसल-

मानों के विषय में इस प्रश्न का उत्तर मनसर्रेट जैसे यूरोपीय पर्यटकों के वक्तव्यों मे थोड़ा भिन्न होगा ।

अपने अस्तित्व का औचित्य बनाये रखने के लिए और अपनी जीविका को सरल बनाने के लिए अबुल फ़ज़ल जैसे दरबारी कर्मचारी ऐसा स्वाँग रचते थे कि दरबार में जो कुछ होता है, उसका सही आलेखन करने के लिए वे सदैव तत्पर रहते हैं। यदि वे ईमानदारी के साथ परिश्रम करना चाहते और जो वहाँ होता था, उसे लिखित रूप में लाना चाहते तो भी ध्वनि-लेखन, आशुलिपि, लेखन-सामग्री और अन्य आवश्यक वस्तुओं के अभाव में उनके लिए वैसा करना न तो व्यावहारिक था, और न सम्भव। इसके अतिरिक्त इन इतिवृत्त लेखकों को इस बात में कोई रुचि नहीं थी कि वे सभी कार्य-व्यवहारों का समुचित आलेखन करें। तीसरे, दरबार में जो कुछ होता था, वह अधिकांशतः अत्यधिक अशिष्ट होता था जिसे लिखित रूप देना अभद्र होता। इसके अतिरिक्त अबुल फ़ज़ल और बदायूँनी जैसे चापलूस इतिवृत्त लेखकों को यह स्वाँग करना पड़ता था कि वे हमेशा लिखने में व्यस्त रहते थे। आखिर यह देखने वाला कौन था कि उन्होंने क्या लिखा और कैसे लिखा और कुछ लिखा भी या नहीं ? उनके लेखन का कोई निरीक्षण-कर्ता नहीं था। कोई उत्तरदायी बुद्धिमान और शिक्षित निरीक्षक उनका नियन्त्रण नहीं करते थे। जिस प्रकार मनमौजी छात्र कक्षा में बैठकर कागज पर कुछ-न-कुछ घसीटते रहते हैं जिससे अध्यापक यह समझे कि वे नोटस् लिखने में बहुत व्यस्त हैं इसी प्रकार ये इतिवृत्त लेखक भी अकबर के चारों ओर जमघट लगाकर अपनी कलम चलाते रहते थे और बादशाह जो कुछ कहता था, उसकी प्रशंसात्मक स्वीकृति में सिर हिलाते रहते थे। वास्तव में वे कुछ भी नहीं लिखते थे। यदि वे कुछ करते भी थे तो केवल कागज पर कलम चलाकर कुछ आकृतियाँ बनाते या काल्पनिक शब्द लिख देते थे। यदि वे सबकुछ लिखते भी थे, तो स्वाँग पूरा होने के बाद उसे नष्ट कर देते थे। यही कारण है कि हमें केवल वही पत्र उपलब्ध हैं जो वास्तव में लिखे गये थे और भेजे गये थे।

मनसर्रेट ने लिखा है कि अकबर "इतिवृत्त लेखकों के दल में से चार या पाँच को प्रतिदिन के कार्य के लिए नियुक्त करता है। सचिव बादशाह के कार्य और आदेशों का आलेखन करते हैं। वे उसके कहे हुए शब्दों को

इतनी गति से लिखते हैं कि ऐसा लगता है कि वे सावधानी के साथ उसके शब्दों को समझकर लिख लेते हैं। (पाद-टिप्पणी : उन्हें वाक़या-नवीस या इतिवृत्त-लेखक कहा जाता था) (पृष्ठ २०५-२०६, कमेंट्री)।'

एक तीसरे, निर्लिप्त व्यक्ति का अभिकथन होने के नाते हम उपर्युक्त विचार को बहुत महत्त्व देते हैं। परन्तु हमारा आग्रह है कि अन्य सब साक्ष्यों की तरह इस अभिकथन का भी उचित रूप से विश्लेषण तथा परीक्षण किया जाना चाहिए।

पहली बात यह है कि अकबर प्रशंसकों की भीड़ अपने चारों ओर रखना पसन्द करता था, इसलिए ये इतिवृत्त लेखक उस नाटक-मण्डली में फिट बैठते थे।

दूसरे, बादशाह सलामत की सेवा का बहाना भी इन इतिवृत्त-लेखकों के पक्ष में था क्योंकि उन्हें उसके लिए वेतन मिलता था। बादशाह के निकट रहने और उसका विश्वास प्राप्त करने से उनके अहं को बढ़ावा मिलता था और दूसरे दरबारियों की अपेक्षा उनका हाथ ऊपर रहता था। यही कुछ गिने-चुने लोग थे जो पढ़ना-लिखना जानते थे और जिनकी रुचि कुरान और दूसरे धार्मिक विषयों और दरबारी षड्यन्त्रों में बहुत अधिक नहीं थी, इसलिए उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे बुद्धिमत्ता-पूर्ण अभिलेख तैयार करेंगे।

उनसे यह आशा भी नहीं की जा सकती थी कि वे इतने मूर्ख होंगे कि हर उस बात को भी अभिलिखित कर देंगे जो प्रत्यक्ष रूप से भी बादशाह या उसके दरबारियों के लिए अपयशकारी हो।

किसी समय यदि कोई इतिवृत्त लेखक कोई निन्दात्मक बात लिखने का साहस करता भी था तो उसे बादशाह की अनुमति अथवा सहमति के बिना यथावत् नहीं रखा जाता था। कोई मूर्ख इतिवृत्त लेखक कोई निन्दात्मक, अपमानजनक या लाँछनकारी बात लिखकर उसे बादशाह के सामने प्रस्तुत करने का साहस करता तो यह स्वाभाविक था कि उसके और उसके अभिलेख के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते।

भारत में मुस्लिम शासनकाल में कोई उपयोगी अभिलेख रखने में कई प्रकार की बाधायें थीं। कत्ल, लूट, धोखेबाज़ी, कामुकता, मद्यपान, अत्या-चार और उत्पीड़न के आधार पर चलने वाले शासन में यह आशा नहीं की

जाती कि वे कोई समुचित अभिलेख रखेंगे। क्योंकि हर समय यह सम्भावना होती थी कि यदि अभिलेख किसी शत्रु के हाथ पड़ जायेंगे तो जनसामान्य में उनकी भर्त्सना होगी।

मनसर्रेट ने जो विचार व्यक्त किया है, उसका निहितार्थ क्या हो सकता है ? उत्तर बहुत सीधा है। मनसर्रेट विदेशी था और उसे फारसी, मुसलमानों के रीति-रिवाज और मुस्लिम दरबार के कार्य-व्यवहार की जानकारी नहीं थी। इसलिए उसे यह जानकारी नहीं हो सकती थी कि ये चापलूस इतिवृत्त-लेखक केवल बादशाह के अहं की पूर्ति के लिए एवं दरबारियों पर रोब जमाने के लिए रखे जाते थे।

तथापि हम मनसर्रेट के अभिमत का आदर करते हैं। बहुत सोच-समझकर उसने ये शब्द लिखे हैं कि "ऐसा लगता है कि वे सावधानी के साथ उसके शब्दों को समझकर लिख लेते हैं।" 'ऐसा लगता है' शब्दों का निहितार्थ यही है कि लेखक किसी बात के लिए वचनबद्ध नहीं होना चाहता और उसे संशय है। हम मनसर्रेट के अभिकथन से पूर्णतः सहमत हैं। हमारा विचार भी यही है कि बादशाह के चारों ओर जो इतिवृत्त लेखक रहते थे, वे सबकुछ करते थे, परन्तु लिखते नहीं थे।

इससे हर विद्यार्थी और अनुसंधानकर्ता को इस बारे में सजग हो जाना चाहिए कि मध्यकाल के सम्बन्ध में प्रत्येक उल्लेख को तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में रखकर परखना होगा। हमें विचार करना होगा कि कोई उल्लेख कब किया गया, क्यों किया गया एवं किसने किया। ऐसा विश्लेषण करने पर प्रायः यह ज्ञात होगा कि इन उल्लेखों का या तो कोई अर्थ नहीं है या फिर उनका अभिधार्थ लक्ष्यार्थ से बिल्कुल विपरीत है।

अधिकांश आधुनिक विद्वान् अबुल फ़ज़ल के अकबरनामे पर अधिक विश्वास करते हैं, यद्यपि उन्हें पता है कि वह व्यक्ति पूरी तरह अविश्वसनीय और चापलूस था। आईने-अकबरी उर्फ अकबरनामा को अकबर के शासनकाल का काफ़ी विश्वसनीय अभिलेख मानने वाले ये लोग इस तथ्य को अधिक महत्त्व देते हैं कि "अकबरनामे का लेखन अबुल फ़ज़ल ने शाही आदेश पर किया था और स्वयं अकबर ने आंशिक रूप से उसका संशोधन किया था।" (पृष्ठ ४, अकबर : दी ग्रेट मुगल, स्मिथ)।

हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि इस बात को देखते हुए कि

अकबर ने अकबरनामे का संशोधन किया, यह पुस्तक और अधिक अनुपयोगी और अकबर के पक्ष में किये गये दावों के मामले में खतरनाक हो जाती है।

जिस प्रलेख का आलेखन किसी चापलूस इतिवृत्त लेखक ने किया हो और जिसे बाद में प्रशंसा चाहने वाले तानाशाह शासक ने सेंसर किया हो, उस प्रलेख का क्या विशेष मूल्य हो सकता है ? इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय इतिहास की खोज के कई मूलभूत पक्ष उलट-पलट हो गये हैं। पहले इन्हें व्यवस्थित रूप में रखना होगा, तभी उनसे सही निष्कर्ष निकालना सम्भव होगा। "भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें" नामक पुस्तक में हम बता चुके हैं कि जिन भवनों और नगरों के निर्माण का श्रेय मुस्लिम शासकों को दिया जाता है, वास्तव में उन्होंने उन्हें नष्ट किया था। यह भी समझ लेना चाहिए कि जिस इतिवृत्त पर मुस्लिम शासक का सेंसर हो चुका है, वह और भी अधिक अनुपयोगी हो जाता है।

अब प्रश्न हो सकता है कि जब इतने अधिक असंगत अस्तव्यस्त प्रलेख उपलब्ध हैं, तब क्या हम मध्यकाल के इतिहास का पुनर्निर्माण करने का प्रयत्न छोड़ दें ? हम पाठक को विश्वास दिला सकते हैं कि इससे हताश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। मानव का मस्तिष्क और बुद्धि इतनी विकसित हो चुकी है कि धोखेबाजी और जालसाज़ियाँ उसे सत्य तक पहुँचने से रोक नहीं सकतीं। हत्या इत्यादि के मामलों की जाँच-पड़ताल को ही लीजिए। इन अपराधों में ही सत्य के अंकुर छिपे रहते हैं। प्रथम सन्देह या संशय होने पर जाँच शुरू हो जाती है। मामले की विभिन्न सम्भावनाओं की पड़ताल सावधानी से की जाती है। जैसे-जैसे जाँच-पड़ताल का काम आगे बढ़ता है, छोटे-छोटे सूत्र मिलने लगते हैं। इन संकेतों को पकड़कर कुशाग्रता और धैर्य के साथ आगे बढ़ने पर उस काले कारनामे की पूरी तस्वीर सामने आ जाती है।

भारतीय इतिहास का अनुसंधान इन शताब्दियों में गलत दिशा में चलता रहा है जिसके कारण इतिहास की पुस्तकें असंगत निष्कर्षों से भर गई हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि इतिहास की गवेषणा के मामले में अपराधों की गवेषणा के ढंग को या तो भुला दिया है या उनकी उपेक्षा कर दी गई है। इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में जो बातें लिखी गई हैं, उनकी

जाँच-पड़ताल करने का कोई गम्भीर या सजग प्रयत्न नहीं किया गया है। सम्भवत: कभी यह विचार भी नहीं किया गया था कि मध्यकाल के प्रलेखों में जो दावे किये गये हैं उनका लक्ष्यार्थ उनके अभिधार्थ से पूर्णत: विपरीत होगा।

ऐसी सजगता के अभाव के कारण ही अधिकांश लेखक पहले तो पाठक को सावधान करते हैं कि मुस्लिम इतिवृत्त-लेखकों की कही हुई बातें विश्वसनीय नहीं हैं और फिर उन्हीं कपटपूर्ण इतिवृत्तों के आधार पर वे आधिकारिक इतिहास लिखना प्रारम्भ कर देते हैं।

कुछ पाठक अनजाने में यही आरोप हम पर भी लगा सकते हैं। इसलिए हम अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना चाहते हैं। जब कोई हत्यारा हत्या करके शव के पास जाली प्रलेख छोड़ देता है तो हम अपराध करने के ढंग और उद्देश्य दोनों की जाँच-पड़ताल में अपराधी को अन्तर्ग्रस्त करने की दृष्टि से उस प्रलेख को बहुत महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में काम में लेते हैं। परन्तु केवल इस कारण कि हम जालसाज़ी को जालसाज़ी करने वाले के विरुद्ध उपयोग में लाते हैं, यह आग्रह करने का अधिकार नहीं मिल जाता कि हम यह स्वीकार करें कि उस प्रलेख की अन्तर्वस्तु सच है। इसके विपरीत जालसाज़ी के तथ्य से इतिहास की गवेषणा करने वाले किसी भी व्यक्ति को कोई निष्कर्ष निकालते हुए सावधान हो जाना चाहिए। ऐसे निर्देशों पर चलकर इतिहास की खोज की जाये तो मनगढ़न्त इतिवृत्तों के समूह में से भी सत्य को निकाल लेना सम्भव होगा।

इसलिए मुस्लिम इतिवृत्त लेखकों के बारे में विचार करते हुए निराश या हताश होने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए जब बदायूँनी मरने वाले प्रत्येक हिन्दू को ऐसा कुत्ता बताता है जो नरक में चला गया, हमें उसपर तबतक विश्वास करने की आवश्यकता नहीं जबतक स्वयं हमें यह विश्वास न हो जाये कि बदायूँनी स्वयं नरक के दरवाज़े पर यह देखने के लिए नियुक्त था कि केवल हिन्दू ही उस नरक में प्रवेश करें, मुस्लिम नहीं। परन्तु जब वही बदायूँनी अपने सहयोगी इतिवृत्त लेखक अबुल फ़ज़ल को "बेशर्म चापलूस" बताता है तब हम उसके जीवन और कृतत्व को ध्यान में रखते हुए और प्राय: सभी इतिहासकारों के सर्वसम्मत निर्णय से प्रोत्साहित इस कथन को सत्य मान सकते हैं। इसलिए यह भ्रामक

आपत्ति निर्मूल हो जाती है कि यदि हम मुस्लिम इतिहास-लेखकों की कृतियों पर सन्देह करते हैं तो हमें उनके किसी भी अंश पर विश्वास नहीं करना चाहिए। इसके विपरीत विज्ञ बुद्धि का आग्रह यही है कि हम जाँच-पड़ताल करके सच को झूठ से अलग कर लें।

हम भारतीय इतिहास के अनुसन्धाताओं के इस विचार से सहमत हैं कि मुस्लिम काल के जो मनगढ़न्त इतिवृत्त उपलब्ध हैं वही हमारे लिए आधार सामग्री का काम देते हैं। फिर भी हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि जिस तरह कोयले के ढेर में से चुनकर हीरा निकाला जाता है और तलछट से रेडियम निकलती है इसी तरह इस आधार-सामग्री में से भी मध्यकाल का तथ्यपूर्ण इतिहास निकाल लेना सम्भव है।

ऐसी परीक्षा करें तो पता चलेगा कि मुस्लिम दरबारों में जो इतिवृत्त-लेखक नियुक्त किये जाते थे वे केवल दिखावे के लिए होते थे। ये लोग देखने में तो अपनी कलम चलाते रहते थे, परन्तु वास्तव में ये कोई भी उपयोगी बात नहीं लिखते थे।

जो इतिवृत्त हमें उपलब्ध होते हैं, वे उन्होंने अवकाश के समय अपनी कल्पना से लिखे थे या फिर स्वयं बादशाह या किसी प्रमुख दरबारी द्वारा लिखवाये गये थे।

अबुल फ़ज़ल यह भी संकेत छोड़ गया है कि इन इतिवृत्तों या उनके कुछ भागों की लिखाई में बादशाह की या स्वयं अबुल फ़ज़ल की कल्पना का हाथ था। कहने का आशय यह है कि जब अबुल फ़ज़ल यह कहता है कि कई बार बादशाह ने मेरे लेखन का परीक्षण किया, इसे सुधारा, उसमें वृद्धि की, स्वीकृति दी या उसे बदला, तो हम उसपर पूरी तरह विश्वास करते हैं। वास्तव में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सभी मुस्लिम इतिवृत्त लेखकों को अपने द्वारा लिखे हुए इतिवृत्त दरबार के आश्रयदाताओं से पूर्णतः सेंसर कराने पड़ते थे।

हम देखते हैं कि कामगर खाँ जैसे इतिवृत्त-लेखक ने दुःखी शाहजहाँ को प्रसन्न करने के लिए एक पूरा जाली जहाँगीरनामा लिख डाला था।

यही कारण है कि जहाँगीर और अकबर जैसे नशेबाज़ और शराब-खोर लोग इन मादक द्रव्यों की खुलेआम बुराइयाँ करते दिखाई देते हैं।

सत्य की खोज करने वाले प्रत्येक इतिहासकार को हम सावधान कर

देना चाहते हैं कि वे जहाँगीर अथवा अकबर, फिरोजशाह अथवा शेरशाह, तैमूरलंग अथवा तुगलक सम्बन्धी कथनों के एक शब्द पर भी विश्वास न करें।

जिन सड़कों, भवनों, नहरों, पुलों, गरीबखानों, बागों, मीनारों, मस्जिदों और मकबरों के निर्माण का श्रेय मुसलमानों को दिया जाता है, वे वास्तव में हिन्दू सम्पत्ति थे।

अकबर के सम्बन्ध में यह कहना एकदम हास्यास्पद है कि उसने जिजिया कर को समाप्त किया था या सती-प्रथा को बन्द किया था।

ये सब बातें या तो इतिवृत्त लेखक ने अपनी ही कल्पना से लिखी हैं या पहले उसने ऐसा इतिवृत्त लिखा और बाद में बादशाह ने या उसके किसी विश्वस्त दरबारी ने उसमें संशोधन, परिवर्तन, परिवर्द्धन किया।

बदायूँनी ने यह कहकर मुस्लिम इतिवृत्त-लेखन का एक रहस्य बता दिया है कि जब अकबरनामा लिखा जा रहा था तब एक दरबारी आया और उसने यह लिखने का आदेश दिया कि अकबर ने नगरचैन नामक एक भव्य नगर की स्थापना की थी। बेचारे बदायूँनी ने शाही आदेश का पालन किया परन्तु साथ ही यह बात भी लिख दी कि मुझे उस नगर का कोई भी निशान देखने को नहीं मिला।

अबुल फ़जल को, जो मुस्लिम इतिवृत्त लेखकों में प्रमुख था, ठीक ही प्रमुख चापलूस माना गया है। चापलूसी के गुण ने ही उसे इतनी प्रतिष्ठा प्रदान की थी। वह चापलूसी की अपनी नीति में एकदम सफल रहा; इस चापलूसी के सहारे वह दरबार में अपने लिए वासना, आनन्द, सम्पन्नता और विलासिता का जीवन सुनिश्चित करने में सफल हो सका।

अबुल फ़जल के इतिवृत्त आईने-अकबरी को एक सरसरी निगाह से पढ़ते ही पता चल जायेगा कि यह आद्योपान्त चापलूसी से ठसाठस भरा है।

यहाँ हम दृष्टान्त रूप में कुछ उद्धरण देते हैं—

"बादशाह सलामत व्यापार में अच्छी व्यवस्था और औचित्य को बहुत पसन्द करते हैं।" (आईन १५)।

"बादशाह सलामत ने एक मोमबत्ती का आविष्कार किया है जो एक गज ऊँची है।" (आईन १८)।

"बादशाह सलामत ने २०० से अधिक संगीत-स्वर तैयार किये हैं।" (आईन १६)।

"चौबीस घण्टे में बादशाह सलामत सिर्फ एक बार खाते हैं और वह भी पूर्णतः पेट भरकर नहीं खाते।" (आईन २३) (हमें आचार्य है कि जिस व्यक्ति ने सारा जीवन दूसरों के मुँह की रोटी छीनने में लगा दिया, वह अल्पाहारी कैसे हो गया !)

"बादशाह सलामत मांस की कतई परवाह नहीं करते।" (आईन २६) (इस वाक्य का मतलब ठीक क्या है यह समझ में नहीं आता।)

"बादशाह सलामत को संगीत का ऐसा ज्ञान है जैसा प्रशिक्षित संगीतकारों को भी नहीं था।" (पृष्ठ ५४) (अकबर को संगीत किसने सिखाया और युद्ध की दुंदुभी और लोगों की चीखो-पुकार के बीच उसे संगीत सीखने का समय कब मिला ? और यदि वह इतना ही सिद्धहस्त संगीतज्ञ था तो क्या उसने कोई सार्वजनिक संगीत कार्यक्रम प्रस्तुत किये या कोई संगीत विद्यालय खोला ?)

"बादशाह सलामत ज्यादा नहीं पीते हैं परन्तु वे इस मामले (आबदार खाना) पर बहुत ध्यान देते हैं। (जब वह अधिक पीता नहीं था, तब उसे शराब पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता क्यों पड़ी ?)

"बादशाह सलामत के वस्त्र सभी को, चाहे वह लम्बे हों या छोटे एकदम ठीक आते हैं। (वही, पृ० ९६) (इसका आश्रय यह है कि अकबर को यह कमाल हासिल था कि वह जब चाहे अपनी पोशाकों को छोटा या बड़ा कर देता था। शुक्र है कि हमें बताया नहीं गया कि उसके कपड़े गधों और खच्चरों या चीते और लकड़बग्घों को भी पूरे आ जाते थे।)

"बादशाह सलामत (चित्रकारी तथा साहित्य) दोनों पर काफी ध्यान देते हैं और रूप-विचार के अच्छे निर्णायक हैं। पृष्ठ १०३) (तब युद्ध कौन करता था ?)

"बादशाह सलामत ने ऐसी तोपों का आविष्कार किया जिन्हें दागने के लिए माचिस की आवश्यकता नहीं होती। (एक खास साइज़ के) गोले सिर्फ बादशाह सलामत ही दाग सकते हैं और कोई नहीं।" (वही, पृ० १२०)।

"बादशाह सलामत ने एक चक्के का आविष्कार किया जिसकी मदद से एक ही समय में १६ बैरल साफ़ किये जा सकते हैं।" (पृ० १२२)।

"बादशाह सलामत सभी तरह के हाथियों पर सवारी कर लेते हैं। (पृष्ठ १३४)।

"बादशाह सलामत को कुत्तों के पालन की बहुत अच्छी जानकारी है।" (पृष्ठ १२८)।

"बादशाह सलामत की निष्ठाओं का वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर है।" (पृष्ठ ३६३)।

"बादशाह के विशेष गुण इतने अधिक हैं कि उनका पूरा वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर है।"

"एक फकीर ने अपनी जीभ काट डाली और उसे महल के दरवाजे की तरफ़ फेंककर कहा कि अगर अकबर पैगम्बर है तो मेरी जीभ फिर से सलामत होकर लग जानी चाहिए। दिन छिपने से पहले उसकी मुराद पूरी हो गई।" (पृष्ठ १७३)।

"बादशाह सलामत ने रसायन-शास्त्र की जानकारी भी प्राप्त की थी, और उन्होंने कुछ सोना सार्वजनिक रूप से दिखाया जो उन्होंने तैयार किया था।" (पृष्ठ ३२४)।

इस तरह अबुल फ़ज़ल बेशर्मी के साथ अकबर की चापलूसी करता चला जाता है। और निरन्तर "बादशाह सलामत, बादशाह सलामत" कहता चला जाता है। वह कभी उसे फकीर बताता है, कभी पशुपालक, कभी हाथी पालने वाला, कभी तोप बनाने वाला, कभी आविष्कर्ता, रसायन-शास्त्री और जादूगर बताता है और उसे शराबी, व्यभिचारी, हत्यारा, हिन्दुओं से घृणा करने वाला और लुटेरा छोड़कर बाकी सब कुछ कहता है— जो वह वास्तव में था।

खेद है कि चापलूसी के इस वर्णन को लोग उत्कृष्ट ऐतिहासिक वर्णन मानते हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि अकबरनामे के तीनों भाग सरासर जालसाज़ी और धोखे का बण्डल हैं।

परन्तु यह अवश्य मानना होगा कि मध्यकाल के मुस्लिम इतिवृत्त लेखक कम-से-कम एक बात में ईमानदार थे। उन्होंने हिन्दू धर्म के प्रति अपनी घृणा को खुले-आम और असन्दिग्ध शब्दों में व्यक्त किया है। यहाँ

तक कि हिन्दुओं को हिन्दू कहने की अपेक्षा उन्हें काफिर, चोर, डाकू, लुटेरे, गुलाम, कुत्ते, वेश्याएँ और बदमाश जैसे शब्दों से सम्बोधित किया। हिन्दुओं के साथ बलात्कार, लूट और हत्या का वर्णन भी वे इतनी ही स्पष्टता से करते हैं। इसका उदाहरण नियामतुल्ला की पुस्तक "तारीख-ए-खान-जहान लोदी" (भाग ६, इलियट एण्ड डाउसन) में देखा जा सकता है जिसमें उसने पूर्ण सचाई के साथ बताया है कि किस तरह सिकन्दर लोदी हिन्दुओं का कत्ले-आम करने में लगा रहा।

छलकपट से पूर्ण इन विवरणों की छानबीन करके हम बता चुके हैं कि अकबर पूर्णतः धर्मान्ध, पाखण्डी, शराबखोर और चरित्रहीन व्यक्ति था।

इससे समझा जा सकता है कि किसी भी सार्वजनिक संस्था के साथ अकबर का नाम जोड़ना कितना घातक और खतरनाक है। सार्वजनिक संस्थाओं के साथ लोगों का नाम इसलिए जोड़ा जाता है कि आने वाली पीढ़ियाँ उनके नाम को याद रखें। अकबर के बारे में इतने तथ्य जानने के बाद आने वाली पीढ़ियाँ उसे कैसे याद रखेंगी ?

अकबर के नीचतापूर्ण जीवन-परिचय को सावधानी से छिपाकर ही नहीं रखा गया है, प्रत्युत उसे श्रेष्ठता से अलंकृत करके प्रस्तुत किया गया है क्योंकि उसके परवर्ती मुस्लिम बादशाह उसके बाद २५३ वर्ष तक भारत के मुख्य भाग पर राज्य करते रहे थे। अब भी वही धूर्तता चल रही है जिसका कारण यह है कि झूठ बात को बार-बार दोहराते रहने से अब वह सच मानी जाने लगी है।

कम-से-कम भारत में धर्म-निरपेक्षता का आश्रय लेकर साम्प्रदायिक समता और सौहार्द्र की झूठी भावनाओं के कारण अकबर को उतना ही उच्च गौरव दिया जाने लगा है जितना अशोक को, क्योंकि यह एक भ्रान्त-सी धारणा बन गई है कि अशोक जैसे महान् हिन्दू राजा के समकक्ष कोई मुस्लिम शासक भी होना चाहिए। इसी उद्देश्य से अकबर की दुश्चरित्रता पर महानता का आवरण डाल दिया गया है। हमने गाँव में समाज-सेवा कार्य के लिए भेजी जाने वाली एक मोटर-गाड़ी अकबर के नाम पर देखी है। गाँव के लोग उत्सुकतापूर्वक इस गाड़ी के चारों ओर एकत्रित हो जाते थे। उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि उनके पूर्वज अकबर के समीप आते ही भय

यदि किसी होटल का नाम अकबर के नाम पर रखा जाये तो उसमें क्या सुविधाएँ होनी आवश्यक हैं, इसका वर्णन अकबर के इतिवृत्त-लेखक अबुल फ़ज़ल ने कर दिया है। उसने लिखा है—"बादशाह सलामत ने महलों के नजदीक शराब की एक दुकान खुलवा दी है। सल्तनत में वेश्याओं की संख्या इतनी अधिक हो गई थी कि उनकी गिनती नहीं हो सकती थी यदि कोई दरबारी किसी कुँवारी लड़की को अपने पास रखना चाहता था तो उसे पहले बादशाह की अनुमति लेनी होती थी। इसी तरह अप्राकृतिक व्यभिचार प्रचलित था और नशेबाजी के कारण खून-खराबा हो जाता था। बादशाह सलामत ने स्वयं मुख्य वेश्याओं को बुलवाया और पूछा कि प्रथम बार किसने उनका शीलभंग किया था।" जिस बादशाह के पास इतना समय है कि वह अपनी सल्तनत की वेश्याओं को गिने, उसकी कुँवारी लड़कियों की गिनती करे, और जो बादशाह उनमें से प्रत्येक से सतीत्व के हरण के बारे में पूछने को उत्सुक रहे, उसकी नीचता की कल्पना पाठक स्वयं करें।

खैर, हमारी समझ में नहीं आता कि किस होटल का मैनेजर वे सब सुविधाएँ उपलब्ध करायेगा जिन्हें अकबर ने प्रारम्भ किया और संरक्षण दिया।

विंसेंट स्मिथ ने व्हीलर का उद्धरण देते हुए लिखा है कि "अकबर ने जहर देने वाले एक व्यक्ति को नौकर रखा हुआ था" जिसका काम यह था कि अवांछित व्यक्तियों को ज़हर दे दिया करे। क्या अकबर के नाम से चलने वाले होटलों में भी ऐसा कोई अधिकारी होना चाहिए ?

अकबर के नाम से चलने वाली संस्थाओं पर बहुत उत्तरदायित्व है। यदि इन सबमें अकबर के जीवन के निष्कर्षों के अनुसार कार्य किया गया तो सार्वजनिक जीवन में गन्दगी फैल जायेगी।

इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि ऐतिहासिक विवरण कल्पना पर आधारित न होकर यथातथ्यपूर्ण हो।

यह भी आवश्यक है कि धर्म-निरपेक्षता के आवरण में आगे बढ़ने वाली साम्प्रदायिकता को राजनीतिक आवश्यकता के साथ मिलाकर इतिहास के साथ छेड़छाड़ या तोड़-मरोड़ न करने दिया जाये।

इसी परिप्रेक्ष्य में हमने यह आवश्यक समझा कि अकबर के शासन-काल के इतिहास को यथातथ्य रूप में प्रस्तुत किया जाये।

: २५ :

अकबर का मकबरा हिन्दू राजभवन है

अकबर की सारी प्रजा उसे घृणा की दृष्टि से देखती थी, यहाँ तक कि उसके सम्बन्धी तथा दरबारी भी उससे घृणा करते थे। उसकी मृत्यु को लोगों ने उसके स्वेच्छाचारी शासन से मुक्ति समझा। जिस ढंग से उसे दफनाया गया, उससे यही प्रकट होता है कि सभी की दृष्टि में वह घृणा का पात्र था।

विंसेंट स्मिथ का कथन है कि "मृत 'सिंह' की अन्त्येष्टि बिना किसी उत्साह के जल्दी ही कर दी गई। परम्परा के अनुसार दुर्ग में दीवार तोड़कर एक मार्ग बनवाया गया तथा उसका शव चुपचाप सिकन्दरा के मकबरे में दफना दिया गया।" (अकबर, दी ग्रेट मुगल, पृ० २३६)।

प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि अकबर से सभी प्रेम करते थे तथा वह आदर की दृष्टि से देखा जाता था तो इस प्रकार शीघ्रतापूर्वक बिना किसी उत्साह के उसे नहीं दफनाया जाता !

केवल इतना उल्लेख ही पर्याप्त नहीं है। इस सम्बन्ध में हम एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य का विवेचन करेंगे। हमारा यह निश्चित मत है कि अकबर के मृत्यु-स्थान के सम्बन्ध में भी गलत निर्देश देकर धोखा दिया गया है। आगरे के लाल क़िले में अकबर की मृत्यु होने सम्बन्धी जो पारम्परिक विवरण प्राप्त होता है—वह सही नहीं है। यदि उसकी मृत्यु आगरे के लाल क़िले में हुई होती तो वहाँ से ६ मील दूर सिकन्दरा में उसे दफनाने सम्बन्धी कार्य को 'शीघ्रतापूर्वक' बिना किसी औपचारिकता के नहीं किया जाता ! ऐसा प्रतीत होता है कि उद्धृत वक्तव्य में, कि अकबर का शव दुर्ग की दीवार तोड़कर एक मार्ग से बाहर निकाला गया तथा वहाँ से ६ मील दूर उसे दफनाया गया, कोई बात ऐसी है, जिसे जानबूझकर छिपाया गया है।

विसेंट स्मिथ ने जिन अधिकृत लेखकों के उद्धरण दिये हैं, वे सभी बाद के यूरोपीय लेखक हैं। इससे यह प्रकट होता है कि आगरे के लाल क़िले में अकबर की मृत्यु होने की बात मनगढ़न्त है, जिसपर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। समकालीन अधिकृत सूत्रों पर इस प्रकार के तथ्य आधारित नहीं हैं। वस्तुतः इस प्रकार के संक्षिप्त उल्लेख कि अकबर का शव दुर्ग के किसी द्वार से बाहर न निकाला जाकर दीवार तोड़कर एक छिद्र से निकाला गया, से स्मिथ महोदय यह निश्चित करने को बाध्य हो गए प्रतीत होते हैं कि अकबर का अन्तिम संस्कार शीघ्रतापूर्वक एवं बिना किसी औपचारिकता के हुआ। अकबर के शव को इस प्रकार गुप्त रूप से निकालने की क्या आवश्यकता थी ? स्मिथ के तथ्योल्लेख में हम यह जोड़ना चाहेंगे कि अकबर का अन्तिम संस्कार एक रहस्य था। इस प्रकार का रहस्य, शीघ्रता आदि तभी सम्भव हैं, जबकि अकबर का शव उसी राज प्रासाद में दफन हो, जहाँ वह बीमार पड़ा था। अतः हमारा यह निश्चित मत है कि अकबर की मृत्यु सिकन्दरा के उसी ६ मंजिल वाले अपहृत हिन्दू राजभवन में हुई, जहाँ वह दफनाया गया कहा जाता है।

अकबर के शव को शीघ्रता में अनौपचारिक ढंग से दफनाये जाने सम्बन्धी बात से यह निष्कर्ष निकलता है कि उसे उसी स्थान पर दफन किया गया, जहाँ वह मृत्यु-शैया पर लेटा था। वह सिकन्दरा में दफन है, अतः हमारा यह मत है कि उसकी मृत्यु सिकन्दरा में ही हुई थी। हमारे इस निष्कर्ष को इस तथ्य से परिपुष्टि मिलती है कि अकबर ६ मंजिल वाले एक हिन्दू राजभवन में दफन है। उसकी मृत्यु वहाँ तब हुई थी, जब वह वहाँ अस्थायी रूप से निवास कर रहा था।

यदि अकबर की मृत्यु आगरे के लाल किले में हुई होती तो ऐसा कोई कारण स्पष्ट नहीं है कि उसका शव दुर्ग के प्रमुख द्वार से बाहर निकालने की बजाय दीवार तोड़कर निकाला जाये।

'अकबर का शव जन-सामान्य की जानकारी के बिना अज्ञात रूप में रहस्यमय ढंग से क़िले की दीवार तोड़कर बाहर निकाला गया', इस बात की अपेक्षा यह समुचित प्रतीत होता है कि उसकी मृत्यु उसी राजभवन में हुई, जहाँ वह दफन है तथा उसके अन्तिम संस्कार के समय किसी प्रकार का जुलूस आदि आयोजित नहीं किया गया। अकबर के शव को क़िले की

दीवार तोड़कर बाहर निकाले जाने सम्बन्धी तथ्य को तभी स्वीकार किया जा सकता है, जबकि यह सिद्ध हो जाए कि उसके पिता हुमायूं, दादा बाबर के शव भी जिन राजभवनों में उनकी मृत्यु हुई थी, की दीवारें तोड़कर एक छिद्र से बाहर निकाले गए। अतः यह दावा बुद्धिग्राह्य नहीं है तथा अनधिकृत सूत्रों पर आधारित है। यह भी सोचना पड़ता है कि उसे आगरे से सिकन्दरा ६ मील दूर ले जाया जाना था, तो जनता की अपार भीड़ उसके चारों ओर एकत्रित हो जाती। ऐसी स्थिति में स्वभावतः एक विशाल एवं लम्बा जुलूस हो जाता। तब अकबर के अन्तिम संस्कार को "शीघ्रतापूर्वक तथा बिना औरचारिकता" किया जाना सम्भव नहीं हो सकता था।

उक्त तथ्यों के अतिरिक्त एक अन्य रहस्य भी है। अकबर का परिकल्पित मकबरा खाली है। उसमें उसकी अस्थियाँ नहीं हैं। विंसेंट स्मिथ ने मनूसी के इस वक्तव्य का उल्लेख किया है कि—"सन् १६७१ में (दक्षिण में) मराठों के विरुद्ध संघर्ष में औरंगजेब को यह सूचना मिली कि कुछ उपद्रवी जाट ग्रामीणों ने अकबर के मकबरे को दूषित कर डाला है तथा उसके पूर्वज की अस्थियों को तितर-बितर कर दिया है। विशाल कांस्य द्वार को तोड़कर स्वर्ण, रजत तथा अन्य मूल्यवान् पाषाणों को उखाड़ कर उन्होंने मकबरे में लूट-खसोट मचाई है।···जिन्हें वे नहीं ले जा सके, उन्हें उन्होंने नष्ट कर दिया है।···अकबर की अस्थियाँ खींचकर आग में झोंक दी हैं। पर्यटक अकबर के मकबरे को देखने जाते हैं; यद्यपि वे नहीं जानते कि वह खाली है।"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि अकबर की मृतात्मा को लेकर अभी भी जनता को भ्रम में डाला जा रहा है। अकबर के मकबरे के सम्बन्ध में कई जालसाजियाँ हो सकती हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पक्ष द्रष्टव्य हैं—

१. अकबर का तथाकथित मकबरा खाली है, उसमें अस्थियाँ नहीं हैं।

२. जहाँगीर अपने पिता अकबर से घृणा करता था तथा उसे जहर देकर अथवा द्वन्द्व-युद्ध में मार डालने का इच्छुक था। अकबर की अन्त्येष्टि के वृत्तान्त से यह भी संभव प्रतीत होता है कि उसने स्वयं अकबर की अस्थियों को जलवा दिया हो।

३. अकबर का तथाकथित मकबरा उसके दफन किये गये शव पर नहीं

बनवाया गया, क्योंकि वह छः मंजिल वाला एक हिन्दू राजभवन है, जिसमें सैकड़ों कमरे हैं, भूगर्भ-गृह है तथा चारों ओर प्राचीरों से घिरे मैदान हैं। विशाल प्राचीर में चारों ओर विशाल द्वार हैं। ऐसा प्रायः प्रत्येक हिन्दू भवन एवं राजप्रासाद में देखा जा सकता है।

४. मकबरा प्रायः फकीरों, भिखारियों तथा अन्य निम्न-श्रेणी के लोगों का विचरण स्थल हुआ करता है। अकबर का मकबरा यदि मूलतः मकबरा ही होता तो स्वर्ण, रजत तथा अन्य रत्नों से वह कदापि सुसज्जित न होता। उक्त भवन राजप्रासाद था अतः पारम्परिक रूप से जिस धन-सम्पत्ति होने के उल्लेख प्राप्त होते हैं, वहाँ मुसलमानों द्वारा उसे अपहृत करने के पूर्व तक विद्यमान थी; राजप्रासादों में ही इस प्रकार की साज-सज्जा संभावित है।

५. राजभवन की दीवारों में चारों ओर शक्ति-चक्र अर्थात् संगुम्फित-त्रिकोण प्रतीक तथा चक्र-चिह्न उत्कीर्णित हैं। यदि यह मकबरा होता तो ये सब चिह्न वहाँ न होते।

६. यदि अकबर के मकबरे के रूप में इसका निर्माण करवाया गया होता तो इसका नाम सिकन्दरा न होता। सिकन्दरा नाम सिकन्दर लोदी के नाम पर पड़ा है, जिसने वहाँ अकबर से तीन पीढ़ी पूर्व निवास किया था। सिकन्दर लोदी ने उक्त हिन्दू राजभवन को अपहृत करने के पश्चात् अपने नाम पर उसका नामकरण सिकन्दरा किया था। अकबर को वहाँ दफनाने के बाद भी उक्त नाम अभी तक उसके साथ सम्बद्ध है, प्रचलित है।

७. सिकन्दरा का राजभवन अकबर की मृत्यु से पूर्व भी विद्यमान था तथा उसे दफनाने के लिए किसी मकबरे का निर्माण नहीं करवाया गया। इस सत्य को छिपाने के लिए इतिहास में एक मनगढ़न्त कथा जोड़ दी गई। यह कहा जाता है कि अपने जीवन-काल में अकबर ने स्वयं सिकन्दरा के भव्य भवन-समूह को अपने मकबरे के लिए बनवाया था। इस प्रकार की मनगढ़न्त दन्तकथाओं की पुनरावृत्ति मध्यकालीन मुस्लिम इतिहास में प्रायः हुई है। इसी प्रकार यह कहा जाता है कि होशंगशाह ने माँडवगढ़ में अपने मकबरे का निर्माण करवाया। गियासुद्दीन तुगलक ने, जिसकी हत्या उसके पुत्र ने उसके राज्याभिषेक के ५ वर्ष बाद ही कर दी थी, दिल्ली में अपने

भव्य मकबरे का निर्माण उक्त शासनकाल में ही करा लिया था। शेरशाह के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि विस्फोटक द्रव्य से जलकर मरने से पूर्व उसने लगभग ५ वर्ष शासन किया, तथापि इस अल्प काल में ही दूर बिहार के सहसराम नामक स्थान पर उसने अपने मकबरे का निर्माण करवा लिया था। इसी प्रकार की कल्पित-कथा हुमायूं के सम्बन्ध में भी है। २५ वर्ष के निर्वासन के पश्चात् जुलाई सन् १५५५ में उसने दिल्ली में प्रवेश किया। अपने पुनः भारत आगमन के छः महीने बाद ही उसकी मृत्यु हो गई; किन्तु इस छः महीने में ही उसने अपने मकबरे का रेखांकन तैयार कर लिया था। प्रश्न उपस्थित होता है कि निरक्षर भट्टाचार्य हुमायूं क्या शिल्पकार था? उसने फारसी वास्तु-शास्त्र का अध्ययन संभवतः सिंध तथा फारस की मरुभूमि में निराश्रित, टुकड़े-टुकड़े के लिए पराश्रित होकर घूमते हुए किया होगा! क्या उस मरुभूमि में कोई शिल्प-शिक्षा विद्यालय था जो निरक्षर यायावरों को वास्तु-शास्त्र की शिक्षा देता था?

अकबर द्वारा स्वतः अपने मकबरे के निर्माण की बात मुस्लिम इतिवृत्त लेखकों की चाटुकारितापूर्ण लेखन-शैली का ही एक निदर्शन है। मुस्लिम लेखकों ने इतिवृत्त लेखन के अपने कुछ सिद्धान्त बना लिये थे। समस्त हिन्दू राजपूत निर्माणों का श्रेय वे मुस्लिम बादशाहों को दिया करते थे। अकबर के अपने मकबरे का निर्माण भी मुस्लिम लेखकों की इसी प्रकार की मनगढ़न्त बात है जिसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है।

भारत सरकार द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक के लेखक ने पूर्ण विश्वास के साथ उल्लेख किया है कि—"अकबर की मृत्यु के तीन वर्ष पूर्व से आगरे से निकट सिकन्दरा में उसके मकबरे का निर्माण-कार्य चल रहा था। जहाँगीर को उसका रेखांकन पसन्द नहीं आया तथा उसने उसमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन कर दिया। अपने शासनकाल के वर्ष (सन् १६१३ ई० में) उसने मकबरे का निर्माण पूर्ण करवाया।" इस प्रकार के परस्पर विरोधी उल्लेखों से इतिवृत्तकारों की जालसाज़ी एवं कपोल-कल्पनाओं का भण्डाफोड़ हो जाता है।

हमारी समझ में यह नहीं आता कि किस इतिवृत्तकार की कल्पनाशील बुद्धि ने ऐसी मनगढ़न्त बातें लिखने का साहस किया है। यह उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं होता कि अकबर ने कभी अपने मकबरे के निर्माण की बात सोची

हो । जहाँगीर का दावा है--"मंगलवार दिनांक १७ को मैं पैदल अपने पिता का भव्य मकबरा देखने गया । यदि सम्भव होता तो यह छोटी यात्रा मैं अपनी आँखों अथवा सिर के बल चलकर करता । मेरे पिता ने जब मेरे जन्म की मनौती मनाई थी, फतेहपुर से अजमेर तक, ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की यात्रा के दौरान १२० कोस का मार्ग पैदल ही पार किया था । अतः इस छोटी यात्रा को यदि मैं अपनी आँखों अथवा सिर के बल चलकर पूरी करता तो कोई बड़ी बात न होती । मकबरे को देखने का जब मुझे सौभाग्य मिला तो उसे मैंने अपनी इच्छा के अनुरूप नहीं पाया । मेरी इच्छा यह थी कि मकबरा इतना भव्य हो कि संसार के पर्यटक जब उसे देखें तो वे यह न कह सकें कि उन्होंने संसार में अन्यत्र उसी प्रकार का कोई मकबरा देखा है । मकबरे के निर्माण-कार्य की अवधि में अभागे खुशरू के नेतृत्व में विद्रोह के कारण मैं लाहौर की ओर कूच करने के लिए विवश हो गया । इसी बीच मकबरे के शिल्पकारों ने उसे अपनी रुचि के अनुसार बना डाला तथा स्वेच्छा से उन्होंने मूल रेखांकन में परिवर्तन कर दिया । मैंने आदेश दिया कि मेरी रुचि के प्रतिकूल बने हुए भाग को गिरा दिया जाए । तदनन्तर एक विशाल एवं भव्य-भवन निर्मित किया गया । इसके चारों ओर उद्यान था । विशाल द्वार तथा श्वेत पाषाण से निर्मित मीनारें थीं । मुझे सूचना दी गई कि इस भव्य मकबरे में इराक की मुद्रा में ५० हजार 'तूमन' तथा 'तूरान' की मुद्रा से ४५ लाख 'खानिस' धनराशि व्यय हुई ।" (वाकयात-ए-जहाँगीर, भाग ६, पृष्ठ ३१९) ।

इस तथ्य को सामान्यतः विस्मृत कर दिया जाता है कि जहाँगीर का यह कथन नहीं है कि उसने अर्द्ध-निर्मित मकबरे का निर्माण-कार्य पूरा करवाया । सावधानी से विवेचन करने पर जहाँगीर द्वारा मकबरे का निर्माण करवाये जाने का दावा भी झूठा प्रमाणित होता है ।

उसके वक्तव्य में यह उल्लेख है कि उसने निर्माणाधीन मकबरे का कार्य शिल्पकारों पर छोड़ दिया था, किन्तु शिल्पकारों ने रेखांकन में परिवर्तन कर दिया । यह स्पष्टतः झूठ है; क्योंकि उन दिनों जबकि ज़रा-सी चूक अथवा अवज्ञा के लिए किसी भी व्यक्ति की आँखें निकलवा ली जाती थीं, तब मकबरे के स्वीकृत रेखांकन की उपेक्षा करने का साहस कौन करता ?

यदि यह मान भी लें कि ऐसा कोई अविवेकशील शिल्पकार था, जिसने क्रूर जहाँगीर द्वारा स्वीकार मकबरे के रेखांकन में परिवर्तन कर दिया तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि उक्त रेखांकन में अपनी रुचि से परिवर्तन एवं परिवर्धन करने में उसका कौनसा हित-साधन रहा होगा ?

जहाँगीर के विषय में यह सर्व-विदित है कि वह अपनी अवज्ञा करने वाले की खाल उतरवा लेता था। तब यदि वास्तव में किसी ने अपनी हठ-वादिता का परिचय देते हुए मकबरे के रेखांकन में कुछ ऐसा परिवर्तन कर दिया, जो जहाँगीर की इच्छा के विरुद्ध था तो उसने उक्त दोषी व्यक्ति को क्या दण्ड दिया ? जहाँगीर ने उसे दण्ड नहीं दिया तो मकबरे के निर्माण सम्बन्धी उसका दावा भी धोखा एवं जालसाजी है।

जहाँगीर के वक्तव्य की तार्किक परीक्षा करने पर दूसरा भ्रान्तिपूर्ण उल्लेख यह सामने आता है कि उसने मकबरे के कुछ 'आपत्तिजनक' भागों को गिरा देने का आदेश दिया। इस उल्लेख से मकबरे की निर्माण सम्बन्धी प्रामाणिकता का पूर्णतः रहस्योद्‌घाटन हो जाता है। जिन आपत्तिजनक भागों को गिराने का आदेश दिया, वे स्पष्टतः हिन्दू राजचिह्नों से अंकित रहे होंगे। उक्त राजभवन की हिन्दू मूर्तियों एवं अन्य प्रतीक-चिह्नों को समाप्त करने का आदेश होने पर भी उक्त मकबरे में अभी तक कतिपय हिन्दू चक्र-प्रतीक एवं गुंफित-त्रिकोण (शक्ति-चक्र) विद्यमान हैं। उस व्यक्ति के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं है जिसने रेखांकन में परिवर्तन किया है।

जहाँगीर ने व्यय हुई राशि भारतीय मुद्राओं में न देकर दो विदेशी मुद्राओं में बतलाई है जिससे उसके झूठे दावे का पूर्णतः भण्डाफोड़ हो जाता है। मकबरे के निर्माण में व्यय हुई राशि के आँकड़े जालसाजी हैं तथा कल्पित हैं।

जहाँगीर के दरबारी इतिहास (जहाँगीरनामा) पर टिप्पणी करते हुए एवं उसके प्रत्येक पृष्ठ का सन्दर्भ देते हुए सर एच० एम० इलियट ने इस बात के पुष्ट प्रमाण दिये हैं कि यह आद्योपान्त झूठे तथ्यों का पूर्ण काल्पनिक ताना-बाना मात्र है। उन्होंने पाठकों को जहाँगीर के अपने पिता अकबर के प्रति हार्दिक आदर एवं सम्मान सम्बन्धी पाखण्डपूर्ण प्रवंचना के सम्बन्ध में सावधान भी किया है। जहाँगीर के हृदय में अपने पिता अकबर

के प्रति इतनी अधिक घृणा थी कि उसने अकबर की हत्या तक कर देने के प्रयत्न किए ।

अकबर की मृत्यु के बाद भी उनकी महानता के जो अत्युक्तिपूर्ण मनगढ़न्त उल्लेख प्रस्तुत किए जाते हैं, वे पूर्णतः भ्रान्तियों पर आधारित हैं । उसकी मृत्यु के बाद उसके मकबरे का निर्माण भी एक जालसाज़ी मात्र है । उसे एक अपहृत हिन्दू राजभवन में ही दफ़नाया गया था । यदि उसकी अस्थियाँ (?) अभी भी सिकन्दरा में विद्यमान हों, तो भी कहा जा सकता है अकबर का शव एक हिन्दू राजभवन में दफन है ।

प्राचीन हिन्दू नगरों की एक विशेषता यह होती थी कि राजभवन नगर के मध्य भाग में होता था । सिकन्दरा के ध्वंसावशेषों में हिन्दू नगरों की यह विशेषता देखी जा सकती है ।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अकबर के शासनकाल का सविस्तार पुनर्मूल्यांकन करने में हमारा उद्देश्य मुख्यतः धोखे और जालसाजी का भण्डाफोड़ करना है । हमारा उद्देश्य अकबर के चरित्र, जीवन, शासन, मृत्यु तथा अंतिम संस्कार के सम्बन्ध में "केवल सत्य, सम्पूर्ण सत्य तथा सत्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं" को प्रस्तुत करने का रहा है ।

हमें इस बात का खेद है कि दरबारी चाटुकार इतिवृत्त लेखकों द्वारा प्रस्तुत भ्रान्त एवं झूठे तथ्यों के बीहड़-वन से सत्य को पृथक् करके प्रस्तुत कर सकने में हम पूर्णतः सफल नहीं हो सके हैं । किन्तु जहाँ तक सम्भव हो सका है, हमने सत्य को भ्रांतियों से पृथक् करने का प्रयास किया है तथा अकबर की तथाकथित महानता का रहस्योद्घाटन कर उसका सही रूप प्रस्तुत किया है । अकबर के सम्बन्ध में हमने संगत एवं तार्किक विवरण प्रस्तुत करने की चेष्टा की है । हम कहाँ तक सफल हुए हैं, इसका निर्णय पाठकों को करना है ।

□□□

पुरुषोत्तम नागेश ओक
(1917-2008)

शिक्षा: बम्बई विश्वविद्यालय से एम॰ए॰, एल॰एल॰बी॰

जीवन कार्य: एक वर्ष तक अध्यापन कर सेना में भर्ती।

द्वितीय विश्व युद्ध में सिंगापुर में नियुक्त। अंगरेजी सेना द्वारा समपर्ण के उपरान्त आजाद हिन्द फौज के स्थापन में भाग लिया, सैगौन में आजाद हिन्द रेडियो में निदेशक के रूप में कार्य किया।

विश्व युद्ध की समाप्ति पर कई देशों के जंगलों में घूमते हुए कलकत्ता पहुँचे। 1947 से 1974 तक पत्रिकारिता के क्षेत्र में (हिन्दुस्तान टाइम्स तथा स्टेट्समैन में) कार्य किया तथा भारत सरकार के सूचना व प्रसारण मंत्रालय में अधिकारी रहे। कुछ समय तक अमरीकी दूतावास की सूचना सेवा विभाग में भी कार्य किया।

देश–विदेश में भ्रमण करते हुए ऐतिहासिक स्थलों का निरीक्षण करते हुए उन्होंने कई खोजें कीं। उन खोजों का परिणाम उनकी रचनाओं के रूप में हमें मिलता है। उनकी कुछ रचनाएँ है ताजमहल मन्दिर भवन है, भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें, विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय, वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास, कौन कहता है अकबर महान था?

उनकी मान्यता है कि पाश्चात्य इतिहासकारों ने इतिहास को भ्रष्ट करने का जो कुप्रयास किया है, यह वैदिक धर्म को नष्ट करने के लिए जानबूझकर किया किया है और दुर्भाग्यवश हमारे स्वार्थी इतिहासकार इसमें उनका सहयोग कर रहे हैं।

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी. डी. चैम्बर, 10/54, देशबन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005 फोन : 23553624, 23551344
Email : Indiabooks@rediffmail.com